

कृष्ण-भक्ति-साहित्य पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव [१४ वीं से १७ वीं शताब्दी तक]

Influence of Bhagwat on Krishna Bhakti Literature
[14th to 17th Century A. D.]

मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ की पी-एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत



शोध-प्रबन्ध

Forwarded
Head of the Deptt.
SANSKRIT - HINDI
M. U. ALIGARH.

प्रस्तुत-कर्ता

विश्वनाथ शुक्ल
संस्कृत-हिन्दी-विभाग
अलीगढ़ विश्वविद्यालय



कुशाभ-सहित एव एन्डोस-सहित-प्रकाश

[१९ वीं १९ वीं १९ वीं]

Influence of Bhagwan on Krishna Bhakta Literature
Dr. K. S. Chandra

THESIS SECTION

T303



T303



7 JUL 1962

d in Common

Wan
CHECKED-2002

CHECKED 1996-97

THE FEET

संस्कृत भक्ति-साहित्य

गुरु-भक्ति-साहित्य

प्रकाशित-सहित

भूमिका

भारतीय अध्यात्म-साहित्य में श्रीमद्भागवत एक अत्यन्त माहात्म्यशाली ग्रंथरत्न है। ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की त्रिविणी रूप इस ग्रंथ में केवल भारतीय-साहित्य में ही नहीं, विश्व-साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। "भागवत" शब्द बहुत प्राचीन काल से ही एक बहिर्सात्मक, समन्वयात्मक, उदार धर्म-मत एवं कर्तुन्यायी वैष्णव-मन्त्र के अभिधान में अस्सृत होता आया है। श्रीमद्भागवत समस्त प्राचीन संस्कृत-वाङ्मय के तत्त्व-ज्ञान एवं अध्यात्म साधना का एक सार्वजन्यपूर्ण एवं अमृत समन्वयात्मक रूप प्रस्तुत करता है। एक सर्व सामान्य, निर्विशिष्ट भक्ति-धर्म की संहिता के रूप में तो उसका स्थान महत्वपूर्ण है ही, कृष्ण-भक्ति के प्रबल प्रतिपादक के रूप में समस्त संस्कृत-वाङ्मय में उसका स्थान सर्वोपरि है। मध्ययुगीन समस्त भारतीय भक्ति-साहित्य श्रीमद्भागवत से प्रभावित हुआ है। किन्तु विशेषकर कृष्ण-भक्ति-साहित्य का अन्तर्ग एवं बहिर्ग तो श्रीमद्भागवत के अन्तर्गतत्व एवं वाङ्मय वस्तु-तत्त्व से पूर्णतया अनु-रूजित है। विभिन्न भारतीय एवं वैदेशी, फ्रेंच, फ़ारसी आदि भारतीय भाषाओं में उसके अनुवाद इसकी लोकप्रियता एवं व्यापक प्रभाव के प्रमाण हैं। भारतीय भाषाओं में बंगला, गुजराती, मराठी, उड़िया, असमिया, तमिल, तेलुगु मतवात्म, कन्नड आदि प्रमुख भाषाओं में इसके अनुवाद बहुत फलते से ही होते रहे हैं। हिन्दी में भी इसके समग्र एवं वार्षिक नव तथा पञ्चानुवादों की संख्या शताधिक है। मध्ययुग से ही नहीं, आज भी भक्ति-क्षेत्र में श्रीमद्भागवत का प्रभाव अदुग्गुण है। विष्णु की १५ वीं, १६ वीं शताब्दी तक तो यह ग्रंथ अपनी ख्याति एवं लोकप्रियता की चरम सीमा पर पहुँच चुका था। भक्ति और भागवत पर्यायवाची शब्द हो गए थे और "पदिर गुनिर भगति भागवत" कहकर उनकी सहस्थिति की धोखा की जाती थी।

वन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य को होकर पहले राष्ट्रभाषा हिन्दी के ही मध्यकालीन भक्ति-साहित्य को लीजिए । इस साहित्य की प्राणभूता भावना के स्वरूप का विचार करने पर शीघ्र ही अनुभव होगा कि इस साहित्य का अध्ययन श्रीमद्भागवत निर्दिष्ट नहीं हो सकता । हिन्दी के दो महान् भक्त कवियों—सूर और तुलसी को तत्त्वतः सम्झने के लिए श्रीमद्भागवत का ज्ञान कितना आवश्यक है यह सुधीजनों से जनवगत नहीं है। कृष्ण साहित्य के निम्नार्ध सम्प्रदायानुयायी कवि, वल्कल सम्प्रदायानुयायी अष्टहापी कवि, राधा वल्कलीय कवि, भैरव सम्प्रदायानुयायी कवि, स्वामी हरिदास प्रवर्तित सभी सम्प्रदायानुयायी कवि और उनके अविरहित सम्प्रदाय मुक्त और कृष्ण-भक्त कवियों को श्रीमद्भागवत ने बहुत व्यापकता एवं गम्भीरता से प्रभावित किया है।

हिन्दी कृष्ण-भक्ति-साहित्य पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव किन रूपों, माध्यमों एवं प्रक्रियाओं द्वारा व्यक्त हुआ है, यह एक अत्यन्त उपादेय एवं महत्वपूर्ण अध्ययन का विषय है जिसकी आवश्यकता के विषय में दो मत नहीं हो सकते ।

विगत बीस वर्षों में हिन्दी-भक्ति-साहित्य पर और दृष्टिकोणों से बहुत ही उपयोगी शोधकार्य हुआ है जो सुधीजनों से जनवगत नहीं है। उक्त शोध-प्रबन्धों में श्रीमद्भागवत की आनुर्भासिक चर्चा है। उनका उद्देश्य भिन्न है। उनमें न तो श्रीमद्भागवत के प्रभावक तत्वों का वैज्ञानिक वर्गीकरण है न शास्त्रीय एवं सांत्विक विवेचन । एक विस्तृततर धरातल पर श्रीमद्भागवत के साथ हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन भी अभी तक वैपरीत है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में उसी दिशा की ओर अग्रसर होने का प्रयास किया गया है।

शोध के लिए औपदिता निश्चित सीमा, केन्द्राभिमुक्ता एवं तत्त्वमय वैज्ञानिक अध्ययन की सिद्धि के लिए प्रस्तुत प्रबन्ध का शोध हिन्दी-कृष्ण-बुद्धि भक्ति साहित्य (१४ वीं से १७ वीं शताब्दी) तक सीमित रखा गया है और इसी काल-सीमा में रचित साहित्य पर श्रीमद्भागवत के प्रभाव का निरूपण किया गया है। इसी काल-सीमा में हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ, समर्थ कृष्ण भक्त कवि हुए हैं। इनमें से अधिकतर या तो तत्कालीन किसी वैष्णव वाचार्य द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय में दीक्षित थे या श्री हित हरिश्चंद्र वादि की भाँति स्वयं ही किसी सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। जैक कृष्ण-भक्त कवि सम्प्रदाय दीक्षित होकर भी स्वभावतः साम्प्रदायिक-तत्त्व सीमा से मुक्त थे जैसा मूलतः ही स्वच्छन्द भक्ति धारा में प्रवहमान थे। सभी श्रेणियों के कवियों पर श्रीमद्भागवत का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। वैष्णव वाचार्यों में मध्वाचार्य, श्रीवल्लभाचार्य, श्रीचैतन्य वादि ने अपने सम्प्रदायों में श्रीमद्भागवत का परम प्राप्ताप्य स्वीकार किया था। श्री वल्लभाचार्य ने तो अपने सम्प्रदाय में प्रस्थानत्रयी के साथ श्रीमद्भागवत को भी सम्मिलित करके प्रमाण-चतुष्टय की घोषणा की थी और उसे व्यास की समाधि-भाजा कहकर उक्त शीकोवर दिव्यत्व प्रतिपादन किया था-

वेदाः श्रीकृष्ण वाक्यानि प्रस्तूत्राणि केव हि ।

समाधिभाजा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥

(तत्त्वदीप निबन्ध प्र० १)

इस प्रकार उक्त वाचार्यों के सम्प्रदाय में दीक्षित हिन्दी-कृष्ण-भक्त-कवियों के लिए भी श्रीमद्भागवत का प्राप्ताप्य अनिवार्य हो गया। कतः श्रीमद्भागवत के इस प्रभाव का नाज्यम वाचार्य परम्परा है। इन वाचार्यों ने श्रीमद्भागवत पर जैक टीकारें, व्याख्याएँ, सन्दर्भ एवं निबन्ध ग्रंथों का प्रणयन किया है जो समस्तमयिक एवं पार्वती हिन्दी

कृष्ण-भक्त-कवियों के लिए प्रेरणादायक एवं मार्गनिर्देशक हुए। विशेष-कर वल्लभाचार्य एवं महाप्रभु चैतन्य देव के सम्प्रदाय में प्रणीत भागवत साहित्य के परिचय के बिना हिन्दी कृष्ण-भक्ति-साहित्य का अध्ययन नित्य ही अपूर्ण रहता है। इसीलिए प्रबन्ध के एक अध्याय में मार्कण्डेय के प्रमुख वैष्णव सम्प्रदायों में श्रीमद्भागवत की मान्यता और उनमें रचित भागवत-साहित्य का विवेक किया गया है।

विषय का विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि इसके दो भाग हो सकते हैं- प्रथम भाग में श्रीमद्भागवत का अध्ययन एवं द्वितीय भाग में श्रीमद्भागवत से प्रभावित हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-साहित्य का अध्ययन। श्रीमद्भागवत का अध्ययन स्वयं अपने आपमें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। यह ग्रंथ भक्ति शास्त्र की सर्वोच्च संहिता होने के साथ ही साथ गूढ़ दार्शनिक ज्ञान एवं मनोहारिणी काव्य गरिमा का भी वाकर है। अपने क्षेत्रीय में जैक बार अपने गौलीकवासी पूज्य पिताजी से "किया भागवतावधिः" एवं "कियावताभागवत परीक्षा" की उक्तियाँ सुनीं थीं। तब श्रीमद्भागवत के प्रति एक अद्वानय जातक भैर मानस में जा गया था। श्रीमद्भागवत-पाठ उनके नित्य स्वाध्याय का अनिवार्य अनुष्ठान था। उन्हीं से श्रीमद्भागवत का किंचित् प्रसाद मिला था। अवस्था के साथ जिज्ञासा भी बढ़ती गई और जागे चलकर उसे लोघड़ का विषय बना लिया। प्रारंभ के दो तीन वर्गों तक तो मैं श्रीमद्भागवत-पाँव में निराधार हूबता उतराता रहा। श्रीमद्भागवत की जैक संस्कृत हिन्दी टीकारें देखीं, किन्तु संग्रह-त्याग का विक न हुआ। तब श्रीमद्भागवत के जैक मर्मज्ञ विद्वानों एवं भक्तों से प्रत्यक्ष विचार विमर्श करने के लिए प्रयास करना पड़ा। अपने विविध विषय के लिए मुझे जिस स्पष्ट दिग्दर्शन की आवश्यकता हुई थी वह मुझे वृन्दावन में पूज्यपाद स्वामी वल्लभानन्दजी सरस्वती और पन्चई में बालकृष्ण मंदिर (मोटा मंदिर)

हुदाईत पीठ के लावार्य गोस्वामी श्री दीक्षित जी महाराज से प्राप्त हुआ । इन्दौरस्थ गो० महाराज सच्चू बाबा से भी कौक शंकाओं का समाधान किया गया । उक्त महानुभावों के प्रकाण्ड पांडित्य एवं दार्शनिक ज्ञान के साथ ब्रजभूमि में परम मगवदीय श्री बांकादास जी परीस से श्री-मद्भागवत की परम प्रेक्षाभक्ति के स्वरूप को भी यत्किंचित् समझने का प्रयास किया । श्रीमद्भागवत विषयक अध्ययन के बाधार् पर इस प्रबन्ध में इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि पुराण-साहित्य में श्रीमद्भागवत मूर्धन्य स्थान पर प्रतिष्ठित है और स्वयं के विषय में उसकी यह उचित वार्थ है-

निम्नगानां यथा गंगा देवानामञ्जुतो यथा ।

वेष्णावानां यथा तम्बुः पुराणानामिव तथा ॥

श्रीमद्० १२।१३।१६

जहाँ श्रीमद्भागवत की कथावस्तु एवं उसमें वर्णित विभिन्न पौराणिक विषय कृष्ण भक्ति साहित्य को प्रभावित करते रहे हैं वहाँ उसका दार्शनिक मत-वाद और व्यावहारिक भक्ति पद्धति उसे कहीं अधिक सूक्ष्मता एवं गंभीरता से अनुप्राणित करते आए हैं। उक्तः श्रीमद्भागवत के प्रतिपाद्य तत्त्वज्ञान एवं भक्ति दर्शन का स्वरूप स्पष्ट करना अनिवार्य ही जाता है। बुद्धियोग एवं भक्ति योग दोनों से प्राप्तव्य एक ही पारमार्थिक वस्तु ब्रह्म का स्वरूप क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर श्रीमद्भागवत के बाधार् पर जानकर हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-साहित्य की मूल धारणा की सरलता से समझा जा सकता है। श्रीकृष्ण ही श्रीमद्भागवत के अनुसार परब्रह्म हैं। जिनकी उपलब्धि का एक मात्र उपाय भक्ति है -

स्तावानेव लोकेऽस्मिन् पुत्रार्थिः परःस्मृतः ।

भक्तियोगो मगवति तन्नाम ग्रहणादिभिः ॥

- श्रीमद्० ६।३।२२

यह भक्ति स्वयं होकर भी किस प्रकार व्यक्त हो जाती है, यह अध्य-
यन का मनोरंजक विषय है। ब्रह्मचारी और पात्र भेद से इसके वैधी,
रागानुगा, तानस, राजस, सात्त्विक, निर्गुण आदि जैक भेद हो जाते
हैं। भक्ति के वैज्ञानिक विवेचन के लिए श्रीमद्भागवत की भक्ति-पद्धति
का अध्ययन परमावश्यक है। हिन्दी-भक्ति-साहित्य में केवल भागवतीय
भक्ति के प्रतिपादन के लिए सहस्रावधि ग्रंथों का ग्रन्थन हुआ है। इसीलिए
श्रीमद्भागवत के वार्षनिक तत्व-ज्ञान एवं भक्ति पद्धति का प्रतिपादन एक
स्वतंत्र अध्याय में किया गया है।

इस प्रबन्ध का सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र-स्थानीय और मौलिक
भाग वह है जिसमें हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले
भागवतोक्त तत्वों का वैज्ञानिक वर्गीकरण एवं शास्त्रीय विवेचन किया गया
है। इन तत्वों को दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है १- सामान्य
और २- विशेष । सामान्य तत्वों में भक्ति के वे मूल और सार्वजनीन
सिद्धान्त आते हैं, जो निर्गुण सगुण-उभो भक्तों की आधार मूमि हैं-
क्या स्तुति, नाम-महिमा, गुरु-महिमा, सत्संग, वैराग्य आदि । केवल
सगुण भक्ति प्रतिपादक राम और कृष्ण भक्त कवि ही नहीं निर्गुण भक्त
भी इन तत्वों का अवलम्बन करते हैं। उदाहरणार्थ जहाँ सूर तुलसी आदि
सगुण भक्त भगवान् के नाम की अपार महिमा और अमोघ शक्ति का स्फु-
ट करते हैं वहाँ कबीर आदि निर्गुण सन्त कवि भी पीछे नहीं हैं। इस
प्रकार नाम माहात्म्य वह सामान्य भक्ति तत्व है, जो समस्त हिन्दी
भक्ति साहित्य का एक प्रमुख वर्ण्य विषय है। श्रीमद्भागवत में भगवन्नाम
का अपार माहात्म्य किमान है। इस कथन से यहाँ यह अभिप्राय कभी
नहीं कि समस्त सामान्य भक्ति सिद्धान्त हिन्दी भक्ति साहित्य में केवल
श्रीमद्भागवत से ही आते हैं, तात्पर्य यह है कि श्रीमद्भागवत मध्यकाल का

सबसे समर्थ मन्त्रित शास्त्र होने के कारण सामान्य मन्त्रित तत्त्वों के लिए भी हिन्दी कवियों का प्रधान उपजीव्य रहा है।

प्रसूतया कृष्ण मन्त्रित साहित्य को ही प्रभावित करने वाले मागवतीय तत्त्वों को विशिष्ट तत्त्वों की श्रेणी में रखा गया है। इन तत्त्वों को हम चार शीर्षकों में वर्गीकृत कर सकते हैं :-

- १- श्रीकृष्ण की विविध लीलारं
- २- श्रीकृष्ण की रूप माधुरी
- ३- श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व और
- ४- श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम

इन चार मुख्य शीर्षकों में विभक्त तत्त्वों में भी अनेक अवान्तर उपतत्त्व हैं - क्या विविध कृष्ण लीलाओं के अन्तर्गत ही वृन्दावन, यमुना, गो-वर्धन, गोप बालक, गौर, नन्द यशोदा आदि तत्त्वों का समावेश हो जाता है। कारण यह है कि वास्तव में ये सब कृष्ण की लीला के विधाक उद्गरण हैं। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो पूर्वोक्त चार प्रसूत शीर्षकों में विभाजित मागवतीय-विषयों में ही समस्त हिन्दी-कृष्ण-मन्त्रित-साहित्य का समावेश हो जाता है। प्रस्तुत प्रबन्ध में इन विषयों का वैज्ञानिक और शास्त्रीय दृष्टि से विवेक किया गया है और पूर्वोक्त तत्त्वों के बा-ह्यतः ध्यात्मिक एवं बाधिमोक्तिक स्वभावों के स्पष्टीकरण का भी प्रयत्न किया गया है। मागवतीय तत्त्वों इस प्रकार वर्गीकरण एवं अनुसंधान की तक हिन्दी कृष्ण मन्त्रित के शोध क्षेत्र में देखने में नहीं आया। इस प्रयास का यह उद्देश्य रहा है कि हिन्दी-कृष्ण-मन्त्रित-साहित्य के अध्येता के समक्ष श्रीमद्भागवत के प्रभावक तत्त्वों का एक स्पष्ट मान-चित्र उपस्थित हो सके जिसके आधार पर वह अपने अध्ययन क्षेत्र का सर्वेक्षण निर्वर्णित एवं वास्तविक रूप से कर सके। यह प्रयास ही इस प्रबन्ध द्वारा मोल्लि अनुसंधान के लिए आवश्यक शर्त-तथ्यों की सोज एवं तथ्यों जस्ता सिद्धान्तों की अभिनव व्याख्या की पूर्ति कराता है।

श्रीमद्भागवत कृष्ण-लीला का जाकर ग्रंथ है। हरिवंश-पुराण, विष्णु पुराण वादि पूर्ववर्ती समस्त कृष्ण लीला सम्बन्धी ग्रंथों में श्रीकृष्ण की जो लीलारं वर्णित हैं उनका पूर्ण विकसित, उप-वृद्धित, सलित एवं उदात्त स्वरूप केवल श्रीमद्भागवत में ही व्यक्त हुआ है। अतएव भागवतीय कृष्ण लीलाओं का, जिनका गान हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों का प्राणस्पन्दन ही है, सूक्ष्म अध्ययन परमावश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। प्रस्तुत प्रबन्ध में चेष्टा की गई है कि श्रीमद्भागवत की समस्त कृष्ण लीलाओं का एक धरातल पर सर्वेक्षण किया जाय। भागवत दशम स्कन्ध की समस्त कृष्ण लीलाओं को संक्षिप्ततम रूप में इस-लिए प्रस्तुत किया गया है कि हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों द्वारा गीत कृष्ण लीला का भागवतीय लीला-भावना के साथ तुलनात्मक अध्ययन हो सके। बीच रूप में सन्निहित छोटी से छोटी कृष्णलीला का भी अनुसंधान किया गया है, क्योंकि जो लीला देखने में एक छोटी सी बात-चेष्टा मालूम होती है, उसमें एक अद्भुत मानवीय रस मरा रहता है जिसका उद्घाटन पारवर्ती हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी दिव्य-प्रतिभा से किया है। उदाहरण के लिए सूर और परमानन्ददास के नाम प्रस्तुत किए जा सकते हैं। श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण की अलौकिक रूप माधुरी, श्रीकृष्ण का परब्रह्म और श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के अनन्य और अलौकिक प्रेम के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है।

श्रीमद्भागवत के प्रभावक तत्वों का अनुसंधान स्वस्वपा-मिज्ञान ही वस्तुतः इस शोध का केन्द्र बिन्दु है और इसीलिए प्रबन्ध में श्रीमद्भागवत की ही प्रसूता है, यही शोध विषय को दृष्टिकोण में रखते हुए भरा अभिप्रेत भी रहा है। शास्त्रीय समीक्षा का एक सुविचारित दृष्टिकोण सामने आने पर फिर केवल हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-साहित्य

पर उसके प्रयोग का प्रश्न रह जाता है जो केवल कुछ चुने हुए उदाहरणों के द्वारा भी सम्मन्न किया जा सकता है।

हिन्दी-कृष्ण-भक्ति-साहित्य में छत्ते सम्प्रदाय और उनमें छत्ते विशाल संख्या में भक्त कवि हुए हैं, तथा उन पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव छत्ते विविध रूपों में पाया जाता है कि कवियों की कड़ी से कड़ी संख्या के बाधार पर भी उल्का निरूपण करना एक चुंकर कार्य है। ऐसी स्थिति में प्रधान-मल्ल-निर्वहण-न्याय से केवल प्रमुख सम्प्रदाय और उनमें दीक्षित प्रमुख एवं प्रतिनिधि कवियों का चक्र ही सम्भव था। इसी प्रकार हमारे वातोच्यकाल के सम्प्रदाय-भुक्त कवि जिन पर श्रीमद्भागवत का प्रत्यक्ष और अत्यक्ष प्रभाव है, कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। उनके चक्र में भी प्रसिद्धि और प्रतिनिधित्व का दृष्टिकोण ही समीचीन हो सकता है था और वही अपनाया भी गया है। प्रबन्ध के उपरार्द्ध में श्री-मद्भागवत और हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के काव्य का तुलनात्मक अध्य-यन प्रस्तुत किया गया है- कवियों का वर्गीकरण दो श्रेणियों में हुआ है-

१- सम्प्रदायानुयायी कवि और

२- सम्प्रदाय भुक्त कवि ।

सम्प्रदायानुयायी कवियों में भी सबसे प्रमुख स्थान वल्लभ सम्प्रदाय के षष्ट-शायी कवियों का है। जहाँ उन्होंने श्रीमद्भागवत के बहिरंग एवं अन्तरंग का सर्वाधिक अवलम्ब लिया है वहाँ, परिमाण, प्रसिद्धि एवं लोकप्रियता की दृष्टि से भी उनके काव्य का महत्व निर्विवाद है। इसीलिए श्रीमद्-भागवत और षष्टशायी कवियों का तुलनात्मक अध्ययन एक पृथक् अध्याय में किया गया है। वल्लभानुयायी षष्टशायी कवियों के उपरान्त श्रीमद्-भागवत-प्रभावित सम्प्रदायों में निर्वार्क सम्प्रदायी, राधावल्लभीय, चैतन्य सम्प्रदायी एवं हरिदास प्रवर्तित सभी सम्प्रदायी कवि उल्लेखनीय हैं। इन

सम्प्रदायों के भी प्रसृत एवं प्रतिनिधि कवियों तथा श्रीमद्भागवत का तुलना-
त्मक अध्ययन पूर्ण सहानुभूति एवं जागरूकता के साथ व्यापकित किया गया
है।

सम्प्रदाय मुक्त कवियों में बालोच्चकाल के जो कवि भौ-
दृष्टिकोण से विशिष्ट और प्रतिनिधित्व करते हुए प्रतीत हुए, उनकी
काव्यगत मवित चेतना को श्रीमद्भागवत के साथ तुलनात्मक अध्ययन के
बाधार पर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। श्रीमद्भागवत के
मूल भाग एवं हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के समानान्तर काव्य के अनु-
संधान में पर्याप्त पश्चिमपूर्वक पूरी सावधानी बरती गई है। तुलनात्मक
दृष्टिकोण से एक धरातल पर इतनी विविध सामग्री का उपयोग कर
सकना एक मानसिक संतुलन समाधान का विषय रहा है। तुलनात्मकता
इस प्रबन्ध की एक प्रसृत विशेषता ही नहीं बल्कि हिन्दी-कृष्ण-भक्ति
साहित्य के अध्ययन में एक सहायक उपादान भी है।

जहाँ तक हो सका है प्रबन्ध को संदिग्धताम बनाने की
पूर्ण चेष्टा की गई है। "नामूतर्लित्यै किंचित् नानपदितामुच्यते" का
सिद्धान्त निरन्तर भौ दृष्टि पथ में रहा है। इसके अतिरिक्त निर्दोषता
एवं समग्रता का दावा करना "सर्वस्तु सर्वं नहि वेद कश्चित्" जैसे शास्त्र
सत्य की अवहेलना होगी और एक मादृश प्राकृत जन के लिए दम्भ भी।
मानव कृति में अपूर्णता का होना ही अधिक स्वाभाविक है।

हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य श्रीमद्भागवत का कितना
झण्टी है, हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य में उससे कितने लोक मंगल विधा-
यक तत्वों का शुभागमन हुआ है, इस जिज्ञासा को लेकर चलने वाले साहित्य
पथिक का यह फलु-अयास कुछ संवत बन सके, उसके पथ को कुछ और प्रशस्त
कर सके, उसमें गन्तव्य के प्रति कुछ और उत्सुक दृढ़ता जगा सके इसी आनन्द-

मय भाषा और विश्वास से मैं प्रकृत हुआ हूँ ।

यह शोध कार्य अद्वैत गुरुवर डा० हरवश लाल शर्मा स्न० ए०, पी०-स्व०डी०, डी०एल० अध्यक्षा एवं आचार्य, संस्कृत-हिन्दी विभाग मुस्लिम विश्वविद्यालय अलौगढ़ के निर्देशन में सम्पन्न हुआ है। यह उन्हीं के सहज और अंतर्गत स्नेह का फल है। आज के इस अश्रद्धा, अविश्वास एवं प्रत्यक्षा की ही प्रमाण मानने वाले जड़-वादी युग में जब मगधमन्त्रित और उपासना की बात की कोई महत्व नहीं दिया जाता, अपनी इस साहित्य यात्रा में मुझे किसी अचिन्त्य शक्ति ने निरन्तर अपनी मनोरम सत्ता के मधुर भाव से अभिभूत रखा है। मेरी अंतरात्मा तो कहती है कि वह उसी लीला पुरुषोत्तम त्रिमूर्ति-ललित-सिंहर की ही रसमयी मूर्ति रही होगी, जिसकी वाह्यमयी-अर्चना का किंचित् प्रयास इस कृति में दृष्टिगोचर होता है। अतः उसी के चरणों में अपनी मन्त्रित-मयी प्रणति निवेदन करता हुआ केवल यह कहकर विराम लेता हूँ-

“ त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्प्य-”

विनीत

शरत्पूणिमा

सं० २०१७ वि०

विश्वनाथ शुक्लः

विषयानुक्रमिका

सूचिका	१
प्रथम अध्याय	१-४७
पुराण साहित्य एवं श्रीमद्भागवत	
	पृष्ठ संख्या
भारतीय वाङ्मय और उसका दृष्टिकोण	१
वैदिकीय साहित्य	२
पुराण साहित्य	४
पुराण शब्द का अर्थ ५ पुराणों का रचनाकाल ८, पुराणों का मूल सूत्र १०, पुराण संख्या ११, पुराणों का वर्गीकरण १३, पुराणों का प्रतिपाद्य विषय १४	
सर्वाधिक व्याप्त एवं लोकप्रिय पुराणा श्रीमद्भागवत १६	
श्रीमद्भागवत और देवी भागवत	१७
श्रीमद्भागवत का रचना काल	२०
श्रीमद्भागवत के रचयिता	२४
एक ही कर्ता की रचना	२६
श्रीमद्भागवत का अकार प्रकार एवं वर्ण्य विषय	३०
स्कन्धानुसार वर्ण्य विषय	३३
श्रीमद्भागवत की टीकाएं	३७
भागवत नाम से अभिहित अन्य ग्रंथ	४३
जैमिनीय भागवत	४३
भागवत चम्पू	४५
मंत्र भागवत	४५
बाल भागवत	४६
श्रीमद्भागवत के हिन्दी गद्य पद्यानुवाद	४६

निष्कर्ष	४६
द्वितीय अध्याय	४८-११३
श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य (तत्त्व ज्ञान एवं मवित दर्शन)	
दृष्टिकोण	४८
श्रीमद्भागवत का अनुबन्ध बाधय	४६
वात्मा और परमात्मा का स्वरूप ५२, ईश्वर ५३, जीव ५३	
जगत् ५४	
श्रीमद्भागवत के दश लक्षण और प्रतिपाद्य बाधय तत्त्व (ब्रह्म) ५५	
क- श्री शंकराचार्य के अद्वैत मत में ब्रह्म का स्वरूप	५६
ख- श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत मत में ब्रह्म	
का स्वरूप	५७
ग- श्री निम्बार्काचार्य के द्वैताद्वैतमत में ब्रह्म का	
स्वरूप	५८
घ- श्रीमध्वाचार्य के द्वैत मत में ब्रह्म का स्वरूप	५८
ङ- श्रीकृष्णकृत ०० वल्लभाचार्य के सुखाद्वैत मत में	
ब्रह्म का स्वरूप	५८
च- श्रीमद्भागवत में ब्रह्म का स्वरूप	५६
बाधयत्वात् (ब्रह्म) के प्रतिपाद्यक अन्यत्वात् तत्त्व	६१
१- सर्ग	६१
२- विसर्ग	६४
३- स्थान	६४
४- पीनण	६५
५- ऊति	६५
६- मन्वन्तर	६६
७- ईशानुक्ता	६७

८- निरौघ	६८
९- मुक्ति	६८
श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य सिद्धान्त	७१
भक्ति का सङ्ग भाव	७२
भक्ति का विकास	७५
वैष्णव भक्ति का उपास्य विष्णु तत्व	७६
श्रीमद्भागवत एवं विष्णु तत्व	८१
नारायण	८३
अवतार वाद	८५
श्रीमद्भागवत में अवतार विवेचन	८६
अवतार प्रयोजन	८८
बाहुदेवादि चतुर्व्यूह	९१
भक्ति द्वारा ध्येय विष्णु का साकार रूप	९३
श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण का स्वरूप	९५
भागवतीय भक्ति	
भक्ति का माहात्म्य	९८
भागवत धर्म	१००
भक्ति के भेद	१०१
क- तामस भक्ति	१०२
का- राजस भक्ति	१०२
क- सात्विक भक्ति	१०२
ई- निर्गुण भक्ति	१०३
उ- ऐकान्तिक भक्ति	१०४
ऊ- पंचविधाभक्ति	१०४
ए- वैधी एवं रागानुगा भक्ति	१०६

क- वैष्णो भक्ति	१०६
ख- रागानुगाभक्ति	१०७
ग- प्रेमाभक्ति	१०८
घ- ण्डविधा कथा ण्डंगा भक्ति	१०८
ङ- नवधा भक्ति	१०९
<u>भक्ति के साधन</u>	११०
<u>भक्त सदाण</u>	१११
<u>भक्त महिमा</u>	११२
<u>निष्कर्ष</u>	११३

तृतीय अध्याय ११४-१५४

भारतवर्ष के प्रमुख वैष्णव सम्प्रदायों में

श्रीमद्भागवत का स्थान

<u>दृष्टिकोण</u>	११४
<u>श्रीरामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवादी सिद्धान्त</u>	
<u>और श्रीमद्भागवत</u>	११६
<u>श्री निम्बार्कचार्य का द्वैताद्वैत वादी सम्प्रदाय</u>	
<u>और श्रीमद्भागवत</u>	११८
<u>श्रीमध्वाचार्य का द्वैतवादी सम्प्रदाय और</u>	
<u>श्रीमद्भागवत</u>	१२१
ख- भागवत तात्पर्य निर्णय	१२२

शा- विजयध्वज तीर्थ और श्रीमद्भागवत १२३

श्री वल्लभाचार्य का सुद्धाईतवादी सम्प्रदाय और श्रीमद्भागवत १२४

क- श्रीमद्भागवत की सुबोधिनी टीका	१३३
ख- श्रीमद्भागवत की सूक्ष्म टीका	१३३
ग- श्रीभागवतार्थ प्रकरण	१३३
घ- श्री दशम स्कन्धानुक्रमणिका	१३३
ङ- श्री पुरुषोत्तम नाम सङ्ग	१३४
च- त्रिविध लीला नामावली	१३४

श्री चैतन्य महाप्रभु का वर्चित्य भेदाभिदवादी सम्प्रदाय और

श्रीमद्भागवत

१३७

महाप्रभु श्री चैतन्य देव १३७, चैतन्य का दार्शनिक सिद्धान्त १३८,

साधना पद्धति १३६

श्रीभागवत सन्तर्भ १४२

श्री बृहद् भागवतामृत १४७

श्री लक्ष्मणभागवतामृत १४६

श्री हरिमवित रत्नामृत सिन्धु १५२

उज्ज्वल नीलमणि १५३

मवित रत्नावली १५३

निष्कर्ष १५४

चतुर्थ अध्याय

१५५-१७८

मध्यकालीन कृष्ण भक्ति साहित्य को प्रभावित करने वाले

भागवतोक्त तत्व (सामान्य)

दृष्टिकोण (वर्गीकरण का औचित्य)

१५५

१- भक्ति का सर्वोच्चत्व १५७

२- स्तुति १५८

क- श्रीमद्भागवत की स्तुतियाँ १६०

ख- श्रीमद्भागवतोक्त स्तुतियों का चाराश १६६

३- नाम महिमा- १६७

४- गुरु महिमा १६६

५- सत्तांग १७०

६- वैराग्य १७२

क- नारी १७४ ख- कर्म निन्दा १७५ ग- मानव
प्रेम की दुर्लभता १७६
निष्कर्ष- १७७

पंचम अध्याय

१७६-२८०

मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य को प्रभावित करने वाले

भागवतोक्त तत्व (विशेष)

दृष्टिकोण (कर्माकरण का औचित्य) १७६

१- श्रीकृष्ण की विविध लीलाएँ १८१

ख- दशम स्कन्ध सूरार्ध - (ब्रजलीला) १८१

क- लीला १८१

ख- कृष्ण लीला का सूत्रपात १८१

ग- कृष्ण का प्रादुर्भाव	१८२
घ- गोकुल में कृष्ण का जन्मोत्सव	१८४
(क) <u>विविध बाल लीलारं एवं दैत्य वध (गोकुल वृन्दावन लीला)</u>	१८५
(ख) <u>विविध पौगण्ड लीलारं एवं दैत्य वध (वृन्दावन लीला)</u>	१८८
(ग) <u>विविध किशोर लीलारं एवं मत्स्य निग्रह (मथुरा लीला)</u>	१९६
<u>जा- दशम स्कन्ध उवराध (हारका लीला)</u>	२०९

<u>निष्कर्ष-</u>	२२४
<u>लीला के उद्धारण</u>	२२५
क- ब्रज (गोकुल)	२२६
ख- मथुरा	२२७
ग- वृन्दावन	२२८
घ- यमुना	२३०
ङ- गिरिराज गोवर्धन	२३१
च- गौर	२३२
झ- नन्द वादि गोप गण एवं गोप बालक (कृष्ण सत्ता)	२३३
ञ- यशोदा	२३६
म- षडक्षु	२३८

२- <u>कृष्ण की जलौकिक रूप माधुरी</u>	२३६
क- वेणुमृणा	२४०
ख- वर्ण, जंग विन्यास एवं मुद्राएं	२४२
ग- सलिल त्रिभंगी मुद्रा	२४५
३- <u>श्रीकृष्ण का परमेश्वरत्व</u>	२४६
राम कृष्ण कैद	२४८
४- <u>श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का जन्य और जलौकिक प्रेम</u>	२४९
क- गोपियों का पूर्व स्वरूप	२५१
ख- कृष्ण लीला में भाग	२५२
ग- गोपियों का वात्सल्य भाव	२५३
<u>गोपियों का महार भाव (कान्ता सवित</u>	२५४
क- गुण माहात्म्य सवित	२५७
ख- रूपासवित	२५७
ग- पूजा सवित	२५८
घ- स्मरणासवित	२५८
ङ- दास्यासवित	२५९
च- जात्म निवेदनासवित	२६०
छ- सन्मयतासवित	२६०
ज- परम विरहासवित	२६१
<u>वेणु बध्ना मुरली-</u>	२६४
<u>वेणु माधुरी और उसका प्रभाव</u>	२६५
<u>रास लीला-</u>	२६८
<u>राधा-</u>	२७१

<u>ब्रमरगीत</u>	२७२
<u>निष्कर्ष</u>	२७६
<u>षष्ठ अध्याय</u>	२८१-२८२
<u>श्रीमद्भागवत एवं वल्लभ सम्प्रदाय के जट्टशापी हिन्दी कवि</u>	
<u>दृष्टिकोण</u>	२८१
<u>लीलागान की परम्परा</u>	२८१
हिन्दी कृष्ण काव्य का सूत्रपात	२८१
विष्णुपति	२८१
जट्टशाप	२८३
<u>१- कुंभनदास</u>	२८४
<u>लीलागान (रास लीला)</u>	२८५
<u>२- सुखास</u>	२८६
श्रीमद्भागवत का महत्त्व प्रतिपादन	२८६
<u>भागवत कथन-</u>	२८७
सुर सागर प्रथम स्कन्ध	२८८
.. द्वितीय ..	२८८
.. तृतीय ..	२८८
.. चतुर्थ ..	२८८
.. पंचम ..	२८८
.. षष्ठ ..	२८८
.. सप्तम ..	२८८

सूर सागर जष्टम स्कन्ध	२८६
॥ नवम ॥	२८६
॥ दशम ॥	२८६
॥ एकादश ॥	२८६
॥ द्वादश ॥	२८६
<u>ख- भागवतीवत सामान्य भक्ति तत्व-</u>	२८६
१- <u>भक्ति मार्ग का सर्व श्रेष्ठत्व</u>	२८०
भक्त महिमा	२८०
२- <u>स्तुति (विनय)</u>	२८१
३- <u>नाम महिमा</u>	२८२
४- <u>गुरु महिमा</u>	२८३
५- <u>सत्संग</u>	२८३
६- <u>वैराग्य</u>	२८४
<u>ग- भागवतीवत विशेष तत्व-</u>	२८५
१- <u>विविध कृष्ण लीलाओं का गान-</u>	२८५
क- दशम स्कन्ध पूर्वार्ध	२८५
ख- दशम स्कन्ध उत्तरार्ध	२८५
२- <u>श्रीकृष्ण की जलौकिक रूप माधुरी</u>	३००
क- वर्ण	३००
ख- रंग विन्यास	३००

ग- वेणुमूर्ता	३०१
३- श्रीकृष्ण का परब्रह्म परमेश्वरत्व	३०२
राम कृष्ण जैव	३०३
४- श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का जन्य और अतीतिक प्रेम	३०३
क- गुण माहात्म्या सवित	३०४
ख- रूपासवित	३०४
ग- तन्मयतासवित	३०४
घ- परम विरहासवित	३०५
वेणुमाधुरी और उसका प्रभाव	३०६
रास लीला	३०७
भ्रमर गीत	३०८
३- परमानन्दवास	३०९
लीलागान	३१०
बाल लीला	३१०
कुमार लीला	३११
पौगण्ड लीला	३११
किशोर लीला	३११
४- कृष्णदास	३१२
१- लीलागान	३१२
२- श्रीकृष्ण की रूप.माधुरी	३१३
३- श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व	३१४
४- गोपी प्रेम	३१४

५- <u>गोविन्द स्वामी</u>	३१४
लीला गान	३१५
६- <u>हीत स्वामी</u>	३१७
श्रीमद्भागवत माहात्म्य एवं प्रामाण्य	३१७
लीला गान	३१८
गोपी प्रेम	३१९
७- <u>चतुर्भुजदास</u>	३२०
लीला गान	३२१
रूप माधुरी	३२२
वैष्णु माधुरी	३२२
गोपी प्रेम	३२२
८- <u>नन्ददास</u>	३२३
श्रीमद्भागवत का माहात्म्य कथन	३२४
क- <u>भागवतीकृत सामान्य तत्त्व</u>	३२४
भक्ति का सर्वश्रेष्ठत्व	३२४
गुरु भक्ति	३२४
ख- <u>भागवतीकृत विशिष्ट तत्त्व</u>	३२५
१- <u>लीला गान</u>	३२५
२- रास लीला	३२५
३- यमुना भक्ति	३२५

ग- ब्रज महिला	३२५
२- श्रीकृष्ण की रूप माधुरी	३२६
३- श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व	३२६
राम कृष्ण समेद	३२७
४- गोपी प्रेम	३२७
निष्कार्ण	३२७

सप्तम अध्याय	३२६-३६७
--------------	---------

श्रीमद्भागवत एवं पुष्टिमार्गीतर वैष्णव सम्प्रदायों के प्रमुख

हिन्दी कृष्ण भक्त कवि

दुष्टिकीर्ण	३२६
१- निम्बार्क सम्प्रदाय के कवि	३३०
क- श्रीमद्भट्ट	३३०
ब्रज महिला	३३१
रूप माधुरी	३३१
रूपासक्ति एवं वैष्णु माधुरी	३३१
स- श्री हरिव्यास देवाचार्य	३३१
युगत प्रेम लीला	३३२
ग- निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्य कवि	३३२

२- राधावल्लभ सम्प्रदाय के कवि	३३२
क- गोस्वामी श्री हित हरिवंश जी	३३२
ख- सामान्य तत्त्व	३३३
भक्ति वैराग्य	३३३
नाम महिमा	३३४
गुरु महिमा	३३४
ग- विशेष तत्त्व	३३४
लीला गान	३३४
रास लीला	३३४
वृन्दावन महिमा	३३६
रूप माधुरी	३३६
मुरली माधुरी	३३७
घ- श्री दामोदर दास "सैवक" जी	३३७
श्रीमद्भागवत की मान्यता	३३७
श्रीमद्भागवत की नव-धास एवं प्रेम लक्षणा भक्ति	३३८
भागवतीकृत भक्त लक्षण	३३९
गुरु महिमा	३४०
विशिष्ट तत्त्व	३४०
लीला गान- रास लीला	३४०
वृन्दावन महिमा	३४१
माधुरा महिमा	३४१

अन्य शरणागति (आत्मनिवेदन भक्ति)	३५१
वैराग्य (उद्बोधन)	३५२
<u>लीलागान- रास लीला</u>	३५२
<u>स- श्री विट्ठल विपुल</u>	३५३
रास लीला	३५३
<u>ग- बिहारिनदास</u>	३५४
भागवत भवण कथन की अनिवार्यता	३५४
नवधा भक्ति	३५५
नाम महिमा	३५५
वैराग्य	३५५
लीलागान	३५६
<u>घ- श्री हरिदासो सम्प्रदाय के अन्य कवि</u>	३५६
<u>४- श्री चैतन्य सम्प्रदाय के हिन्दी कृष्ण भक्ति कवि</u>	३५६
<u>क- श्री गदाधर भट्ट</u>	३५६
श्रीमद्भागवत कथावाचन	३५७
नाम महिमा	३५८
<u>लीला गान</u>	३५८
बास लीला	३६०
रास लीला	३६०
यमुना महिमा	३६०
<u>रूप माधुरी</u>	३६१
वैष्णु माधुरी	३६२

<u>श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व</u>	३६३
<u>गोपी प्रेम</u>	३६३
<u>स- सुरदास मदनमोहन</u>	३६३
जनन्य हरणागति	३६४
<u>लीलागान- बाललीला</u>	३६५
वृन्दावन लीला	३६५
<u>रूप माधुरी</u>	३६६
<u>वैष्णु माधुरी</u>	३६६
<u>निष्कर्ष</u>	३६७
<u>अष्टम अध्याय</u>	३६८-३६४
<u>श्रीमद्भागवत एवं सम्प्रदाय भुक्त प्रसुत हिन्दी कृष्ण भक्त कवि</u>	
<u>दृष्टिकोण</u>	३६८
<u>मीराबाई</u>	३६९
<u>सामान्य भक्ति</u>	३७१
<u>लीलागान</u>	३७१
बाल लीला	३७१
कालिय दमन	३७२
वृन्दावन माहात्म्य	३७२

<u>रूप माधुरी</u>	३७२
<u>श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व</u>	३७३
<u>गोपी प्रेम</u>	३७३
रूपासक्ति	३७४
दास्या सक्ति	३७४
जात्मनिवेदना सक्ति	३७४
परम विरहासक्ति	३७५
<u>लालित्यदास</u>	३७६
<u>नरोत्तमदास</u>	३७६
<u>भक्ति भावना एवं कथावस्तु</u>	३७६
भावान् की भक्तानुश्रुतातरता	३७७
भारकाधीश कृष्ण	३७८
भारकाधीश का वैभव	३७८
विष्णु विग्रह	३८०
वैकुण्ठ धाम	३८०
भारका	३८१
<u>राठांडराज प्रियो राज</u>	३८१
<u>श्रीमद्भागवत और वैसि जिन रुक्मणी हो</u>	३८२
कथा सूत्र का अनुसरण	३८३
भाव ग्रहण	३८४
भक्ति भावना	३८६
कृष्ण का परब्रह्मत्व	३८७

रत्नान

३८८

प्रेमाभक्ति

३८९

गोपी प्रेम की सर्वश्रेष्ठता

३९०

लीलागान ३९० , बात लीला ३९०, रास लीला ३९१कुवल्यापीछवध ३९१रूप माधुरी

३९१

श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व

३९१

गोपी प्रेम

३९२

रूपासक्ति ३९२, तन्मयता सक्ति ३९३, परम

विरहासक्ति ३९३, वैष्णु माधुरी ३९३

किष्कंधी

३९४

उपसंहार

३९५

श्रीमद्भागवत एवं परवर्ती हिन्दो कृष्ण भक्ति साहित्य ३९५

सहायक-ग्रंथ-सूची

१-८

प्रथम अध्याय

पुराण साहित्य एवं श्रीमद्भागवत

(पृ० १-४७)

प्रथम अध्याय

पुराण साहित्य एवं श्रीमद्भागवत

भारतीय वाङ्मय और उसका दृष्टिकोण-

भारत और उसकी संस्कृति की ज़रता का रहस्य उसके विपुल पुरातन संस्कृत-वाङ्मय में निहित है। इस घोर प्रत्यदावादी एवं जड़वादी युग में भी जब विश्व-मानव की जलस्थिति एक आन्तरिक जमाव की अनुभूति होती है, जब अपने नित्य नैमित्तिक प्रपंचों से ऊँचकर आज का अज्ञान मानव दैवज्ञात कभी अन्तर्मुख होता है तो अपनी आध्यात्मिक हटुत्पिपासा की निवृत्ति के लिए वह विश्व के पुरातन वाङ्मय की ओर उन्मुख होता है। जहाँ भी सर्व-प्रथम उसका ध्यान निर्विकल्प रूप से पुरातन भारतीय वाङ्मय की ओर हो केन्द्रित होता है, क्योंकि भारतवर्ष ही वह देश है जहाँ सर्व-प्रथम अमूर्त, सूक्ष्म ज्ञान ने वेद संहिताओं के रूप में अक्षर-सम्बद्ध होकर आकार धारण किया और विश्व में अपना आलोक विकीर्ण किया। प्रायः यह आरोप किया जाता है कि प्राचीन भारतीय साहित्य केवल आध्यात्मिक है, उसमें इहलौकिक जीवन की सफलता पूर्वक यापन करने के लिए कोई निर्देश नहीं। वह एकांगी है। किन्तु यह धारणा समीचीन नहीं। बहुत पहले ही भारतीय मनीषा ने "यतो ऽप्युदय निःश्वस सिद्धिः स धर्मः" कहकर अपनी सामंजस्यनीति की घोषणा कर दी है। भारतीय ऋणियों के सामने जीवन का एक निश्चित उद्देश्य था जिसे वे अपने दृष्टि पथ से कभी ओझल नहीं होने देते थे। वह उद्देश्य था पुरुषार्थ चतुष्टय का संपादन। लोकजीवन को सुचारु रूप से बिताकर वैष्णव्य और निस्वैगुण्य अवस्था तक पहुँच कर स्वल्प में अवस्थान करना जीव का

१- सतदेव प्रसूतस्य सताशादग्रजन्मनः ।

स्वं स्वं चरित्रं शिखारं पृथिव्यां सर्व मानवाः ॥

मनुस्मृति- अध्याय २ श्लोक २०

चरम लक्ष्य है। इस उद्देश्य को निरन्तर सामने रखकर निर्मित समस्त उच्च कौटि का भारतीय वाङ्मय प्रधानतः अर्थात् - प्रवण है। अमुक्य और निःशेष का स्वस्थ समन्वय करता हुआ यह वाङ्मय अविराम भाव से किसी धार्मिक तत्त्व को और इंगित कर रहा है तब विदित्वा 'ति मृत्यु मैतिनान्यः पथा विष्कृतं ज्ञाय । १

क्या है ? उसी परम-पुरुष को जानकर मनुष्य मृत्यु को तर सकता है। कल्याण का जन्म कोई मार्ग नहीं है।

वैदिक साहित्य से लेकर पौराणिक साहित्य तक इसी विज्ञान तत्त्व का अत्यन्त विस्तृत किन्तु सूक्ष्म विवेक किया गया है।

वैदिकोत्तर साहित्य

वैदिक साहित्य में जहाँ संविता ब्राह्मण वारण्यक उपनिषद् आदि की गणना होती है वहाँ वैदिकोत्तर साहित्य में रामायण आदि महाकाव्य, महाभारत आदि इतिहास ग्रंथ तथा श्रीमद्भागवत आदि पुराण ग्रंथों का परिणाम होता है। किन्तु यह समस्त साहित्य अपनी आत्मिक-स्फूर्णात् एवं ब्राह्मण-व्यवस्था के लिए पुणितया वैदिक साहित्य पर ही अवलम्बित हैं। परवर्ती निरचित भारतीय वाङ्मय वेदों के सिद्धान्तों के भाष्य रूप में ही प्रकाशित हुआ। इस परवर्ती साहित्य में जो साधारण को वेदों के दुर्लभ ज्ञान एवं गहन अर्थात् तत्त्वों को हृदय गम कराने का कठिन और महत्व पूर्ण कार्य किया। भारतीय संस्कृति, सम्प्रदाय और साहित्य को अत्यन्त गहराई से प्रभावित करने वाले विश्वविश्रुत ग्रंथ रामायण और महाभारत का परिचय देना आवश्यक है। एक तीसरा महत्व पूर्ण ग्रंथ श्रीमद्भागवत पुराण है, जिसने मध्यकालीन भारतीय समाज की चिन्ताधारा को बहुत प्रभावित किया।

वास्तव में यदि हम स्थूल दिश्लेखण ही करें तो हमें यह स्पष्ट होते विलम्ब न लेना कि वैदिकोत्तर भारतीय जीवन को अत्यन्त गहराई और व्यापक रूप से प्रभावित करने वाले तीन महान तैजस्वी ग्रंथ हैं।

१. वादिकवि वाल्मीकि का रामायण, २. महर्षि वेद व्यास का महाभारत और ३. श्रीमद्भागवत पुराण । ये तीनों ग्रंथ ही वे ज्ञान की ओर प्रमविष्णु वाग्वाराहे जिस देश की प्रथम स्त्री से वाक्पति के अधिकांश भारतीय साहित्य का बहिरंग और अन्तरंग कुप्रापित है । वह अधिकांशतः अपने देश के सर्वे और वात्सा के अधिज्ञान के लिए उपर्युक्त ग्रंथों का ही मुलापत्ति है । इसकी वाधार शिक्षा पर ही हमारे साहित्य का विशाल प्रभाव पड़ा है और वह ग्रंथ अभी भी हमारे साहित्य के एक विशाल भाग की स्वभाव उपजीव्य है । महाभारत तो बाध से भी अधिक भारतीय साहित्य को व्याप्त कर चुका है ।

प्रत्येक देश का ही कुछ ऐसी विभूतियाँ उत्पन्न होती हैं जिनकी प्रसार - प्रतिमा से निराल जगत् बालोदित हो उठता है, जिनकी दिव्य मास्ती विश्व संस्कृति को युग युगों तक प्रभावित करती रहती है । वे मनीषी अपनी दिव्य ऐतनी से जिस चिरन्तन साहित्य को सर्वे करते हैं उसे उपरजित कला अभिभूत करने की शक्ति किसी मानव प्राणी में नहीं होती ।

वादिकवि वाल्मीकि के रामायण को विश्व का वादिकाव्य होने का गौरव प्राप्त है । महर्षि वेद व्यास का महाभारत विश्व का सबसे बृहद्ग्रंथ तथा विश्वकोश होने की महिमा से मण्डित है ।^१ इसी प्रकार ज्ञान वराण्य मठ की त्रिलोकी के संग्रह रूप श्रीमद्भागवत पुराण ने भी विश्व साहित्य में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शाली स्थान प्राप्त कर लिया है ।^२

मस्तुतः शोध मन्त्र में इसी तृतीय ग्रंथ श्रीमद्भागवत को केन्द्र मानकर हिन्दी के पूर्व मध्य कालीन कृष्ण मठ साहित्य पर उसके व्यापक प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । श्रीमद्भागवत का समस्त मठ साहित्य

१. श्री चार्पे च कामेश मोदी च मरुतर्णम ।

यदि हारित तदन्यत्र यन्महास्ति न तत्त्वमिह ॥ महाभारत वादि पत्र

अध्याय ६२, श्लोक ५३.

२. निम्नगतानां यथा गंगा ध्वानान्ध्रुवा यथा ।

वेष्णवानां यथा शम्भुः पुराणाभिः तथा । श्रीमद्भागवत १२, १३, १६.

पर ही पर्याप्त प्रभाव पड़ा है और यह इतना प्रथित सत्य है कि इसे सुधी जनों को ज्ञात कराने की आवश्यकता नहीं है। इस विषय का सांगीतार्थ एवं कलात्मक अध्ययन अत्यन्त उपादेय है इस संबंध में दो मत नहीं हो सकते।

श्रीमद्भगवत् भारतीय - साहित्य में उस विशिष्ट साहित्य - कोटि का ग्रंथ है जिसे हम पुराण साहित्य कह कर अभिहित करते हैं। भारत वर्ण के साहित्य में पुराणों का क्या महत्त्व है और उसमें श्रीमद्भगवत् का क्या स्थान है यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। काः यहाँ पहले पुराण साहित्य के विषय में सविस्तर विवेक प्रस्तुत किया जाता है।

पुराण साहित्य - पुराणों का मूल स्रोत, उनका निर्माणकाल, विषय, उनकी संख्या आदि आज भी विद्वानों के लिए विवेच्य विषय के हुए हैं। पुराण साहित्य पर जो विद्वानों ने कुछ लिखा है उनमें भी परस्पर मत भेद है। काः यह विषय हम भी प्रकृष्ट रूप से स्वतंत्र अध्ययन एवं गवेषणा की चेष्टा रखता है। वास्तव में पुराण साहित्य भारत के अतीत गौरव की पराकाष्ठा की कृत्य निधि हैं। इसकी हमारी सम्मता और संस्कृति के निर्माता कृणियाँ का समेत प्रयत्न ही पुनीत है। पुराण साहित्य की मत्स्यपुराण में वेदां से भी प्राचीन बताया गया है।^१ यद्यपि यह कथन वस्तुस्थिति है, तथापि इस से पुराण साहित्य का महत्त्व अवश्य प्रकट होता है।

पुराण शब्द का अर्थ - पुराण शब्द का सामान्य अर्थ तो 'पुराना' ही है। संस्कृत के कोषकारों ने इस का यह अर्थ ग्रहण भी किया है।^२ इसके अतिरिक्त एक विशेष सिके को भी 'पुराण' कहा जाता

१. पुराणं ज्ये शास्त्राणां प्रथमं प्रवृत्ता स्मृतम् ।

अन्तरं च कवैर्मयो वेदास्तस्य विनिःसृताः ॥ मत्स्यपुराण व० ५३, श्लोक ३
अर्थात् ब्रह्माजी ने सब शास्त्रों से पूर्व पुराणों को कहा। तदनन्तर उनके पुत्र से वेद निकले

२. पुराणं पुरातनम् : (पद्मपुराण, पृ. ३२० सम्पा. गणेशदत्त शास्त्री संस्क. १६२५ ई.)

पुराणं प्रतनं प्रतनं पुरातनं विरन्तनाः (अमर कोषः ३।७६ आत्याकार मानु

दीक्षित नि. प्रो. वंशु संस्क. १६४४.)

था । ^१ साहित्यों एक विशेषकौटि के साहित्य को पुराण नाम से वामिष्ठ किया गया है । ^२ पुराणा या प्राचीन होने से इस साहित्य को पुराण कहते हैं यह भी वांछित रूप से सत्य है किन्तु पुराण और भी कारण से पुराण कह लाता है वास्तव में कहा कि " जिसमें पुरानी वस्तु भी नवीन हो जाती है उसे पुराण कहते हैं । ^३ अरु कोण व्याख्या में कहा गया है कि पहले हुआ कथा, पहले होकर भी नवीन या पहले ही भूत भविष्यत् कथा का कथन करने वाला शास्त्र पुराण कह लाता है । ^४ पञ्चपुराण में भी वही कथन स्वीकार किया गया है ^५ अतः ज्ञात होता है कि पुराण शब्दका कथन केवल पुराणा नहीं है बल्कि पुराणों को नया बनाने करने वाला तथा अनन्त : भविष्यत् : का कथन करने वाला साहित्य पुराण है । भविष्य पुराण का अस्तित्व इसका साक्ष्य है । विद्वानों का विचार है कि ऐतिहासिक दृष्टि से ये पुराण कृत्य निधि है और भारतीय इतिहास, संस्कृति और संस्कृति की दृष्टि से पुराणों का बड़ा महत्त्व है । ^६ भारत के प्राचीन साहित्य में इतिहास और पुराण शब्द एक साथ प्रयुक्त मिलते हैं । ^७ किन्तु पुराणों ने जिस प्रकार की

१. आठव पणः पुराणः -- अरुकोणः वही संस्करण पृ. ६५

२. पुराण न्यायनीमांसा की शास्त्राङ्ग मिश्रिताः ।

कथाः स्थानानिविधानां कालस्य च चतुर्दश ॥ -- वास्तवत्वं स्मृति १-२-

३. पुराणं कस्मात् पुराणं भवति --- निरुद्ध २।१६।२४

४. पुराणं यदा पुराणमिव यदा पुरा क्रीता नागतौ कथा वणति -

अरुकोण वही संस्करण

५. पुरा परम्परां वळि पुराणं तैल वे स्मृतम् -- पञ्चपुराण - १, २, ५३,

६. डा. हरकृष्ण जी : पुराण और उनका साहित्य पृ. १६६ प्रथम संस्करण

७. इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपलब्धम् । महा भारत वाङ्मयं उ० ५

तथा - इतिहास पुराणं पंचमं विद्वानां वेदम् ।

हान्दोन्व उपनिषद् ७ . १ . १ .

कस्मिन् और वतिरंजित घटनाओं का उल्लेख है उनके उन्हें ऐतिहासिक मानना वाच के बुद्धिवादी युग में सम्भव नहीं है । साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि पुराणों की ऐसी वतिरंजित पूर्ण, वास्तविक और स्वकात्मक है उसके मूल में जाकर ही हम ऐतिहासिक तथ्यों तक पहुँच सकते हैं ।
 लोक विद्वानों ने पुराणों का ऐतिहासिक मूल्यांकन किया है । राम कृष्णदास जी की स्थापना है कि पुराण साहित्य का समय सर्वत्र ऐतिहासिक वास्तव था और पुराण तथा इतिहास शब्द समानार्थक थे । १ वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों का स्वयं को इतिहास कहना तथा महाभारत का स्वयं को पुराण कहना यह सिद्ध करता है कि इतिहास और पुराण शब्द कि प्राचीन काल में समानार्थक थे । पुराणों में कस्मिन् और वतिरंजित घटनाओं का प्रवेश उनमें साम्प्रदायिकता वा जाने से हुआ है । ब्रह्म वेद ^{तथा विष्णु} पुराण में बारी हुई पुराणों की परिभाषा २ में की --- महाभूतों की सृष्टि की वर्णन --- प्रतिगर्भ --- प्रलय और उसके बाद पुनः सृष्टि --- वंश --- वंशवर्षों का वर्णन --- मन्वन्तर --- कल्पान्तरों तथा मन्वन्तरों का वर्णन --- तथा वंशानुचरित --- वंशों के प्रधान महा पुरुषों के चरित का वर्णन --- ये पाँचों क्लास पुराणों की ऐतिहासिकता का ही बोध कराते हैं ।

किन्तु वाच " पुराण " और " इतिहास " समानार्थक शब्द नहीं माने जाते । वह हम इतिहास से उस साहित्य की ग्रहण करते हैं जो पुरातन के वास्तविक इति वृत्त का वर्णन करता है । " पुराण " से सारा तात्पर्य उस साहित्य से होता है जो वंशों या पूर्णतया ऐतिहासिक इतिवृत्त

१ . पुराण - इतिहास रामकृष्णदास श्री कंठेश्वर साचार
 बर्क २२, १०, ५४ का कल

२ . सर्वप्रतिगर्भ वंशमन्वन्तराणि च ।
 वंशानुचरितं च पुराणं पञ्चमाणम् ॥

विष्णुपुराण - ३, ४, २४,

पर आश्रित होकर अध्यात्म के रहस्यों का उद्घाटन करता है। पुराण में जो पुरानी वस्तु नवीन करके दिखाई जाती है वह है निगमागम, उपनिषद् आदि का तत्त्व ज्ञान। पुराण कभी दृष्टि कोण से इसी पुरातन वाङ्मय की व्याख्या करता है। विद्वानों का मत है कि हमारी वाध्यात्मिक और मानसिक वृत्तियों के स्थूल प्रतीक ही पुराणों में वर्णित देवी देवताओं के चरित्रों और अनन्त महान् घटनाओं के रूप में हमें प्राप्त है। वे हमारे वस्तु के सूक्ष्म तत्त्वों का स्थूल रूप हैं। पौराणिकों ने गहन अध्यात्म तत्त्वों को हृदयंगम कराने के लिए काल्पनिक और ऐतिहासिक घटनाओं या दृष्टान्तों का प्रयोग किया है। महाभारत में कहा गया है कि पुराणों में दिव्य कथाओं एवं परम बुद्धिवाली महा पुरुषों का वर्णन है।^१ काः ज्ञात होता है कि पुराण वास्तविक वह महान् साहित्य है जो वेद, उपनिषद्, स्मृति आदि के अतिरिक्त जो मुख्य तत्त्व ज्ञान की दृष्टान्त कथा उपाख्यान आदि साधनों के सहारे बड़े वाक्योक्त सरल और रोचक ढंग से हमें समझाता है।

आंग्ल भाषा का *Mythology* शब्द हमारे "पुराणों" शब्द का कुछ बोध कराता है। *Mythology* से तात्पर्य है सम्झा के आरंभिक काल की समस्त कथाओं, दन्त कथाओं, और परम्पराका समुच्चय। सृष्टि की उत्पत्ति, संयोग, स्त्रीमान्यताएँ, देवताओं और दिव्य पुरुषों की उत्पत्ति आदि का तीन इतिहास आदि सभी बातों का समावेश *mythology* में हो जाता है। इस शब्द का मूल ग्रीक भाषाका *Mythos* अर्थात् *Mythos* शब्द है।^२ अंग्रेजी का *myth* शब्द प्राचीन तम मान्यताओं के वापार पर कल्पित या काल्पनिक — मिथ्या — कहानियों का बोध है।^३ सर जी. जेम्स, कावस तथा प्रो. मेन्सफ़ोर्ड का मत है कि *Myth* सूर्य आदि प्राकृतिक

:६६ महाभारत आदिपर्व ५ - २

:२: The New Popular Encyclopedia, Edited by Charles A. Vol. IX, Page 401.

:३: Chambers' Dictionary ^{twentieth century} page 60
Oxford Dictionary page 518

सृष्टियों के कार्य का मानवीकरण है जो सृष्टि के वादिकाल में किया गया था । १ किन्तु अन्य विद्वानों का इस से मतभेद है । श्री Andrew Lang का विचार है कि Myth का मूलोद्धार बरबर जातियों की मनोवृत्तियों ही हैं । २

इस दलील है कि Mythology और पुराण में बराबर समता है तथा विभिन्नताएं हैं । विभिन्नता के उदाहरण स्वरूप कहा जा सकता है कि पुराणों में Mythology की भाँति काल्पनिक और काल्पित कथा कहानियों को ग्रहण करने का बाग़द नहीं पाया जाता ।

पुराणों का रचना काल

जैसा कि कहा जा चुका है, पारश्वात्य विद्वान् Mythology क्या पुराण को पुरातन विश्व सभ्यता के वादिकाल की स्मृत घटनाओं वस्तु-कथाओं और परम्पराओं का अध्ययन मानते हैं । चार्ल्स काउल्ले ने लिखा है कि यद्यपि समस्त विश्व के वादिक मानव वर्ग में इस प्रकार की पुराण कथाएँ और विश्वास पाए जाते हैं तथापि ऐसी सामग्री भारत वर्ष, भिन्न, प्राचीन ज्ञान, रोम और सैण्डोविया के निवासियों में प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है । ३ इस वक्त से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि पारश्वात्य विद्वान् भी पौराणिक साहित्य कावस्तित्व मानव सभ्यता के वादिकाल से स्वीकार करते हैं । भारतीय अधिगण भी पुराण साहित्य को विश्व के प्राचीनतम साहित्य के रूप में प्राचीन मानते हैं ॥ ४ :—

Contribution to the science of Mythology; Max Muller
and Coates tales of ancient Greece and Mythology
of ancient Aryan Nations

२. Andrew Lang : Custom and Myth (London 1884)

३. New Popular Encyclopaedia Vol IX, Page 401

पुराणं सर्वं शास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणः स्मृतम् ।

कान्तरे च कवेर्मनो वेदास्तस्य विनिर्गताः ॥

मत्स्यपुराण ५३, २.

उक्तप्रमाण ब्राह्मण में वेदों के समान ही इतिहास और पुराण को भी परमात्मा का निःस्वात कहा गया है -

स क्वा देवान्मैरभ्यास्तितत्पृथाधूना विनिश्चरन्त्यैवं वा जैर्यस्य
मास्तो भूतस्य निःस्वस्तिमतेन्दु कन्वेदो यजुर्वेदः सामवेदाऽथवागिरस
इतिहासः : पुराणं विधा उपनिषदः श्लाकाः सुब्राह्मण्यु व्याख्यानानि
व्याख्यानान्स्वस्तिता नि सर्वाणि निःस्वस्तिनि ॥

उक्तप्रमाण ब्राह्मण २४-२-४-१०.

छान्दोग्य उपनिषद् में पुराण का सादर उल्लेख किया गया है^१
कर्म वेदं चारो वेदो के साथ पुराण को भी परिगणित किया गया है ।
उसी कथित नाद के प्रतिश्लोक किसी पुराण के संवाद से उद्धृत या जान पड़ता
है ।^२ बृहदारण्यक उपनिषद् में बताया है कि वेदों के साथ पुराण में
मस्तस्य है निःस्वत हुआ ।^३ अतः यदि हम पुराण की उत्पत्ति को वेदों
के साथ ही लेते तो इसकी प्राचीनता अरबों वर्ष हो जायेगी । किन्तु
ज्या पहले कहा जा चुका है कि पुराणों में वेद स्मृति आदि की नवीन
व्याख्या की गई है पुराण को वेद के समान प्राचीन कहा उल्ला समकालीन
नहीं माना जा सकता, किन्तु साथ ही पुराण की प्राचीनता भी निर्विवाद है ।

१. छान्दोग्य उपनिषद् २. ४. १.

२. कर्म वेद ११. ७. २४.

३. बृहदारण्यक २. ४. १०.

यह बात क्लेश है कि हम पुराण को जो विकसित परिवर्तित और परिवर्तित रूप प्राप्त कर रहे हैं वह उनके मूल रूप में न रहा हो । ^१ किन्तु कुछ विद्वान् पुराण साहित्य का अस्तित्व काफी विकसित रूप में विकसित में भी मानते हैं । वे कभी मत का आधार केवल उपनिषद् में पुराण का अस्तित्व मानते हैं । ऐसे विद्वानों में श्रीकृष्ण राय कृष्ण दास उल्लेखनीय हैं । उन्होंने कभी एक तर्क में कहा है " पुराण साहित्य की वैदिक काल से सत्ता ही सिद्ध नहीं होती, बल्कि यह भी प्रकट होता है कि उसका विकास समाप्त था । किसी नए साहित्य का यह पद नहीं हो सकता ।" ^२ शतमय ब्राह्मण में पुराणको वेद के समकक्ष कहा गया है तथा उसके नित्यपाठ का विधान किया गया है । ^३

पुराणों का मूल स्रोत - यह सम्भव जान पड़ता है कि कभी बीच रूप में पुराण वैदिकसाहित्य में ही विद्यमान थे, क्योंकि

" पुराणों में प्राचीन वाक्याधिकार हैं, उनका मूल चारों वेदों की संख्याओं में ब्राह्मणों और उपनिषदों में भी है । ^४ वेदों के गूढ़ रहस्यों को व्याख्या करना पुराणों का उद्देश्य माना ही गया है, अतएव वेद संस्कारों ब्राह्मण, ब्राह्मण्य, उपनिषदादि वैदिक साहित्य का पुराण का मूल स्रोत मानना अभीष्ट ही है । श्री सी.वी.वेणु साहू कतिपय विद्वान् पुराणों का मूल स्रोत महाभारत को मानते हैं और उनका निर्माण काल ईस्वी ३०० से ८०० तक स्थिर करते हैं । ^५ यह सम्भव है कि महाभारत के द्वारा पुराणों के आधुनिक रूप में विकास हुआ हो किन्तु महाभारत से भी पूर्व किसी न किसी रूप में पुराण का अस्तित्व था, यह बात अविनाशिक है ।

१. सूर और उनका साहित्य : डॉ. हरचंद लाल शर्मा : पृ० १६४.

२. पुराण और इतिहास " के.टि.स्वर समाचार, दीपावली १९५४ ई०

३. शतमय ब्राह्मण १३.४.३.१२ और ११.५.६. ८

४. संस्कृत साहित्य का इतिहास प्र.सं. १९३३ई.पृ. ७३ कलकत्ता लकीबुकशॉप

५. संस्कृत वाङ्मयों का ओट्टक इतिहास - महाभारत प्रकरण ।

यथा

१. कृयः सामानि त्वांसि पुराणं यजुषा सह

कथनी वैद ११.७.२४.

२. महाभारत का लेखक किष्किन्धावासीच नामाज्ञा में गुराग्रहीक श्लोक उद्धृत मिलत है । गुरुचक्रवर्तीनेवमस्मिन्मन्त्रेन। सुत्र इसके प्रमाण है । इन ग्रंथों का रचना काल पाश्चात्य पण्डितों ने क्रमशः वर्ष १००० ई० १०६५ ई० तथा ५०० ई० पू० स्वीकार कर लिया है । १ महाभारत का रचना काल इसका परवर्ती माना जाता है ।

मास्तीय - पुराणों की सत्याः --- मत्स्य पुराण से पता चलता है कि पहले एक ही पुराण था किन्तु वह अत्यन्त

विस्तृत था —

पुराणमेक भवासीत् तदाकल्पान्तरेऽपि ।

द्विवर्गं साधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥

मत्स्य पुराण व० ५३. श्लो. ४.

वैदिक साहित्य में भी पुराण का प्रयोग एक वचन में ही हुआ है -
यथा ---

१. कृचः सामानि ह्दांशि पुराणं यदुक्ता सह ।

अथर्व वेद ११. ७. २४.

२. इतिहासस्य च वै पुराणस्य च गाथानां च नाराक्षी
नां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ।

वर्धमान वेद १५. १. ६. १२.

२. तानुपदिशति पुराणं वेदः सौ यमिति किंचित्पुराणं माचक्षते-
मवाचक्षुः । इत पथ बालण १३ १४ ३ १३

मवाध्वः ।

सत पथ ब्राह्मण १३ १४ ३ १३

कांटत्य ज्ये शास्त्र (१० पू० चतुर्थ अतादी) में भी पुराण शब्द का प्रयोग एक वक्त में ही हुआ है ।

* पुराण मिति वृत्त मारवायि को दाहरण की सात्र पश्चात्

बेविहास : ।

वर्ष शास्त्र अधि : १ व्यायः ५ प्रकरण २

इस रत्न का बहुवक्त्र में सर्वप्रथम प्रयोग वास्वलायनगृह्यसूत्र में हुआ है ।^१ कुमान होता है कि प्रारम्भ में समस्त पुराण साहित्य का संकलन ~~संकलन-है-कि~~ एक ही बृहत्काय पुराणसंहिता में रहा होगा, जैसा कि मत्स्य पुराण के पूर्वोक्ति श्लोक से भी प्रमाणित होता है । पुराणों में उल्लेख है कि वेदों का सन्पादन करने के बाद व्यास देव ने वात्स्यान, उपात्स्यान, गाथा तथा कल्प कृत् का संकलन कर पुराणसंहिता की रक्षा की । विष्णु पुराणमें पुराण संहिता के विषय में कहा गया है कि पुराण तत्त्व वेदा मन्वान् वेद व्यास ने वात्स्यान, उपात्स्यान, गाथा, और कल्प बुद्धि के साथ साथ पुराण संहिता लिखी । व्यास ने यह संहिता अपने एक शूत जातीय शिष्य लोमहर्षण को प्रदान की । लोम हर्षण के द्वाः शिष्यों में से काश्यप कृत व्रण, शांस्यान और चावर्णि नामक तीन शिष्यों ने मूल संहिता के बाजार पर एक एक पुराण संहिता और लिखी । पूर्वोक्त मूल संहिता ^{पश्चात्तिलीनतीनश्लोकांश्च ५५००} और ^{कुल ५५००} का चार लेकर यह प्रस्तुत पुराण संहिता (विष्णु पुराण) लिखी गई है ।

बहुत प्राचीन काल से ही पुराणों की संख्या बढ़ाकर चली जाती है । इन बढ़ाकर पुराणों के अतिरिक्त बढ़ाकर ही उपपुराण है । ये सभी पुराण और उपपुराण आज भी उपलब्ध हैं । प्रायः सभी पुराणों में बढ़ाकर पुराणों की नानावली दी गई है । निम्नलिखित ४ श्लोक में भी ऐतदात्मक रीति से पुराणों का नामोल्लेख दिया गया है :-

मदयं मदयं च व्रजयं व जीष्टयम् ।

वज्रापलिं कूस्कानि पुराणानि प्रवदते ॥

नामावली

इस पद का विस्तार करने से हमें बढ़ाकर पुराणों की निम्नांकित प्राप्ति होती है ---

१. मत्स्य	२. मार्कण्डेय	३. मागवत	४. मणिष्य
५. ब्रह्म	६. ब्राह्मण्ड	७. ब्रह्मवैवर्त	८. वायु
९. कथवा शिव	१०. विष्णु	११. वराह	१२. वामन
१३. बग्न	१४. नारद	१५. पद्म	१६. लिंग
१७. गरुड	१८. कूर्म तथा	१९. स्कन्द ।	

पुराणों का वर्गीकरण :- स्कन्द पुराणमें विभिन्न देवताओं के प्राधान्य और माहात्म्य की दृष्टि में रक्तर पुराणों के शैव, वैष्णव, सौर, शाक्तादि भेद किए गए हैं। कहा गया है कि शिव, भविष्य मार्कण्डेय, लिंग स्कन्द, वाराह, मत्स्य, कूर्म, वामन तथा ब्रह्माण्ड -- ये दस पुराण शिव से सम्बद्ध हैं तथा इन में कुल तीन लाख श्लोक हैं। विष्णु, भागवत, नारद तथा गरुड -- ये चार पुराण विष्णु से सम्बद्ध हैं। ब्रह्म तथा पद्म ये दो पुराण ब्रह्मा से सम्बद्ध हैं अग्निपुराण अग्नि से तथा वैवर्त पुराण सूर्य से सम्बद्ध हैं।^१ किन्तु इसी पुराण के केदार खण्ड में पुराणों का वर्गीकरण एक अन्य प्रकार से किया गया है। वहाँ कहा गया है कि अगारह पुराणों में से दस में शिव का चार में ब्रह्मा का, दो में विष्णु का तथा दो में देवी का माहात्म्य गान किया गया है।^२ कुछ विद्वानों की सम्मति है कि पद्म तथा वाराह पुराण विष्णु से, अग्नि पुराण शिव से, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय भविष्य तथा वामन पुराण ब्रह्मा से सम्बद्ध हैं। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान् वायु पुराण तथा शिव पुराण को एक ही पुराण मानते हैं। कुछ अन्य विद्वान् वायु पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण को एक ही पुराण मानते हैं।

१. तत्र शैवानि शैवं भविष्यं च द्विजौत्तमाः

मार्कण्डेयं तथा लिंगवाराहं स्कान्दमैव च ।

मत्स्यमन्यत्तया कूर्मं वामनं च मुनीश्वराः ।

ब्रह्माण्डं च दशमानि त्रीणि लक्षाणि संस्थया ॥

विष्णोर्हि वैष्णवं तच्च तथा भागवतं तथा : ।

नारदीयं पुराणं च गरुडं वैष्णवं विदुः ॥

ब्राह्मं पाद्मं ब्रह्मणो द्वे, अग्नेराग्नेयमैकम् ।

सवितुर्ब्रह्मवैवर्तमैव षष्ठादशस्मृतम् ॥

स्कन्द पुराण, शिवरहस्य, शोभन खण्ड

२. षष्ठादश पुराणेषु दशभिर्गीयते शिवः

चतुर्भिर्मगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरिः ।

स्कन्द पुराण, केदार खण्ड

की पावींटर महीनय की द्वारा न्त मान्य है । एवं प्रकार पुराणों की नामावली में परिगणित मागवत पुराण से कुछ लोग अनेक मागवत को ग्रहण करते हैं और कुछ लोग देवी मागवत को ग्रहण करते हैं। वास्तव में यह एक विवाद ग्रस्त विषय है कि मागवत नाम से पुराणों की कष्टाद्वय सत्ता के अन्तर्गत श्रीमद्भागवत को गिना जाए या देवी मागवत को । इस विषय का पुनः कुछ विवेक जान लिया जाएगा ।

पुराणों का प्रतिपाद्य विषय :- उपर्युक्त वर्गीकरण तथा विभिन्न

पुराणों के दृष्टि विषय का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि पुराण किसी धार्मिक सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करते तथा विभिन्न प्रकार के आचारों का निरूपण करते हुए नैतिक शिक्षा प्रदान करते हैं । पुराणों में विभिन्न देवताओं की उपासना निरूपण किया गया है और उन्हीं के साधनभूत स्तुति, वसिष्ठ, मुनि वत्, उत्सव, तीर्थ यात्रादि का वर्णन किया गया है । पुराणों में विष्णु के सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से समझाते हुए त्रिवेद : ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र : का एकत्व स्वीकार किया गया है ।

समस्त पुराण स्वयं की ही सृष्टि तथा का उद्घोषण करते हुए उन्हीं की सृष्टि का वर्णन मानते हैं । अनेक देवता उन्हीं के स्वयं की सृष्टि हैं । पुराणों में यह देवता का प्रतिपादन किया गया है । उन्हीं देवताओं की पुराणों में बराबर महत्व और शक्ति का मान्य समझाया है, किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि पुराण किसी धार्मिक सम्प्रदाय का प्रतिपादन करने के कारण किसी एक ही विशिष्ट देवता का महत्व प्रतिपादन सम्पूर्ण प्राण प्रण ले करते हैं और उन्हीं देवता की महिमा का उपासना का अत्यन्त वाञ्छित करते हैं । तथापि उन्हीं उष्ट किसी मागवत में जो नैमा प्रसूत त्रिवेद परीक्षा के उपाख्यान द्वारा विष्णु का ही सर्वोच्चानुष्ठित किया गया है । पुराणों के पूर्वोक्त वर्गीकरण से भी स्पष्ट है कि विशिष्ट विशिष्ट देवताओं की महत्ता का प्रतिपादन पुराणों का लक्ष्य है । पुराणों के नामों से भी इस बात की

१. तन्नि सम्पाद्य पुनयो विस्मिता मुञ्च संज्ञाः ।

अथापि श्रद्धयुर्विष्णुं काः शक्तिं देता ॥

कोः वाक्ष्यते तानं यैराभ्यं य तदन्वितम् ।

दशमः वाचस्पत्या यस्मात्तत्त्वात्प नतामसम् ॥

: श्रीमद् १०. ८६. १५-१६ :

सृष्टि होती है ! किन्तु पुराणों में किसी अन्य देवता की अवस्था या उसकी उपासना का विशेष भी नहीं किया गया है। अतः ज्ञात होता है कि पौराणिक की बहुदेववादी (Polytheistic) होते हुए भी एक ही ब्रह्म की सर्व व्यापकता का संकेत (Pantheistic) है। जिस पुराण में जिस देवता की महत्ता और उपासना का प्रतिपादन है उस पुराण में उसी देवता की सृष्टि के जादि कारण ब्रह्म का सर्वोच्च पद दिया गया है।

कालान्तर में जब प्राचीन वैदिक देवता जटिल उपासना पद्धतियों के कारण अपने व्यक्तित्व को एक दूसरे में विलीन कर चले तो विभिन्न उपासना पद्धतियों की उपादेयता और मनुष्य के ऐच्छिकामुक्त कल्याण में उनके योगदान के संबंध में गम्भीर चिन्तन का सूत्रपात हुआ। उपनिषदों में ब्रह्म-जीव और जगत् के संबंध में विचार कर जीव-समस्याओं को जन्म दिया गया तथा जीव-मनोविषयों में अपने-अपने समाधान भी प्रस्तुत किये। उपनिषद् साहित्य के अन्तर्गत स्पष्ट स्वीकार किया गया है कि एक ही सर्वोच्च शक्ति-मतीश्वरता अपने-आपने विभिन्न रूपों में व्यक्त करती है। और वही इस समस्त प्रपंच को व्याप्त करके स्थित है। १ उपनिषदों का यही विचार साहित्य में विकसित और पल्लवित हुआ और पुराणों में उन्नी अवतार-वाद का रूप ग्रहण कर लिया। महाभारत के इन विभिन्न शक्तिमय रूपों में मुख्य बुद्धि का संस्कार हुआ और स्त्री से उस रागात्मक तत्त्व का जन्म हुआ जिसे हम 'महि' के नाम से पुकारते हैं। यद्यपि महि के तत्त्व बीज सौजन्य पर वैदिक साहित्य में उपलब्ध हो जाते हैं किन्तु एक दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में महि का असल विकास पुराणों में ही हुआ, जिसका सर्वोच्च निदर्शन श्रीमद्भागवत पुराण है। अतः हम कह सकते हैं कि पुराणों का प्रधान प्रतिपाद्य विषय महि द्वारा परब्रह्म की प्राप्ति है। यहाँ तक कि श्रीमद्भागवत तो महि को मोक्ष से भी अधिक महत्त्व प्रदान करता है। २ श्रीमद्भागवत में महि केवल साक्षात् ही नहीं साध्य के रूप में

१. ईशावास्य निदं सर्वं यत्किं विज्जात्यां जगत् । ईशावास्योपनिषद् १.

२. नैवेद्यत्याहिः क्वाऽपि ब्रह्मणि निर्दिष्टमप्युत ।

महिं परां भगवति लब्धवान्पुरुषे ५ अये ॥

ग्रास हैं। १ अपनी भक्त्यैक प्रवणता के कारण श्रीमद्भागवत सबसे अधिक लोक प्रिय हुआ और इस पुराणा में सर्व श्रेष्ठ कहा गया। २

स्वाधिक व्यापक एवं लोकप्रिय पुराण - श्रीमद्भागवत ~~के~~ पुराण साहित्य

का इतना महत्त्व एवं संक्षिप्त परिचय देने के क्रान्तर यक्ष्मीचौन प्रतीत होता है कि हम सबसे अधिक व्यापक लोकप्रिय एवं प्रमविष्णु पुराण श्रीमद्भागवत को और विकासत्मक दृष्टि प्रक्षेप करें। श्रीमद्भागवत की मध्य काव्यीय कृष्ण भक्ति साहित्य ही नहीं, समस्त भक्ति साहित्य को चाहे वह निर्गुण भक्ति रही हो चाहे सगुण राम भक्ति - अत्यन्त व्यापक रूप से प्रभावित किया है। हिन्दी भक्ति साहित्य ही नहीं, श्रीमद्भागवत ने कोंकणी, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु, मलयालम, बादि अन्य भारतीय भाषाओं के भक्ति साहित्य को भी अत्यन्त गम्भीर रूप से प्रभावित किया है। बाबायं हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "भक्ति के नवीन बान्दीज ने जैक लोकिक का बान्दीज को शास्त्र का पल्ला फड़वा दिया और भागवत पुराण का प्रभाव बहुत व्यापक रूप से पड़ा^३।" गोस्वामी तुलसीदासने श्रीमद्भागवत की भक्ति के बादरी को स्वीकार कर जमीन ऊपर भक्तिग्रंथ रामचरित मानस की रचना की। रामचरित मानस में जैक स्थल श्रीमद्भागवत के छायाबुवाव है। तार्किक दृष्टि से तो श्रीमद्भागवत का बड़ा ही स्पष्ट एवं व्यापक प्रभाव रामचरित मानस पर पड़ा। प्रस्तुत प्रबन्ध का विवेच्य विषय हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य पर ही श्रीमद्भागवत का प्रभाव निरूपण है कतः कृष्ण भक्ति तर साहित्यकी चर्चा प्रकृत नहीं है। श्रीमद्भागवत की प्रमविष्णुता के दिग्मान प्रदर्शन के लिए उक्त चर्चा

१. न पारमेष्ठ्यं न महिन्द्रधिष्यं

न सार्वं भूमिं न रसायिपत्नम् ।

न योग सिद्धीसुखं वा

मध्यर्पितात्मेच्छति मद्भिनान्त् । श्रीमद्. ११. १४. १४.

२. निम्नानां क्या गंगा देवाना मच्छुतो क्या ।

वेष्यावानां क्या सुं: पुराणानामिदं तथा ॥ १२. १३. १६.

३. हिन्दी साहित्य का बादिकाल : बाबायं हजारी प्रसाद द्विवेदी

की गई हैं ।

श्रीमद्भागवत और देवीभागवत - जब हम वेद व्यास की कठारपुराणों का परिगणन करते हैं तो भागवत नाम के पुराणों में एक ही पुराण गिना जाता है । किन्तु बावजूब कि नाम से दो पुराण प्राप्त होते हैं एक श्रीमद्भागवत तथा दूसरा देवी भागवत । अतः व्यास की कठार पुराणों में कौनसा भागवत पुराण सम्मिलित किया जाय वह एक विचारणीय प्रश्न है । स्कन्दपुराण तथा इसी नाम के पुराणों में श्रीमद्भागवत ही अष्टादश पुराणों के अन्तर्गत परिगणित है । १ पर पुराण श्रीमद्भागवत माहात्म्य में बताया है कि श्रीमद्भागवत की कथा श्रवण करने के लिये जहाँ जहाँ देवता तीर्थ, ऋषि मुनि आस्थे वहाँ वेद, वेदान्त पुराणादि ग्रंथ भी विचार धारण करते वार थे । व्यास की पुराणों के आगमन प्रसंग में वहाँ सत्त्वकी पुराणों की गणना की गई है क्योंकि कठार की पुराण तो श्रीमद्भागवत ही आत्म्य था । २ इसी पुराण में एक अन्य स्थान पर बताया है कि सत्त्वकी की व्यास की सत्त्व पुराण वार महामास्त की स्थापना परमी जब आत्म तौषान मिला तो उन्होंने श्रीमद्भागवत संहिता की रचना की । ३

देवी भागवत की कठार पुराणों में परिगणन करने वाले शोध लोग कहते हैं कि श्रीमद्भागवत पुराणों के पाँच लक्षणों से कुछ नहीं है । इसमें अन्य प्रकार के दो लक्षण पाए जाते हैं । किन्तु यह मत ठीक नहीं है क्योंकि महापुराण में पाँच ही नहीं दो लक्षण भी बताए गए हैं । वेद पुराण से इस की पुष्टि होती है । वहाँ कहा गया है संप्रतिर्ण आदि पाँचलक्षण तो बल पुराणों के लक्षण हैं । महापुराणों में दो लक्षण पाए जाते हैं ।

१. परीक्षिच्छु संवादो योऽसौ व्यास उच्यते : ।

ग्रंथोऽष्टादश साहस्र : सोऽसौ भागवतानिषः ॥ स्कन्दपुराण श्रीमद् माहात्म्य

२. वेदान्तानि च वेदाश्च मंत्रास्तत्राणि संहिताः ।

दशसप्त पुराणानि सहस्राणि तदाम्युः । पञ्चपुराण, श्रीमद्भागवतमाहात्म्य

३. दशसप्त पुराणानि कृत्वा सत्त्वकी सुतः ।

३१५

नाप्तवान् मन्वा तीर्थं भारतनाऽपि नाभिलि ।

कठार संहिता मेतां श्रीमद्भागवतीं पराम् ॥

१ श्रीमद्भागवत में सर्ग, किर्ग, स्थान आदि दस लक्षण हैं । श्रीमद्भागवत में कहा भी गया है -

तस्मा ह्यं भागवतं पुराणं दशलक्षणम् ॥

प्रोक्तं भाक्ता प्राह प्रीतः पुत्राय भूतकृत् ।

वत्र सर्गं किर्गश्च स्थानं पापणामृतयः ।

मन्वंतरानुक्त्वा निरोधो मुक्तिरात्म्यः ॥ २

पक्ष पुराण में कहा गया है कि भागवत में तीन सौ बीस अध्याय हैं । ३ किन्तु श्रीमद्भागवत में तीन सौ पैंतीस अध्याय हैं वतः श्रीमद्भागवत बठार पुराणों के वन्तर्गत नहीं हैं । किन्तु श्रीमद्भाचार्य वीर श्री बल्भ्याचार्य ने जगद्गुरु बल्लभरण आदि की कथाके तीन अध्याय प्रदत्त माने हैं । वतः श्रीमद्भागवत में तीन सौ बीस ही अध्याय मानकर उन्हीं उक्त व्यास कृत बठार पुराण के अन्तर्गत माना है । भिन्नत्व पद का अर्थ शाकपार्थिव व्यास के तीन सौ पैंतीस भी हो सकता है । वीर गोपाल महाचार्य का यही मत है । ४ वतः इसी कारण श्रीमद्भागवत अष्टावस्तव से अपदस्थ ही हो सकता है किन्तु अनेक शास्त्रों का मत है कि श्रीमद्भागवत महा पुराण नहीं है किन्तु ये लोग भी बठार पुराणों में परिगणित भागवत नाम के पुराण के

१. अंशश्च प्रतिजगत्स्य कर्ता मन्वन्तराणि च ।

वैश्वानुचरितं वतः पुराणं पञ्च लक्षणम् ॥

स्तद्वत् पुराणानां लक्षणं कथयामि ।

कथाकिं लक्षणं च महतां परिकीर्तितम् ॥ ब्रह्मवैवर्त पुराण - कृष्णार्जुन चरमाध्याय

२. श्रीमद्भागवत २. ६. ४३ तथा २. १०. ९.

३. द्वाविंशतिर्लक्षणं च मस्य वित्तच्छाताः

श्रीमद्भागवत श्रीधर कृत भावार्थ दीपिका में उद्धृत ।

४. श्रीमद्भागवत दीप्ती व्याख्या पृ. ३ - मृन्दावन से प्रकाशित संवत् १९६०

संक्षेप में एक मत नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि भगवती — दुर्गा — के जन्म और चरित का वर्णन करने के कारण "कालिका पुराण" ही भागवत पुराण हैं। कुछ लोग देवी भागवत पुराण को भागवत पुराण के नाम से कठार पुराणों में सम्मिलित करते हैं। प्राचीन निबन्ध साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि वास्तव में श्रीमद्भागवत पुराण ही कठार पुराणों के वन्तगत परिगणित है। उद्दीप्त के प्रसिद्ध निबन्धकार नरसिंह बाजपेयि ने लक्ष्मीपूर का मत उद्धृत कर कालिका पुराण का निराकरण किया है।^१

श्रीमद्भागवत और देवी भागवत के वर्ण्य विषय तो दोनों से भी कहा जाता है कि श्रीमद्भागवत ही कठार पुराणों के वन्तगत है। श्रीमद्भागवत में कहीं देवी भागवत की चर्चा नहीं है और पुराण गणना में कहीं भी उसके साथ प्रतिद्वन्द्विता का नाम ही नहीं है, किन्तु इसके विपरीत देवी भागवत में श्रीमद्भागवत का स्पष्ट उल्लेख करते हुए उसे उपपुराणों में गिना गया है। और देवी भागवत का महापुराणों में।^२

अलबरूनी --- ११ शताब्दी १०३० ई. --- में अपने भारत - वर्णन में पुराण - बुचि में वासुदेव - भागवत का नामोल्लेख किया है।
"भागवत" के वासुदेव विंशत्युक्त से स्पष्ट हो जाता है कि अलबरूनी का तात्पर्य श्रीमद्भागवत से ही है क्योंकि जहाँ वासुदेव श्रीकृष्ण को ही बाधोपान्त महात्म्य विधान है और 'वासुदेव' शब्द वैष्णव का सनातनी भी है।^३

१. अष्टादशमस्तु पुराणं यत्तु दृश्यते।

विजानी ध्वं मुनिश्रेष्ठास्तद्वत्तम्यो विनिर्गत्तम् ॥

विनिर्गत्तम् । सुदृश्यम् । यथा कालिका पुराणा दी नीति लक्ष्मीपूरः
एवं चरति भगवत्या एवं भागवतं इति कालिका पुराणं भागवत पदेनोक्तं
इति ये वदन्ति ते निरस्ताः --- नित्याचार प्रदीप से उद्धृत वार.
सी. हज़ का लेख न्यू इण्डियन स्ट्रिक्टरी मान ९ जुन १९२२
१९३८ - ३९ ई.

२. देवीभागवत केपादी लीला १. ३. १६.

३. Sachan, Alberuni's India Page 131.

मत्स्य पुराण में मागवत कालाण इस प्रकार दिया गया है कि जिस पुराण में गायत्री को वर्णित कर फी का सविस्तर वर्णन है, जो वृत्रासुर के बर्ध-वर्णन से युक्त है, जिसमें सारस्वत-कल्प के नर श्रेष्ठों का वृत्त है, उस पुराण को लोक में 'मागवत' कहा जाता है।^१ किन्तु कौनान श्रीमद्भागवत पुराण में ये लक्षण कुछ घटित होते हैं कुछ नहीं। श्रीमद्भागवत के बाधन्त में गायत्री पद 'धीमहि' प्रयुक्त हुआ है।^२ और वृत्र-वध भी इसमें वर्णित है।^३ किन्तु इसमें सारस्वत कल्प के स्थान पर ब्रह्म कल्प का उल्लेख है।^४ इससे अनुमान होता है कि मागवत का एक प्राचीन रूप रहा होगा जिसमें से कुछ वंश वर्तमान श्रीमद्भागवत में सुरक्षित रह गया है। कुछ पुराणों में इसी प्राचीन मागवत का उल्लेख है।^५

ऊपर के संक्षिप्त विवेक से स्पष्ट हो जाता है कि बछाए पुराणों में श्रीमद्भागवत ही परिगणनीय है। मागवत के कतिपय लक्षणों का विष्णु-पुराण में सदैव एवं श्रीमद्भागवत की ११ वीं शताब्दी से ही भारत व्यापी लोक प्रियता एवं प्रसिद्धि बलवत् ही उज्ज्वली देती मागवत पुराण से बड़ी प्रसूता एवं महत्त्व प्रमाणित करती है।

श्रीमद्भागवत का रक्षाकाल - श्रीमद्भागवत की अश्विनलोक प्रियता एवं प्रसिद्धि में इसके रक्षा काल के अनुसंधान की ओर लोक वशी वार विदेशी विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। इसके रक्षाकाल के संबंध

१. यत्राधिकृत्य गायत्री वर्ण्यते फी विस्तरः ।

वृत्रासुर वधार्थं तद्भागवतमुच्यते ॥

सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युरीक्षाः ।

तद् वृत्तान्तोद्भवो लोके तद् मागवतमुच्यते । मत्स्यपुराण - वंगवासी संस्क. ५२, २०२१

२. श्रीमद्भागवत १. १. ६ तथा १२. १३. १६.

३. वही. ६. १. २४ अध्याय

४. वही २. ८. २८

५. विष्णु पुराण ३. ६. २२ ब्रह्म पुराण १. १ - १३.

में पर्याप्त मत मद पाया जाता है। श्रद्धालु हिन्दुओं और वर्तमान वैज्ञानिक दृष्टि कोण सम्मन्वय कुसंभाताओं के मत में हजारों वर्षों का अन्तर है। श्रद्धालु पाराशरिक हिन्दू श्रीमद्भागवत को महाभारत के तुरन्त बाद की रचना मानते हुए इसे लगभग पांच हजार वर्ष पुराना ग्रंथ मानते हैं। १. और बाकि-पक्षर धार्मिक विद्वानों का मत है कि यह एक अत्यन्त पर कर्ती रचना है जो ६ वीं शताब्दी ईस्वी से बाकि पक्ष की नहीं है। २. कुछ विद्वान् श्रीमद्भागवत को १३ वीं शताब्दी की रचना मानते हैं। इन में वित्थल, भक्तानन्द, कोल्हूकर तथा बाकि उल्लेखनीय हैं। इनके मान्य मतों का निराकरण हो चुका है। ३. बल्लाल्लाल --- १०५० ई० ने अपने ग्रंथ "दान सागर" (— इंडिया —) बाकि, स्व. स्व. काल ३ वीं) में एक भागवत पुराण का उल्लेख किया है। उनकी स्थापना है कि यै भागवत के हस्त लिखे कोई उद्धरण ग्रन्थ नहीं किया कि उन्हें दान विषय पर कोई प्रमाण नहीं है।

भागवतं च पुराणं क्लृप्तं सैव नारदीयं च ।

दानविधिं तुल्यं सत्त्वं इह न निबद्धं कदाचन ॥

वास्तव में वर्तमान श्रीमद्भागवत में दान विषय पर कोई प्रमाण है ही नहीं। हाँ देवी भागवत में एक विषय पर नवन सत्त्वं का उल्लेख वां वचन है जोः बल्लाल्लाल का तात्पर्य उक्त श्लोक में देवी भागवत से न होकर वैष्णव * श्रीमद्

१. श्री अण्ण्डानन्द सरस्वती का लेख श्रीमद्भागवत का रचना काल,

कल्याणः भागवताङ्क पृ० ५६,

२. :वः श्री सी. वी. वेण का लेख - जगत बाव, दान्य बाव बाव

रायल एशिया टिक सोसायटी । १९२५ ई० १४४

:आः मण्डारकर - वैष्णविज्य श्रैविज्य संद मास्तर रितीज्य विस्तर पृ० ४६

:इलः पार्वीटर - एंशिरण्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेजिन पृ० ८०

:ईः फर्हूर - वाइट जॉहन्स बाव की रितीज्य लिटरेचर इंडिया पृ० २२९

:उः किण्टर निस्व - इंडियन लिटरेचर - बिस्व १, पृ० ५५६,

:३ः श्री आर. सी. हज - न्यू इंडियन रेटिकेरी १९३८-३९

भाग १ पृ० ५२२,

भागवत है हैं। उन्होंने स्पष्ट नामों के पूर्वक कालिका पुराण से कई श्लोक ज्ञान गंध दान शगर में उद्धृत किए हैं।^१ बल्लाल सेन के काल से जहाँ तक और श्रीमद्भागवत का बल्लाल पुराणों के परिगणित भागवतत्व सिद्ध होता है वहाँ उसके रचनाकाल की उत्तर सीमा का अवधारण भी हो जाता है। पहले कहा जा चुका है कि अधिकतर विद्वान् इसे ६०० ई० से पाँचवीं नहीं मानते। सम्झना इसके भी पूर्वकी होने की ही है। सर हारोल्ड वायस लिखते हैं—

"Hindus are by no means in accord as to its age or authorship, but as Alberuni mentions it, it can hardly have been written after 900 A.D. and must be due to a Community of singers in the Tamil country." 2.

जैसा कि पहले कहा जा चुका है "पुराण" ब्रह्म मूल रूप में काफी प्राचीन काल से विद्यमान थे किन्तु संस्काराचार्य—(६०२ ई०) के समय उन्हें प्रमाण कीटि में माना जाने लगा था। रामानुजाचार्य—(११३० ई०) के समय में पुराणों की भारी-मान्यता हो गई थी। संस्काराचार्य और रामानुजाचार्य ने अपने धार्मिक ग्रंथों में विष्णु पुराण के कई प्रमाण रूप में उद्धृत किए हैं। विद्वानों का मत है कि श्री रामानुजाचार्य श्रीमद्भागवत से अपरिचित न थे।^३ बैल्लाल वायस काटिपय धार्मिक विद्वान् गोविन्दाष्टक को संस्काराचार्य की प्रामाणिक कृति मानते हैं।^४ और श्री जीवगोस्वामी—१६ वीं शताब्दी ई० का भी वही मत है गोविन्दाष्टक के बाजार पर तो यहाँ तक कहा जा सकता है कि संस्काराचार्य भी श्रीमद्भागवत से परिचित थे।^५ श्रीमद्भागवत में बल्लाल की तीर्थयात्रा का वर्णन है।^६

१. यही, पृ० ५२४.

२. ललाक्षवती पी. डि. विटनिका, चाचा संस्क. भाग १२ पृ० १६२.

३. द. सेल्ल वायस की भण्डारकर वीरिस्पट्ट लिखें इन्स्टीट्यूट १४, १६, ३२-३३ पृ० १८६

४. इडिज एण्टिक्वरी १६३५ ई० पृ० ५२५

५. श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध, अ. १७-२० तथा अध्याय ७८

किन्तु जहां उसमें पृथक्कृत तीर्थों का जिक्र होता है तो तीर्थों का उल्लेख है। वहां जानना पुरो जैसा प्रमुख तीर्थ की चर्चा ही नहीं है। किन्तु शंकराचार्य ने पुरी में कनका मठ स्थापित किया था जतः सहज ही अनुमान होता है कि श्रीमद्भागवत की रचना पुरी की स्थापना से बहुत पूर्व हो चुकी थी।

श्रीमद्भागवत में तमिल वैयासों का उल्लेख है।^१ तथा ह्युण पुलिन्द, पुत्तस, कनकादि विद्वत्सों के वैयास मत स्वीकार कर लेने का वर्णन इस प्रकार किया गया है -

किरात ह्युणान् पुलिन्द पुत्तस ।

बाम्भीर कनका कनकाः सताप्यः ।

ये च वे पा पा बहु पाश्या त्रयाः

शुद्धन्ति तस्मै प्रमविष्णवे नमः ।^२

तथा -

ते वै विदन्त्यतिरन्ति च देवमायां

स्त्री शुद्ध ह्युण श्वरा अपि पापजीवाः ।^३

भारतवर्ष के प्राचीन राजनीतिक इतिहास से विदित होता है कि भारत पर हूणों के ताकमण लगभग ४५० ई० से प्रारम्भ हो गए थे।^४ जतः श्रीमद्भागवत का रचना काल ४५० ई० के पश्चात् ही मानना समीचीन है।

पुराण साहित्यमें विष्णुपुराण का बड़ा महत्त्व है और इसे गुप्त काल -- तीरहरी चौथी सताब्दी -- की रचना माना जाता है। विष्णु पुराण में श्रीकृष्ण की बाल-लीला संक्षिप्त रूप में वर्णित है। इसी प्रकार महामातृ के उपरान्त वर्णित महाभारत के परिशिष्ट रूप इतिवृत्त पुराण में

१. श्रीमद्भागवत एक स्कन्ध ५७३८-५७४ ४

२. श्रीमद्भाग २.४. १८.

३. वही, २. ७. ४६

४. हिन्दु हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता -- डॉ. बेनी-प्रसाद --
द्वि. संस्क. पृ० २६०

भी श्रीकृष्ण चरित सांगोपांग वर्णित है। इसका रचना काल लगभग ४०० ई० है। श्रीमद्भागवत जस्य है। शारद पुराण से परवर्ती रचनाएँ क्योंकि इसमें श्रीकृष्ण चरित सांगोपांग एवं विस्तार से वर्णित है। श्रीकृष्ण चरित के इतने विकास और विस्तार में अवश्य ही एक या दो शताब्दियों का समय लगा होगा। कतः श्रीमद्भागवत का हम हटी शताब्दी के पूर्वार्द्ध -- लगभग ५५० ई० -- की रचना मान सकते हैं। यही तिथि इसके रचना काल की पूर्ण सीमा का जवाब देती है। यह तो सत्य होना ही है कि जिस प्रकार अन्य पुराणों में से कुछ उत्पन्न प्राचीन होते हुए भी कालान्तर में प्रक्षिप्त हो गए उसी प्रकार श्रीमद्भागवत में भी वर्तमान हम तक पहुँचने में कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ होगा।

श्रीमद्भागवत के रचयिता - भारतीय परम्परा वैदव्यास को श्रीमद्भागवत का रचयिता मानती है। सभी पुराणों के रचयिता वैद व्यास हैं। व्यास के नाम के साथ तीन भिन्न व्यक्ति जुड़े हुए हैं। १. वैद व्यास २. वादरायण व्यास तथा ३. कृष्ण द्वैपायन व्यास। कुछ विद्वान् इन तीनों को एक ही व्यक्ति मानते हैं और अधिकतर लोग तीनों को एक ही व्यक्ति मानते हैं। प्राचीन भारतीय परम्परा में सर्वदा निर्विकल्प भाव से तीनों को एक ही व्यक्ति माना गया है और उन्हींको महाभारत ब्रह्म-सूत्र तथा श्रीमद्भागवत आदि सार पुराणों का कर्ता माना गया है। श्रीमद्भागवत के रचयिता के रूप में ही तीनों नाम एक ही व्यक्ति के लिए प्रयुक्त मिलते हैं। यथा १ वैदव्यास -

परिनिशृणुष्वयामि वैद व्यासेन यत्कृतम् ।

श्रीमद्भागवतनाम पुराणं वैद सम्मितम् -२

२. वादरायण व्यास -

१. वैदव्यासस्तु कर्त्ता वैद शास्त्र विभाग कृत ।

प्रोक्तवान् सर्वं कर्त्ता पुराणेषु महीपते ॥ वृहन्नारदीयपुराण ६.१०२.

२. नारदीय पुराण.

स वै महं महाराज भगवान्वावरायणः व
हमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेद सम्मिताम् ॥ १

३ - कृष्ण द्वैपायन व्यास -

हमं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म सम्मितम् ।
वधीतवान्वावरा दौ पितुर्द्वैपायनादहम् ॥

तथा -

नमो भगवते तस्मै कृष्णाक्षु लुण्ठ मेघसे ।
यत्पादाम्बुजं ध्यानात्संहितां पथ्य गानिमान् ॥ २

तथा -

पैवेषु श्रीमद्भागवताख्यः शास्त्रकूटामणिः ~~XXXX~~ तत्
प्रणीता प्रकृत स्वाचार्य कूटामणिः श्रीकृष्ण द्वैपायनः ३
पुराणां के रचयिता वेद व्यास को केवल 'व्यास' भी कहा
गया है और सत्यवती सुत 'नाम' श्रेणी पुराणां में, बल्लभानके साथ उनका
उल्लेख है - क्या - व्यास -

भित्तु बुद्ध्यादि वृत्तीनां मुमुक्षाणां हिताय च ।
परीतिच्छुक्त्वा स्यादी यो ऽ सौ व्यासेन वर्णितः ।
ग्रंथो ऽ ष्टाक्षराहस्तः सौ भागवताभिधः ॥
कति ग्राह्यहीतानां स ख परमात्मनः ॥ धा ३

सत्यवती सुत -

दशरूपपुराणानि कृत्वा सत्यवती सुतः
नाप्तवान् मनसा तीर्णमार्तेनापि भामिनि ॥
कारं संहितां मेतां श्रीमद्भागवतीं पराम् ॥ ५

१. श्रीमद्भाग. १२. ४. ४२

२. श्रीमद्भागवत २. ६. ८ तथा १२. ६. ३५

३. श्रीविष्णुनाथ ऋषिणी कृत- श्रीमद्भागवत सारार्थ दर्शनी टीका १. १. १

४. स्कन्द पुराण २ वैष्णवखण्ड श्रीमद्भागवत माहात्म्य अध्याय ४ श्लोक ८.६

५. पद्मपुराण.

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीमद्भागवत को वेद व्यास की ही रचना माना गया है। कुछ लोगों का कहना है कि श्रीमद्भागवत वीप देव (तैरुक्की स्तादी के उत्तरार्ध में विद्यमान) की रचना है। किन्तु यह मत सर्वथा भ्रमपूर्ण है। वीपदेव से पूर्व ही वानन्द तीर्थ (मध्वाचार्य) ने श्रीमद्भागवतसिंघातिका एवं दार्शनिक महत्त्व पर एक ग्रंथ "भागवत तात्पर्य निर्णयः" लिखा था। १ मध्वाचार्य का स्थिति का तैरुक्की स्तादी का पूर्वार्ध है। यदि मध्वाचार्य वीपदेव के समकालीन रहे हों तब भी किताबों में प्रसिद्ध इस श्लोक से श्रीमद्भागवत के वीप देव के होने का स्पष्ट सात है :-

वीपदेव कृतत्वे च वीपदेव पुराणवैः ॥

कथं टीकाः कृताः संसृष्टुर्लुमाञ्चित्तुतादिभिः ॥

व्यास श्रीमद्भागवत को वीपदेव की रचना मानने पर वीपदेव से पूर्व हुए लुमान् वार चित्तुता चार्य की टीका श्रीमद्भागवत पर की हुई होती। काशी के गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज के पुस्तकालय में श्रीमद्भागवत की एक उत्कृष्ट प्राचीन हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है म.म. कविराज गोपीनाथ जी का मत है कि यह प्रति वीपदेव के जन्म से भी पूर्व १२ वीं शताब्दी की है। (दक्षिण कल्याण भागवतांक में राजा प्रति के पृष्ठ का चित्र एवं कविराज का लेख पृष्ठ ५८ : मध्वाचार्य के एक शिष्य पुत्र नारायण पण्डिताचार्य ने अपने मध्व-विजय : ४-४६५२ : में लिखा है कि श्रीमद्भागवत के मूल्यांकन आदि की समस्याएं मध्वाचार्य के समय में ही उठ रही हुई थी। २ लुमान् होता है कि तैरुक्की स्तादी में साम्प्रदायिकता के कारण श्रीमद्भागवत की अपनी प्राचीनता के संबंध में अपवस्था करने के लिए उसे तत्कालीन पंडित वीपदेव की कृति बताया गया है। किन्तु वास्तव में पंडित वीपदेव ने लगभग ८०० श्लोकों में श्रीमद्भागवत का दार्शनिक विवेकन करते हुए "भागवत मुक्ता फल" नामक एक ग्रंथ लिखा था।

१. श्री डी० बार्० कृष्णाचार्य द्वारा सम्पादित संस्कृत में संस्कृत
: वन्द्यै :

२. न्यू इंडियन एंटीक्वैरी मान १ - १६३८-३६, पृ. ५२५.

इस ग्रंथ को "मुञ्जकल" भी कहा गया है। इस में उन्नीस अध्याय हैं। इस ग्रंथ पर ह्येमाद्रि जो वोपदेव के समकालीन थे, की एक टीका भी है जिस का नाम क्वत्वा दीर्घिका है ^१ वोपदेव का दूसरा प्रसिद्ध ग्रंथ है "हरिलीला" इस ग्रंथ में एक सौ तिरसठ श्लोकों में श्रीमद् भागवत की अनुक्रमणिका लिखी गई है। हरिलीला पर भी ह्येमाद्रि ने विवेक नाम की टीका लिखी है। हरिलीला के मूल पाठ का बारह सौ श्लोक से होता है ---

श्रीमद् भागवतस्कन्धाध्यायाधीनि निरूप्यते ।

विदुषा वोपदेवेन मंत्रि ह्येमाद्रि तुष्टये ॥

ह्येमाद्रि ने अपनी टीका का बारह सौ किया है --

नमः कृष्णाय नित्यं सच्चिदानन्द मूर्तये ।

जगत्सर्गं विसर्गादि साक्षात्प्रेनन्त रक्षये ॥१॥

जयन्ति वोपदेवस्य वाचो विबुधे संमताः ॥

यः सारो ज्वलामासः क्षीरादस्यैव वीचयः ॥२॥

श्रीमद्भागवतस्यानुक्रमणी तद्विनिर्णिता ।

हरिलीलाभिधानैव यथा बुद्धि विविच्यते ॥३॥ २

इण्डिया बांफिग लाइब्रेरी के हस्तलिखित संस्कृत ग्रंथों की सूची में "हरिलीला" की एक अन्य प्रति का उल्लेख है जिसमें एक सौ सत्तर श्लोक हैं। इस ग्रंथ के अन्त में जो श्लोक हैं उन से तो स्पष्टही हो जाता है कि वोपदेव श्रीमद् भागवत के कर्ता नहीं हैं, प्रत्युत केवल प्रसिद्ध श्रीमद् भागवत पुराण की अनुक्रमणिका लिखे हैं :-

इति भागवतस्यानु क्रमणी रचणी कृता ।

विदुषा वोपदेवेन विद्वत्केशव तुम्भा ॥ १७६ ॥

१. A descriptive Catalogue of Sanskrit and Prakrit MSS in the Library of the University of Bombay, Book I, Vol I, II Part I to III No 1303.

२. उपयुक्त पुस्तक सूची ग्रंथालोक १३०४ .

हरिबीलं विनाभ्यं हरिभूतं विलोकिता ।

वत्सा विलोकिनादेव हरौ भक्तिं विवर्ति ॥ १७७ ॥ ^१

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट हो पावेगा अपने श्रीमद् भागवत के कर्ता होने का प्रतिवाद कर रहे हैं, फिर भी वास्तविक है कि वापदेव का श्रीमद् भागवत का रचयिता मानने का प्रवाद कहे जा रहा है।

पश्चात्कालीन विद्वानों का मत है कि श्रीमद् भागवत की रचना नवीं शताब्दी में तामिल प्रान्त के भक्तों ने की है। सर बाथर रोज ने लिखा है :

It (श्रीमद् भागवत) can hardly have been written after 900 A.D. and must be due to a community of singers in the Tamil Country.

^२ वेदव्यास का ऐतिहासिक व्यक्तित्व बनिर्णय होने के कारण पुराणों के कर्ता का स्थिति काल निश्चित करना एक दुर्लभ समस्या है। स्वयं श्रीमद् भागवत स्थापिक व्यासों का उल्लेख करता है। ^३ कुछ विद्वानों का मत है कि वेद एक व्यक्तित्व नहीं बल्कि एक परम्परा है। प्राचीन काल से ही व्यास नाम के पीठ पर बैठकर कथा प्रवचन करने वाले को व्यास नाम से अभिहित किया जाता रहा है। किन्तु भारतीय पौराणिक परम्परा बताती है कि वेद व्यास ने वेदों का विभाग किया, पुराण संरचना का निर्माण किया, वेदों का वर्ण-निर्णय करने के लिए ब्रह्मसूत्रों का निर्माण किया और ब्रह्मसूत्र के माध्यम से उन्होंने श्रीमद् भागवत की रचना की —

वेदव्यासं प्रविमृश्य स्वशिष्येभ्यः प्रदाय च ।

इतिहासं तदन्तस्थं सुवृत्तं मनीषया ।

पुराणं संरुद्धं च पुराणार्थं विशारदः ।

तदर्थानां निर्णयार्थं ब्रह्मसूत्रं कल्पयत् ॥

तद् माध्व मृतं पुराणं भागवतं वै विप्रमुखाः ॥ (आदि पुराण, ३५ अध्याय)

^१ Catalogue of the Sanskrit and Prakrit Mss. in the library of the India Office Vol II Part II by A.B. Keith पृष्ठ सं. ३३

^२ Encyclopaedia Britannica IV Edition Vol XII page 162

^३ द्वैपायनो हि व्यासनां..... श्रीमद् भागवत ० ११. १६. २८.

ॐ एक स्थान पर श्रीमद् भागवत का श्री कौन्त्य महाप्रभु ने श्री सार्व-
भौम भट्टाचार्य तथा प्रकाशानन्द सरस्वती की ब्रह्मसूत्र का कृत्रिम भाष्य बताया है
और श्रीमद् भागवत की स्वयं सूत्र कार बादरायण व्यास की रचना स्वीकार की
है २ बादरायण व्यास के ब्रह्मसूत्र 'जन्माद्यस्ययतः सूत्र से प्रारंभ होते हैं और
श्री भद्रभागवत का प्रारंभ भी 'नन्वापस्ययतः' से होता है। एक रचनाकार
अपनी एक रचना से दूसरी रचना को प्रायः सम्बद्ध करते देखे जाते हैं। अतः
श्री कौन्त्य महाप्रभुका उपर्युक्त मत कान्य नहीं लगता।

एक अन्य स्थान पर श्रीमद् भागवत को व्यास ने स्वयं ब्रह्मसूत्रों का
अर्थ, महाभारत का तात्पर्य निर्णायक तथा गायत्री का भाष्य बताया है :-

अथर्व ब्रह्मसूत्राणां भारताय विनिर्णयः।

गायत्री भाष्य भूतौ श्री भद्रभागवताभिवः ॥ ३

विभिन्न वैष्णव संप्रदायों में जिनिरामानुज, निम्बाक, मध्व, कौन्त्य तथा
वल्लभ-सम्प्रदाय उत्पत्तीय हैं, निम्नलिखित रूप से व्यास को ही श्रीमद् भागवत
का रचयिता माना गया है। इन संप्रदायों में वैद्यव्यास, व्यास, कृष्ण व्यास
व्यास तथा बादरायण व्यास सभी को एक ही व्यास माना गया है।

एक ही कर्ता की रचना :- श्री भद्र भागवत एक ही व्यास की रचना होने
के ऊपरों से पुष्ट है। इसकी सुश्रुतलिखित श्लो एवं संवत्स्र
रचना - विधान को देखें से यह स्पष्ट हो जाता है। सारे ग्रंथ में पूर्वा पर
संबंध बना हुआ है। उदाहरणार्थ तृतीयस्कन्ध अध्याय बारह में वर्णित परमाणु
से ऊपर पराद परमं काल बार बार बारों युगों के प्रमाण कहते हवाला द्वादश स्कन्ध
के चौथे अध्याय में दिया गया है। ४

१. ~~कात वादि पुराण, उपक्रम वाक्यानि.~~

२. श्रीभागवत तत्व विमर्शः : श्रीमगीरय का : पृ० १०.

: प्रकाशित - बालकृष्ण सुदामित महासमा सूरत १९४१ :

३. गङ्ग पुराण से उपर्युक्त तत्व विमर्श पृ० १० पर उद्धृत.

४. कालस्ते परमाणवादि द्विपरार्थविधि नृप।

कश्चित् योऽगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥ श्रीमद् . १२. ४. १.

कनारुप संवादे कनार चरितानुसङ्गम् ।
 पुराण कथाणां च सुष्टि कारण सम्भवः ॥३॥
 द्वितीयां वं समुक्तिः सन्ध्यां व्याख्यानं चरितम् ।
 चरितं विदुराचार्येणैवेष्टास्य संभवः ॥४॥
 सुष्टि प्रकारणं परवाहं कृष्णः परमात्मनः ।
 कापितं चास्मात्पुनः कृष्णोऽब मुदाहृतः ॥५॥
 सत्याश्चरितानां दौ पु ध्रुवस्य चरितं ततः ।
 पुष्योः पुण्य समाख्यानं ततः प्राचीनं बर्हिणः ॥६॥
 हृत्प्रेण पुष्यो गङ्गादितो किञ्च सन्ध्या उद्यमः ।
 त्रिविधस्य चरितं तस्यानां च पुण्यम् ॥७॥
 ब्रह्माण्डान्तर्गतानां च लोकानां वर्णनं ततः ।
 नरकस्थिति रित्येण संस्थाने मन्मथोक्तः ॥८॥
 वर्णनं च चरितं दत्ता सुष्टि निरूपणम् ।
 पुनराख्यानं ततः परवान्तरां जन्म पुण्यम् ॥९॥
 नन्दो व मुक्तिः सन्ध्यां व्याख्यानं परिपोषणम् ।
 प्रस्ताव चरितं पुण्यं वर्णनं निरूपणम् ॥१०॥
 सप्तमो गङ्गादितो वत्स वासना र्जुन कीर्तिः ।
 गङ्गा मोक्षणाख्यानं मन्वन्तर निरूपणम् ॥११॥
 सुष्ठु मन्वन्तं च चरितं कैवलय वन्दनम् ।
 मत्स्यावतार चरितं मत्स्योऽयं प्रकीर्तितः ॥१२॥
 द्वितीयं च समाख्यानं सौमन्वन्तं निरूपणम् ।
 वराहचरितं प्राचीनं नन्दो यं महामतः ॥१३॥
 कृष्णस्य वास चरितं कौमारं च वराहस्थितिः ।
 कौमारं मथुराख्यानं ^{सौमन्वन्तं} वाराहस्थितिः ॥१४॥
 कुमार कृष्णं नाम निरोधं दत्तः सुतः ।
 नारकं कुसुमादौ कुरुक्षेत्र कीर्तिः ॥१५॥
 यदोक्तं वाराहस्थेण श्रीकृष्णो नोदयस्य च ।
 वायव्यां निधोऽमुञ्जा ^{तश्च} वैलाङ्गः सुतः ॥१६॥
 मणिष्य कलि निन्दितो मणिष्यो राक्षः परीक्षितः ।
 वेद सारवा प्रणयनं मारुणस्य उपः सुतः ॥१७॥
 सौरी विभूति रुक्मिणी सङ्कतो वतः परः ।
 पुराणं सुष्ट्या कथं मातुः हावसा ^{सुष्टु} ॥१८॥
 हृत्प्रेण कलि वत्स श्रीमद् भागवतम् ॥ : नारदस्य पुराणं च भागवतां पृ.पर उद्धृतम् ।

तथा विष्णु पार्षद जय विजय के बारम्बार जन्म का वृत्तान्त जो तृतीय स्कन्ध अध्याय १५, १६, १७ में वर्णित हुआ है उसका श्वाता दशमस्कन्ध अध्याय चौदह पर से दिया गया है ।^२ इस प्रकार के पूर्वापर क्रमों की संगति अन्य स्कन्धों में भी है ।^३ अतः यदि हम व्रत सूत्रों^४ की ओर श्रीमद् भागवत के कर्ता वायसदेव व्यास को एक ही व्यक्ति मानें, जैसा कि श्री कौन्त्य महाप्रभु का भी मत है तो हमें पता चला कि व्रतसूत्रों की भाषा और श्रीमद् भागवत की भाषा में बहुत साम्य है । व्रतसूत्रों के अनेक सूत्र श्रीमद् भागवत में ज्यों के त्यों मिलते हैं ।^५ इससे भी श्रीमद् भागवत के एक ही कर्ता की कृति होने का प्रमाण मिलता है ।

श्रीमद् भागवत का वाक्य प्रकार एवं वर्ण्य विषय :-

श्रीमद् भागवत कथान

काल में लिखा गया है

उसका वह रूप भी कथान पाचीन है और वैदिकी शताब्दी में वह अपने कथान रूप में वाक्य था इस बात की पुष्टि श्रीमद् भागवतकी नारदीय पुराण में दी हुई विष्णुसुखमणी^६ श्री मध्वाचार्य की भागवत तात्पर्य निर्णय तथा

१. वासुदेव परमाण्यादि विप्रो जनिम ।

कथिता कथानं च शृणु कथं तथा वधि ॥

श्रीमद् भागवत १२. ४. १.

२. वर्णितां तदुपाख्यानं मया ते बहु विस्तृतम् ।

वैकुण्ठ वासिनीजन्म विप्रशपात्पुनः पुनः ॥

श्रीमद् भाग. १०. ७४. ५०.

३. श्रीमद् भागवत दृष्टस्त्वन्म प्रथम अध्याय श्लोक १-४ तथा वायसस्कन्ध
अ. १ श्लो. २

४. व्रतसूत्र का जन्मावस्था पक्षः सूत्र तथा श्री मद् भाग. का प्रथम श्लोक
जन्मावस्थ यतोऽन्वयादि हरतः

५. तत्र तु प्रथम स्कन्ध पूतर्जुणां समागतः ।

व्यासस्य वारिणं पुण्यं पाण्डवानां तथैव च ॥ १ ॥

पारीक्षित मुपाख्यानं मितोषं समुदा हृतम् ।

परीक्षित्चक्रुः संवादे वृत्तिद्वय निरूपणम् ॥ २ ॥

आगे के पृष्ठ पर और है।

श्रीमद् भागवत बारह स्कन्धों में विभाजित है। इसका दशम स्कन्ध सबसे बड़ा है। और उसके पूर्वार्ध तथा उत्तरार्ध दो भाग हैं। श्रीकृष्ण के तीसरागान की दृष्टि से दशमस्कन्ध ही सबसे महत्व पूर्ण है और ^{कुछ} भक्ति साहित्य पर सबसे अधिक प्रभाव उसका पड़ा है। तीन ग्यारह स्कन्धों में ज्ञान, भक्ति, वैराग्य के मिलेन विवेक के बहिरिख ओर पौराणिक विषयों का वर्णन है। श्रीमद् भागवत के ये बारह स्कन्ध तीन सौ पैंतीस अध्यायों में विभक्त हैं। श्रीमद् भागवत की अध्याय संख्या के विषय में नि प्राचीन वाचस्पत्य एवं टीकाकारों में मतभेद है। कुछ वाचस्पत्य उक्त तीन सौ पैंतीस अध्याय ही मानते हैं और दशमस्कन्ध के अध्यायसंख्यादि : अध्याय ५२, ५३, ५४ तीन अध्यायों को प्रतिष्ठा मानते हैं। तीन सौ पैंतीस अध्याय माननेवाले वाचस्पत्य "आश्वि-सुक्लितं चमस्य विलस्य च्छारवाः" वाले श्लोक को आधार मानते हैं किन्तु इस श्लोक का अर्थ तीन सौ पैंतीस परक भी निकलता है - सप्तस-विग्रह से यहि स्पष्ट हो जायगा "आभ्यामङ्घ्रिका त्रिंशत् पान्त्रिंशत् । स्तं च स्तं च स्तं च स्तानि । द्वात्रिं-सृज्य ध्रुवश्च स्तानि च तेषां स्मृष्टारः द्वात्रिंशत्त्रिंशत् पूर्व त्रिंशदङ्घ्रिकस्तान् वा" श्रीमद् भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार महामहोपाध्याय गोपाल भट्टाचार्य ने इसमें साक्ष्य पार्थिव प्रमाण मानते हुए श्रीमद् भागवत में तीन सौ पैंतीस ही अध्याय स्वीकृत किए हैं।^१ श्री योंपर्व ने अपनी हरिलीला में श्रीमद् भागवत के उक्त तीनों अध्यायों की उक्त कुलमाणिका में सम्मिलित किया है।^२ स्वर्ग श्री वर स्वामी ने उक्त तीनों अध्यायों की व्याख्या की है। अतः श्रीमद् भागवत में तीन सौ पैंतीस अध्याय मानने वाले वाचस्पत्य टीकाकारों का मत ही प्रकृत है और यही स्वीकार्य भी सात होता है।

श्रीमद् भागवत की श्लोक संख्या बठारह हजार है। श्रीमद् भागवत तथा अन्य पुराणों में भी यही संख्या दी हुई है।^३ श्रीमद् भागवत की सम्पूर्णा कुलमाणि

१. वृन्दावन से प्रकाशित अष्टटीका संवत् १९६० श्रीमद् भागवत पृ० ३ वि. १६६०

२. वषट्प वत्स वक्ष्यो स्तथा पादुर मोगिनः ।

वत्स चार फल मोदो ब्रजणा जवन हरः ॥

हरिलीला, दशमस्कन्ध पणन पष्ठम श्लोक ५९.

३. तनाष्टापद साहस्रं श्री भागवत मिष्यते ॥

श्रीमद् भागवत १२, ५३, ६.

होंको में उवाच तथा गम्भार्गों के वक्षीस वक्षीस कदार गिन कर अनुष्टुप्
श्लोक बनाकर जोड़ने से ही यह संख्या पूर्ण होती है ।

श्रीमद् भागवत का स्कन्धानुसार वर्ण्य विषय :-

प्रथम स्कन्ध :-

श्रीमद् भागवत के प्रथमस्कन्ध में उन्नीस अध्याय हैं । बारम्बार में अन्य लोक पाराणिक आस्थानों के समान श्रीमद् भागवत में भी नभिचारण्य से शौनकादि कृष्णियों का पुराणज्ञ सूत से भागवत - त्रयण के लिए आग्रह है । सूत द्वारा भागवत तथा और भागवद् मणि का माहात्म्य, भगवद्वक्ता वर्णन तथा महर्षि व्यास के मनः कलश का वर्णन किया गया है कि निष्कमट भाव से ब्रह्मचर्यादि व्रतों का पालन एवं महाभारत इतिहास लेखन के निष्पत्ति वेदों का माध्यकर देने पर भी उनका हृदय भगवद् गुणगान व करने के कारण अस्तुष्ट और अस्वस्थ था । सूत ने शौनकादि को नारद और व्यास का संवाद सुनाया जिसमें नारद ने व्यास को भगवत्पञ्च वर्णन का माहात्म्य और अपने मज्जि हम्का वृणो सुनाया था नारद के उपदेश से व्यास ने भागवत का निर्माण कर उसे अपने निर्वृति परायण पुत्र शुक्देव को पढ़ाया शौनक के उसके उपरान्त श्रीमद् भागवत के प्रसूत श्रोता परीक्षित के जन्म महाभारत युद्ध के अनन्तर का इतिहास तथा परीक्षित को श्रुति कृष्ण के तदाक - देवता शप का वर्णन किया परीक्षित धानरणा कलज व्रत लेकर गंगातट पर उपस्थित थे कि उन्हें श्रीमद् भागवत का उपदेश करने के लिये शुक्देव का कस्ताना वागमन हुआ ।

द्वितीय स्कन्ध :-

द्वितीय स्कन्ध में दस अध्याय हैं । शुक्देव ने परीक्षित को ज्ञान, वैराग्य एवं मज्जि प्रदान श्रीमद् भागवत महा पुराण सुनाने का उपक्रम किया ईश्वर के विराट् स्वरूप, ब्रह्म मुक्ति का वर्णन कर शुक्देव ने भगवद् मणि के प्रावान्ध का निरूपण किया। ^{तथा सधोमुक्ति} भागवत के विराट् स्वरूप से जगत् की उत्पत्ति, भगवान् की विराट् विभूतियों और भगवान् के लीलाकारों का वर्णन कर शुक्देव ने परीक्षित को भगवान् विष्णु का ब्रह्मा को चतुःश्लोकी भागवत का ज्ञान देने का आस्थान सुनाया। अन्ति में शुक्देव ने परीक्षित को भागवत के सर्ग विसर्गादि दस लक्षण समझकर प्राकृत सर्ग का रहस्य समझाया ।

तृतीय स्कन्ध :-

तृतीय स्कन्ध में तैंतीस अध्याय हैं । शौनकादि कृष्णियों ने सूत से प्रश्न किया था कि निर्वृति मार्ग के अधिक विदुर ने मैत्रेय कृष्णों से जो अध्यात्मिक कर्मा की थी वह सुनाइए। सूत ने उत्तर दिया कि परी-

द्वितीय ने भी शुकदेव से यही प्रश्न किया था और शुकदेव ने परीक्षित को विदुर तथा मैत्रेय का संवाद सुनाया था। महानारत युद्ध के अनन्तर विदुर ^{नष्ट पर} विरजि होकर हस्तिनापुर से बंटे जाए और जोक तीर्थों में विचरण करने युना ^{नष्ट पर} उद्धव से मिले। उद्धव उन्हें भगवत्गीता सुनाई। इसके उपरान्त विदुर युनातट पर जाकर मैत्रेय कृष्णसे मिले मैत्रेय से उन्होंने इन विषयों का वर्णन सुना-सृष्टि का वर्णन, कलविष सृष्टि, मन्वन्तरादि काल विभाग, सृष्टि विस्तार, वाराह अवतार की कथा, शिष्यकृष्ण बार शिष्याना की कथा, देवदुति और कपिल का संवाद। कपिल ने अपनी माता देवदुति के प्रति मज्जियोग, महिदादि तत्त्वों की उत्पत्ति, प्रकृति पुरुष के भिन्न से मोक्षाप्राप्ति का वर्णन, ब्रह्मांग योग की विधि, धूम मार्ग और वनिरिखिर्दि मार्ग से जाने वालों की गति और मज्जि मार्ग की उत्कृष्टता का वर्णन किया।

चतुर्थ स्कन्ध :- चतुर्थ स्कन्ध में अतीस अव्याय हैं। इस स्कन्ध में भी

विदुर और मैत्रेय का ही संवाद है। मैत्रेयने विदुर के प्रति इन विषयों का वर्णन किया है -- स्वायंभुवमान की कन्याओं के वंश का वर्णन, कदा ^{यज्ञ} का विष्णु, ध्रुव का उपास्थान, राजाके की कथा राजा पूष का वायिगवि और उसके द्वारा पृथिवी दान कादि जोक चरित। कम काण्ड से मनुष्य के वाय्व-नित्त कल्याण की आशानहीं की जा सकती। जीवकाकल्याण भगवद्भक्त से हो सकता है। इस वाय्वान्तिक तत्व का निरूपण करने के लिए मैत्रेय ने स्फा-त्मक पुराणों पाठ्यान् विदुर की सुन्या तथा भगवद् भक्त प्रस्तावों का चरित वर्णन किया। चतुर्थ स्कन्ध में विदुर और मैत्रेय के संवाद की समाप्ति होती है।

पंचम स्कन्ध :- पंचमस्कन्ध में एकतीस अव्याय हैं। इसस्कन्ध में प्रियव्रत

ब्रह्मोष, नानि, सुगुण उद्गीष्ट कवर्ती राजाओं के वंश एवं चरित्र का वर्णन है। साथ ही भुवन कोश, तीर्थ, लोक, ग्रह, स्थितारक और विभिन्न नरक वादि जोक पौराणिक विषयों का वर्णन है।

षष्ठ स्कन्ध :-

षष्ठ स्कन्ध में अतीस अव्याय हैं। परीक्षित के यह प्रश्नपर भी पर कि मनुष्य किस प्रकार नरक यात्मा से मुक्त हो सकता है, शुकदेव ने भगवद् भक्ति ही उसका एक मात्र उपाय बताया। इस प्रसंग में उन्होंने शुकदेव को परीक्षित का उपास्थान सुनाया और विष्णु दूतोंद्वारा निरूपित माग-वत की का वर्णन किया। इस स्कन्ध में कदा प्रजापति की साठ कन्याओं का वंश वर्णन, वृथासुख, देवासुर संग्राम वादि पौराणिक विषयों का वर्णन है।

सप्तम स्कन्ध :-

सप्तम स्कन्ध में पन्द्रह अध्याय हैं। परीक्षित के यह प्रश्न करने पर कि समस्त युद्ध समाप्त होने के बाद देवताओं का पदाङ्कन दान्तों का संहार किया, कुन्देव ने उनके ऊपर में परीक्षित को नारद और बुद्धिष्टिर का संवाद सुनाया। शिशुपाल के श्रीकृष्ण में बाधुज्य हो जाने का कारण था कि कृष्ण में उनकी तत्त्वज्ञता, बाह्य वह भेष वह ही क्यों न हो। इसी प्रसंग में शिशुपाल के पूर्व जन्म वृत्तान्त का वर्णन करते हुए बताया कि उनका पिता कृष्ण के श्राप से विष्णु पार्श्वद जय विजय जिस प्रकार हिरण्य कशिपु और हिरण्यनाभ के रूप में अवतीर्ण हुए हिरण्य वशिष्ठ के संतार प्रसंग में ही सतिस्त्वर प्रह्लाद तथा और वन्त में मानव का वर्णन किया, स्त्री का, वृद्ध का तथा मोक्ष का वर्णन किया।

अष्टम स्कन्ध :-

अष्टम स्कन्ध में चावन्ति अध्याय हैं। इस स्कन्ध में मन्वन्तारों का वर्णन, गन्धर्व का कथान, सुन्द मन्वा, मोहिनी अवतार तथा देवतपुर एगाम, दान्तावतार, बलिष्ठा, स्व मत्स्याकार की कथा सविस्तर दी गई है।

नवम स्कन्ध :-

नवम स्कन्ध में भी चौबीस ही अध्याय हैं। राजा परीक्षित की जिज्ञासापर कुन्देव ने पूर्ववर्ती केक कचकी राजकुमारों का वर्णन किया। इस स्कन्ध में विशेष रूप से पुराण महापुरुषों का चरित्र बतवर्णन है। वैवस्वत मनु का वंश, चक्षुष और सुक्न्या का चरित्र स्मृति वंश, नानाग और अम्बराण की कथा, इक्ष्वाकु वंश, क्रिष्ण और हरिश्चन्द्र की कथा, सगर चरित्र, गन्धर्वारण की कथा, रामायण, निम्बिक, कन्द वंश, परशुराम चरित्र, गुह्यवत्, भारत वंश, इन्द्रास्त्र एवं विष्णु वंश वर्णन इस स्कन्ध के विषय है।

दशम स्कन्ध :-

(पूर्वार्ध और उत्तरार्ध) दशमस्कन्ध के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो भाग हैं। पूर्वार्ध में उनका तथा उत्तरार्ध में इक्ष्वाकु वंश वर्णन है। इस प्रकार दशमस्कन्ध मनु के अध्यायों में विस्तीर्ण श्रीमद् भागवत का सबसे बड़ा स्कन्ध है। श्रीकृष्ण चरित्र का समीपान वर्णन एवं श्रीकृष्ण कामशिवानन्द ही इसका लक्ष्य है। परीक्षित के यह प्रश्न करने पर कि यदुवंश में ही अन्तिम कलसी भगवान्

श्रीकृष्ण ने कस्तूर ग्रहण किया था, उन की बता कि लीलाओं का ही रहस्य है, सुकदेव ने उन्हें श्रीकृष्ण के जन्य स उनक परमधाम गमन तक का समस्त चरित्र यह विस्तार से सुनाया । यह कृष्ण लीलाही भक्त कवियों का सबसे प्रिय वर्ण विषय रही है । ज्ञाः वरुण स्कन्ध श्रीकृष्ण की लीला का समस्त विवेक ज्ञान दिया जायगा ।

स्कादत स्कन्ध :-

स्कादत स्कन्ध में एकतीस अध्याय हैं । इस में सुकदेव ने श्रीकृष्ण के परमधाम गमन का वर्णन कर कृष्ण चरित्र का उपसंहार किया है । इसके अतिरिक्त इस स्कन्ध में अध्यात्म साधना के विविध विषयों का वर्णन है, यथा, माया, ब्रह्म वार कर्म योग का निरूपण, भगवत्पूजा विधि का वर्णन, अवस्था पाश्यान्, सत्त्व, मज्जि-योग की मरिमा, भगवद् विभूति वर्णन, वर्णाश्रम कर्म निरूपण, ध्यान प्रस्थ और सत्याशी के धर्म, मज्जि, ज्ञान का विकास, साधन वर्णन, ज्ञानयोग, कर्मयोग वार मज्जि-योग, तत्त्व-सत्या एवं पुरुष कृति विवेक, सांख्य योग, त्रिगुण वृत्ति निरूपण, क्रियायोग वर्णन, परमार्थ निरूपण भागवत का निरूपण ।

स्कादत स्कन्ध ^{मात्र} श्रीमद् भागवत की एक स्वतंत्र अध्याय समग्र के अन्तर्गत होता है । इस स्कन्ध का विषय वरुण एवं क्रिया दोनों है ही सम्यक् है और उसमें सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है । मज्जि साहित्य पर श्रीमद् भागवत के सामान्य और व्यापक प्रभाव की दृष्टि से यह स्कन्ध बहुत महत्व पूर्ण है ।

दादत स्कन्ध :-

दादत स्कन्ध में तीस अध्याय हैं । यह अध्याय स्कन्ध पुराणों की परम्परागत विशेषताओं का हिस्सा है । मविष्य कथन पुराणों की प्राचीन परी पाटी है । इसके अतिरिक्त इस स्कन्ध में पुराणों की परिपाटी के अनुसार इन विषयों का वर्णन है - कलिगुप्त के राजवंश, कलिर्मा, कुर्मा, पुराण कथा, एवं विभिन्न पुराणों की स्तोक संख्या । इस स्कन्ध में सुकदेव का परिचित को अन्तिम उपदेश है जिस में उन्हें सर्वमन्त्रि न भगवच्चरणगति को का वादेश दिया गया है ।

श्रीमद्भागवत की टीकाएँ

श्रीमद्भागवत एक अत्यन्त क्लिष्ट ग्रंथ है। जहाँ एक ओर इसमें सरल-सरल साहित्यिक पदावली का प्रयोग हुआ है, वहाँ इसमें अत्यन्त विज्ञापुर्ण फ़ीढ़ दार्शनिक शब्दावली का प्रयोग भी दर्शनीय है। किन्तु श्रीमद्भागवत की क्लिष्टता का प्रमुख कारण उसकी भाषा नहीं है बल्कि उसकी दार्शनिक गूढ़ता है। श्रीमद्भागवत के सम्बन्ध में "विधावता" भागवत परीक्षा की जो उक्ति विद्वानों में प्रसिद्ध है वह यथार्थ ही है। गरुड़ पुराण के अनुसार वेदान्त दर्शन का प्रकाश करने वाला, ब्रह्मसूत्रों का व्यर्थ, महाभारत का तात्पर्य निर्णय, गायत्री का भाष्य रूप, वेदार्थ का परिवर्द्धन करने वाला श्रीमद्भागवत समस्त पुराणों का सार रूप है। इन गरीबान् पद का निर्वहण करने वाले इस ग्रंथ की धिमा टीका के समझना दुष्कर है। बहुत प्राचीन काल से ही इस ग्रंथ पर विभिन्न विद्वानों और वाचार्थों ने स्वमतानुसार टीकाएँ लिखी हैं। नीचे भिन्न भिन्न विद्वानों से देव्याव वाचार्थों की मुख्य मुख्य टीकाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

१- भावार्थ टीका-

श्रीमद्भागवत की इस सर्वश्रेष्ठ से सर्वाधिक प्रसिद्ध टीका के कर्ता श्रीधर स्वामी हैं। यह टीका श्रीमद्भागवत की उपलब्ध समस्त टीकाओं से प्राचीन है। पर-वर्ती प्रायः समस्त टीकाकारों ने इसका अनुसरण किया है। और श्रीमद्भागवत के गूढ़तम स्थलों को समझने में इसकी सहायता ली है। वास्तव में इस टीका का अध्ययन करने से इसके कर्ता श्रीधर स्वामी के ज्ञान पाण्डित्य का ज्ञान होता है। श्रीधर स्वामी के सम्बन्ध में बहुत कम बातें ज्ञात हैं। उन्होंने अपने विषय में स्वयं कुछ नहीं

कहा है। टीका के मालाचरण से ज्ञाना प्राप्त करता है कि ये श्री नृसिंह के उपासक^१ थे। श्रीमद्भागवत की गरिमा और अपनी जल्यज्ञता की प्रदर्शित करने के लिए श्रीधर स्वामी ने लिखा है कि " जिस क्षीराब्धि का मन्थन करने में मन्दराचल भी डूब जाता है वह परमाणु की क्या विज्ञात है।"^२ किन्तु श्रीधर स्वामी की टीका ज्ञानी प्रतिष्ठित एवं लोकप्रिय हुई कि उसके सम्बन्ध में यह उक्ति प्रचलित होगई-

व्यासो वैचिक्लोवसि राजा वैचिन न वैसि वा।

श्रीधरः सक्तं वैसि श्रीनृसिंह प्रसादतः ॥

श्रीधर स्वामी की टीका की इससे अधिक प्रशस्ति और क्या हो सकती है। भक्तार नाभादास जी ने भी भक्तमाल में श्रीधर की टीका की कैद सम्मत बताया है और काशी के विन्धु माधव मंदिर के एक चमत्कार का उल्लेख दिया है कि भावाद् विन्धुमाधव ने उनकी टीका की समस्त गृथों को ऊपर रखकर उसे सर्वोत्कृष्ट घोषित कर दिया। श्रीधर स्वामी का स्थितिकाल ११ वीं शताब्दी

१- वागीशा यस्य वदने तन्मीयेस्य च वदासि ।

यस्यास्तौ हृदये संवित् तं नृसिंहं मयि ॥ श्रीधरि भावार्थ दीपिका १

२- क्वालेन्यमतिः क्विदमर्थं क्षीर वासिधेः ।

किंतु परमाणुर्वै यं भजति मन्दरः ॥ वही श्लोक ५

३- तीन काण्ड शक्य सानि कोउ ज्ञान चतान्त ।

कर्म ज्ञानी रैचि लथे को अनर्थ मानत ।

परमहंस संखिता विदित टीका विस्तारणी ।

षट् शास्त्रनि अविरुद्ध वेदसम्मतर्हि विचारणी ।

परमानन्द प्रसाद से माधी सुकर सुधार दियो ।

श्रीधर श्रीभागवत में परम धरम निरने किया ॥

माना जाता है। श्रीधर ने अपने पूर्ववर्ती वैदान्त के प्रसिद्ध वाचार्थ चित्तुवाचार्य की टीका का उल्लेख किया है। श्रीधर की भावार्थ दीपिका टीका पर श्री रामा-
रमणदास गोस्वामी ने अत्यन्त विस्तारपूर्ण "दीपनी" नामक टिप्पणी लिखी है, जो वृत्त वन से सं० १९६० में प्रकाशित विविध टीका संवलिता श्रीमद्भागवत के अन्तर्गत सम्मिलित की गई है।

२- एक पदगुण टीका-

श्रीमद्भागवत की इस टीका के कर्ता विशिष्टाद्वैतमत प्रवर्तक श्री रामा-
नुजाचार्य के सम्प्रदाय के एक प्रख्यात वाचार्थ श्री सुदर्शन गुरि हैं। ये वही विद्वान्
हैं जिन्होंने रामानुज के प्रसिद्ध "श्रीमाध्य" पर "वृत्त प्रकाशिका" टीका लिखी है।
विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय में "सुदर्शन गुरि" का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने
विशिष्टाद्वैत मतानुसार श्रीमद्भागवत की व्याख्या की है। इनका स्थिति काल
ईस्वी १४ वीं शताब्दी है। कहा जाता है कि अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति
ने जब १३६७ ई० में श्रीरंग पर आक्रमण किया था तब उस काण्ड में ये मारे
गए थे।

३- भागवत चन्द्रिका-

श्रीमद्भागवत की इस टीका के कर्ता श्री वीरराघवाचार्य हैं। ये भी
श्री रामानुज सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वाचार्थ थे। उन्होंने श्री सुदर्शन गुरि की टीका
का ही विशदीकरण किया है। विशिष्टाद्वैत मत के अनुसार श्रीमद्भागवत के

१- भागवत सम्प्रदाय - श्री कृष्ण उपाध्याय पृ० १५

२- वही पृ० १५७

३- भागवत सम्प्रदाय पृ० १५७

व्याख्यान के लिए वीरराघव की टीका का अध्ययन अनिवार्य है। इनका समय १५ वीं शताब्दी का उपरार्ध है।

४- पद रत्नावली-

श्रीमद्भागवत की इस टीका के कर्ता, जिन मतवालोंवादी वाचार्य विजयध्वज हैं। जिन मत के प्रवर्तक श्री आनन्दतीर्थ श्रीमद्वाचार्य ने श्रीमद्भागवत के मर्म को प्रकाशित करने के लिए पहले ही "भागवत तात्पर्य निर्णय" नामक विद्वत्पूर्ण ग्रंथ लिख दिया था। किन्तु मद्वाचार्य के ग्रंथ को इस श्रीमद्भागवत की टीका नहीं कह सकते। यह श्रीमद्भागवत पर एक निबन्ध है। हेतुमतानुसार श्रीमद्भागवत की व्याख्या बाद में श्री विजयध्वज ने अपनी पदरत्नावली में की और अपना आधार आनन्दतीर्थ तथा विजयतीर्थ की कृतियों को स्वीकार किया। विजयध्वज की टीका काफी विस्तृत एवं सुबोध है।

५- सिद्धान्त प्रदीप-

श्रीमद्भागवत की इस टीका के रचयिता तो निम्बार्क सम्प्रदाय के वाचार्य ज्ञानदेवाचार्य हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय की वाचार्य परम्परा में इनका नाम है। जिनमत के प्रतिष्ठापक श्री निम्बार्कवाचार्य ने श्रीमद्भागवत पर कोई टीका नहीं लिखी किन्तु जिन मत में श्रीमद्भागवत का परम प्रामाण्य स्वीकृत है, विशेषकर झुल-लीला तथा गोपी प्रेम के प्रकाशक रासलीला का इस सम्प्रदाय में बहुत ही महत्व है और निम्बार्क मत के जन्म वाचार्य ने भागवत दशम स्कन्ध की विविध

१- आनन्दतीर्थ विजयतीर्थी प्रणम्य मस्करि वसन्त्या ।

तयोः कृति स्फुटमुपजीव्य प्रवृत्ति भागवतं पुराणम् ॥

श्रीमद्भागवत पृ० १९ वृन्दावन से १६१० वि० में प्रकाशित

कृष्ण लीलाओं मुख्यतया रास लीलाओं की बहुत हृदयग्राहिणी व्याख्या की है। श्री शुक्देवाचार्य ने श्रीमद्भागवत को द्वैताद्वैतपरक व्याख्या करके अपने सिद्धान्त को प्रामाणिक सिद्ध किया है।

६- सुबोधिनी-

श्रीमद्भागवत की इस टीका के कर्ता सुप्रसिद्ध शुद्धाद्वैतमत के प्रवर्तक श्री वल्लभाचार्य हैं। सुबोधिनी टीका सम्स्त श्रीमद्भागवत पर नहीं है। आरम्भ के कुछ स्कन्धों और सम्पूर्ण दशमस्कन्ध पर ही यह प्राप्त है। सुबोधिनी में श्री वल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत को व्याख्या अनेक दृष्टियों से करके अनेक अर्थों की उद्भावना की है। शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत को प्रस्थान ग्रंथों में रखकर उसका परम प्रामाण्य स्वीकार किया गया है। इस सम्प्रदाय के अन्य विद्वानों ने भी श्रीमद्भागवत की टीकाएँ की हैं, जिनमें गिरिधर महाराज की टीका उल्लेखनीय है।

७- बृहद् वैष्णव तोषिणी-

श्रीमद्भागवत की इस टीका के रचयिता चैतन्य सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध आचार्य श्री सनातन गोस्वामी थे। इनका समय १६ वीं शताब्दी है। श्री चैतन्य महाप्रभु श्रीधर की "भावार्थ दीपिका" टीका को श्रीमद्भागवत की सर्वाधिक प्रामाणिक एवं सर्वोत्तम टीका समझते थे। यद्यपि श्रीधर स्वामी की टीका शंकर के अद्वैतमत के अनुसार है और चैतन्य मत से भिन्न दार्शनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है। तथापि श्रीधरी टीका की उत्कृष्टता से प्रभावित होकर चैतन्य ने अपने मत में उसी की प्रमाण स्वरूप स्वीकार कर लिया और स्वयं श्रीमद्भागवत पर उन्होंने कोई टीका नहीं लिखी। चैतन्य के अनुयायी वृन्दावन के गोस्वामी ने श्रीधरी टीका का पूर्ण समादर करते हुए अपने मत (अचिन्त्य भेदभेद) के अनुसार श्रीमद्भागवत पर अनेक विद्वत्तापूर्ण टीकाएँ लिखीं। इनमें श्री सनातन गोस्वामी की "बृहद् वैष्णव तोषिणी" टीका बहुत प्रसिद्ध है। यह श्रीमद्भागवत के केवल दशम स्कन्ध पर ही की गई है।

८- क्रम सन्दर्भ-

श्रीमद्भागवत की इस सुप्रसिद्ध टीका के रचयिता चैतन्य सम्प्रदाय के वाचार्य श्री जोव गोस्वामी थे। ये पूर्वोक्त श्री सनातन गोस्वामी के भतीजे थे। श्री जोव गोस्वामी एक अत्यन्त प्रतिभाशाली पण्डित थे। इन्होंने श्रीमद्भागवत के रहस्य का उद्घाटन करने के लिए एक अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण "षट् सन्दर्भ" नामक ग्रंथ लिखा। "क्रम सन्दर्भ" उसी परम्परा में लिखी गई श्रीमद्भागवत की विस्तृत व्याख्या है। यह समस्त श्रीमद्भागवत पर है। "षट् सन्दर्भ" के उपरान्त उनका यह "सप्तम सन्दर्भ" ही था।

९- सारार्थ दर्शिनी-

श्रीमद्भागवत की इस टीका के रचयिता चैतन्य सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध वाचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती हैं। श्री चक्रवर्ती ने अपनी टीका में श्रीधर स्वामी, श्री चैतन्य महाप्रभु तथा उनके गुरु के श्रीमद्भागवत विषयक विचारों का सार ग्रहण किया है, इसीलिए इन्होंने अपनी टीका का नामकरण "सारार्थ दर्शिनी" किया। यह टीका श्रीमद्भागवत के गूढ़ अर्थ को समझने के लिए बहुत उपयोगी है।

१०- हरिमक्ति रसायन-

श्रीमद्भागवत की इस टीका के रचयिता गोदावरी तटवासी काश्यप

१- दे० क्रम सन्दर्भ की पुष्पिका- श्री रूप सनातनानुशासन भारती गर्भे सप्त-
सन्दर्भात्मक श्रीभागवत सन्दर्भे प्रथम स्कन्धस्य क्रमसन्दर्भः समाप्तः ॥

२- श्रीधरस्वामिनां श्रीमत्प्रभूणां श्रीमुखाद् गुरोः ।

व्याख्यासु सारग्रहणात् इयं सारार्थ दर्शिनी ॥

श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत सारार्थदर्शिनी टीका की पुष्पिका ।

पूर्वोक्त नौ टीकाओं में से श्री सनातन गोस्वामी की वृहद् वैष्णव तोषिणी टीका के अतिरिक्त अन्य आठ टीकाएँ वृन्दावन से सं० १९६० में श्री नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी के सम्पादन में प्रकाशित श्रीमद्भागवत के संस्करण में निकल चुकी हैं।

गौत्रीय कोई श्री हरि नाम के विद्वान् भक्त थे। इस टीका की विशेषता यह है कि यह पद्यात्मक है। इसमें उनचास अध्याय हैं और विविध ललित छन्दों में लगभग पांच सहस्र श्लोकों में कृष्णलीला का गान है। वास्तव में अपने लालित्य और भक्ति भाव प्राचुर्य के कारण यह ग्रंथ एक टीका मात्र नहीं, अपितु एक स्वतंत्र मौलिक ग्रंथ है जो श्रीमद्भागवत के केवल दशम स्कन्ध पूर्वार्ध पर ही लिखा गया है। इसका रचना काल शक संवत् १७५६ है। इसका प्रकाशन काशी से हो चुका है।

इन प्रसिद्ध और प्रमुख टीकाओं के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत की "चूर्णिका", "वंशीधरी" तथा अन्वितार्थप्रकाशिका टीकाएँ भी उपलब्ध होती हैं। श्री जीवगोस्वामी ने अपने "तत्त्व सन्दर्भ" में श्रीमद्भागवत पर इन व्याख्याओं का उल्लेख किया है-

१- हनुमद् भाष्य	२- वासना भाष्य
२- सम्बन्धोक्ति	४- विद्वत्कामधेनु
५- तत्त्वदीपिका	६- परमहंसप्रिया
७- शुकहृदया	७०

 "भागवत" नाम से अभिहित अन्य ग्रंथ-

श्रीमद्भागवत के लोक व्यापी प्रभाव प्रसार एवं सर्वप्रियता के कारण अनेक मध्यकालीन लेखकों ने संस्कृत में विपुल भागवत साहित्य की रचना की। श्रीमद्भागवत के प्रमुख प्रतिस्पर्धी ग्रंथ "देवी भागवत" का उल्लेख पहले किया जा चुका है। यहां अन्य भागवत साहित्य का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाता है -

 जैमिनीय भागवत-

इस ग्रंथ को दो प्रतियाँ लन्दन की इण्डिया आफिस लाइब्रेरी में सुरक्षित हैं। एक प्रति देवनागरी अक्षरों में तथा एक उड़िया अक्षरों में

लिखी हुई है। दोनों प्रतियों खुर पर पर लिखित हैं। देवनागरी लिपि में लिखित प्रति बहुत सुन्दर और हल लिखी गई है। जैमिनीय भागवत में श्रीकृष्ण का चरित छतालीस अध्यायों में वर्णित है। इस ग्रंथ में कथित कुछ श्रीकृष्ण लीलाएँ ऐसी हैं जिनका वर्णन श्रीमद्भागवत में नहीं है। ऐसा अनुमान होता है कि वे लीलाएँ गणसंज्ञिता आदि कृष्णचरित सम्बन्धी परवर्ती ग्रंथों से ली गई हैं। जैमिनीय भागवत की वर्ण्य-विषय सूची निम्नलिखित है-

अध्याय-१-

- १-श्रीकृष्णावतार २-पुतनावध ३-तृणावर्त वध ४-यमलार्जुन वध
५-फल विक्रयण ६-गणक वाक्य ७-गौपिकास्तुति ८-वक्रासुर वध ९-
प्राज्ञा पायस भक्षण १०-घट कुटि विधाने राधा माधव संवाद ११-गौप
स्त्री दधि शीत स्नान १२-धैर्यासुर व्यासुर प्रतन्त्रासुर वध १३-वन विहार
वस्त्राहरणम् १४-ब्रह्म स्तुति १५-कालिय दमनम् १६-गौवर्धन शैलपूजने इन्द्रोत्सव
मा १७-इन्द्रेण कृष्णाभिषेकः १८-राधारति प्रली कैर्तस्वम् १९-वस्त्राहरणम्
२०-दावशीक्री नन्द जल प्रवेशः २१-कृष्णस्य मेधास्तुति गमनम् २२-गौपकन्या
भक्षणम् २३-राधा स्वस्म धारणम् २४-क्रीडा रसः २५-वसन्तदीलायात्रा
कथनम् द्विती प्रेक्षणम् २७-यह अध्याय शीर्षक रक्षित है। २८-वन मोचनम्
२९-रास क्रीडा ३०-रास क्रीडा ३१-गर्भ भक्षणम् ३२-जरिष्ठासुर
वधः ३३-राधिकापर्वणम् ३४-खुर गौहृत प्रेक्षणम् ३५-कृष्ण नारद
संवादः ३६-गौपस्त्री विलापः राम कृष्ण बहुवचनम् ३७-मधुरागमनम्

१- पैटलाग बाव दी संस्कृत स्पष्ट प्राकृत मन्थुलिप्पुस ह दी लाङ्गरी बाफ दी
इण्डिया बाफिस बालूम २ भाग २ संपादित २० बी० कीथ मिसेलिनियस
प्राकृत टेक्स्टस पृ० १०४३

३८- रामकृष्णायोरुद्धर गृहप्रवेशः ३९- धनुस्त्वगृहे धनुषीः ४०- कुसुम-वाणूर
मुष्टिक कंसवधः ४१- उग्रसेन साम्राज्य लक्ष्मीः । इस ग्रंथ की विषय सूची तथा
राधा का नामोल्लेख देखकर ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ श्रीमद्भागवत से बहुत पर-
वर्ती है।

भागवत चम्पू: -

इस ग्रंथ की तीन प्रतियाँ जण्डिया बाफिस लाहौरी में सुरक्षित हैं
जिनमें से दो तैलु लिपि में तथा एक 'ग्रंथ' लिपि में लिखी हुई है। तीनों की
प्रतियाँ ऊपर पत्र पर हैं।

भागवत चम्पू किन्हीं 'अमित्र कालिदास' नामक कवि की रचना है।
जहाँ उन्होंने श्रीमद्भागवत की कथा को है उल्लासों में सुन्दर रूप पत्र में वर्णित
किया है। ग्रंथारम्भ में 'श्रीमतेरामानुजाय नमः' का उल्लेख कवि चम्पा प्रतिलिपि
कार के रामानुज मत्तावलम्बी होने की सूचना देता है। इस ग्रंथ की 'रत्नावली'
चम्पा 'भागवत चम्पू व्याख्या' नाम से एक टीका भी प्राप्त है जिसके रचयिता
अज्ञेय हैं।

ग्रंथ भागवत-

इस ग्रंथ की एक प्रति कड़ोवा की सैण्ड्स लाहौरी में सुरक्षित है। इसके

१-पेटेलाग जाय संस्कृत सण्ड प्राकृत मन्थुस्त्रिपुल्ल, जण्डिया बाफिस लाहौरी पृ० ११६८

२- गायकवाड तौरिपुल्ल सीरीज नं० २७ पेटेलाग जाय मन्थुस्त्रिपुल्ल का दो सैण्ड्स
लाहौरी जाय कड़ोवा वालूम १

रचयिता "गोविन्द" के पुत्र "नीलकण्ठ" हैं। सम्भवतः ये महाभारत के सुप्रसिद्ध टीकाकार नीलकण्ठ ही हैं। इसका स्थितिकाल अनिर्णीत है। "मंत्र भागवत" की एक विस्तृत व्याख्या भी है जिसका नाम है "मंत्र रहस्य प्रकाशिका"। इस टीका के रचयिता मंत्र भागवतकार स्वयं नीलकण्ठ ही हैं। "मंत्ररहस्य प्रकाशिका" में ऋग्वेद संहिता के विभिन्न भागों से दो-दो पचास क्लारें संगृहीत हैं। इन क्लारों की व्याख्या इस प्रकार की गई है कि उससे श्रीमद्भागवत की कला का निर्देश होता है।

बाल भागवत-

सन् १४३० ई० में हुए बाल्मीकि मिश्री द्वातणकवि वर्णारि ने "बाल भागवत" नामक एक सुन्दर काव्य लिखा था। दुर्भाग्य से यह काव्य अब लुप्त है किन्तु कवि ने अपने एक छोटे से नाटक "नरकाशुर विजय" में "बालभागवत" का उल्लेख किया है। साहित्य रत्नाकर में श्रियापतीतृप्ता के उदाहरण में बाल भागवत का निम्नांकित श्लोक उद्धृत किया गया है-

"निविश्य नीरन्ध्र निहृजं मथ्यमा -

नमो समीरास्तहसा सत्प्रमाः ॥

न शक्तुन्तोह पुनविनिमि ।

क्तागिनातिन लात्ताधुम् ॥

निष्कर्ष

इस अध्याय में निरूपित विषय के आधार पर इस निष्कर्ष पर सरलता से पहुँचा जा सकता है कि भारतवर्ष के पुराण साहित्य में श्रीमद्भागवत मुख्य स्थान पर प्रतिष्ठित है और भारतवर्ष की वैष्णव भक्ति साधना में उसका महत्व निर्विवाद है। विभिन्न भारतीय और अन्धदेशीय भाषाओं में इस ग्रंथ के अनेक अनुवाद इसकी लोकप्रियता के प्रमाण हैं। भारत की प्रादेशिक भाषाओं में काला,

गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ अनुवाद बहुत पहले से ही हो रहे हैं। श्रीमद्भागवत के समस्त और बांशिक हिन्दी गण पञ्चात्मक अनुवादों की संख्या भी बहुत है। हमारे जालीयज्ञान में ही नहीं, उसके बाद भी भागवत के अनुवाद करते रहे। उदाहरणार्थ १७७१ ई० में किया हुआ ब्रज-वासी दास का ब्रज विलास बहुत लोकप्रिय हुआ। वही पूर्व १७५० ई० में रत्नाय ने "भागवत भाषा" नाम से समस्त भागवत का तथा खिदास ने "भागवत दशम भाषा" नाम से भागवत के दशम स्कन्ध का ब्रजभाषा पञ्चानुवाद किया। १७०४ ई० में जानन्दराम ने ब्रजभाषा गण और पद्य में इसका अनुवाद किया था। १५ वीं १६ वीं शताब्दी में हुए "रुक्मिणी माल", भागवत "रास पंचा-ध्यायी" "भागवत स्कान्धस्य भाषा", "भागवत दशम स्कन्ध", "रत्न-प्रकाश" भागवत दशम जादि जैसे अनुवादों का उल्लेख हिन्दी हस्तलिखित ग्रंथों की तीन रिपोर्टों में हुआ है। जिनमें सबसिंह लाम्हा १६४५ ई० का अनुवाद बहुत प्रसिद्ध है।

१- क- दी थर्ड द्वाइसनिज्ज रिपोर्ट जान दी सर्व बाय हिन्दी मैन्सुस्क्रिप्ट्स

सन् १६१२-१६ नागरी प्रचारिणी समा काशी ।

स- दी द्वाइस रिपोर्ट जान दी सर्व बाय हिन्दी मैन्सुस्क्रिप्ट्स १६२१-

१६२५ ई० नागरी प्रचारिणी समा काशी

द्वितीय अध्याय

श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद

(तत्त्वज्ञान एवं मन्त्र-दर्शन)

(पृ० ४८-११३)

द्वितीय अध्याय

श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य

(तत्त्वज्ञान एवं भक्ति दर्शन)

भारतीय अध्यात्म शास्त्र में ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान ही एक मात्र सत्य और प्राप्तव्य वस्तु मानी गई है। इसी ज्ञान को सबसे पवित्र वस्तु भी माना गया है। "जीवो ब्रह्म नापरः" की अनुभूति ही वह तत्त्व-ज्ञान है जिसकी उपलब्धि के साधनों और स्वरूपों के वर्णन से भारतीय अध्यात्म शास्त्र के श्रुति, स्मृति उपनिषदादि ग्रंथ भरे पड़े हैं। पुराण साहित्य में भी इसी तत्त्व ज्ञान की उपलब्धि के साधनों का निरूपण है किन्तु अधिक रोचक व्यावहारिक और सरल रूप में। हमारे विवेच्य ग्रंथ श्रीमद्भागवत में उस तत्त्व-ज्ञान को दो साधनों से उपलब्ध होना शक्य बताया गया है :- १- बुद्धि योग है

२- भक्ति योग है ।

दोनों से प्राप्तव्य वस्तु ब्रह्म ही है। अतः प्राप्तव्य वस्तु ब्रह्म के स्वरूप को श्रीमद्भागवत में जिस प्रकार निरूपित किया गया है उसे पहले समझना आवश्यक है। भागवत में ब्रह्म को "तत्त्व" कहा गया है और वस्तुतः एक ही पदार्थ को तीन विभिन्न नामों से पुकारा गया है :- १- ब्रह्म

२- परमात्मा और

३- भगवान्

वह ज्ञान स्वरूप वस्तुतः एक ही परम तत्त्व दृश्य आदि औक्त भावों से प्रकट होता है। उपनिषद् ग्रंथों में उसे "परब्रह्म" योग शास्त्र में "परमात्मा ईश्वर", सांख्य शास्त्र में "पुरुष" और भक्ति शास्त्र में उसे "भगवान्" कहा जाता है। इस तत्त्व^{को} ज्ञान और वैराग्य युक्त भक्ति से आत्मसात् किया जा सकता है।

१- नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते । (श्रीमद्भगवद्गीता ४।३८)

२- वदन्ति तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।

ब्रह्मेति परमात्मैति भगवानिति शब्धते ॥ (श्रीमद्भाग० १।२।११)

ज्ञानमात्रं परं ब्रह्म परमात्मेश्वरः पुमान् ।

दृश्यादिभिः पृथग्भावैर्भगवानेक ईयते ॥ श्रीमद्भाग० ३।३२।२६

३- तत्त्वब्रह्मध्यानमुनयो ज्ञान वैराग्य युक्तया ।

परमन्त्यात्मज्ञानं चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया ॥ श्रीमद्भाग० १।२।१२

ब्रह्मत्व की सीमांशा में श्रीमद्भागवत का वेदान्त शास्त्र से पूर्ण मेल है और उपनिषद् गीता तथा ब्रह्म-सूत्रों के मन्त्रव्य को इसमें अत्यन्त स्फीत रूप से व्यक्त किया गया है। श्रीमद्भागवत के अनुबन्ध वाक्य से ही यह स्पष्ट हो जाता है।

श्रीमद्भागवत का अनुबन्ध वाक्य-

ग्रंथारंभ में १- विषय २- प्रयोजन -३- सम्बन्ध और ४- अधिकारी- इस अनुबन्ध चतुष्टय का उल्लेख करने की प्राचीन भारतीय परिपाटी है। श्रीमद्भागवत में बड़े कौशल से प्रारंभिक दो श्लोकों में इसका निरूपण करते हुए कहा गया है कि " कार्यकारणात्मक समस्त जगत् में जो अन्वय और व्यतिरेक उभय दृष्टियों से व्याप्त है (अर्थात् जिसकी सत्ता से सब पदार्थ सत्तावान् हैं और जिसकी सत्ता के अभाव में सब पदार्थ सत्ता हीन हैं) जिससे इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार होते हैं, जो सर्वज्ञ और स्वयं प्रकाश है, जिस वेद के विषय में सूरिजन भी मोहित हो जाते हैं उसका जिसने संकल्प मात्र से ब्रह्मा के हृदय में संचार कर दिया , और जिस प्रकार तेज, जल, मृत्तिका आदि में विपर्यय हो जाता है उसी प्रकार जिस शुद्ध ब्रह्म में त्रिगुणात्मिका अस्तु सृष्टि भी सत् प्रतीत होती है, जिसके ज्ञान-स्वरूप तेज, माया कष्ट आदि का सर्वथा बाध रहता है, हम उस सत्य (ब्रह्म) का ध्यान करते हैं। " अतः " ब्रह्म " ही श्रीमद्भागवत का विषय है। श्रीमद्भागवत में निर्मत्सर पुरुषों के परम धर्म तथा ज्ञातव्य मंगल वस्तु (परब्रह्म श्रीकृष्ण) का वर्णन किया गया है इसके अवर्णन से भ्राम्यमानो पुरुष (अधिकारी) तत्त्वाण ही ईश्वर को अपने हृदय में अवरोध कर लेते हैं। यही ग्रंथ का प्रयोजन है। भगवान् और

१- जन्नाथस्य यतोऽन्वयादितरत्राचैवमिहः स्वराट् ।

तेन ब्रह्म हृदा य आदिकवयं मुख्यन्तियत्सूरयः ॥

तेजो वारि मृदां यथाविनिमयो यत्र त्रिगोऽमृजा ।

धाम्ना स्तेन सदा निरस्त कुहकं सत्यं परं धीमहि ॥

धर्मः प्रोक्तित कैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां ।

वैध वास्तवमत्र वस्तु विशद तापत्रयान्मूलम् ॥

श्रीमद्भागवते महामुनि कृते किं वा परैश्वरः ।

सुधी हृष्यरुध्यतेऽनृतिभिः सुशृणुमिस्तत्त्वाणात् ॥ श्रीमद्भागवत १।१।१, २

२- ग्रंथ का विषय और प्रयोजन श्रीमद्भागवत द्वादश स्कन्ध में भी इसी प्रकार वर्णित है- सर्व वेदान्तसार यद्ब्रह्मात्मिकत्वलक्षणम् ।

वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैक प्रयोजनम् ॥ श्रीमद्भागवत १२।१३।१२.

२५
मन्त्र का प्रतिपाद्य-प्रतिपादक-भाव सम्बन्ध है।

प्रथम श्लोक के “सत्यं परं धीमहि” अंश से ब्रह्म सूत्रों का जिज्ञासाधिकरणोक्त “अथातो ब्रह्मजिज्ञासा” वाला अर्थ तथा गायत्री का माध्य-रूपत्व अनित होता है। “सत्यं परं” शब्द से ब्रह्म का “सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म” जादि श्रुत्युक्त स्वरूप लक्षण घटित हो जाता है। “जन्माद्यस्य यतः” अंश से ब्रह्म सूत्रों के द्वितीय “जन्माद्यधिकरण स्थित” जन्माद्यस्य यतः “सूत्र के अर्थ का तथा “यती वा इमा-निभूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यं प्रयन्त्यभिसंदिशन्ति” इत्यादि श्रुत्युक्त ब्रह्म के कार्य लक्षण का बोध होता है। इसी प्रकार “अन्वयादितरतः” अंश से ब्रह्म सूत्रों के एकाधिक अधिकरणों-यथा-“समन्वयाधिकरण”, ईदात्यधिकरण, “आनन्दमयाधिकरण”, “अन्तराधिकरण”, “वाकाश्याधिकरण”, जादि का लक्ष्यार्थ व्यंजित हो जाता है। वेदान्त के समस्त कारण वाक्य ब्रह्म में समनुगत होते हैं अतः “अन्वया-दितरतः” वाक्यांश से ब्रह्म सूत्रों के द्वितीय अविरौपाध्याय का सारांश संकेतित हो जाता है। “तेन ब्रह्महृदा य आदि क्वयै” वाक्यांश से श्रुत्यर्थ का अत्यन्त स्पष्ट उल्लेख होता है। इसी से ब्रह्म सूत्रों के “संज्ञामूर्तिक्लृप्त्यधिकरण” और तद्विषयक वाक्य का चिन्तन होता है। यह अधिकरण ब्रह्म के नाम रूप और कर्तृत्व का बोधक है। समस्त वस्तु जगत् का नाम-निर्वहण वेदों में हुआ है और वेद ब्रह्म से ही प्राबुध्भूत हैं यह “यो वै वेदांश्च प्रहिणोति” इत्यादि पूर्वोक्त श्रुति से प्रमाणित है। अतः समस्त चराचर वस्तु-जगत् का नाम रूपादि संकेत कर्ता ब्रह्म ही है जोव नहीं।

“तैजोवारि मृदां यथा विनिमयः” इस अंश से “त्रिवृत्करण-श्रुति-” तासां त्रिवृतंस्त्रिवृतमैकं करवाणि” इत्यादि श्रुति का समन्वय करने का प्रयत्न हुआ है।

१- ब्रह्मसूत्र १।१।१.

२- यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै तं ह देव मात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ।

- श्वेताश्वतरोपनिषद् ६-१८

तथा- यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै विषां तस्मै गोपायति स्म कृष्णः । तं ह मात्म-बुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणं ब्रजेत् ॥

- गोपाल पूर्वतापनी उपनिषद् ६

३- संज्ञामूर्तिक्लृप्तिस्तु त्रिवृत्सुर्वत उपदेशात् -

ब्रह्मसूत्र २।४।२०

इसी अनुबन्ध-श्लोक के 'अमृणा' पद से ब्रह्म सूत्रों के 'आरम्भणाधि-
 करण' (ब्र० सू० २।१।१४) तथा प्रसिद्ध श्रुति वाक्य 'वाचारम्भणं विकारो नन्वेव
 नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्' का संकेत होता है। तात्पर्य यह है कि जगत् ब्रह्मात्मना सत्य
 है। अथवा उक्त श्लोक में 'अमृणा' पाठ न लेकर 'मृणा' पाठ ग्रहण करें तो तैजो-
 वारिमृदां यथा विनिमयोयत्र त्रिसर्गामृणा- वाक्य से ब्रह्म सूत्रों के 'उभय लिंगाधिकरण'
 (ब्र० सू० ३।२।११-२१) का सामंजस्य घटित होता है। भगवान् स्वरूप दोष विवर्जित
 है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार तैज, जल एवं पृथ्वी में अन्यावभास अर्थात् स्थल में
 जलादि भ्रम, जल-विशेष करकादि में पृथिव्यंश पाषाण शिलादि बुद्धि मिथ्या है,
 उसी प्रकार भगवत्स्वरूप ब्रह्म में मानुषत्वादि, भौतिकत्वादि, जलत् पिपासादि बुद्धि
 मिथ्या है।

अनुबन्ध श्लोक के अन्तिम वाक्य- 'याम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं
 सत्यं परं धीमहि' से ब्रह्म सूत्रों के 'उभय लिंगाधिकरण' से प्रारंभ कर 'फलाधिकरण'
 (ब्र० सू० ३।२) तक का समस्त सार संग्रह किया गया है। इस प्रकरण में ब्रह्म का प्राकृत-
 सर्व-विलक्षणत्व निरूपित है। 'स्वेन याम्ना' का तात्पर्य है - सत्य, ज्ञान एवं आनन्द
 लक्षण नैज स्वरूप महिमा से ही (जीव की भाँति उपासनादि साधनों से नहीं) जो
 सदा- 'त्रिकालावच्छेदेन' - 'निरस्तकुहक' अविद्यादि समस्त दोष रूप अन्धकार से रहित
 है, हम उस परम सत्य (ब्रह्म) का ध्यान करते हैं। इस प्रकार ब्रह्म का स्वरूप लक्षण
 भी यहाँ कथित है तथा साधन और फल का संकेत भी किया गया है। अर्थात् जो निज
 स्वरूप महिमा से ही 'कुहक' पद से वाच्य अविद्या, अस्मिता, राग द्वेषादि समस्त
 दोषों से परे है और परम सत्य है, वह निरतिशय सत्य ज्ञानानन्द स्वरूप परमात्मा
 ही 'फल' और 'विषय' है। 'धीमहि' पद से सूचित उस ब्रह्म का समाराधन ही
 'साधन' है। समस्त भागों से उपरत भगवत्स्वरूप की प्राप्ति में संलग्न मुमुक्षु ही अधि-

१- तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः । (ब्र० सू० २।१।१४)

२- न स्थानतोऽपि परस्योभय लिंगं सर्वत्र हि - (ब्र० सू० ३।२।११)

३- स वै न देवासुर मर्त्य तिर्यङ् न स्त्री न जण्ढी न पुमान् न जन्तुः ।

नायं गुणः कर्म न सन्त चासन् निषोद्यशेषो ज्यतावशेषः ॥

श्रीमद्भागवत ८।३।२४

कारी है। भगवान् और भक्त का प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव ही सम्बन्ध है। इस प्रकार ब्रह्मसूत्रों के "तृतीय" साध्याध्याय तथा चतुर्थ फलाध्याय का मन्तव्य श्रीमद्भागवत के अनुबन्ध श्लोक से पूरा हो जाता है।

इस श्लोक के "धीमहि" पद में आत्माने पद उत्तम पुरुष बहुवचन का प्रयोग भागवतकार ने विशेष अभिप्राय से किया है। तात्पर्य यह है कि भागवतकार-सदृश तत्त्वज्ञानी जो समस्त मुमुक्षु वर्ग का प्रतिनिधि है, वह भी सगुण ब्रह्म (भगवान्) का ध्यान करता है, "भगवान्" उसके भी ध्येय, ज्ञेय और प्राप्य हैं। भागवतकार ने स्वयं कहा है कि आत्माराम और अविद्यादि ग्रंथियों से मुक्त ज्ञानी जन भी भगवान् की जैतुकी भक्ति किया करते हैं क्योंकि भगवान् के गुण ही इतने आकर्षक हैं। परम-तत्त्वज्ञानी वीत राग शुकदेव मुनि भी भगवान् के अलौकिक गुणों से आकृष्ट होकर तद्गुण वर्णन प्रदान भागवत शास्त्र के अध्ययन में प्रवृत्त हुए थे। स्वयं भागवतकार कास भी जब सनातन ब्रह्मतत्त्व का विचार करके भी अकृतार्थ रहे और उनकी आत्मा असंतुष्ट रही तो उन्होंने सगुण ब्रह्म (भगवान्) के मधुर गुण और लीला-गान-प्रधान भागवत महापुराण का सर्जन किया।

आत्मा और परमात्मा का स्वरूप-

ऊपर श्रीमद्भागवत के अनुबन्ध-श्लोक के आधार पर ब्रह्म तत्त्व का निरूपण किया गया है। आत्म तत्त्व और परमात्म तत्त्व को भी श्रीमद्भागवत में उसी शब्दावली में अभिहित किया गया है जिसमें ब्रह्मतत्त्व को। आत्मा नित्य, अवि-

१- आत्मारामाश्च मुनयो निर्गन्धा अप्युरुज्ज्वलौ ।

कुर्वन्त्यैतुकीं भक्तिमित्यंभूत गुणो हरिः ।

हरीगुणादिप्लुप्तमतिर्भगवान् बादरायणिः ।

अध्यगान्यहदात्मानं नित्यं विष्णुजनप्रियः ॥ श्रीमद्भागवत १।७।१०, ११

२- जिज्ञासितमवोक्तं च यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ।

अथापि शौचस्यात्मानमकृतार्थं इव प्रभौ ॥ श्रीमद्भागवत १।५।४

अस्त्यैव नै सर्वमिदं त्वयोक्तं तथापि नात्मा परित्यज्यते नै ॥ श्रीमद्भागवत १।५।५

अनर्थापन्नं साक्षाद् भक्ति योगमधौदाजे ।

लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वत संहिताम् ॥ श्रीमद्भागवत १।७।६

नाशी, शुद्ध, एक, दौत्रज्ञ, अधिष्ठान, अविकारी, स्वयं प्रकाश, सबका कारण व्यापक, अज्ञ और अनावृत है। आत्मा के ये बारह गुण हैं। बुद्धि की तीन वृत्तियाँ— जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति को अनुभव करने वाला सर्वसाक्षी पुरुष ही परमात्मा कहलाता है। आत्मा और परमात्मा में श्रीमद्भागवत के मतानुसार अणुमात्र भी भेद नहीं है।

ईश्वर-

ब्रह्म का परमार्थिक स्वरूप चैतन्य है। जब ब्रह्म सत्त्वगुण रूपी उपाधि से अचिह्न नहीं होता तब निराकार और अव्यक्त भाव से स्थित रहता है वही 'निर्गुण ब्रह्म' के नाम से अभिहित किया जाता है। किन्तु जब ब्रह्म सत्त्वगुण रूपी उपाधि से अचिह्न होता है तब वह साकार और व्यक्त भाव से स्थित रहता है और 'सगुण ब्रह्म' कहलाता है। ब्रह्म का यही स्वरूप 'ईश्वर' अथवा 'भगवान्' है। यह ईश्वर त्रिगुणात्मिका माया का स्वामी, नित्यमुक्त और ज्ञानमय है।

जीव-

जीव ईश्वर का अंश है। जीव भी ईश्वर के समान चैतन्य स्वरूप

१- आत्मानित्योऽव्ययः शुद्ध एकः दौत्रज्ञ आश्रयः ।

अवित्रियः स्वदृग्धेतुव्यापकोऽसंख्यनावृतः ॥

एतैर्द्विषभिर्विद्वानात्मनो लक्षणं परं ।

अहं मन्यसद्भावं देहादौ मोह्यन्त्यजेत् ॥ श्रीमद् ७।७।१६, २०

२- बुद्धेर्वाक्किरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति वृत्तयः ।

ता येनैवानुमूयन्ते सोऽध्यक्षः पुरुषः परः ॥ श्रीमद् ७।७।२५

३- पुरुषोऽश्वरयोरत्र न वैलक्षण्यमण्वपि । श्रीमद् ११।२२।११

४- योऽविद्यया युक्तस्तु नित्यबद्धौ ।

विधाययौ यः स तु नित्यमुक्तः ॥ श्रीमद् ११।११।७ तथा ११।६।८

५- मूर्तेर्यदा पञ्चभिरात्म सृष्टिः पुरं विराजं विरक्ष्य तस्मिन् ।

स्वांशे विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः ॥

श्रीमद् ११।४।३

है किन्तु जीव और ईश्वर का सामर्थ्य में बड़ा अन्तर है। ईश्वर ज्ञान, ऐश्वर्य, आनन्दादि में जीव से अन्तर्गुण अधिक है। जीव नित्यबद्ध है कर्मफलों को भोगता है और अविद्या-युक्त है। जीव का पुनर्जन्म होता है। उपनिषद् के समान श्रीमद्भागवत में भी ईश्वर और जीव को दो पक्षियों का रूपक दिया गया है। ये दोनों पक्षी एक ही वृक्षा (शरीर) पर स्वेच्छा से घोंसला बनाकर रहते हैं। ये दोनों तत्त्वतः समान और एक दूसरे के सखा हैं। किन्तु इनमें से एक तो (जीव) उस वृक्षा के फलों (सुख दुःखादि) को खाता है और दूसरा (ईश्वर) निराहार (कर्म फलादि से अलग साक्षी मात्र) रहकर भी बल (ज्ञान ऐश्वर्य आनन्दादि) में पक्षी पक्षी (जीव) से अधिक है। परमपुरुष का अंशरूप पुरुष (जीव) उद्भिज्ज, लण्डव, स्वेदव और जरायुज-चार मैदों से शरीर रूपी पुर (नगर) में प्रवेश करके मयूमदिकाजी से निर्मित मयु के समान इन्द्रिय-ग्राम के द्वारा विषयों का सेवन करता है।

जगत्-

जगत् का उपादान और निमित्त-कारण ब्रह्म ही है। ब्रह्म के अतिरिक्त और किसी वस्तु की सत्ता नहीं है। विभिन्न मतां में जगत् के उपादान-कारण रूप में द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव, जीव आदि जो तत्त्व माने गए हैं वे ब्रह्म से भिन्न नहीं हैं। जब सगुण-ब्रह्म अनेक रूप होने की इच्छा करता है तो वह अपनी माया शक्ति से सत्त्व, रज और तमोगुण को क्रमशः जगत् की स्थिति, उत्पत्ति और संहार के लिए स्वीकार करता है। यह वैशिष्ट्य है कि उक्त तीनों गुण भी निर्गुण ब्रह्म के हैं।

१- सुपणावितौ सदृशौ सत्तायौ यदृच्छयैतौ कृतनीलो च वृक्षौ ।

स्कस्तयोः सादति पिप्पलान्न मन्यौ निरन्तौऽपि बलै नूयान् ।

वात्मानमन्यं च स वेद विद्वान् अपिप्पलादौ न तु पिप्पलादः ।

योऽविषया युक् स तु नित्य बद्धो । विधामयो यः सतु नित्यमुक्तः ॥ श्रीमद् ०११।११।६-७

अदृष्टाश्रुत वस्तुत्वात्स जीवो यत्पुनर्जन्मः ॥ श्रीमद् ० १।३।२२

२-सृष्टं स्वशक्त्यैदमनुप्रविष्टश्चतुर्विधं पुरमात्मांशकैः ।

अथो विदुस्तं पुरुषं सन्तमन्तमुक्ते हृणीकैर्षु सारथं यः ॥ श्रीमद् ० ४।२४।६४

३- द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ।

वासुदेवात्परो ब्रह्मन् चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः ॥ श्रीमद् ० २।५।१४

सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः ।

स्थिति सर्ग निरोधेणु गृहीता मायया विभोः ॥ श्रीमद् ० २।५।१८

वास्तव में श्रीमद्भागवत ब्रह्म के अतिरिक्त ^{अ-21} अन्य किसी तत्त्व की पारमार्थिक सत्ता को स्वीकार नहीं करता। सब कुछ व ब्रह्म ही है, जीव भी, जगत् भी। जब ब्रह्म सब सत्य है तो यह सब भी सत्य है। चतुःशतीकी-भागवत में इसका सारांश इस प्रकार दिया गया है:- "सृष्टि से पूर्व केवल ब्रह्म था। सत्, अस्त, प्रकृति आदि कुछ भी नहीं था। सृष्टि के अनन्तर भी ब्रह्म ही था, जगत् रूप में भी ब्रह्म ही है और इसका अन्त होने पर भी केवल ब्रह्म ही अवशिष्ट रहता है। वेद में ब्रह्म की इस स्थिति को "नास्तदासीन्नो सदासीत्तदानीम्" इत्यादि कृत्वा से निरूपित किया गया है। विद्वानों ने सूक्ष्म विश्लेषण से यही अभिमत स्थिर किया है कि ब्रह्म स्वरूपतः "निर्गुण", माया के संयोग से "सगुण", अविद्या के कारण प्रतिबिम्ब रूप में आजाने के कारण जीव तथा विवर्त रूप में आने से जगत्- इस प्रकार चार प्रकार का है। आचार्य वामन ने अपने ग्रंथ "श्रुति कल्पलता" के उपोद्घात में स्पष्ट लिखा है-

निर्गुणं सगुणं जीव संज्ञितं जादात्मकम् ।

एतच्चतुर्विधं ब्रह्म श्रीमद्भागवतै स्फुटम् ॥ ३

अर्थात् "श्रीमद्भागवत में निर्गुण, सगुण, जीव और जगत् संज्ञा से चार प्रकार के ब्रह्म का स्पष्ट उल्लेख है। "श्रीमद्भागवत में ब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर, पुरुष, भगवान् आदि शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं क्योंकि भागवत-कार के मत में तत्त्वतः वह एक ही वस्तु है। श्रीमद्भागवत में भगवान् का वर्णन निर्विशेष, सविशेष, निराकार, साकार, विविध रूपों में हुआ है। अधिकारी भेद से साक्ष्य उनको अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार ग्रहण करता है।

श्रीमद्भागवत के दश लक्षण और प्रतिपाद्य आश्रय तत्त्व -

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य ब्रह्म

१- अहमेवास्यैवाग्रे नान्यथत्तदसत्परम् । परवादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ।

श्रीमद् २।६।३२

२- ऋग्वेद संहिता ८।७।१७

३- देखिए- महामहोपाध्याय श्री पं० गोपीनाथ जी कविराज का लेख "भागवत में ईश्वर और जीव तत्त्व" - कल्याण जंक ४ वर्ष १६

अथवा भगवान् है। ग्रंथ में इस प्रतिपाद्य-तत्त्व को शास्त्रीय भाषा में "आश्रय" कहा गया है। आश्रय का साधारण वाच्यार्थ "शरण स्थान" है। ब्रह्म या भगवान् ही समस्त चराचर जगत् का एक मात्र शरण्य है। ब्रह्म ही आभास और निरोध का अधिष्ठान, निरपेक्षा और निर्लिप्त साक्षी है। श्रीमद्भागवत में इस आश्रयतत्त्व ब्रह्म के सम्पूर्ण ज्ञान और उपलब्धि के लिए नौ विषयों का विवेचन हुआ है। वे हैं- १- सर्ग २- विसर्ग ३- स्थान ४- पीनण ५- ऊर्ति ६- मन्वन्तर ७- ईशानुकथा ८- निरोध और ९- मुक्ति । वसवो तत्त्वं स्वयं आश्रयतत्त्व है। सर्ग विसर्गादि के सविस्तर निरूपण द्वारा ब्रह्म के साक्षात्त्व और भगवान् की अनन्त विभूति-शक्ति का ज्ञान कराया गया है। यों तो श्रीमद्भागवत के बारह स्कन्धों में से प्रत्येक में आश्रयतत्त्व ब्रह्म का निरूपण किया गया है पर विशेषतया उसके सगुण और साकार रूप का वर्णन दशम स्कन्ध में तथा निर्गुण और निराकार रूप का वर्णन द्वादश स्कन्ध में प्राप्त होता है। दशम स्कन्ध में श्रीकृष्ण के स्वरूप का वर्णन होता-गान है। श्रीकृष्ण ही श्रीमद्भागवत के अनुसार सगुण ब्रह्म है। वही "आश्रय" है।

श्रीमद्भागवत में ब्रह्म (आश्रय) का स्वरूप समझने से पूर्व हमें प्रसुत भारतीय दार्शनिक आचार्यों के मत में ब्रह्म तत्त्व की विवेचना समझ लेना आवश्यक है, क्योंकि इनमें से प्रायः सभी ने श्रीमद्भागवत की परम प्रमाण माना है। अतः यहाँ हम संक्षेप में तत्त्व आचार्यों के मत का उल्लेख करते हैं :-

श्री शंकराचार्य के मत सम्प्रदाय में ब्रह्म का स्वरूप-

ब्रह्म चिन्मात्र, एक रस, अण्ड और अद्वितीय है। वह निर्विशेष है। केवल ब्रह्म ही सत्य है, उसके अतिरिक्त समस्त दृश्य जगत् मिथ्या है, माया का प्रपञ्च है। दृश्य का निर्बोध हो जाने पर निर्बोध की सीमा में जो अचिष्ट, अवशिष्ट तत्त्व रह जाता है वही ब्रह्म है। ब्रह्म का निरूपण वर्णनात्मक विधानात्मक पदावली से सम्भव नहीं है- अपितु उसका कुछ संकेत "वह स्थूल नहीं है, " अणु नहीं है", दीर्घ नहीं है, " अचिन्त्य है, " अज्ञात है " अग्राह्य है " आदि निर्बोधात्मक पदावली से हो सकता है।

१- अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पीनणमूर्तिः ।

मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥

दशमस्य विभुद्वयं नवानामिह तत्त्वान् ।

वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतार्थेन वाञ्छसा ॥ श्रीमद् ११.१०।१,२

परमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म सगुण नहीं निर्गुण ही है। श्रुतियों में जहाँ सगुण ब्रह्म का निरूपण है, वहाँ केवल व्यावहारिक दृष्टि से उपासना की सिद्धि के लिए है। शंकर ने अपने शारीरिक भाष्य में कहा है कि ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार के वर्णन प्राप्त होने पर भी समस्त विशेषण रहित तथा विकल्प रहित ब्रह्म के निर्गुण रूप को ही मानना चाहिए। इसके विपरीत अर्थात् सगुण रूप को नहीं। क्योंकि श्रुतियों में ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन करने वाले वाक्यों में सर्वत्र उसका उल्लेख "शब्द" अस्पर्श, अरूप, अव्यय आदि विविध निर्विशेष रूप में ही हुआ है।

श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय में ब्रह्म का स्वरूप-

रामानुज के अनुसार ब्रह्म सगुण ही है। इस प्रकार रामानुज का पक्ष मत शंकर मत से विपरीत ही होगया। रामानुज ने ब्रह्म को "क्षण कल्याणगुण-गणाकर" और "निखिल ऐश्व प्रत्यनीक" कहा है। ब्रह्म सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर, सर्वाधार, निमित्तकारणकारण, चिद्चिद्विशिष्ट, अन्त्यामीविभव-व्यूह आदि रूप में अवतार लेने वाला है। ब्रह्म को श्रुतियों में जहाँ निर्गुण कहा गया है वहाँ तात्पर्य यह है कि ब्रह्म प्राकृत गुणों से रहित है और जहाँ उसे सगुण कहा गया है वहाँ तात्पर्य यह है कि वह दिव्य-अप्राकृत गुणों से युक्त है। जीव और जगत् उसके देह हैं और वह उन दोनों से नित्य युक्त है। श्री रामानुज ने अपने श्रीभाष्य में कहा है कि- "इस विषय (ब्रह्म जिज्ञासा) में तत्त्व यह है कि चित्-अचित् वस्तु शरीर से ब्रह्म ही सर्वदा "सर्व" शब्द का अभिधेय है। चित् अचित् उसके प्रकारान्तर मात्र हैं। ब्रह्म कभी कारणावस्था में होता है, कभी कार्यावस्था में। कारणावस्था में वह सूक्ष्म-दशापन्न और कार्यावस्था में स्थूलदशापन्न होता है। क्रमशः नाम रूप रहित जीव-जड़ तथा नाम रूप भेद सहित जीव और जड़ उसके शरीर होते हैं। परब्रह्म से उसका कार्यरूप जगत् भिन्न नहीं है।

१- "अतश्चान्यतरलिङ्गपरिग्रहेऽपि समस्त विशेषरहितं निर्विकल्पकमेव ब्रह्म प्रतिपत्तव्यं न तद्विपरीतम्। सर्वत्र हि ब्रह्मस्वरूप प्रतिपादनपरेण वाक्येण "शब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्। इत्येवमादिषु अपास्त समस्त विशेषमेव ब्रह्म उपदिश्यते।" शारीरिक भाष्य ३।२।११

२- "अत्रैवं तत्त्वम्। चिदचिद् वस्तुशरीरं तथा तत्प्रकारं ब्रह्मैव सर्वदा सर्वशब्दाभिधेयम्। तत् कदाचित् स्वस्मात् शरीरतयापि पृथक् व्यपदेशानस्तूक्ष्मदशापन्नचिदचिद्वस्तु शरीरं तत्कारणावस्थं ब्रह्म। कदाचित् विभक्तनामरूपव्यवहारं स्थूलदशापन्नं चिदचिद् वस्तु शरीरं तच्च कार्यावस्थं मिति कारणात् परस्मात् ब्रह्मणः कार्यरूपं जादन्यत्।"

श्री निम्बार्काचार्य के द्वैताद्वैत मत में ब्रह्म का स्वरूप-

ब्रह्म सगुण-निर्गुण दोनों है। सगुण निर्गुण का भेद या विरोध केवल आब्धिक है वास्तविक नहीं है। ब्रह्म का स्वरूप अचिन्त्य है। वह अन्तः, आदि, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, निरक्तिय, वाक्य और सर्वेश्वर है। श्रीकृष्ण का नामान्तर ही ब्रह्म है। ब्रह्म और जीव (अर्थात् चैतन) तथा जड़ (अचेतन) एक दूसरे अत्यन्त भिन्न तथा अत्यन्त अभिन्न हैं। जीव और जगत् दोनों ही ब्रह्म के परिणाम हैं। ब्रह्म ही जगत् का उपादान और निमित्त कारण है। जगत् ब्रह्म में ही प्रतिष्ठित है, ब्रह्म से भिन्न जगत् कोई वस्तु नहीं है। दोनों एक हैं। जगत् गुण है और गुण ब्रह्म गुणी। गुणी और गुण में कोई भेद नहीं होता। गुणी गुण से परे होता है इसलिये दोनों भिन्न भी हैं।

श्री मध्वाचार्य के द्वैत सम्प्रदाय में ब्रह्म का स्वरूप-

मध्वाचार्य दो प्रकार के तत्त्व मानते हैं :- १- स्वतन्त्र २- अस्वतन्त्र
अज्ञेय गुण सम्पन्न विष्णु स्वतन्त्र है तत्त्व ही ब्रह्म है। यह स्वतन्त्र तत्त्व भाव और आव
दोनों से विलक्षण है। जीव और जगत् ब्रह्म के अधीन हैं। ब्रह्म तथा जीव सर्वथा पृथक् हैं। इ
इसी प्रकार ब्रह्म तथा जगत् भी नित्य पृथक् हैं। किन्तु रामानुज के मत में ब्रह्म ही जगत् के
रूप में परिणत होता है। मध्वाचार्य ब्रह्म और जीव को नित्य भिन्नता मानते हुए दोनों
में सैव्य-सैवक सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

श्री वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय में ब्रह्म का स्वरूप-

ब्रह्म शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप है। वह समस्त विरुद्ध धर्मों का वाक्य
है। वह निर्गुण होने पर भी सगुण, निराकार होने पर भी साकार, ज्ञान्य होने पर भी
सुख, आत्माराम होने पर भी रमण, निर्धर्मिक होने पर भी सधर्मिक है। ब्रह्म में परिणाम
नहीं होता और होता भी है। वह अविकृत है और उसका परिणाम भी अविकृत है। श्री
कृष्ण ही पर ब्रह्म हैं।

ब्रह्म के स्वरूप-विवेचन में उपर्युक्त सम्प्रदायाचार्यों के भिन्न भिन्न
मतों के अतिरिक्त भारतीय दर्शनों में भी वाक्य तत्त्व (ब्रह्म) के भिन्न भिन्न स्वरूप

स्थापित किए गए हैं। गौतम के न्याय-दर्शन तथा कणाद के वैशेषिक-दर्शन में जगत् के कर्ता के रूप में ईश्वर को स्वीकार किया गया है। पतंजलि के योग दर्शन (अथवा ईश्वर सांख्य) में ब्रह्म (ईश्वर) को "पुरुषविशेष" कहा गया है। व्यास के वेदान्त-दर्शन में ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन पूर्वोक्त पाँच आचार्यों के मत के सारांश रूप में दे हो दिया गया है।

श्रीमद्भागवत में ब्रह्म का स्वरूप-

जैसा कि पहले कहा जा चुका है वेदान्त दर्शन के आधारभूत ब्रह्म सूत्रों के रचयिता तथा श्रीमद्भागवतकार वेद व्यास ^{एक} ही व्यक्ति हैं अतः स्पष्ट है कि ब्रह्म सूत्रों में वाक्यतत्त्व (ब्रह्म) का जो स्वरूप गृहीत हुआ है श्रीमद्भागवत में भी वही स्वरूप मान्य है। श्रीमद्भागवत में यों तो सभी स्कन्धों के वर्ण्य विषयों का उद्देश्य वाक्यतत्त्व (ब्रह्म) का निरूपण करना है किन्तु दो स्थलों पर उसका साक्षात् उद्घाटन कहा गया है। वे [॥] स्थल हैं- द्वितीय स्कन्ध का दसवां अध्याय तथा द्वादश स्कन्ध का सातवां अध्याय, जहाँ कहा गया है कि "सृष्टि और लय अथवा प्रतीति और अप्रतीति का अभाव दोनों ही जिसके द्वारा प्रकाशित होते हैं, वह परब्रह्म ही वाक्य अर्थात् अधिष्ठान है उसी को परमात्मा नाम से पुकारा जाता है। जो वाक्यात्मिक पुरुष (जीव) है वही वाक्यैविक (नैनादि इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता) है, जो उन दोनों को पृथक् करने वाला है, वह वाक्यैविक पुरुष (स्थूल शरीर) है। एक के अभाव में दूसरे की उपलब्धि नहीं हो सकती। परमात्मा, वाक्यैविक पुरुष तथा वाक्यैविक पुरुष ये तीनों सापेक्ष हैं। इन तीनों के भाव और अभाव को जो जानने वाला है, वह निरपेक्ष साक्षात् [॥] वाक्य है। जीव को तीन अवस्थाओं- जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति के अधिष्ठानी विश्व, तैजस और प्राज्ञ के मायामय रूपों में जिसका व्यतिरेक और वन्ध्य होता है वह जगत् की प्रतीति और वाक्य का अधिष्ठान ब्रह्म ही [॥] वाक्य है। श्रीमद्भागवत

१- कौशलकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः । पातंजल योगसूत्र १।२४

२- आभासश्च निरोधश्च यत्तच्चाध्यवसीयते । स वाक्यः परं ब्रह्म परमात्मैति शब्दते ।

यो ध्यात्मीको यं पुरुषः सो सावैवाधिदैविकः । यस्तन्नाम्य विच्छेदः पुरुषो व्याधि-
मात्तिकः ॥

० यस्तन्नाम्य विच्छेदः ० पुरुषो व्याधि-

स्मैकतराभावे यदा नैपलभामहे । त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाक्याक्यः ॥

श्रीमद्भाग ० २।१०-७-६

व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।

मायामयेषु तद्ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाक्यः ॥ श्रीमद्भाग ० १२।७।१६

की चतुःश्लोकी में इसी आश्रयतत्त्व ब्रह्म का निरूपण किया गया है जिसका सारांश यह है कि - "सृष्टि के पूर्व केवल ब्रह्म ही ब्रह्म था। ब्रह्म के अतिरिक्त न भाव था न अभाव और न दोनों का कारण अज्ञान ही था। उस समय न स्थूल जगत् था न सूक्ष्म जगत् और न दोनों का कारण प्रकृति ही थी। जहां यह सृष्टि नहीं है वहां भी केवल ब्रह्म है और इस प्रपञ्च के रूप में जो कुछ प्रतीत हो रहा है वह भी ब्रह्म है। इस प्रपञ्च के न रहने पर जो कुछ अवशिष्ट रहेगा वह भी ब्रह्म ही होगा। वस्तुतः न होने पर भी जो कुछ अनिवार्य वस्तु ब्रह्म के अतिरिक्त दो चन्द्रमाओं की भांति मिथ्या प्रतीत हो रही है वध्मा विद्यमान होने पर भी आकाश के नक्षत्रों में राहु की भांति ब्रह्म की प्रतीति नहीं होती, यह उस ब्रह्म के परमात्मरूप की माया शक्ति है। जैसे प्राणियों के पांच भौतिक लघु बृहत्कायों में वियदादि पंच महाभूत उन शरीरों के कार्य रूप से निर्मित होने के कारण प्रवेश करते भी हैं और पहले से ही तत्तत्स्थान रूपों में कारण रूपेण विद्यमान रहने के कारण प्रवेश नहीं भी करते ॥ उसी प्रकार उन भूत प्राणियों के शरीर में भी दृष्टि से ब्रह्म उनमें आत्मरूप से प्रविष्ट भी है और आत्म-दृष्टि से ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई वस्तु न होने के कारण उनमें प्रविष्ट नहीं भी है। अन्वय (यह ब्रह्म है) और व्यतिरेक (यह ब्रह्म नहीं है) की अभिज्ञान-पद्धति से यही सिद्ध होता है कि सर्वातीत और सर्वरूप ब्रह्म ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित है। वही वस्तुतः तत्त्व-पदार्थ है। आत्म-परमात्म के ज्ञासु के लिए इतना ही जानना अतुल्य है। "

इस सारांश से स्पष्ट होता है कि श्रीमद्भागवत "एक भैवाद्वितीयं ब्रह्म" वाद का प्रतिष्ठापक है और इसी अद्वैत ब्रह्मादक का युक्ति युक्त एवं धृढयुगल प्रतिपादन करने के लिए उसने अपने "चतुःश्लोकी" रूप सूक्ष्म क्लेश को विस्तृत कर वर्तमान बृहत्काय धारण किया है। गीता में इस आश्रय तत्त्व की "पुरुषोत्तम" कहा गया है और इसे परा-अपरा प्रकृति, जोत्र-जोत्रज्ञ, जार-जदार तथा प्रकृति पुरुष से परे माना गया

१- ब्रह्मैवात्मैवाग्रे नान्यद् यत् सत्सत्परम् ।

परचादहं यदेतन्न जीवैशिष्येत तौ स्म्यहम् ॥

कृतैर्यं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।

तद्विधादात्मनो मायां यथा भासो यथात्मः ।

यथा महान्ति भूतानि भूतेषु च्चावेष्वनु ।

प्रविष्टान्य प्रविष्टानि तथा तैषु न तैष्वहम् ॥

एतावदेव ज्ञास्यं तत्त्व ज्ञासुनात्मनः ॥

अन्वय व्यतिरेकान्या यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥ श्रीमद्भाग० २।६।३२-३५

१। श्रीमद्भागवत में इसे "ब्रह्म" परमात्मा और भगवान् तीनों ही नामों से सम्बोधित किया गया है और श्रीकृष्ण को इनसे अभिन्न माना गया है। श्रीमद्भागवत में जैक स्थानों पर इसका उल्लेख है।

इस प्रकार इस दसम तत्त्व आश्रय (ब्रह्म- श्रीकृष्ण) की यथार्थोपलब्धि के लिए श्रीमद्भागवत में सर्ग वितर्गादि अन्य नौ तत्त्वों का वर्णन किया गया है। अतः इन तत्त्वों का स्वरूप भी संक्षेप में यहां व्यक्त किया जाता है।

सर्ग-

"सर्ग" का अर्थ है सृष्टि। सृष्टि के प्रारम्भ और उद्भव के विषय में विश्व के विभिन्न धर्मदर्शनों में जैक मत हैं। भारतीय वाङ्मय-वेद, उपनिषद्, दर्शन पुराणादि में ही विभिन्न मत मिलते हैं। स्वयं श्रीमद्भागवत में ही जैक प्रकार से सृष्टि के उद्भव और विकास का वर्णन हुआ है। भारतवर्ष के आस्तिक दर्शनों में ब्रह्म को सृष्टि के आधार रूप में सभी ने स्वीकार किया है किन्तु सृष्टि-क्रम में मतभेद पाया जाता है।

भारतीय दर्शन में सृष्टि-क्रम के सम्बन्ध में तीन मतवाद प्रमुख हैं-

१- आरम्भवाद , २- परिणामवाद और ३- विवर्तवाद। न्याय और वैशेषिक दर्शनों में परमाणु रूप आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन को नित्य-द्रव्य तथा गुण कर्म, सामान्य , विशेष आदि को "पदार्थ" माना गया है। परमात्मा जैक जीवात्माओं से सर्वथा विलक्षण तत्त्व है। सृष्टि के आरंभ में वह निमित्त रूप से, विकीर्ण परमाणुओं को संयुक्त करता है, फलतः नाना प्रकार की सृष्टि होती है। परमाणुओं का संयोग होना ही सृष्टि का आरम्भ है। इसी से इस मत को "आरम्भ-वाद" कहा जाता है। जो दर्शन परमाणुओं के संयोग में ईश्वर को निमित्त कारण मानते हैं वे "ईश्वर" हैं और जो नहीं मानते वे "निराश्वर" ।

१- युस्मात्कारमतीतो ह्यङ्गारादपि चोत्तमः ।

अतो स्मितीके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः । श्रीमद् ११/२१/१५, १८

२- वदन्तितत्त्वविदः तत्त्वं यज्ज्ञान मध्यम्। ब्रह्मेति परमात्मैति भगवानिति शब्दयै।

श्रीमद् १/२/११

कृष्णमेवमवैहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।

जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहोवामातिमायया ॥ श्रीमद् १०/१४/१५

कृष्णकृष्णमहामाग भक्तानामभयकर।

त्वमायः पुरुषः साक्षादोश्वरः प्रकृतः परः ॥ श्रीमद् २/३, ७/३/१२

३- कृष्ण कृष्णमहायोगिस्त्वमायः पुरुषः परः । व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं च ब्राह्मणा-
विदः ॥ श्रीमद् १०/१०/२६

योगदर्शन ज्येष्ठ सैश्वर सांख्य में त्रिगुणात्मिका प्रकृति को सृष्टि का कारण माना गया है, परमाणुओं को नहीं। त्रिगुण के परिणाम से ही सृष्टि होती है। इसी से यह मत "परिणाम-वाद" कहलाता है। कतिपय दार्शनिक आचार्य इस परिणाम में ईश्वर को निमित्त मानते हैं और कतिपय आचार्य परिणाम को प्रकृति का सहज भाव ही मानते हैं। कतिपय आचार्य ब्रह्म में परिणाम मानते हुए भी ब्रह्म को अविकृत मानते हैं, यही ब्रह्म का "विरुद्ध कर्मव्यत्व" है।

इस प्रकार परिणामवाद के तीन भेद हो जाते हैं- १- ब्रह्म-परिणाम वाद " जिसके समर्थक श्री रामानुजाचार्य हैं -२- गुण परिणाम वाद " जिसके समर्थक श्री मध्वा-चार्य हैं -३- " अविकृत-परिणाम वाद " जिसके समर्थक श्रीवत्समाचार्य हैं।

अब तीसरे सिद्धान्त विवर्तवाद को लीजिए। इसके प्रमुख समर्थक श्री शंकराचार्य हैं। शंकर ब्रह्म से पृथक् परमाणु, प्रकृति और उसके परिणाम वादि किसी वस्तु को सत्ता स्वीकार नहीं करते। यद्यपि "परिणाम" और "विवर्त" शब्द एकार्थक से लगते हैं किन्तु वास्तव में इनमें बड़ा भेद है। "परिणाम" सत्य वस्तु में होने वाले वास्तविक परिवर्तन को कहते हैं और "विवर्त" अवास्तविक होने पर भी भ्रमवश दिखाई पड़ने वाले परिवर्तन को कहते हैं। यह सृष्टि "विवर्त" के कारण दीख पड़ती है। यह "विवर्त" ही माया है जो कुछ नहीं है, भ्रम है। एक अद्वितीय सच्चिद् वस्तु को ही प्रतिष्ठा विवर्तवाद का लक्ष्य है। सृष्टि आदि का वर्णन इसका लक्ष्य नहीं है। जहाँ सृष्टि आदि का वर्णन है वह अव्यारोप दृष्टि से अपवाद के द्वारा उसी अद्वितीय परम तत्त्व का ज्ञान कराने के उद्देश्य से है। कैसे भी हो, सबका अपवाद होकर स्वरूपोपलब्धि होनी चाहिये।

श्री निम्बाकाचार्य का मत है कि दृष्टि भेद से सभी सिद्धान्त सम्भव हो सकते हैं। पूर्व मीमांसा को मानकर चलने वाले आचार्य जीवों के अदृष्ट को ही सृष्टि का कारण मानते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से उत्तर मीमांसक (वेदान्ती) भी यही स्वीकार करते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ लोगों ने ईश्वर के रमण , देव की इच्छा तथा काल की छीड़ा को सृष्टि का हेतु कहा है, पश्चिम के दर्शन में सृष्टि और अतीन्द्रिय जगत् के सम्बन्ध में कोई सुस्थिर सिद्धान्त नहीं है। पश्चात्त्य दार्शनिक भी पहले जैक पदार्थों के संयोग से सृष्टि का आरम्भ मानते हैं किन्तु बाद में उन्होंने विकासवाद को

स्वीकार किया। अभी पार्श्वार्थ^{दर्शन} इस नियम पर नहीं पहुँच सका कि सृष्टि का मूल तत्त्व जड़ है या चैतन। भारतीय दर्शन सृष्टि के मूल में निर्विकल्प रूप से चित्तत्त्व को स्वीकार करता है।

श्रीमद्भागवत में सृष्टि (सर्ग) तत्त्व का निरूपण जैसा प्रकार से किया गया है। उपर्युक्त सभी दार्शनिक अपने मत की सृष्टि के लिए उसे प्रमाण रूप में ग्रहण कर सकते हैं। श्रीमद्भागवत में सर्ग का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

भूतमात्रेन्द्रियाणां जन्म सर्ग उदाहृतः ।

ब्रह्मणी गुणवैश्याद् -----॥

व्याकृतगुणज्ञोमान्वहतस्त्रिवृत्तौ ह्यः ।

भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते ॥ २

अर्थात् “ ईश्वर की प्रेरणा से गुणों में जाँम होता है, वे रूपावन्तरित होते हैं और तब जी वाकाशादि पंच भूत, शब्दादि तन्मात्राएं, इन्द्रियाँ, जहंकार और महत्त्व की उत्पत्ति होती है उसे “ सर्ग ” कहते हैं। जब मूल प्रकृति में तीन गुण दृग्गुण होते हैं, तब महत्त्व की उत्पत्ति होती है, महत्त्व से राक्षस, तामस और वैकारिक (सात्विक) तीन प्रकार के जहंकार बनते हैं। त्रिविध जहंकार से पंचतन्मात्राएं (शब्द स्पर्शादि) इन्द्रिय और विषयों की उत्पत्ति होती है। इसी उत्पत्ति-क्रम का नाम सर्ग है। “ जब प्रश्न यह है कि श्रीमद्भागवत में इतने भिन्न भिन्न सिद्धान्तों के अनुसार सर्ग (अर्थात् सृष्टि) का वर्णन क्यों है ? क्या सृष्टि वर्णन ही उसका लक्ष्य है ? नहीं ! वास्तव में बात यह है कि श्रीमद्भागवत जो कि एक समन्वयात्मक महान् दार्शनिक ग्रंथ है, बुद्धि के समस्त सम्भव पहलुओं से सृष्टि के उद्भव के सम्बन्ध में विचार करके अन्त में ब्रह्म को ही उसके मूल में प्रतिष्ठित करता है। उसके सर्ग (सृष्टि) वर्णन का लक्ष्य यही है।

श्रीमद्भागवत में एक दूसरी दृष्टि से भी सर्ग वर्णन किया गया है वह है भक्त की दृष्टि । भगवान् भक्त को आनन्दित करने के लिए खीड़ा करने के लिए,

३- श्रीमद् ष २।१०। ३ तथा १२।७।११

९- यथा श्रीमद्भक्त ३।११ में परमाणु के संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है।

रमण करके भक्त कौब अपनी लीला का वास्वादन कराने के लिए सृष्टि करते हैं।
 श्रुतियों में आया है "वह रमण करना चाहता था" (सरन्तु मैन्कत्) उसे जैसे
 रमना जन्हा न लगा इसलिये उसने दूसरे को रचा (सब एकाकीनारमत । ततो
 द्वितीयमसृजत) भगवान् जगत् को निर्माण कर भक्तों के साथ रमण करते हैं।
 चराचर जगत् भगवान् की "लीला" है। यह "लीला" भक्त के लिए अत्यन्त महत्व-
 पूर्ण वस्तु है। भगवल्लीला का दर्शन और गान भक्त का "चरम लक्ष्य" है। इसीलिये
 तो भक्त भगवान् के समान ही जगत् को, जो भगवान् की लीला है, नित्य मानता है।

२- विसर्ग-

विसर्ग का अर्थ है विशिष्ट सर्ग- विशिष्ट सृष्टि । यह विशिष्ट सृष्टि
 ब्रह्मा की वासनाविशिष्ट सृष्टि है। विराट् के अण्ड (ब्रह्माण्ड) में ब्रह्मा द्वारा
 जो विविध सृष्टि होती है उसे विसर्ग कहते हैं। ब्रह्मा की सृष्टि मानसी सृष्टि है।
 बेजी नहीं। जीवों की वासना के अनुसार एक बीज से दूसरे बीज के होने - चराचर
 सृष्टि की उत्पत्ति को "विसर्ग" कहते हैं। यह विसर्ग भगवान् की अनन्त लीला शक्ति
 और ज्ञान का ज्ञापक है। सृष्टि की प्रत्येक विविधता और विविधता भगवान् के अनन्त
 सौंदर्य और कौशल का मान कराती है। भक्त भगवान् की अचिन्त्य लीलाओं को देखकर
 मुग्ध होता रहता है कतः स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत में विसर्ग-वर्णन का उद्देश्य भी
 वाश्रयभूत ब्रह्म (भगवान्) की अनुभूति और उपलब्धि ही है।

३- स्थान-

श्रीमद्भागवत में इसे "स्थिति" भी कहा गया है। सृष्टि और विशिष्ट
 सृष्टि के वर्णन के पश्चात् यह स्वाभाविक है कि उसकी वास्तविक स्थिति बताई
 जाय। किन विशेष मयादाओं के पालन से सृष्टि स्थित है। लोकों की संख्या और
 विस्तार कितना है। उनका धारक और नियामक कौन है, इत्यादि प्रश्नों पर विचार
 करने से भी सर्व-लोक-नियन्ता भगवान् की ही सर्वश्रेष्ठता का अनुभव होता है। भगवान्

१- स्थितिवैकुण्ठविजयः " श्रीमद् ० २।१०।४

ही समस्त चराचर का वितरण करके उनके सब वंश वाग निकल ही जाते हैं तत्पश्चाच्छुद्धात्मानः । वहीं सबसे विजयी होते हैं । इसी से श्रीमद्भागवत में कहा गया है - स्थितिवैकुण्ठ विजयः क्वात् भगवान् की सर्वातिशायिनी विजय ही स्थिति या स्थान है । स्थिति से भगवान् की बहुभुत बाधार शक्ति और धारण शक्ति का किञ्चित् अनुमान होता है । प्रत्येक देश काल के कर्त्तव्याकर्त्तव्य सुख दुःखमादि के नियन्ता और न्याय दण्डादि के धारक भगवान् की अनन्त महिमा के स्थापन के उद्देश्य से स्थान का वर्णन श्रीमद्भागवत में किया गया है ।

: ४ : पाण्डव - सृष्टि नियामक और न्यायायिक होने के साथ ही भगवान् वैकुण्ठ की कृपा का वागाहू हैं । इसी से श्रीमद्भागवत में भगवान् के वैकुण्ठ की पाण्डव कहा गया है ।^१ वाच स्कन्ध में पाण्डव का वर्णन है । हमें देव दानव और मनुष्य सभी पर भगवान् के वैकुण्ठ वैकुण्ठ, कारण कृपा का दिग्दर्शन होता है । देवताओं में इन्द्र/ शिव के द्वारा कृपा वरदान और विश्वरूप नामक ब्राह्मण का वर हुवा था, भगवान् के वैकुण्ठ का पात्र हुवा । देवों में वृत्रासुर और मनुष्यों में जन्मिल भगवान् की सहज कृपा के कारण मुक्त हो गए । श्रीमद्भागवत में इन तथा अन्य लोक वात्स्यानाका उद्देश्य भगवान् की अनन्त वैकुण्ठ की कृपा का ज्ञानकराना ही है ।

: ५ : ऊति - ऊति का अर्थ है कर्म - वासना ।^२ अपनी कर्म वासना के कारण ही जीववन्धन में बंधा हुआ है । कर्म वन्धन के कारण ब्रह्ममात्मात्त्व को विस्मृत किए हुए है । वास्तव में कर्म की गति है भी बड़ी गहन गहना कर्मणोगतिः ।^३ जब तक कर्म - वासनाओं का स्वल्प स्पष्ट होकर उनकी दुष्ट-रूपता का अनुभव जीव को नहीं होता तब तक वह वासना से रहित नहीं होगा और तब तक आनन्द के अधिष्ठान परमात्मा की उपलब्धि भी उसे नहीं होगी ।

१. पाण्डव तदनुग्रहः श्रीमद्भाग. २. १०. ४.

२. ऊतयः कर्मवासना । श्रीमद्भाग. २. १०. ४.

३. श्रीमद्भगवद्गीता ४. १०.

शुभ और अशुभ भेद से वासना दो प्रकार की होती है। महापुरुषों के प्रति प्रेम होने के फल स्वरूप उनके अंगुष्ठ से शुभ-वासना तथा उनसे द्वेष करने से अशुभवासना होती है। विष्णुपार्श्वी जय विजय का सनकादि के द्वेष के कारण अशुभवासना प्राप्त करना और गर्मस्थ प्रह्लाद का नारद के अंगुष्ठ से शुभवासना प्राप्त करना स्पष्ट है। सदाचार और सद्गुणों से जीवन का निर्माण कर भववद्गुह का अनुभव करने से कर्म वासनाओं का ज्ञातन हो जाता है। श्रीमद्भागवत के सप्तमस्कन्ध में 'ऊति' का वर्णन है।

:६: मन्वन्तर - काल गणना में भारत वर्ष के कृष्णि मुनियों ने वाश्चर्म जनक योग दृष्टि का उपयोग किया है। काल का परिमाण उन्होंने, ब्रह्म के भी लघुतम भाग से लेकर 'कल्प' जैसे विशाल काल खण्ड तक लाया है क्योंकि काल तो ज्ञादि और अनन्त है और ब्रह्म की स्थिति भी ऐसी ही है। अतः ब्रह्म के विकलातात्मवच्छिन्नत्व को सिद्ध करने के लिए काल-गणना अनिवार्य है। श्रीमद्भागवत में इसी उद्देश्य से 'मन्वन्तर' का वर्णन किया गया है। काल के कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये चार वर्षदायक लघु खण्ड हैं। यह एक चतुर्युगी है जिसका परिमाण ४३२०००० मनुष्य वर्ष है। इस प्रकार की ७१ चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर होता है। एक मन्वन्तर में एक 'मनु' मनुष्यों से सद्धर्म का पालन कराते है। उसके बाद दूसरे मनु आते हैं। एक मनु से दूसरे मनु के जागमन का समयान्तर 'मन्वन्तर' कहलाता है। इस प्रकार जब १४ मन्वन्तर हो जाते है तब एक 'कल्प' होता है जो ब्रह्माका एक दिन है। ब्रह्मा की रात्रि भी इतनी ही बड़ी होती है।^१ इस हिसाब से ब्रह्मा सौ वर्ष जीवित रहते है। ब्रह्मा की पूरीबाहु जिसे 'द्विपरार्ध' कहतेहै, भगवान् के एक निमेष के समान है।^२ भारतीय मनीषियों ने ब्रह्म के ज्ञातनत्व का कुछ बामास कराने के लिए ही इतनी विशाल काल गणना की है।

श्रीमद्भागवत में मन्वन्तर की 'सद्धर्म' कहा गया है।^३ प्रत्येक मन्वन्तर में मनु के रूप में सद्धर्म का विस्तार होता है। मनु १४ है :-

१. सहस्र युग पर्यन्तमर्ष्यं ब्रह्मणो विदुः ।

रात्रिं युग सहस्रान्तां तं होरात्रं विदो ज्ञाः । श्रीमद्भगवद् गीता ८.१७

२. कालोऽयं द्विपरार्धात्सो निमेष उपचक्षते ।

अव्याकृतं स्यान्मन्तस्य ज्ञादेर्जगदात्मनः॥ श्रीमद्भाग. ३.११.३७.

३. मन्वन्तराणि सद्धर्मः :- श्रीमद्भाग. २. १०.४

१. स्वायम्भुव, २. स्वरोपिण, ३. उज्ज, ४. तामस, ५. रैवत, ६. चातुष्ण,
७. वैवस्वत, ८. सावर्णि, ९. क्लृप्ता सावर्णि, १०. व्रत सावर्णि, ११. धर्म -
सावर्णि, १२. रुद्र सावर्णि, १३. देवसावर्णि, और १४. इन्द्र सावर्णि ।
इन में से वर्तमान शैलवाराह कल्प के प्रथम ६ मनु अतीत हो चुके हैं । साक्षी
वैवस्वतमनु वर्तमान हैं ।

:७: ईशानुकथा - श्रीमद्भागवत में निर्गुण ब्रह्मों तत्त्वतः स्वीकार करते हुए व्यवहार
में सगुण ब्रह्मों की स्थापना का उपदेश दिया गया है । सगुण ब्रह्म
अवतार धारण करता है । समस्त हिन्दू धर्म ग्रंथ अवतार वाद का समर्थन करते
हैं । १ ऋग्वेद में विष्णु के वामनावतार का उल्लेख " एवंविष्णुर्विक्रमेनैवा निदधे-
पदम् " इत्यादि श्रुतियों से किया गया है । अतः स्पष्ट है कि भगवदवतारों
और भगवल्लीलाओं का गान भगवत्स्वरूपोपलब्धि के लिए आवश्यक है । भगवच्चरित्र
के समान ही भगवद्भक्तों के चरित्र और वाख्यान भी उतनेही महत्व पूर्ण हैं ।
क्योंकि भगवान् और भक्त में भेद नहीं रह जाता । २ इसलिए श्रीमद्भागवत में
विविध भगवदवतारों, चरित्रों तथा भगवद्भक्तों की गाथाएँ "ईशानुकथा" के नाम से
साथ ही वर्णित हैं जो नाना वाख्यानों से और भी विस्तृत हो गई हैं । ३
मध्यकालीन हिन्दी मठों साहित्य में भगवदवतारों, भगवल्लीलाओं और भगवद्भक्तों
के पुण्य चरित्रों का गान एक प्रसृत कथ्य - विषय रहा है । भक्तों का बृद्ध विश्वास
है कि भगवन्नाम और भगवच्चरित्र के गान से अवश्य ही भगवत्प्राप्ति होती है और
यहीं तक नहीं भगवान् से भी जुलूस उनकी मठों प्राप्त होती है । श्रीमद्भागवत में
स्थान स्थान पर भगवदवतारों का वर्णन और उनकी सूचियाँ दी हैं । वाचस्पति ने
अवतारों के चौक भेद किए हैं यथापूणावतार, अंशवतार, गुणावतार, व्यूहावतार,
वर्णावतार, वाक्शावतार, स्फूर्ति अवतार इत्यादि । श्रीकृष्ण स्वयं भगवान्— अवता-
रों पुरुष हैं । ४ श्रीकृष्ण की अनिर्वचनीय महिमा श्रीमद्भागवत के प्रत्येक स्कन्ध
में ही वर्णित है ।

१. गीता ४ - अथ श्रीमद्भागवत २.७.

२. तस्मिंस्तज्जले भेषामावात् - नारद मठि सूत्र - सूत्र संख्या ४१.

३. अवतारानुचरितं हरश्चास्यानुवर्तिनाम् ।

सताभीक्ष्ण्यः प्रोक्ता नानाख्यानीष वृष्टिताः । श्रीमद्भाग. २.१०.५.

४. एतैर्वांशकताः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् ॥ श्रीमद्भाग. १.३.२८

:८: निरोध - समस्त जड़, केलात्मक प्रपंच जब अपनी उपाधियों के साथ ब्रह्म में लय हो जाता है तब वह स्थिति "निरोध" कहलाती है। यही प्रलय है। उस समय भगवान् अपनी शक्तियों सहित योग निद्रा स्वीकार करके शयन करते हैं।^१ कृतारावस्थामें भगवान् सृष्टि की विपरीत गति का निरोध करते हैं। सत् का प्रकीर्ण और अज्ञान का उन्मूलन करते हैं। अज्ञान के प्रतीक शिरण्याज रावण कंसादि का वध करते हैं।^२ यह भी "निरोध" ही है।

श्रीमद्भागवत में प्रलय का विस्तृत वर्णन है।^३ प्रलय चार प्रकार के होते हैं :- १. नित्य, २. नैमित्तिक, ३. प्राकृत और ४. वात्स्यन्तिक। जल का निरन्तर क्षय और नित्य प्रति निद्रा के समय सृष्टि का विलीन हो जाना "नित्य प्रलय" है। नैमित्तिक प्रलय दो प्रकार का होता है :- १. वार्षिक प्रलय, २. पूर्ण नैमित्तिक प्रलय। मन्वन्तर के बाद वार्षिक प्रलय तथा कल्मान्त में पूर्ण नैमित्तिक प्रलय होता है। व्रता की वायु पूरी होने पर प्राकृत प्रलय होता है और व्रताण्ड प्रकृति में सर्वथा विलीन हो जाता है। वात्स्यन्तिक प्रलय जीवका साक्षात्पुष्टय द्वारा स्वल्प में स्थित होना है। उस समय उसके लिए संसार का वात्स्यन्तिक प्रलय हो जाता है। इस का समय निश्चित नहीं। जीव पर जब भी भगवदनुग्रह हो जाय तभी संसार का वात्स्यन्तिक प्रलय होता है। यही जीव की मुक्ति है। श्रीमद्भागवत में निरोध-(प्रलय)का वर्णन इस उद्देश्य से है कि विविध प्रलयों के चिन्तन एवं ज्ञान से सृष्टि के नाना नाम रूपों के आवका ज्ञान हो जाता है और तब भाव एवं आव दोनों के ही अधिष्ठान ब्रह्म की उपलब्धि होती है।

:९: मुक्ति - मुक्ति या मोक्ष जीव का चरम फलार्थ है। भगवत्प्राप्ति ही मुक्ति है। यह भगवत्प्राप्ति दो प्रकार से हो सकती है :- १. ब्रह्म तत्त्वज्ञान से २. भगवत्प्रेम से। प्रकृति में प्रलय, महाप्रलय आदि होते हैं किन्तु वात्स्यन्तिक प्रलय नहीं होता। किन्तु जब जीव पर भगवदनुग्रह होता है और वह भगवत् स्वल्प

१. निरोधी ऽ स्यानुशक्तमात्मनः सहस्रकिमिः । श्रीमद्भागवत, २.१०.६

२. परिघ्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

यसं संस्थापनाधीनं संवामि युगे युगे ॥ श्री. गीता ४.८.

३. श्रीमद्भागवत - द्वादशस्कन्ध ।

का साक्षात्कार कर लेता है तब उसके लिए सृष्टि का वात्स्यनिक प्रत्यक्ष हो जाता है। यह वात्स्यनिक प्रत्यक्ष ही मुक्ति है। जीवको यन्मुक्ति कभी भी प्राप्त हो सकती है। पैर, काल, रूप, लिंगादिभेद इस में कोई व्यवधान नहीं डाल सकते। उस सत्यजीव के जन्म मरण का कृत्तृ छूट जाता है। वेदान्त दर्शन में इसे "कैवल्य मुक्ति" कहा गया है। कैवल्य मुक्ति का उपाय है नाना नाम रमों को उत्पन्न करके कामना से जीव को भृगु तृष्णा में डालने वाली अविद्या का नाश। पराविद्या जैसा परमज्ञान से इस अविद्याका नाश होता है। तब दृष्टा अपने स्वरूप में अवस्थित होता है। श्रीमद्भागवत में मुक्ति का जो लक्षण लिखा है वह वेदान्त - दर्शन - सम्मत कैवल्य - मुक्ति में पूर्णतया घटित हो जाता है। श्रीमद्भागवत में मुक्ति का लक्षण यह बताया गया है कि ज्ञान कल्पित ब्रह्मत्व, मोक्षत्व आदि कात्मभाव का परित्याग करके अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो जाना अर्थात् परमात्म तत्त्व का साक्षात्कार कर लेना ही मुक्ति है।^१ जब तक जीव "इदं पदवाच्यं वन्द्या रूप — विपर्यय -" को नहीं छोड़ देता तब तक उसे "सोऽहम्" पद वाच्य सहज स्वरूप वात्मा की अनुभूति नहीं होती।

श्रीमद्भागवत में इस मुक्ति का वर्णन वेदों के सिद्धान्त के अनुसार "सोऽमुक्ति" और "ब्रह्ममुक्ति" के नाम से हुआ है।^२ श्रीमद्भागवत में कैवल्य = मुक्ति का वर्णन तो है ही इसके अतिरिक्त पांच प्रकार की मुक्तियों का वर्णन भी है। वे हैं :- १. सांलोक्य-मुक्ति, २. साष्टि-मुक्ति, ३. सामीप्य-मुक्ति, ४. सारूप्य-मुक्ति और ५. सायुज्य-मुक्ति।^४ भगवान् के नित्य चिन्मय धाम में निवास करना सांलोक्य मुक्ति है। भगवान् के समान ऐश्वर्य प्राप्त कर लेना -

१. मुक्तिर्हित्वात्म्या रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः। श्रीमद्भागवत २. १०. ६.

२. विपर्ययोऽभिप्रायज्ञानतद्गुणप्रतिष्ठम् - योग सूत्र १. ८

३. श्रीमद् भागवत. २. २

४. श्रीमद्भागवत. ३. २६. १३.

साष्टि मुक्ति है। भगवान् का सत्ता सामीप्य प्राप्त कर लेता सामीप्य मुक्ति है। भगवान् के समान रूप प्राप्त कर लेता सारूप्यमुक्ति है। भगवान् में तीन हो जाना, कुछ हो जाना साधुज्य मुक्ति है। इन पांचों प्रकार की मुक्तियों केवल उदाहरण श्रीमद्भागवत में प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ शिशुपात की कृष्ण से निरन्तर वरमाव के कारण ध्याकारता हो गई थी। कतः मरणोपरान्त उसकी वात्मज्योति वासुदेव श्रीकृष्ण में समाविष्ट हो गई। जिससे उस साधुज्य मुक्ति प्राप्त हुई।^१ गीसामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में जटायु की सारूप्य मुक्ति का उल्लेख किया है। भेदवि दर्शन का मत है कि भगवत्कृपा ही मुक्ति का कारण होती है। किन्तु भगवान् का सच्चा भक्त उक्त पांचों प्रकार की मुक्तियों में से कोई भी नहीं चाहता। वह चाहता है भगवान् के प्रति अनन्य कुराडि और तत्त्वन्त उनकी चरण सेवा।^२ कतः मुक्ति से भी श्रेष्ठ और स्पृष्टणीय है भगवद्-भक्ति। यह बात श्रीमद्भागवत में स्फाफि स्थलों पर कही गयी है। श्रीमद्भागवत में मुक्ति-विषयक उन समस्त सिद्धान्तों का समावेश और सामंजस्य विद्यमान है जो वेदान्त, न्याय, वैशेषिक, योग आदि दर्शनों में प्रतिपादित है। हां, कवश्य ही श्रीमद्भागवत, पूर्व में मांसा में व्याख्यात सिद्धान्तों का समर्थन नहीं है जो स्वर्ग के वतिरिक्त किसी प्रकार की मुक्ति स्वीकार नहीं करता।

श्रीमद्भागवत का प्रतिपादित वास्तव्य है जिसका सविस्तर विवेचन पहले किया जा चुका है। श्रीमद्भागवत के इस वास्तव्य तत्त्व की उपलब्धि भी भक्ति भक्ति के रास मार्ग पर कत कर हो सकती है कतः जब हम श्रीमद्भागवत की भक्ति के स्वरूप का विवेक करेंगे।

१. वैष दैहीर्यतांज्वा तिवसुदेवमुपाकित् ।

पश्यतां सर्वभूतानामुत्तमं भुवि रवाञ्जुता ॥ श्रीमद्भाग. १०. ७४. ४५

सारूप्य मुक्ति के लिए द्रष्टव्य - श्रीमद्भाग. ११. ३०. ३.

२. नीय देह तजि धरि हरि रूप ।

भूषण बहु पट पीत जूपा ॥ रामचरितमानस, वरण्यकाण्ड पृ. ४००

३. न कयं सखि साम्राज्यं स्वाराज्यं मौज्यमभ्युत
वराज्यं पारमहंस्यं वानन्त्य वा हरिः पदम् ॥

कामयामह स्तस्य श्रीमत्पादराजः श्रियः ।

कुल कुल गन्धाद्वय मूर्च्छा बौद्ध गदाभूतः ॥ श्रीमद्भाग. १०. ८३. ४३. ४२

भक्त-प्रवर नरही भक्तताका एक गुजरती पत्नी। इसी वाशय का है जिसकी एक पंक्ति हरि ना जा तो मुक्ति न माने, कम कम अवतार है।

नितोवा नितदर्शन उच्चैः सुमितुं नन्द कुमार २ ॥

श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य मर्चि - सिद्धान्त.

श्रीमद्भागवत का व्यावहारिक दर्शन - मर्चि सिद्धान्त है। क्योंकि जिस ब्रह्मत्व का दार्शनिक निरूपण श्रीमद्भागवत में किया गया है उसकी उपलब्धि का सर्व सुलभ राजमार्ग वहाँ मर्चि की ही बताया गया है। विद्वानों ने तो भागवत की रचना का उद्देश्य ही मर्चि सिद्धान्त का प्रतिपादन धोखाते किया है।^१ शुष्क दार्शनिक ज्ञान की तो भागवत ने बड़े स्थानों पर निन्दा की गई है।^२ श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध अध्याय ४, ५ में व्यास की उद्दिष्टता और कर्त्तृत्व का जो चित्रण हुआ है उससे इस पुराण की रचना के उद्देश्य पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है। महामास्त की रचना के व्यास से वेदों का उपलक्षण और निष्कण्ठ भाव से उद्धर्ष का आवरण करने पर भी जब व्यास की वन्तरात्मा को निर्वृति नहीं मिली तब उन्होंने अनुमान किया कि सम्भवतः यह वशान्ति भागवत श्रवणों का निरूपण न करने के कारण ही है। ये भागवत की तो परमेश्वरों और स्वयं परमात्मा को भी प्रिय है।^३ व्यास ने जब नारद से अपनी उस कमी की बात कही तो नारद ने भी उनसे यही कहा कि जिस प्रकार तुमने धर्म की बात का पूर्ण निरूपण किया उस प्रकार निर्मल भगवत्पुरुषों नहीं नाया। इसी कारण तुम उद्दिष्ट और कर्त्तान्त हो।

१. गीता रहस्य : लो० बालगोपल तिलक : पृ. ५४५ : (भागवतार्कशाब्दय और गीता)

२. भक्तानुदित प्रायं यतो भगवतोऽनन्तम् ।

केवायो न बुद्धस्त मन्थे तदर्शनं तिलक ॥ श्रीमद्भाग. १.५. ८

३. धृतैरेतैः हि मया हन्दांसि गुरवोऽन्यः ।

मानिता निर्व्यतीकैः गृहीतं चानुशासनम् ॥

मास्त व्यपदेशेन साप्तायाधेश्वर वरितः ॥

तथापि कत मे वेदो सात्मा स्वात्मना विमुः ।

वत्सपन्न एवा भाति ब्रह्मवर्षस्य तप्तः ॥

किं वा भागवतो धर्मो न प्रायेण निरुपिष्टः ।

प्रियाः परमेश्वरानां त एव ह्युक्त प्रियाः ॥ श्रीमद् भागवत. १.४. २८-३१.

जित ज्ञान से भगवान् ही तुष्ट नहीं वह ज्ञान तो मोघ ही है । १ तब व्यास ने इस भावचरित बहुत मंगलमय भागवत पुराण की रक्षा की और अपने ज्ञानशाली पुत्र सुमन्त्र को पढ़ाया । २ इस प्रकार श्रीमद्भागवत का व्यावहारिक उद्देश्य भागवद् भक्ति का प्रकाशन है । इस पुराण में भक्ति का स्वत्व मुक्ति से भी अधिक स्पष्टणीय बताया गया है और धोखे की गं है कि स्कान्त भागवत तो अपुनर्भव रूप कैवल्य की भी कामना नहीं करते । ३

श्रीमद्भागवत में निरूपित भक्ति सिद्धान्त का दिग्दर्शन कराने से पूर्व हम संक्षेप में मानव हृदय में भक्ति भावना की सहजता पर विचार कर लेना उचित समझते हैं ।

भक्ति एक सहज भाव -

विकास क्रम की दृष्टि से मनुष्य में रागात्मक भावभावों का उदय बौद्धिक वर्क शक्ति से पहले ही होता है । अतः रागात्मक भाव(भक्ति) का जन्म निश्चय ही ज्ञान से पूर्व हुआ होगा, यह सहज अनुभव है । इस प्रकार भक्ति का उद्भव हम मनुष्य के उद्भव के साथ ही माने तो अशुभ न होगा । विश्व के महान् से महान् बुद्धिशाली तत्त्व चिन्तकों ने परमतत्त्व के अविकृत निरूपण में अपनी बौद्धिक शक्ति

१. भक्तानुदित प्रायं यदा भगवतो मत्सु ।

अपारसौ न तुभ्ये ते मन्ये तद्वर्ति सितम् । ।

यदा फादयस्वार्था मुनिवर्गो मुकी तिताः ।

न तथा वासुदेवस्य मष्टिा स्तु वर्णितः ।। श्रीमद्भागवत, १.५.८, ९.

२. इदं भागवतं नाम पुराणं प्रत चम्पितम् ।

उत्तम श्लोक चरितं प्रकार भगवानुणिः ।।

निःकृताय लोकस्य धनं स्वस्त्यकां मष्टु ।

तदिदं ग्राह्यामास सुत्मात्मकतांवरम् ।। श्रीमद्भाग १.३.४०, ४१

इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतो दितम् ।

संशोष्यं विभूतीनां त्वमेतद् विभुतीं हुरु । श्रीमद् भाग २.७.५९

३. न किञ्चित् साधकां धीरा भजता स्कान्तिनां मर्म ।

वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं क्वत्स्मपुनर्भवम् ।। श्रीमद् भागवत, ११.२०.३४.

की उत्तमर्था को "नेतिनेति" कहकर स्वीकार किया है। तत्त्वज्ञानियों ने ब्रह्मात्मशास्त्र में जैन स्थलों पर बुद्धि और तर्कवाद का निराकरण "नायमात्मा प्रवर्जित इत्यर्थः" "नेनातर्क्य मतिरापनीया" आदि सिद्धान्त वाक्यों द्वारा किया है। तब इस गहन और दुर्लभ परमात्म-तत्त्व को प्राप्त करने का ज्योतिष साधन क्या है ? वह साधन है भक्ति । यही भक्ति मनुष्य में प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, विश्वास, श्रद्धा आदि जैन भावों में व्यक्त होती है। श्रद्धा तो मनुष्य की मूल प्रवृत्ति ही है और जो जैसी श्रद्धावाला है, वास्तव में उसका स्वरूप भी वही है।^१ श्रद्धावान् को ही तत्त्व ज्ञान में प्राप्त होता है।^२ श्रद्धालु के लिए वह अलभ्य है। श्रद्धा-तत्त्व का प्रतिपादन करने वाली एक सुन्दर आख्यायिका हान्दोग्योपनिषद् में वर्णित है। एक बार श्वेत-केतु के पिता अपने पुत्र को यह उपदेश करना चाहते थे कि अच्छे और बुरे पर ब्रह्म ही समस्त चराचर दृश्य जगत् का मूल कारण है। उन्होंने श्वेत-केतु से एक बट कृता का फल लाकर उसे तोड़ने के लिए कहा। पिता ने पुत्र से पूछा, "इस फल के भीतर क्या है ?" श्वेतकेतु ने कहा, "इस में छोटे छोटे बज्र से बीज है।" पिता ने उसे फिर आज्ञा दी कि इनमें से एक बीज को तोड़कर देखी और बताओ कि उसमें क्या है ? श्वेतकेतु ने एक बीज को तोड़ा और देखकर बोला - "इसमें कुछ नहीं है।" इस पर पिता ने कहा, "वही, जिस तुम कुछ नहीं कह रहे हो, उसी से यह महान् बट कृता उत्पन्न हुआ है।" तब पिता ने उसे उपदेश दिया "श्रद्धा" -- "विश्वास करो" और इस कल्पना को केवल बुद्धि में ही स्थान मत दो अपितु हृदय में भी करो और वाचरण में भी प्रतिबिम्बित होने दो।" उस छोटी सी उपनिषात्कथा से यही अभिप्रेत है कि निश्चयात्मक ज्ञान होने के लिए भी श्रद्धा एक अनिवार्य तत्त्व है।

१. सत्त्वानुरूपं सर्वस्य श्रद्धा भवति मारुत ।

श्रद्धामयी यं पुरुषा यो यच्छ्रद्धः स स्व सः ॥ गीता १७.३

२. श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानम् । गीता ४. ३६.

बुद्धि का अतिशय आश्रय ग्रहण करने वाले नैयायिकों को भी अनुमानादि प्रमाणों का अवलम्बन करना ही पड़ता है जो अज्ञा-विश्वास के ही रूपान्तर हैं ।

“ तौल-जीवन के सर्वसाधारण व्यापार भी अज्ञा, विश्वास, प्रेम आदि सहज मानवीय वृत्तियों के व्यापार पर ही चली हैं । ” बुद्धि के द्वारा किसी बात के बोधित्व जथा बोधित्व का निर्णय हो जाने पर हमारे अज्ञा और विश्वास ही उसे कार्य रूप में परिणत करते हैं । बुद्धिमय ज्ञान को कार्य रूप में परिणत होने के लिए अज्ञा और विश्वास की अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है । बुद्धिमान् और जड़ दोनों के ही लिए अज्ञा-विश्वास समान रूप से अवलम्बनीय साधन हैं । क्योंकि कुछ बातें ऐसी हैं जिनका समाधान तर्क से ही ही नहीं सकता । १ अध्यात्म-मार्ग में तो अज्ञा-विश्वास के संवल के बिना एक पग भी चला जासकता है। इस संवल के अभाव में तो सिद्ध लोग भी अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते । २ तौलमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अपने “ गीता रहस्य ” में कहा है --- मोक्षार्थ का इतिहास पढ़ने से मालूम होगा कि जब ज्ञाता पुरुषों ने इस स्वरूप की पीनांसा कर उसे निर्गुण बताया, उसके पहले ही मनुष्य ने केवल अपनी अज्ञा से यह जान लिया था कि सृष्टि की जड़ में सृष्टि के नाशवान् और अनित्य पदार्थों से भिन्न या विलक्षण कोई एक तत्त्व है, जो अनात्मन्, अमृत, स्वतन्त्र, सर्व शक्ति-मान् और सर्वव्यापी है, और मनुष्य उसी समय से उस तत्त्व की उपासना किसी न किसी रूप में करता चला आ रहा है । ३ इस मत से स्पष्ट होता है कि अज्ञा और भक्ति मनुष्य की एक

१. अतर्क्यास्तु ये भावा न तांस्तर्क्य भावयन्त । महामास्त - मीमांसा, अ. २. १. १०५

२. भवानी स्तेरा वन्दे अज्ञाविश्वासरूपिणी ।
विनिमोषपर्व, पृ. ४२
(गीता प्रेस).

याम्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थीश्वरम् ॥ रामचरितमानस

वाल्मीकि, श्लोक २

३. गीता रहस्य --- बालगंगाधर तिलक --- पृ. ४२८.

सहज मनो भावना है और वादिस युग के मानव ने उसे ईश्वर की उपासना का माध्यम बनाया था। यद्यपि विश्व के प्राचीन साहित्य वेद में समुचित को एक पृथक् दर्शन के रूप में वर्णित नहीं पाते तथापि उसके बीज ऐसे वैदिक ऋचाओं में अवश्य प्राप्त होते हैं।

मछि का विकास - एक सहज सामान्य रागात्मक भाव कौन युगों में होते हुए मध्य काल में किस प्रकार एक पृथक् मछि - दर्शन के रूप में परिणत हो गया इस विषय पर कौन विद्वानों ने बहुत विस्तार से विचार किया है अतः हम मछि के विकास विषय पर आवश्यक पिट्ट-पेण्डणन करके संक्षेप में केवल इतना कहना पर्याप्त समझते हैं कि भारत वर्ष में मछि का उद्भव एक सहज स्वाभाविक घटना है। इस के उद्भव का कारण नहीं इस्लाम का व्यापार है और न ईसाईयत का प्रभाव।^१ भारतीय मछि के बीज वैदिक ऋचाओं में विद्यमान हैं। ये ऋचाएँ ऋचा और मछि की उत्कट भावनाओं से पूर्ण हैं। इन्द्र, वरुण, अग्नि, मित्र, सावित्री, उषा आदि के प्रति उद्गीत कृचाओं में हृदय को द्रवित कर देने की शक्ति है।^२ कौन कह सकता है कि ये कृचाएँ मछि-परक नहीं हैं।^३ उपनिषदों में हम और भी स्पष्ट रूप में मछि सिद्धान्त का दर्शन करते हैं। ईश्वर के प्रति अव्यभिचारित प्रेम और प्रपत्ति का संकेत उपनिषदों में कौन स्थान पर हुआ है।^३ यह वात्मा केवल उसी की

१. हिन्दी साहित्य: आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : पृष्ठ ८८

२. त्वं हिः पिता कसौ त्वं माता शतश्रोतुः कृविध

जपाते सुन्मीमहे । कृन्द ८। ६८ ॥ ११९.

३. वात्मवेदं सर्वमिति स वा स्य स्वं पश्चन्नेवं मन्वान स्वं

विजानन्नात्परति रात्मक्रीड वात्मभिधुन वात्मानन्दः स स्वराट् भवति ।

इन्द्रो ग्योपनिषद् - ७, २५, २.

ज्याति, यह सब कुछ परमात्मा ही है, जो ऐसा देखा, मानता और समझता है वह परमात्मा में परमकुराग, क्रीडा, उसके संयोग का सुख तथा उसी में आनन्द का अनुभव करता हुआ स्वराट् --- परमात्मस्वरूप --- हो जाता है। उपनिषद् के इस वाक्य में दर्शन, मनन ज्ञान आदि साधन आत्मरति रूपा मछि के अंग हैं, यह स्पष्ट ही है।

वास्तविकता का ज्ञान करता है । जिस पर यह कृपा करता है, जिसे वह
 चुन लेता है ।^१ इसी कृपा या कुण्ड-वादी भक्ति सिद्धान्त का
 स्थापन होता है । स्वतन्त्र तर्क पणिण्ड -- (६, २३) --- में कुण्ड
 और प्रपत्ति --- (पूर्ण शरणानति) --- पर जोर दिया गया है । तृतीय
 उपनिषद् -- (२, ७) --- तथा बृहदारण्यक उपनिषद् -- (४, ३, ३२) ---
 में ब्रह्म को परमानन्द के रूप में वर्णित किया गया है जो भक्ति सिद्धान्त
 का पोषक है । महामारुत का नारायणीय अंश^२ भक्ति सिद्धान्त की
 स्पष्ट घोषणा करता है । गीता में तो अनेक स्थलों पर भक्ति का समर्थन
 कई ही प्रसंगों में किया गया है और भगवत्प्राप्ति का सर्वोच्च साधन
 भक्ति को ही बताया गया है ।^३ भक्ति के द्वारा साकल्य भगवान् को जान
 लेता है कि भगवान् क्या है और उसका विस्तार कितना है। उसके अनन्तर
 वह भगवान् में प्रविष्ट भी हो जाता है। वेदाध्ययन, तपश्चर्या, दान, यज्ञ
 आदि किसी साधन से भगवान् के दर्शन सम्भव नहीं । किन्तु केवल भक्ति से
 भगवान् का ज्ञान, दर्शन और प्रपत्ति भी सुलभ हो जाता है। भक्ति मार्ग की
 श्रेष्ठता की घोषणा गीता में इस प्रकार बहुत पहले ही कर दी गई है ।
 पुराणसाहित्य के उदय के साथ भक्ति सिद्धान्त की प्रतिष्ठा बार भी हुई
 ही गई । विष्णुपुराण में भक्ति का बड़ा विशद और स्पष्ट वर्णन है ।

१. कौवण वृणुते तेन लभ्यः । कठोपनिषद् १/२/२३ मु० सं० ५. ३/२/३.

२. महामारुत भीष्मपर्व अध्याय ६६६, ६७ (गीता प्रेस).

३. भक्त्या नाम भिजानाति भावान्मृश्यास्मि तत्त्वतः ।

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा किं तदनन्तरम् ॥ गीता १८, ५५.

तथा --

नाहं वैदग्ध्यं तस्मात् न दानेन न क्षयया ।

सर्वं त्वं विप्रो ब्रह्मं ब्रह्मवानति मां यथा ॥

भक्त्या त्वनन्यया सर्वं ब्रह्मवैविध्यं ॥

ज्ञातुं ब्रह्मं च तत्त्वं प्रवेष्टुं च परन्तप ॥ गीता ११ -- ५३, ५४.

विष्णु की परम-देवता के रूप में स्थापित करके उनकी अनन्य भक्ति का उपदेश इस पुराण में किया गया है।

भक्ति का दार्शनिक विवेचन चौक सूत्र ग्रंथों में हुआ। इन सूत्र ग्रंथों में "शाण्डिल्य-भक्ति सूत्र" और "नारद भक्ति सूत्र" प्रमुख हैं। इन सूत्रग्रंथों का निर्माण काल अज्ञात है किन्तु अनुमानतः इन की रचना महाभारत के बाद पौराणिक भक्ति की उदय के साथ हुई जान पड़ती है।^१ शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में ईश्वर के प्रति परम अनुराग की भक्ति की संज्ञा दी गयी और नारद भक्ति सूत्र में भी भक्ति की ईश्वर के प्रति परम प्रेम कहा गया है।^२ शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में भक्ति सिद्धान्त का सार यह है कि भक्ति के द्वारा मनुष्य को ब्रह्मत्व प्राप्त होता है। भक्ति द्वेष-विरोधि तथा इस शब्द से प्रतिपादित होने के कारण राग-स्वभावा है। भक्ति का फल ब्रह्म है। भक्ति मुख्य है, क्योंकि ज्ञान योगादि इतर साधन उसकी अपेक्षा रहते हैं। अन्य साधन जो हैं और भक्ति की है।^३ नारद भक्ति सूत्र में प्रतिपादित भक्ति सिद्धान्त का सार यह है कि भक्ति ब्रह्म स्वभावा है। भक्ति को प्राप्त कर पुरुष सिद्ध बन, और तृप्त हो जाता है फिर वह कुछ नहीं चाहता। भक्ति का मन्त्र कुछ नहीं है क्योंकि वह निरोध स्वभावा है। शौकिक और वैदिक समस्त कर्मों के त्याग को निरोध कहते हैं। पाराशर्य व्यास के मतानुसार भगवान् की पूजा आदि में अनुराग होना भक्ति है। गंगाचार्य के मत से भगवत्कथा में अनुराग होना भक्ति है।

१. गीतारहस्य : -- लोकमान्य तिलक -- भागवत की उदय वार गीता:पृ ५४५

२. वा परानुरक्तिरीश्वर । शाण्डिल्यभक्ति सूत्र, प्रवचन, प्रवचनिक सूत्र २
सात्वत्सिन् परम प्रेमभा । नारदभक्ति सूत्र, २.

३. शाण्डिल्यभक्ति सूत्र, १.१, २.



शाण्डिल्य के मत में आत्मरति के अविरोधी विषय में क्रुराग होना भक्ति है और नारद के मत में सब कर्मोंको भगवदपेक्षा कर भगवान् के विस्मरण में परम व्याकुल होना ही भक्ति है ।^१ यह भक्ति स्वयं फल रूपा है ।^२ जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह भक्ति प्रेम रूपा है । इस प्रेम का स्वरूप भूक पुरुष के आस्वादन के समान अनिर्वचनीय है ।^३ किन्तु इस प्रेम का किञ्चित् आभास देने के लिए नारद ने उसका लक्षण बताया है कि यह प्रेम गुण रहित, कामना रहित, प्रतिष्ठाण वर्धमान, अविच्छिन्न और सूक्ष्म है सूक्ष्मतर-अनुभव रूप है ।^४ इस प्रकार इन सूत्र ग्रंथोंमें भक्ति का सूक्ष्म दार्शनिक विवेक एवं सर्वोच्च महत्त्व प्रतिपादित है । किन्तु वैष्णवभक्ति का जो विशाल रूप पुराणों में प्रकट हुआ वह भक्ति के चरम विकास का द्योतक है । पुराणों में भी वैष्णवभक्ति को चरम-वस्थातक पहुँचाने का श्रेय श्रीमद्भागवत महापुराण को है । यह विविवाद और निर्विकल्परूप से कहा जा सकता है कि भक्ति का प्रतिपादक श्रीमद्भागवत से अधिक सबल और आप्तप्रमाण-भूत अन्य कोई ग्रंथ भारतीय वाङ्मय में विद्यमान नहीं है । इसीको आधार मानकर मध्यकाल में अनेक वैष्णव आचार्यों ने भक्ति शास्त्र पर अनेक लक्षण ग्रंथ लिखे जिनकी चर्चा आगे की जायगी । भक्ति विकास के इस संक्षिप्त विवेक में यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि श्रीमद्भागवत पुराण के उदय के पूर्व ही इस वास्तविक धर्म "नारायणीय", सात्त्विक, शैश्विक "भागवत और पांचरात्र" वादि अनेक नाम धारण कर लिए थे ।^५

१. नारदस्तु तदपि तां जित्वा चारतां तद्विस्मरणी परम व्याकुल तति च ।

नारद भक्तिसूत्र १६.

२. स्वयं फलस्मर्तति ब्रह्ममारीः ॥ ना. म. ३०.

३. अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपम् । भूकास्वादनवत् । नारद भक्ति सूत्र ५१, ५२

४. गुणरहितं कामना रहितं प्रतिष्ठाणवर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतर-
अनुभव रूपम् ॥ नारद भक्ति सूत्र --- ५४.

५. महामारत शान्तिपर्व अध्याय ३३५ से ३४८ तक : महामारत अनुशासन
पर्व के अन्तर्गत :

विष्णव मणि का उपास्यत्व विष्णु - विष्णु शब्द विष्णु व्याप्ता
धातु (वैयाकरण सिद्धान्त कोषुदी
धातुपाठ, जुहोत्यादिगण १३ वी. धातु) से बना है। विष्णु-
सर्वव्यापी सत्ता को कहते हैं। इस वही विष्णु ब्रह्मा ही पर्याय हो
जाता है। ऋग्वेद में विष्णु शब्द का प्रयोग जैक जहाँ में हुआ है किन्तु
सर्वत्र ही विष्णु एक दिव्य, महान् और सर्वव्यापी सत्ता के रूप में गृहीत
हुवा है।^१ वेद में ही विष्णु को रूप ब्रह्म के साकार रूप में प्रतिष्ठित
पाते हैं तथा उसके पराक्रम पूर्ण कार्य कलाओं का वर्णन पाते हैं। विष्णु
के "त्रिविक्रम" रूप का बीज ऋग्वेद में मिलता है।^२ उपनिषत्काल
में विष्णु की प्रतिष्ठा और बढ़ी और विष्णु के धाम को सर्वोच्च पद
माना जाने लगा।^३ महाभारत में विष्णु को ब्रह्म का ही साकार
रूप स्वीकार कर लिया गया और अनुशासनपर्व में विष्णु की अपार
महिमा "विष्णु सहस्रनाम" के नाम से वर्णित है।^४ विष्णु की
महिमा ही महाभारत में "वासुदेव" भी कहा गया है।^५ गीता में भी
वासुदेवका उत्तम जैक स्थली पर हुआ और उसको ब्रह्म के समान ही
माना गया है।^६ विष्णु की अन्त महिमा का वर्णन करने के लिए

१. *Aspects of Early Vishnuism by J. Gonda Page 5.*

२. इदं विष्णुर्विक्रमं त्रया निदधे पदम् । ऋग्वेद १. २२. १७

३. विशानसारथिस्तु मनः प्रश्वान्नरः ।

सोऽध्वनः परमाप्नोति तद्विष्णोः परमंपदम् ॥ कठोपनिषद् तु. वृत्ती. ६

४. ॐ विश्वं विष्णुर्विण्णकारो भूतमव्य मवत्प्रभुः ।

भूतकृद्भूतमृद्भावा भूतात्मा भूतमावना ॥ विष्णुसहस्रनामश्लोक ६४

५. सर्वधामाश्रयो विष्णु रस्वदे विदितास्थितः ।

सर्वभूतकृतावासी वासुदेवति चीच्यते ॥ महाभारत, शान्तिपर्व अध्याय ३४० ३

६४.

६. वासुदेवः सर्वमितिस महात्मा सुपुल्लभः । गीता ७. १६.

विष्णु - पुराण की रचना हुई/विष्णु को साकार उपास्य के रूप में ग्रहण कर उसे हृदय के अतिनिष्ठ लाने की अभिलाषा ने उसे नराकार प्रदान किया । १ विष्णु ही नारायण के रूप में प्रतिष्ठित हुआ । सृष्टि - इस विवेक में कृष्ण में नारायण का उद्भव प्राप्त होता है । २ सृष्टि ४-क्रम में नार से जल उत्पन्न हुआ वह ' नार ' कहलाया बार यह नार (जल) बिस्रों, कम -- बाबास -- हुआ वह नारायण कहलाया नारायण शब्द की यह व्युत्पत्ति मनुस्मृति में भी प्राप्त होती है । ३ घोर सागर-शायी-नारायण की ही के रूप (के जैसी हति केशव :) कहा गया बार यह विष्णु के प्रसूत नामों में गृहीत हुआ । ४ गीता में श्रीकृष्ण की लोक स्थलों पर केशव नाम से सम्बोधित किया गया है । ५ श्रीमद्भागवत में इस विष्णुतत्त्व का वह समस्त विकास देखा है । जिसका संक्षिप्त विवेचन ऊपर किया गया है । यही विष्णु उपर्युक्त विभिन्न नामों से वज्राकारि में परम देवता, परमउपास्य इष्ट देव के रूप में गृहीत हुआ है । श्रीकृष्ण भी तत्त्वतः वज्राकारि मणि का उपास्य तत्त्व विष्णु ही है जिस की कान्त, अनिवर्णीय महिमा का उद्घोष श्रीमद्भागवत महा पुराण का अरम अक्षर है ।

१. सुरदास --- मणि का विकास --- पं० रामचन्द्र शुक्ल पृ० २०-३०

२. कृष्ण १० २५, ५-६.

३. बाबा नारा हति प्रोक्त बाबा व नर रूपः ।

ता वदत्याम् पूर्व तेन नारायणः स्मृतः ॥ मनुस्मृति अं १ श्लोक १०.

४. केशवा माधवः स्वयः ॥ अर कोण पृ० १०.

५. ज्यायसी चत्क्रेण स्तेनता बुद्धिस्तार्दन ।

तत्किं कर्मणि घोर मां निषाज्यसि केशव ॥ गीता २.१

श्रीमद्भागवतं स्वं विष्णुं तत्त्व - श्रीमद्भागवत में विष्णु को विद्वष्ट

पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है

जोर उसके स्थूल रूप को साफ़ के लिए धारणा का वाक्य बताया गया है । ^१ भूत मन्थित जोर कर्मान समस्त जगत् जिस ब्रह्माण्ड में प्रतीत होता है वह ब्रह्माण्ड उस विष्णु का स्थूल विग्रह विज्ञेय है। उसके चरण के तलुए पाताल है । नामि देवताकाश है जोर सहस्रशीर्षा पुरुषका सिर सत्य लोक है । इन्द्रादि देवगण बाहु, विहार कान, शब्द श्रवणेंद्रिय बश्विनी कुमार नासागिड, गन्ध घ्राणेंद्रिय, प्रज्वलित अग्नि, मुख, नेत्र गोलक जन्तारिज, कटु इन्द्रिय सूर्य, दानों पल्ल रश्मि, मुकुटि विलास ब्रह्म लोक, तात्पुत्र जोर जिह्वास्त्र है। का उसकी छाड़ें, जान्नीहिनी माया उसकी मुसकान, जोर कटाक्ष विज्ञेय कन्त सृष्टि है । प्रजापति ब्रह्मा उसकी जनेन्द्रिय, मित्रावरुण वणल्लोश, समुद्र बुद्धि जोर पर्वत समूह उसका वस्त्रि संघ है । नदियाँ उस विराट पुरुष महाविष्णु की नाड़ियाँ, वृद्धा रोमावती प्रवत वायु स्वास, कालातिजोर गुण प्रवाह की है । कष्मला उसका केशकलाप, सन्ध्या वस्त्र, वज्रक --- मूलप्रकृति --- हृदय जोर चन्द्रमा फल है । मण्डल उसका चित्त, जोर स्रग् उसका वन्तःकरण है । ^२ श्रीमद्भागवत में विष्णु का ही सर्वापरि महत्त्व है ^३ जोर त्रिव

१. वराजः पुरुषो यो यो भवतु धारणाक्रमः । श्रीमद्भाग २.१.२५

२. पातालीतलं हि पादमूलं

पठन्ति पार्थिवं प्रपदे रघातलम् ।

महातलं विश्वज ५४ गुल्फा

विशेष द्रष्टव्य तलातल व पुरुषस्य जंघे ।। श्रीमद्भागवत. २.१.२६ वादि नन्त-स्व-वन्त श्रीमद्भागवत द्वितीः स्कन्ध प्रथम, पंचम एवं षष्ठ अध्यायों में सम्पूर्णतया ही चित्रित द्रष्टव्य - विष्णु के विद्वष्ट रूप का बड़ा ही जीवन्ती वर्णन है जो पढ़कर बड़ोक्त पुनः बड़ोक्त --- "सहस्रशीर्षा पुरुषः" वादि --- का तत्काल ध्यान वा जाता है ।

३. तन्निशम्याय मुनयो विस्मिता मुच संज्ञाः ।

भूयांसं ब्रह्मविष्णुं शान्तिकं भवम् ॥ १०. ८६. १५.

—(ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र)— में ब्रह्मा और रुद्र को विष्णु का ही जे-
भूत माना गया है क्योंकि विष्णु स्वयं परमपुरुष ब्रह्म है और सबका बन्ध-
माय ब्रह्म में ही होता है । १ यह विष्णु जगत् का परम कारण, ईश्वर,
साक्षात्, स्वयं प्रकाश और भेद रहित ब्रह्मा एवं रुद्र । २ तत्त्व वस्तुतः
एक है । कार्य भेद से उसके ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र तीन रूप हो जाते हैं ।
जिस प्रकार मनुष्य जन्म केो —शिर पाणि पादादि में अपने से पृच्छ
बुद्धि नहीं रखता, उसी प्रकार तत्त्व यथा पुरुष ब्रह्मा, शिवतथा विष्णु
में पार्ष्वय नहीं करती ३ समस्त भूतों के अधिपति इस दुराराध्य विष्णु
का परम पद प्राप्त कर लेना जीवका चरम पुरुषार्थ है । ४ विष्णु का
यह लोक "कुण्डल" कहलाता है । यह लोकोत्तम से परे सतत मास्वर है और
इस लोक में पहुँच कर जीव को फिर संसार चक्र में नहीं लाटना पड़ता । ५
यह धाम लोक रहित नित्य आनन्द रूप है । ६

१. तं त्वामहं ब्रह्म परं पुनामं

प्रत्यक्षं स्वीतस्यात्मनि संस्मिमावम् ।

स्वतन्त्रा अस्तगुण प्रवाहं

वन्दे विष्णुं कपिलं वदगर्भम् ॥ श्रीमद्भाग. ३. ३३. =

२. त्वं ब्रह्मा च सर्वेश्वरं जगताः कारणं परम् ।

वात्मेस्वर उपदृष्टा स्वयं दृग्विनिर्गुणः । श्रीमद्भाग. ४. ७. ५०.

३. यथा पुनान्न स्वाग्नेषु शिरः पाप्यादिषु क्वचित् ।

पारक्य बुद्धिं कुर्वते एवं भूतेषु मत्परः ॥

ब्रह्माणा मेक भावानां यो न पश्यति वे भिदान् ।

सर्वं भूतात्मनां ब्रह्म स शान्तिमधिच्छति ॥ श्रीमद्भाग. ४. ७. ५२-५४

४. सर्वभूतात्मनामेव भूतावतिं हरिं भवान् ।

दुराराध्याय दुराराध्यं विष्णोस्तत्परमं पदम् ॥ श्रीमद्भाग. ४. ११. १ १

५. ततोऽकुण्डलगम्य मास्वरं तनतः परम् ॥

यन्नारायणः साक्षात् न्यायिनां परमागतिः ।

ज्ञान्तानां न्यास्त वण्डीनां यतो ना कर्तुं पुनः । श्रीमद्भाग १०. ८८. २ ५. २५

६. तद्वै पदं भगवतः परमस्य पुंनो-

ब्रह्मेति यद्विदुराजस्य भुवं विशोकम् । श्रीमद्भाग. २. ७. ४८.

नारायण - विष्णु के "नारायण" और "हरि" दो नामों
 ----- की व्युत्पत्ति श्रीमद्भागवत में इस प्रकार दी हुई है कि
 जब विराट् पुरुष ब्रह्माण्ड को भेदन कर निकला तो उस बुद्ध संकल्प पुरुष
 ने अपने व्यक्त -- बाबास -- की इच्छासे स्वच्छ जल की सृष्टि की।
 पुरुष -- नर -- से उत्पन्न होने के कारण जल का नाम "नार" ^१
 है। उसमें निवास करने के कारण वह "नारायण" कहलाया है।
 यही नारायण श्वेतद्वीपपति विष्णु है। नारायण ने अक्षर ऊपर
 त्रिलोकी के महान् कष्ट का हरण किया जोः मनु ने उसका नाम "हरि" ^२
 रखा है। प्रजापति ऋषि की बाधि का हरण करने वाले कृपासु "हरि" का
 नाम इस जल में सूर मीरा बादि कृष्णामृत कवियों ने "हरि" ~~कृष्णामृत~~
~~कृष्ण~~ तुम हरी जल की मीर "बादि" जैसे गीतों में ग्रहण किया है। ऊपर
 कोण -- (५ वीं शती) -- में परिगणित विष्णु के ३६ नामों ^३ में से प्रायः

१. पुरुषोऽष्टं विनिर्मितं यदापः स विनिर्गतः।

जातनीऽयं मन्विच्छ कृष्णोऽस्नात्तीच्छुतिः सुधीः।

तास्ववात्सीत्य सृष्टां तु सहस्रं परिवत्तरात्।

तेन नारायणो नाम यदापः पुरुषोद्भवाः॥ श्रीमद्भाग २, १०, १०, ११

श्वेतद्वीपपतां चितं शुद्धं धामये मणिः। श्रीमद्भाग ११, १५, १८,

२. लोकत्रयस्य महती महारक्षार्ति

स्वायं मुक्तं मनुना हरिरित्मुक्तः॥ श्रीमद्भाग २, ७, २,

३. विष्णु नारायणः कृष्णो कृष्णो विष्टर क्ताः।

दामोदरो हर्षकेशः केशो नाथः समुद्रः॥

दैत्यारिः पुण्डरीकाक्षो नोविन्दो गच्छ-ध्वजः।

पीताम्बरोऽक्षुतः शाङ्गी विष्वक्सेनो जगदेनः॥

उपेन्द्र इन्द्रो वरजश्च पाणिश्चतुर्भुजः।

पद्मनाभो मधुरिपुर्वासुदेव स्त्रिविधः॥

देवकी नन्दनः शौरिः शोपतिः पुरुषोत्तमः।

कन्यालो वसिष्ठी कंदाराति रघोदाजः॥

विश्वंरः कृष्णजिह्विभुः श्री वत्सलाक्ष्मणः।

स्त्री का प्रयोग श्रीमद्भागवत में हुआ है और वासुदेव तथा कृष्ण नाम भी 'विष्णु' या हरि के ही पर्यायवाची रूप में प्रयुक्त हुए हैं । १
कृष्ण विष्णु का ही सत्त्वमय विग्रह है । २

१. नमो विष्णु सत्त्वाय हरये हरिमेव ते ।

वासुदेवाय कृष्णाय फले सर्व सात्त्विकानां ॥ श्रीमद्भाग. ४, ३०, २४.

२. विष्णोर्भाक्तां मानुः कृष्णात्पोऽसौ दिवन्तः ॥ श्रीमद्भाग १२.

२, २६.

अवतार - वाद.

भारत वर्ष में सगुण भक्ति का आधारअवतारवाद हैं। यह सगुण उपासना का मरूदण्ड हैं जिसके सहारे हमारे बालोच्चकाल की भक्ति का सुगठित शरीर स्थित हैं। अवतार की कल्पना भारतवर्ष में कब से ³⁵⁰⁰ हुई इस विषयमें प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु विद्वानों का मत है कि सम्भवतः यह धारणा वैदिकौचर काल में ही पुष्ट हुई होगी।^१ पौराणिक साहित्य में अवतारवाद प्रबल रूप से समर्थित हैं। मध्यकाल में समस्त भारतवर्ष में अवतार वाद के प्रति गहरी आस्था पाई जाती हैं। लोगों का ^{आज भी} दृढ़ विश्वास है कि भगवान् देवता, मनुष्य अथवा अन्य किसी प्राणी की आकृति धारण कर जीवों का पालन और उद्धार करते हैं।^२ गीता के अनुसार अवतार का प्रयोजन साधुओं का परित्राण, पापियोंका विनाश, और धर्म की स्थापना है। महाभारत में दो स्थलों पर अवतारोंका वर्णन है। एक स्थान पर दस और दूसरे स्थान पर दस अवतारों का उल्लेख है। ये हैं :- १. वराह, २. नृसिंह, ३. वामन, ४. परशुराम, ५. दशरथिराम, ६. वासुदेव कृष्ण, ७. हंस, ८. कूर्म, ९. मत्स्यबाहू, १०. कल्कि महाभारत के जिस अंश में अन्तिम चार अवतारों का उल्लेख है उसे कुछ लोग प्रदिष्ट अनुमान करते हैं।^३ किन्तु सभी पुराणों में विष्णु के दस अवतारोंकी मान्यता है १-१. मत्स्य, २. कूर्म, ३. वराह, ४. नृसिंह, ५. वामन, ६. परशुराम, ७. रामचन्द्र, ८. कृष्ण, ९. बुद्ध और १० कल्कि। मध्यकाल में इन दसअवतारों की महिमाऔर चरितगान का बड़ा प्रचार रहा है। राजस्थान में आजभी लोग कीर्तों के रूप में वामनादि अवतारों के चरित गाते हैं। जिन्हें इन पंक्तियों के लेखक ने स्वयं सुना है। जय देव (११ वी शताब्दी) --- ने अपने "गीतागोविन्द" में सुंदर गीतियों में दशावतार चरित गाथाएं।^४ पृथ्वीराज रासी में भी "दसम"

१. मध्यकालीन धर्म साधना: डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी. पृ० ११३

२. भावयत्येषा सत्त्वेन लोकान्वे लोकमावनः ।

लीलावतारानुरतो देवतिर्यह नरादिषु ॥ श्रीमद्भागवत १. २. ३४

३. वैष्णविज्ज, शैविज्जि, माह्नर सैक्त्रस मण्डारकर पृ० ५६

४. प्रत्य पयौ चि जल घृतवानसि वैदम् ।

विहित वहित्र चरित्र मत्सेवम् ।

केशव धृत मीन शरीर जय जगदीशहैरे ॥ आदि ।

गीतागोविन्द प्रथम सर्ग प्रशं १.

नाम से दशावतार चरित का गान है। नवी 'दसवी' शताब्दी के बाद से 'दशावतार चरित' नाम से भारत में विपुल स्तोत्र और काव्य साहित्य की रचना हुई है।^१ मध्य काल के प्रायः सभी धर्म सम्प्रदायों में अवतारों की मान्यता है।

श्रीमद्भागवत में अवतार - विवेचन - वैसे तो सभी पुराणों में भगवान् के अवतारों का वर्णन हुआ है किन्तु श्रीमद्भागवत में अवतार विवेचन विशेष वैज्ञानिक और दार्शनिक दृष्टि कोण से किया गया है इसमें सभी प्राचीन परम्पराओं का सामंजस्य है। श्रीमद्भागवत में अवतारों के तीन भेद किए गए हैं। १. ~~३३~~ पुरुषावतार, २. गुणावतार, और ३. लीलावतार। पुरुषावतारों में संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं। २. वासुदेव -- श्रीकृष्ण स्वयं अवतारी हैं। यह भूतव्यूह है जिसका विवेचन हमने आगे पृथक् रूप से किया है। गुणावतारों में विष्णु ब्रह्मा और रुद्र हैं जो क्रमशः प्रकृतिके सत्त्व, रज एवं तमोगुणों से युक्त हैं। ब्रह्मा जगत् की उत्पत्ति, विष्णु स्थिति और रुद्र प्रलय के कर्त्ता हैं। ३. सबसे पहले भगवान् विराट् पुरुष -- नारायण -- रूप धारण करते हैं। यह रूप महत् अहंकार, पंचतन्मात्राओं और षोडश कलाओं -- एकादश इन्द्रियों और पंचभूतों से सम्पन्न होता है। यही रूप प्रमुख है और भगवान् कैलान्य नाना अवतारों का उदभव स्थान और लयस्थान हैं।^४ श्रीमद्भागवत में इस नारायण के निम्नलिखित बाईस अवतार बताए गए हैं।

१. हिन्दी साहित्य: डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० ६३

२. श्रीमद्भागवत ३. २६

३. सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तै-

युक्तं परां पुरुषा एक इहास्य धत्त ।

स्थित्या दये हरि विरिञ्चि हरं ति संज्ञा

श्रियासि तत्र खलु सत्त्वं तनोर्निष्ठां स्युः ॥ श्रीमद्भागवत १. २. २३

४. जगद्दे पौरुषा रूपं भगवान्महदादिभिः

सम्भूतं षोडशकलादी लौक सिद्धाया ॥

स्तन्नाना वताराणां निधानं बीजमव्ययम् ।

ब्रह्मांशंशैवेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्मरादयः ॥

श्रीमद्भागवत. १. ३. १, ५

क्रम यह है :- १. सनकादि, २. वराह, ३. नारद, ४. नर-नारायण,
 ५. कपिल, ६. दत्तात्रेय, ७. यज्ञ, ८. कृष्ण, ९. पृथु, १०. मत्स्य,
 ११. कूर्म, १२. धन्वन्तरि, १३. मोहिनी, १४. नृसिंह, १५. वामन, १६. -
 परशुराम, १७. वेदव्यास, १८. राम, १९. बलराम, २०. कृष्ण, २१. बुद्ध
 और २२. कलि । ^१ श्रीमद्भागवत के अनुसार नारायण के अणिगत
 अवतार हो सकते हैं जो किसी ज्ञाय सरोवर से अणिगत स्त्रोत निकलते
 हैं । ^२ भगवान् का विराट् पुरुष -- नारायण --- रूप माया के महत्त्व
 वादि गुणों से अपने में ही कल्पित होता है, वास्तव में तो भगवान् रूप
 रहित स्वज्ञान स्वरूप है । इस प्रकार अवतार का कारण भगवान् की माया
 शक्ति ही है । भगवान् के जन्म और कर्म परमगुण्य है । ^३ लीलावतारों
 की संज्ञित कथा श्रीमद्भागवत में द्वितीय स्कन्ध के सप्तम अध्याय में है
 इनकी संख्या ^{चौबीस} ~~है~~ है । इनमें से बीस अवतारों वही हैं जिनकी चर्चा की गई
 चुकी है । इस अध्याय में अवतारोंका क्रम इस प्रकार है । १. वराह, २. -
 बुध, ^{हरे} ३. कपिल, ४. दत्तात्रेय, ५. कृष्ण, --- (सनक, सनन्दन, सनातन,
 और जलकुमार) --- ६. नर-नारायण, ७. पृथु, ८. कृष्ण, ९. ह्यग्रीव
 १०. मत्स्य, ११. कच्छ, १२. नृसिंह १३. वामन, १४. हंस, १५. मनु
 १६. धन्वन्तरि, १७. परशुराम, १८. राम, १९. बलराम, २०. कृष्ण
 २१. वेदव्यास २२. बुद्ध और २३. कलि । पहली सूची से इस दूसरी सूची
 में अवतार संख्या ^{को} ~~है~~ अधिक है । पहली सूची में परिगणित नारद और मोहिनी
 अवतार इस सूची में नहीं हैं । इनके स्थानपर " ह्यग्रीव, ^{हरे} हंस " और
 मनु --- ये ^{चार} ~~तीन~~ अवतार इस सूची में सम्मिलित हो गए हैं ।

श्रीमद् भागवत. १. ३.

२. अवताराश्च संख्या हरिः सत्त्वनिबोधिताः ।

यथा विदालिनः कुल्याः सखः स्युः सहस्रशः ॥ श्रीमद्भाग. १. ३. २६

३. श्रीमद् भागवत. १. ३. ३०. ३५.

दशम स्कन्ध के ४०वें अध्याय
और एक चोथी
सूची

श्रीमद्भागवत में भगवान् के अवतारोंकी एक तीसरी सूची, एक-
दश स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय में है। ^{चौथी सूची में} ~~एक~~ पुरुषावतार गुणावतार बार
लीलावतारों का एक साथ ही वर्णन है। स्वनिर्मित पंच मूर्तों के द्वारा
ब्रह्माण्ड रूप " पुर " की रचनाकर के नारायण उसमें " पुरुष " --- जीव
--- रूप से प्रवेष्टकरता है। नारायण के रजोगुणांश से ब्रह्मा, सत्वांश से
विष्णु और तमागुणांश से सर्ग संहारक रुद्र उत्पन्न होते हैं। यही गुणा-
वतार है। ^१ इस सूची के कुछ अवतारोंकी कलाकृत " भी कहा गया
है। ^२ लीलावतारों में ~~सभी~~ ^{सभी} सूचियोंके सभी अवतारों का उल्लेख
है। ^{चतुर्थ} सूची के अन्तर्गत गजराज का उद्धार करने वाले " हरि " ^३ का
भी यदि हम विष्णु का पृथक् अवतार माने तो लीलावतारों की संख्या
सन्नह हो जाती है जिनका क्रम यह है :- १. नर - नारायण, २. हंस,
३. बल्लभेन्द्र, ४. सनकादि, ५. कृष्ण, ६. ह्यग्रीव, ७. मत्स्य
८. वराह, ९. कूर्म, १०. हरि, ११. नृसिंह, १२. वामन, १३. परशुराम
१४. राम, १५. कृष्ण, १६. बुद्ध और १७ कल्कि..

अवतार प्रयोजन. श्रीमद्भागवत में भगवान् के अवतार के जोक हेतु बताए
गए हैं। गीतोक्त " परित्राणाय साधूनां विनाशाय
चतुष्कृतम् " आदि कारणोंका समर्थन तो श्रीमद्भागवत में जोक स्थलों
पर है ही।

१. श्रीमद्भागवत. ११. ४. ३, ५.

२. श्रीमद्भागवत ११. ४. १७

३. कर्मभूतो द्विभूतो न्यक्षे स्वपृष्ठे

ग्राहात्प्रमन्नाभिराजमुन्मत्तात् ॥

श्रीमद्भागवत. ११. ४. १८.

१ इसके अतिरिक्त भी कवचानु के अवतार के निम्न लिखित प्रयोजन कतार
गर ह :-

१. केवल लीला विस्तार २
२. देव कार्य सम्पादन ३
३. प्राणिमों को मोक्ष-दान ४
४. भक्तों पर अनुग्रह ५
५. भक्तों के प्रति भरी निवास ६

१. क- जय्यत विष्णोर्भुजत्वमीदृशा भारवताराय मुवी निजच्छया ॥

श्रीमद्भागवत १०. ३८. १०.

ख- भूमारा कताराय वी वतीर्णः कदीः कुतः । श्रीमद्. १०. ४६. २८

ग- स्तवर्ध हि ना जन्म साक्षामीश लम्बत ॥ श्रीमद्. १०. ५०. १४.

घ- स्तवर्धी वतारो यं भूमार हरणाय ये ।

चंत्ताणाय साक्षामां कृतो न्येणां वधायव ॥

जन्मो पि कां रताये देहः संभ्रिक्त मया ।

विरामायाम्य कस्य काले प्रवक्तः क्वचित् ॥ श्रीमद् १०. ५०. ६. १०

ङ- तदावतारो यमकुण्ड घामन् कस्य गुप्त्ये जातो मवाये ॥ श्रीमद् १०. ६३. ३६

च- लोक भवांकादितः कस्तथावतीर्णः ।

सुदृढाशायै तत निग्रहणाय चान्यः ॥ श्रीमद् १०. ७०. २७.

छ- भूमारापुर राजन्य हन्तये गुप्तये सताम् ।

जवतीर्णस्य निर्मुक्त्ये यशोलीके वितन्यते । श्रीमद् ११. ६. ५०.

ज- जन्मतस्य भारहाराय भूमेः । श्रीमद् १०. ६३. २७

वार भी द्रष्टव्य - श्रीमद् भाग. १०. ८४. १६, १०. ८५. १८, १०. ८५. ३०
११. ४. २२

२. क्रीडाये मपाच मनुष्य विग्रहं मतो स्मि पुं यद्वृष्टिणा सात्वताम् ॥

श्रीमद् १०. ३७. २३.

३. मया त्रिपादितं तत्र देवकार्यं मशेषतः ।

तवधेमवतीर्णो स्मरेन ब्रह्मणार्थितः । श्रीमद्भा. ११. ७. २ तथा १०. ४६. २३
१०. ३८. १३

४. नमस्तस्य भुगवते दण्ड्यायामल कीर्तये ।

यो पति सर्व भूतानाममवायीरुतीः कलाः ॥ श्रीमद् १०. ८७. ४६ तथा १०. ७०. ३६

५. दित्तयेति सुदृढाशिष्य रण देवकी जठर भूदुराजः । श्रीमद्. १०. ३५. २३.

६. मन्त्रीजोषु सकलेषु दनः सुतानाम् ॥ श्रीमद् १०. ६६. १७.

मछि काल में पूर्वोक्त साधु परित्राण, उस निग्रह वादि मन्त्रद्वारा -
कारणतो स्वीकृत थे ही उन्हें भी अधिक महत्त्व पूर्ण हेतु भगवान् का
मछी पर कुण्ड करके ज्वार द्वारा उन्हें जमी लीला माधुरीका पान
कराना माना गया । मयुरामछि के पद्यों में कहा है कि जमी ली-
ला कीर्ति के विस्तार से मछी पर कुण्ड करना ही भगवान् की जन्मादि
लीलाओं का उच्च ^{रूप} हेतु है । श्री गोस्वामी ने जमी " लघुमागकतामृत " ^८
में स्पष्ट कहा है :-

स्वलीलाकीर्ति विस्ताराद् मछी^८ पितृदाया व

जस जन्मादि लीलानां प्राफट्य हेतुत्वं : ॥ १

डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह अभिमत कि परकीर्ति काल में कुष्ट
कन वादि को भगवान् के ज्वार का मुख्य हेतु नहीं माना गया है ^२
समीचीन है । मछि काल के साहित्य का विशेषकर कव्यामछि साहित्य
का अध्ययन करने वाले व्यक्ति को शीघ्र ही यह अनुभव होने लगता है कि
भगवल्लीला का गान ही मछी कवियों का प्रियतम विषय है क्योंकि भगवान्
ज्वार द्वारा मछी को जानन्धित करने के लिए विविध लीलाएँ करते हैं
जस ज्वार ग्रहण में भगवान् की इच्छा शक्ति ही प्रेरक होती है । ^३ श्रीमद-
मागक में यह भी कहा गया है कि भगवान् जमी जमी मछी की इच्छा के
अनुसार भी रूप धारण करती हैं । ^४ मछि काल में इस धारणा नेकही ही
कुछता धारण करती ।

१. मध्याह्नीन घंटाघाता -- डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी -- पु. १९४ परलब्ध ।

२. वही पु. १९३.

३. स्वराकार उन्नाय विदाम कुष्टु ॥ श्रीमद् १०, ६६, ९७.

तयो - त्वं ब्रत परमं व्योम पुरुषः प्रकृतः परः ।

ज्वतीणां ऽसि भगवान् स्नेहोपाच पूज्यवपुः ॥ श्रीमद् ११, ११, २५.

४. मछी-उपाच स्माव परमात्मनो ऽस्तुते । श्रीमद् १०, ५६, २५.

हिन्दी मछि साहित्य में स्तुति: उदाहरण इसके प्रमाण है । १ इस प्रकार अवतार धारण कर भगवान् अपने भक्तों को चित्त नुरंजित करते हैं । भक्त पर विमर्शित मछीवै ही वे अवतार हैं यह आवश्यक नहीं ।

वासुदेवादि चतुर्वर्ग - श्रीमद्भागवत में विष्णु तत्त्व की चतुर्वर्ग रूप से चारों-

निक आध्यात्मिकी की गई है । वासुदेव तो विषुद शान स्वल्प, अद्वितीय, व्यापक, प्रशान्त परमार्थ सत्य है । भक्तिशास्त्र में उस "वासुदेव" को "भगवान्" कहते हैं । २ एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि सत्त्वगुण मय स्वच्छ चित्त जो महत्त्वात्मक है, "वासुदेव" कहलाता है । अहोष्वात्म में चित्त "चित्त" कहते हैं, अधिभूत में उसी को महत्त्व कहा जाता है । चित्त में उपास्यदेव "वासुदेव" और वाधकाता "सोमर" होता है जब महत्त्व में विकार होता है तब उसे क्रिया शक्ति मय — कारिक, तन्त्र और तामस — तीन प्रकार का ब्रह्म उत्पन्न होता है । इस त्रिविध ब्रह्मकार से ही क्रमशः मन, इन्द्रिय, और पंच महाभूतों की उत्पत्ति होती है । इस भूतन्द्रिय मनोमय ब्रह्मकार को संवर्णण कहते हैं । संवर्णण में उपास्य देवता

१. नैति नैति नैति नैति निरुपा । निजानन्द निरुपाधि कृपा ॥

स्वयं प्रभु स्वयं वस वरुण । भगवत् स्तुतीलातनु गुरु ॥

हृदयामय नर वेष उवाच । ह्रींकारं प्रकट निवेदित तुम्हारे ॥

पुरुष में वसिलाण तुम्हारा । सत्त्वसत्त्व फल सत्य हारा ॥

रामचरितमानस, वात्स्यायन, मनुस्मृत्या पा प्रमाण पृ. ८४-८८

२. शानं विषुदं परमार्थकमनन्तरं त्ववधिर्ज्ञेय सत्यम् ।

प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दं सत्त्वं यद्वासुदेवं प्रपद्यते । श्रीमद्भाग. ५. १३ ११

३. यत्सत्त्व गुणं स्वज्ञं शान्तं भगवतः पदम् ।

कदाहुर्वा सुदेवारवं चित्तं तन्महदात्मिकम् ॥

महत्त्वादिगुणाणां समग्रं वीर्यं सम्भवात् ।

क्रिया शक्ति रत्नकार त्रिविधः सम्पन्नः ।

कारिक स्तुतिस्व तामसस्व मनोमयः ।

मनस्वन्मिथ्याणां भूतानां महत्तमम् ॥

सहस्रशिरसं साक्षात्कान्तं प्रकृते ।

संवर्णणारवं पुण्यं भूतन्द्रिय मनोमयम् ॥ श्रीमद्भाग ३. २६, २९, २३, २४, २५,

संकीर्ण स्वर वधिष्ठाता रुद्र हैं। जैसा किष्की कहा जा चुका है वैकारिक
 संस्कार से 'मन' की उत्पत्ति होती है जो संकल्प विकल्पात्मक है।
 और इमानाओं --- काम --- प्रपुन्र --- का जनक है। यह
 मनस्तत्त्व इंद्रियों का वधिष्ठाता 'वगिरुद्र' नाम से प्रसिद्ध है।^१ बुद्धि
 में उपास्य के 'प्रपुन्र' तथा वधिष्ठाता ब्रह्मा है और मन में आस्यके
 'वगिरुद्र' तथा वधिष्ठाता चन्द्रमा है। वस्तुतः यह चतुर्व्यूह रूप परम-
 पूरुष का विष्णु ही है। वही विश्व, तज्ज, प्राज्ञ एवं तुरीय --- इन चार
 वृत्तियों द्वारा क्रमशः वर्ष --- (बाह्य विषय) ---, इन्द्रिय --- (मन) ---
 वाच्य --- (विषय एवं मन) --- दोनों के संस्कार से युक्त ज्ञान) ---
 बार ज्ञान --- (साक्षात्) --- रूप से भावित होता है।^२ जब ब्रह्म
 चतुर्भुज विष्णु रूप में साकार होता है तब वह चरणादि कों, गरुडादि
 उपांग, सुदर्शनादि वायु एवं कोस्तमादि बाभूजण धारण करता है।^३
 पांचरात्र ^{तत्र (त्रैलोक्य सिद्धान्त) के माननेवाले विष्णु की} वही उपासना में कों पांग वायु बार बाभूजणों की पूजा करते
 हैं।^४ रामानुज और निम्बार्क के सम्प्रदायों में इस प्रकार की पूजा का
 विधान विशेष रूप से है।

१. वैकारि का द्विर्वाणान्म नस्तत्त्वमजायत ।

यत्संकल्पविकल्पाभ्यां कर्तते काम संवः॥

यद्विदुर्निरुद्धाख्यं हृणीकाणामधीश्वरम् ॥ श्रीमद्भाग. ३. २६. २७. २८

२. वासुदेवः संकीर्णः प्रपुन्रः पूरुषः स्वयम् ।

वगिरुद्र इति ब्रह्मन्मूर्तिं व्यूहो ऽभिधीयते ॥

स विश्वस्तज्जः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः ॥

वर्षेन्द्रियाशक्तानिभेगवान्परिभाष्यते ॥ श्रीमद् भाग. १२. ११. २१. २२

३. कोंपांगानुवाकत्वेभेगवांस्तच्छुष्टयम् ।

किमर्तिस्य चतुर्भुक्तिर्भगवान्हरिरीश्वरः ॥ श्रीमद्भाग. १२. ११. २३

४. तान्त्रिकाः परिवर्त्यायां फलस्यत्रियः फलः ।

कोंपांगानु वाकत्वं कल्पयान्त्यथाच येः ॥ श्रीमद्भाग. १२. ११. २.

मौक्तिक दृष्टि और श्रीमद्भागवत में वर्णित इतिहास ^{के अनुसार} "वासुदेव" ^१ श्रीकृष्ण है, "संकर्षण" ^२ श्रीकृष्ण के अग्रज बलराम हैं; प्रद्युम्न श्रीकृष्ण का पुत्र है जो कामदेव का अवतार माना जाता है। श्रीमद्भागवत में बताया है कि पूर्व काल में शिव के द्वारा दम्भ कामदेव ने श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी के गर्भ से जन्म लिया। वह अपने पिता श्रीकृष्ण से किसी बात में कम नहीं था। ^३ अग्निरुद्र प्रद्युम्न का पुत्र है।

मक्ति द्वारा चैत्य विष्णु का साकार रूप - जब लोक में ब्रह्म के साकार रूप की प्रतिष्ठा हो गई तो मक्ति

वात्सल्य के कारण अवतार ^४ दशा में वह उपासना का विषय बना। विष्णु ने एक लोक मनोहारी चतुर्भुज नराकृति धारण की। ^२ श्रीमद्भागवत में कहीं कहीं उसके अष्टभुज रूप का भी उल्लेख है। ^३ उसके शरीर की कान्ति जलो विकसित उसका सौन्दर्य अनिर्वचनीय है। वह कौशेय पीताम्बर धारी है, वक्त्रः स्थल पर श्री वत्सचिह्न, भुजाओं में शंख, चक्र गदा और पद्म, ग्रीवा में वनमाला और कौस्तुभ मणि धारण किन्तु सभ्य शरीर वतिकान्तिमान् किरण बालमण्डित मुकुट कुण्डल, कटक, कटिसूत्र, हार, कैयूर, और नूपुर आदि अलंकारों से आभूषित है। ^४ विष्णु का वाहन

१. कामस्तु वासुदेवाशौ दम्भः प्रागुद्रमन्युना ।

स ख जाता वैदम्या कृष्ण वीर्यं स्मुद्भवः ॥ प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ॥ श्रीमद् १०. ५५. १२.

३. श्रीमद्भागवत. ४. ७. २० तथा ४. ३०. ६.

२. भगवान् भागवत वात्सल्य तथा सुप्रतीक आत्मानमपराजितं

निजामि प्रेताथविधित्तया गृहीत हृदया हृदयंगमं मनो नयानन्दनावय-
वाभिराममा विश्वकार ॥ श्रीमद् भागवत. ५. ३. २.

४. अथ ह तमा विष्कृत भुज युगल दूयं हिरण्यं पुरुषं विशेणं

कपिशकौश्याम्बरधामुरसि विलसच्छ्री वत्सलतामं

वर वर वन रुह वनमाला चूर्णमृत्तमणि गदादिभिरुपलक्षितं

मुकुट किरण प्रवर मुकुट कुण्डल कटक कटिसूत्र हार कैयूर

नूपुराणां भूषण विभूषितम् --- । श्रीमद्भाग. ५. ३. ३.

गुरु है जिसको व्याधि देविक रूप में वेद का प्रतिनिधि माना गया है १
सांकेतिक कथमें साकार व्रत वेद द्वारा ही उक्त --- (यथा तथा प्रतिपाद्य) ---
है । वह वेद का निरन्तर है ।

श्रीमद्भागवत में जैक स्थली पर २ इस साकार ध्येय विष्णु
का रूप वर्णन है । उसका समस्त रूप मार्धव परवर्ती कृष्ण भक्त कवियों
के ध्येय श्रीकृष्ण में सिमट कर फी मूल हो गया है । इस रूपकी सामान्य
विशेषताएं ये हैं :-

१. सर्वदा स्मित युक्त प्रसन्न मुसमण्डल.
२. कमल दल के समान कृष्णाम विशालेत्र.
३. स्निग्ध स्वच्छ, कुञ्जित जलकावली.
४. उदार लीलामय मूर्तिविताप.
५. नील कमल दल क्त श्याम जथा सजल जलदवत्स्थामवर्ण.
६. सतत देशार जथा तारुण्य.
७. कौशिक पीताम्बर धारी ।
८. कास्तुभ मणि स्वं कमाला धारी ।
९. वतिकान्ति युक्त किरीट-मुकुट कैशुर, कुण्डलादि वामृण्ण धारी।

१. इन्द्रोभयनगलेन समुत्थानश्चक्रायुधो ऽभ्यागमदाहृक्तो गजन्द्रः ॥

श्रीमद्भागवत. ८. ३. ३९.

२. द्रष्टव्यः श्रीमद्भाग. २. २.

// // ४. ८.

// // ३. २८.

// // ११. १४.

// // ११. ३०.

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण का स्वरूप

विष्णु तत्त्व एवं अवतार वाद के उपर्युक्त विवेका से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निर्गुण निराकार ब्रह्म को ही मर्त्त्यों ने अपनी तीव्र इच्छा शक्ति से उपात्मार्थ सगुण साकार रूप में देखा । अवतारों में भी ब्रह्म के राम और कृष्णावतारों की भारत वर्ष में सर्वाधिक प्रसुक्ता है । उनके प्राधान्य का कारण उनकी मुक्त मोहिनी वगणित लीलाएँ हैं । इन दोनों अवतारों में भी श्रीकृष्ण तो अपनी लीला माधुरी के कारण लीलापुष्पाब्ज ही कहे जाते हैं । वैसे तो यह लीलापुष्पोत्तम श्रीकृष्ण सभी हिन्दी मठ कवियों का परम वाराध्य है । किन्तु श्री बल्लभाचार्य के पुष्टि सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के लीलाधरत्व का विशेष महत्त्व है ।^१ इसी से इस सम्प्रदाय में दीक्षित वष्टशाप के कवियों ने लीला पुरूषोत्तम श्रीकृष्ण को ही अपना परम उपास्य माना । अतः हमें यह जानना आवश्यक है कि श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण का स्वरूप क्या है । प्राचीन भारतीय साहित्य में श्रीकृष्ण के दो रूप मिलते हैं १. यक्षुक्त श्रेष्ठ दुष्ट - निहन्ता योद्धा, योगेश्वर श्रीकृष्ण तथा २. गोपाल गोपीजनवल्लभ राधाधर-सुधापान शालि वृन्माली श्रीकृष्ण । महामात, हरिवंश एवं विष्णु पुराण में प्रसूत तथा श्रीकृष्ण के प्रथम रूप का प्राधान्य है । श्रीकृष्ण का दूसरा गोपाल कृष्ण रूप अपेक्षाकृत नवीन है । इस रूप का प्राचीनतम उल्लेख विद्वान् लोग भक्तकवि ब्रह्मघोष की पंक्तियों में मानते हैं ।^२ महाकवि - कालिदास ने भी मेघदूत में विष्णु कृष्ण श्रीकृष्ण के गोपवध का

१. नमामि हृदये शणे लीलाक्षीराविशक्तिम् ।

कृमी सहस्र लीलाभिः सव्यमानं कृतानिधिम् ॥

गीतगोप, मंगलाचरण, श्लोकद्वे,

२. स्थातानि कर्माणि च यानि शारः शूरादयस्तोषला क्लृप्तः -

उद्धृतः डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी : मध्यकावीन धर्म साधना पृ. १२८

उल्लेख किया है । ^१ श्रीमद्भागवत में श्री कृष्णके उमय रूपों का अत्यन्त सुन्दर सामंजस्य धृत किया गया है । जहाँ वह दुष्ट हन्ता महान्यायाज्ञा और भी ^२ रक्षाक ^३ है वहाँ वह गोपी रमण भी है । ^४ हम यह संकेत ^५ पहिले कई स्थलों पर कर ही चुके हैं कि श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण को विष्णु का ही अवतार माना गया है । और विष्णु का पर ब्रह्मत्व जेक स्थलों पर प्रतिपादित होने कारण श्रीकृष्ण भी परब्रह्म ही माने गए हैं । " ब्रह्म " को मज्जि शास्त्र में " भगवान् " कहा जाता है । श्री कृष्ण स्वयं भगवान् ^६ हैं । श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की अनिर्वचनीय महिमा और उनके पर ब्रह्मत्व के प्रतिपादन में जो कुछ कहा गया है उसका संक्षिप्त - तम सार भी प्रस्तुत करना यहाँ शक्य नहीं है, केवल दिव्यमात्र दर्शन के रूप में श्रीमद्भागवत के कृष्ण तत्त्व का सारांश यह है --

श्रीकृष्ण प्रकृति से परे , प्रकृति नियामक, साक्षात् ईश्वर हैं । वह अपनी विच्छिन्नि से माया का निराकर अपने केवल्य रूप में स्थित है । ^५ कृष्ण, वासुदेव, देवकी-पुत्र, नंदगोप-कुमार, गोविन्द बादि नामों से उसी पर ब्रह्म परमेश्वर को प्रणाम किया जाता है । वह वस्तुतः

१. केन श्यामं वपुरत्तिरां कान्तिमाप्स्यती ते ॥

वर्णैव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः । मेघदूत पृ० ४५

२. क्लृप्तः सहानुगो पीतो यद्धृष्ट्यात्वाजितः श्रिया ।

जरासंधः सप्तदश संयुगान्निवृत्यो गतः ॥ श्रीमद्भागवत १०. ५७. १३

३. प्रहस्य सदयं गोपीरात्तारामोप्यरीरमत् ॥ श्रीमद् १०. २६. ४२.

४. कृष्णयो मनवो देवा ननुपुत्रा महाजसः ।

कलाः सर्वे हरैव सप्रजापतयस्तथा ॥

एतेचांश कलाः पुत्रः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ॥ श्रीमद्भाग १. ३. २७. २८

५. त्वनापः कृष्णः साक्षादीश्वरः प्रकृतः परः ।

मायां व्युदस्य विच्छिन्त्या केवल्य स्थित वात्सनि ॥ श्रीमद्भाग.

जन्मा और जर्मा है किन्तु कृष्ण, मनुष्य, तिर्यक् जलवरादियोनियों में जन्म लेता और तत्काल योनियों के अनुरूप वाचरण करना उसकी लीला मात्र है। वह कालरूप आदि निष्कल और सर्वव्यापक है। वह बात्माराम है किन्तु भक्तों की कीर्ति को सुदी विकीर्ण करने ^{के लिए उस अजन्मा ने यदुकुल में अहिमोग भी स्थापना करना भी उसका लक्ष्य था। [अम्मलिया]} मछ-पराधीन होने के कारण भगवान् कृष्ण को पुत्र, मित्र, पति, मंत्री दूत और सारथिक बनना पड़ा है। वस्तुतः तो वह समदर्शी, बहिर्तीय परमात्मा हैं। ^२ वह आदि पुरुष नारायण है जो लोकों को विमोक्षित करता हुआ गूढ रूप से कृष्ण केश में विचरणकर रहा है। ^३ परम प्रेम विह्वला भक्ता गोपीयों के साथ उसयोगेश्वरेश्वर बात्माराम को साधारण प्राकृत पुरुष के समान भी स्मरण करना पड़ा है। ^४ किन्तु ब्रज की गोपियों स्वं गोपां को श्रीकृष्ण के पर ब्रतत्व का निरन्तर ध्यान रहता है। उन्हें निरन्तर माहात्म्य ज्ञान रहता है। बन्धा श्रीकृष्ण को भगवान् के रूप में देखे किन्ता उनके प्रति किया हुआ गोपियों का प्रेम जार के प्रति किए गए प्रेम के समान अपवित्र होता। ^५ इस प्रकार उक्त प्रमाणों के बावज़र पर हम निर्विकल्प रूप से कह सकते हैं कि श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के पर

१. श्रीमद्भागवत, १. ८.

२. श्रीमद्भागवत, १. ६.

३. एणवे भगवान्चाक्षाद् बाधो नारायणः पुमान् ।

मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरति वृष्णिषु ॥ श्रीमद्भागवत, १. ६. १८

४. इतिविक्रवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरं स्वरः ।

प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामो ऽप्यरीरमत् ॥ श्रीमद्भाग, १०. ३०. ४२

त एव नर लोके ऽस्मिन्नवतीर्णः स्व मायया ।

एते स्त्रीरत्न कूटस्यो भगवान्प्राकृतो यथा ॥ श्रीमद्भाग, १. ११. ३५.

५. न त्सु गोपिका नन्दनो भवान् बलित देहिनामन्तरात्मकः ।

विलसार्थितो विश्वगुप्त ये सत्त उदेयिवान्चात्कृतां कुतः ॥ श्रीमद् १०. ३३. ४

तथा - - त त्वात्सुक्यं पियौराजं मत्वा गोपास्तमीश्वरम् ।

वपिःनः स्वगतं ब्रूमायुपाषाणस्य धीश्वरः ॥ श्रीमद् १०. २६. ११

नारद भक्ति सूत्र में भी गोपियों की भक्ति के विषयमें कहा गया है --

यथा ब्रज गोपिकानाम् ॥ तत्रापि न माहात्म्यज्ञान विसृज्यमवादः । तद्विहीनं जाशपातिव । नारद भ. सूत्र, २१, २२, २३

व्रतत्त्व जथा भगवत्ता की स्पष्ट स्वीकृति है और श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण कायही परम देवत स्वरूप गृहीत हुआ है। इसी परमदेवत श्रीकृष्ण की जनन्य भक्ति का श्रीमद्भागवत के प्रतिपद में प्रतिपादन है। इस भक्ति का श्रीमद्भागवत में जो माहात्म्य स्वीकृत है उसकी चर्चा हम प्रारंभ में संक्षेप में कर चुके हैं। यहाँ हम भागवतोक्त भक्ति के विविध पक्षों पर कुछ विस्तार से विचार करना आवश्यक समझते हैं। यह विविध रूपा भक्ति ही हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य की प्राणा-शक्ति है।

भक्ति का माहात्म्य - श्रीकृष्ण में निष्काम और अव्यभिचारिणी

भक्ति ही मनुष्यता सर्वोच्च कर्म है। भक्ति से वरान्य और शुष्क तर्कादि से रहित विरुद्ध ज्ञान की उपलब्धि होती है। यदि सम्पूर्ण अनुष्ठित कर्म भगवद् भक्ति उत्पन्न न करे तो केवल श्रममात्र ही है कर्म की चरम सिद्धि तो भक्ति द्वारा भगवान् को तुष्ट करना ही है।^१ भक्ति योग से ही भगवत्तत्त्व का ज्ञान होता है उस ज्ञान से जीव की हृदय-ग्रंथि --- बंधकार --- छुल जाता है, संशय छिन्न हो जाता है और समस्त कुमाकुम कर्म का नाश हो जाता है। इसीलिए मनीषीजन्म भक्ति योग ही ग्रहण करते हैं।^२ भक्ति की पावन कारिणी शक्ति की कोई इच्छा नहीं है। पतितआत्मा भगवद् भक्ति से जितना शुद्ध होता है उतना

१. स्तावानेव लोके ऽस्मिन्पुंजां कर्मः परः स्मृतः ।

भक्तियोगी भगवति तन्नाम ग्रहणादिभिः । श्रीमद्भाग. ६. ३. २२.

स वै पुंजां परो कर्म यतो भक्तिरबोद्धते ।

बहुतुक्यप्रतिष्ठा ययात्मा संप्रसीदति ॥

वासुदेव भगवति भक्ति योगः प्रयोजितः ।

जनयत्याशु वरान्यं ज्ञानं यत्तद्वस्तुक् ॥

कर्मः स्वनुष्ठितः पुंजां विष्णुकेन कथासु यः ।

तोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

स्वनुष्ठितस्य कर्मस्य ससिद्धिर्हरि तोषणम् । श्रीमद्भाग १. २. ६. ७. ८. १३

तत्त्वम् हरितोष यत्सा विद्या तन्मतिक्रिया श्रीमद्भाग. ४. २६. ४४.

२. श्रीमद्भाग. १. २. २०.

भिक्तीहृदयं गोपिशिष्यन्ते सर्वं संशयाः ।

ज्ञायन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट्वा स्वात्मनीस्वरं ॥

जतो वै कवयो नित्यं भक्ति परमयामदा ॥

वासुदेवे भगवति कुवन्त्यात्म प्रसादिनीम् ॥ श्रीमद् १. २. २२.

कृच्छ्र चान्द्रायणादि प्रायश्चित्तो से नहीं हो सकता । प्रायश्चित्त तो
कुंजर शोचत् --- हाथों के स्नान के समान --- व्यर्थ हैं । उधार का
एक मात्र अमोघ स्त्राफ मर्ति है । सूर्य जे नीहार का नष्ट कर देता
ह वैसीही मर्तिभाषों का वात्यन्तिक ध्वंस कर देती है। मर्ति मार्ग
ही सर्वधार्य रहित, सर्व श्रेष्ठ कल्याणमय राजमार्ग है । १ यह तो रही
मर्ति की असीम पावनी शक्ति । इस से भी अधिक उसकी अनिर्वचनीय
वानन्दमयता है जिसके मधुर वास्वान के सामने बुद्धि मानु लोग स्वयं
उपस्थित हुए मोक्षरूप परिपूर्णार्थ का भी ~~साक्षात्~~ वादर नहीं करते ।
वे तो भगवान् की सेवाकरना चाहते हैं । २ मध्यकालीन सभी सगुण भक्तों
ने इस विचार को बड़ी वास्थाने हृदयंगम कर भगवद् मर्ति की दुर्लभा
को स्वीकार किया है क्योंकि भगवान् अपने सेवकों को मोक्ष तक बड़ी
सरलता से दे देते हैं किन्तु अपनी मर्ति देने में वे बड़ी कृपणता करते
हैं तथा बहुत आगा पीछा साँचते हैं । ३

१. न तथा लघ्वान् राज्ञः पूज्ये तप आदिभिः ।
यथा कृष्णार्पितं प्राणस्तत्पूज्यं निषेव्या ॥ श्रीमद्भाग. ६. १. १६.
विशेष द्रष्टव्य ----- श्रीमद्भाग. ६. १ .
२. यस्यामेव कस्य आत्मानमविरतं विविधं वृजिसंसारं परि-
तापोपतप्यमानं नुसकनं स्नापयन्तं स्तस्य परवानिर्वृत्या
तपवर्गमात्यन्तिकं परमं पूज्यार्थं स्वयमासादितं नो -
स्वाद्रियन्ते भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्ता त्वार्थाः ॥ श्रीमद्भाग. ५. ६. १७
सालोक्य साष्टिं समीप्य सारूप्यकृत्त्व मप्युत ।
कीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सकं जाः ॥ श्रीमद्भाग. ३. २६. १३
३. अस्त्येवमंगं भगवान्मज्जां मुकुन्दो ।
मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स नमर्ति योगम् ॥ श्रीमद्भाग. ५. ६. १८
गोस्वामी तुलसीदास ने यह बात यी कही है -
प्रभु कह दें सकल सुख सही ।
भगति आपनीदेन न कही । रामचरितमानस, उच्चर काण्ड प. ६१९

श्रीमद्भागवत में भक्ति का माहात्म्य सर्वत्र उक्त स्फुट है कि उसे इस लघुकालीन प्रबन्ध में संक्षिप्त तम रूप में भी उक्त क्रान्तव्य है । स्थली-पुलाक-न्याय से कुछ स्थली का देलें से उसका वाभाव हो सकता है । १

भागवत कर्म :- भारतवर्ष के भक्ति - समर्थक प्राचीन साहित्य में, जिसमें महामारुत का स्थान प्रमुख है भक्ति की साध्य और साधन-वस्थाका वर्णन नारायणीय कर्म, "सात्त्विक कर्म" के नाम से किया गया है । इसमें भक्ति के ही विभिन्न रूपों एवं मूल के कर्तव्यों का निरूपण होता है। यह कर्म पूर्ण बहिष्ता, सर्ववाद (Pantheism) पूर्ण प्रपत्ति ---- भगवच्छरणागति ---- एवं जात्मसमर्पण का कर्म है जिसका विशदवर्णन विशेषतया श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में भागवत कर्म के नाम से किया गया है । इस कर्म का मूलमंत्र यह है कि मनुष्य मन, वाणी, शरीर और बुद्धि से जो भी कर्म करे उसे भगवदर्पण कर दे । २ भगवान् को कान्तिभाव से भजे उनके नामों का संकीर्तन करे । विश्व में सबको भगवत्स्व रूपसमक कर उन्हें प्रणाम करे । उस जन्म कर्म, वर्ण, वाक्त्रन कथा जाति के कारण देखे जन्माव नहीं होना चाहिए । ३ का, अनित्यगृह, पुत्र, दुष्टम्ब, पशु वादि भौतिक पदार्थों में उसे बाध नहीं होना चाहिए ।

१. श्रीमद्भागवत. १. २ । १. ४ । १. ५ । २. ३६ । २. २५ । २. २८ । २. २६ । ३. ३२ । ११. १४ । ११. २० वादि वादि ।

२. कार्येन वाचा मनसैन्द्रियैर्वा कुतयात्मना वानुक्तास्वभावात् ।
कराति यत्कृतं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत् ॥

श्रीमद् - ११. २. ३६.

३. न यस्य जन्म कर्माभ्यां न वर्णाश्रम जातिभिः ।
सज्जोऽस्मिन्नस्मादो देह व स हरिः प्रियः ॥

श्रीमद् ११. २. ५१.

सत्त्वशुद्धि की शरण लेकर उससे श्रेष्ठता उपदेश ग्रहणकर । मनको सब बीर से जगं कर गृह, स्त्री पुत्रादि को भगवदपेक्षा कर, बाधु को, समस्त प्राणियों के प्रति यथोचित दया, मन्त्री एवं विनय, शौच, तप, तितिक्षा, मोन, स्वाध्याय, सरला, ब्रह्मचर्य, एकान्त सैवन, कथाश्रम सन्तोष, शास्त्रों में श्रद्धा, निन्दा स्तुति से पूरक रहना, सत्य भाषण, एवं चाक्षुषीय पूर्वक भगवद्गुणानुवाद का गायन करते रहना भगवत्कर्म के सामान्य लक्षण हैं । इस प्रकार साक्षात् मर्ति --- वैधी - मर्ति --- का वाचरण करते करते साक्षात् की साध्य मर्ति --- प्रेमा मर्ति --- प्राप्त हो जाती है । १

मर्ति के भेद - वस्तुतः एक होकर भी अधिकारी ^{या} ~~का~~ मात्र भेद से मर्ति के जैक भेद हो जाते हैं । २ नारद - मर्ति सूत्र में कहा गया है कि एक ही प्रेम रूपा मर्ति गुण माहात्म्या सक्ति सक्ति वादि भेदों से ग्यारह प्रकार की हो जाती है । ३ श्रीमद्भागवत में भी जैक

१. क --- श्रीमद्भागवत ११, ३, १८, ३१.

उ --- ऋषयः कीर्तनं ध्यानं हरिदुभक्त कर्मणः ।

जन्म कर्मगुणानां च तदर्थं ऽस्ति चिन्तितम् ॥

स्मरन्तः स्मारयन्तस्व मिथौ ऽघोषहरं हरिम् ।

भक्त्या सजातया भक्त्या क्षिप्त्युत्पुलकां तनुम् ॥ श्रीमद्भाग. ११, ३, २०.

३१.

२. मर्ति योगी बहुविधो मार्गेर्माभिनि भाव्यते ।

स्माकगुण मार्गेण पंथां भावो विभिन्ने ॥ श्रीमद् ३, २६, ७.

३. गुण माहात्म्या सक्ति, स्पासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सत्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, वात्सल्यनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति, परमविरहासक्ति, स्मा स्माप्यतादृश्या भवति ॥ नारदनाथे सूत्र ८२.

मदीपमदीं द्वारा मजि तत्त्व का सर्वांगीण निरूपण किया गया है ।
कही उसे निर्गुण मजि, त्रिविधा -- (सात्त्विक, राजस तामस) --
मजि, क्षुर्विधा मजि, पंचविधा मजि, षड्विधा और कही नवधा मजि
के रूप में विभक्त किया गया है ।

तामस - मजि - हिंसा, दम्भ और स्वर्णा का भाव रखकर भगवद् मजि
करना तामस मजि हैं । इसमें भी हिंसा से प्रेरित वक्ता तामस,
दम्भ से प्रेरित मध्यम तामस तथा स्वर्णा से प्रेरित उच्च तामस मजि हैं । १

राजस - मजि - विषयों की लालसा, यज्ञ कृत्वा ऐश्वर्य के लिए प्रतिभा
बादि में मद भाव से मजि करना राजस मजि हैं । इस
में भी विषया मिलाणा से प्रेरित, वक्ता राजस यज्ञो कामना से प्रेरित मध्यम
राजस तथा ऐश्वर्य लालसा से प्रेरित उच्च राजसमजि हैं । २

सात्त्विक मजि - पापदायाधे, कर्मों को भगवदपेक्षा करने के लिए कृत्वा
यज्ञ करे " यज्ञ करना कर्तव्य है " ऐसी शास्त्राज्ञा का
पालन करने के लिए ही मद भाव से ही गे मजि सात्त्विक मजि हैं ।
सात्त्विक मजि में उच्चाका त्रेणियां नहीं होती । ३

१. वमिसंधाय यो हिंसा दम्भं मात्सर्यमेव वा ।

संरम्भी भिन्नवृत्ताव मयिकुयात्स तामसः ॥ श्रीमद् ३. २६. ८.

:२: विषयानमिसंधाय यज्ञ ऐश्वर्यमेव वा ।

वपदावर्चयौ मां पथम्माव : स राजसः ॥ श्रीमद् ३. २६. ९.

:३: कर्म निहरि नुदिस्य परस्मिन्वा तदपेक्षा ।

यज्ञे यष्टव्यमिति वा पृथग भावः स सात्त्विकः ॥

श्रीमद्. ३. २६. १०.

निर्गुणमति -

क्यापि यह शब्दकुल वैचित्र्य लिए हुए तथापि मति के विरुद्ध रूपको प्रकट करने के लिए भागवतकार ने इसका प्रयोग किया है । निर्गुण मति द्वारा मत् सत्त्व, रज और तम - तीनों गुणों से क्लेश हो जाता है। निर्गुण मति का लक्षण है --मगवान् मे कारण जान्य मति होना भगवद्गुण श्रवण मात्र से मन का अविच्छिन्न गति से भगवदनुत्त हो जाना । निर्गुण मत् कैवल्य मोक्ष की ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं होता । यह निर्गुण मति योग सर्व श्रेष्ठ है । १ श्री वल्लभाचार्य ने अपने पुष्टि सम्प्रदायों इसी निर्गुण मति पर जोर दिया है । इस मति का प्रवाह बहुत ही तीव्र होता है । २ मत् जब अपने वन्तः कारण में भगवान् का ध्यान करता है तब भगवान् उस पर अग्रह करते हैं और वह लौकिक वैदिक कर्मों में वास्तव अपनी बुद्धि को भगवद् मति की ओर ले जाता है । ३

१. भगवद्गुण भुक्ति मात्रेण मति सर्वे गुहाशये ।

मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गा ममसा ऽम्बुषा ॥

लक्षणं मत्तियोगस्य निर्गुणं स्य सुदाहृतम् ।

वस्तुव्यवस्थिता या मतिः पुरुषोत्तमा ॥

स एव मत्तियोगारब्ध वात्यन्तिक उदाहृतः ।

क्याति क्रय्य त्रिगुण मद्मावायोपपन्नः ॥ श्रीमद् ३, २६, ११, १४.

२. सर्वात्मन्यच्युते सर्वे तीव्रोष्णं मत्तिमुदहृतम् ॥ श्रीमद् ४, १२, ११

३. यदात्मनुगृहाति भगवानात्ममावितः ।

स जहाति मतिं लोकै वैदं च परिनिष्ठताम् ॥

श्रीमद्भाग ४, २६, ४६.

एकान्तिक भक्ति - जन्य भक्ति ही एकान्तिक भक्ति है । श्री मद्भग -

वद् गीता में कीक स्थलों पर इतना उल्लेख हुआ है । १

भगवान् के अतिरिक्त नती किसी अन्य देवता वादि का आश्रय लेना और न किसी बात विषय - मोग की इच्छा करना जन्य भक्ति है । नारद भक्ति सूत्र में भी अन्याश्रय के त्याग का विधान बताकर एकान्तिक भक्ति की पुष्टता स्वीकार की गई है । २ श्रीमद्भागवत में जन्य कथा एकान्त भक्ति की तत्पुरुषों के लिए भी दुष्प्राप्य बताकर उसके द्वारा केवल भगवत्प्राप्ति ही परमप्राप्य मानी गई है बात विषय नहीं । ३

अविद्या भक्ति - जीव को किसी न किसी भाव द्वारा भगवान् में अपने

चित्त को लाना चाहिए । जीव-कोटि की सीमा में बाध होने के कारण वह काम, क्रोध, लोभ मोह, ईर्ष्या, राग, द्वेष, मय वादि पाशों से निरन्तर बंधा हुआ है उसे पीछा छुड़ाना उसके लिए सरल कार्य नहीं है। तब उसे ब्याकरना चाहिए ; पाशमुक्त होने के लिए उसे अपने समग्र मनोविकारों को भी भगवान् की ओर मोड़ देना चाहिए । भक्ति

१. क - तेषां ज्ञानी नित्य युक्त एक भक्तिर्विशिष्यते । गीता. ७. ३६

त- जन्य ज्ञेयाः सततं योगां सरति नित्यतः ।

तस्याहं जुलः पार्थ नित्य युक्तस्य योगिनः ॥ गीता ८. १४

ग - अन्याश्रित्यन्तर्गतो मां ध्यानाः पर्युपासते ।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।

येऽप्यन्य देवता भज्ता यजन्ते ब्रह्मान्विताः ।

तेऽपि मामेव कान्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥ गीता ९. २२, २३

घ - सर्वेषां न्यरित्यज्य मामेकं शरणं कृतम् । गीता १८. ६६.

२. अन्याश्रयाणां त्यागी नन्यता । भज्ता एकान्तिनो मुत्याः ।

नारदभक्ति सूत्र, सूत्र १०. ६०

३. तं दुराराध्यमाराध्यस्ततामपि दुरापया ।

एकान्त मत्स्याको वाश्चेत्पादमूलं विना बहिः ।

श्रीमद्भाग. ४. २४. ५५.

शास्त्रों में ऐसा विधान है । १ श्रीमद्भागवत में कहा गया है, भगवान् में मन लगाने के पांच उपाय हैं । उन पांच उपायों में से किसी के भी द्वारा उनमें ऐसा मन लावे कि उनसे पृथक् कुछ भी दिखे न दे। वे पांच उपाय हैं - १. सुदृढ वर, २. सुदृढ राग, ३. मय, ४. संह, और ५. काम ।^२ सुदृढ वरानुबन्ध से मनुष्य भगवान् में जितना तन्मय होता है उतना सुदृढ राग से भी नहीं होता । उदाहरणतया भुंगी कीट हज्ज किसी अन्य कीट को पकड़ कर दीवार पर काट कर उसे हिट में बंद कर देता है तो वह बंदी कीट भय और उद्वेग के कारण प्रतिक्षण भुंगी कीट का स्मरण करते करते तद्रूप हो जाता है । इसी प्रकार राम कृष्ण में निरन्तर वरानुबन्ध रहने के कारण रावण, शिशुपाल वन्धु का जो दि तन्मय भूत हो गए थे और इस प्रकार निष्प्राय होकर उन्होंने साकुन्य मुक्ति प्राप्त की ।^३ उपर्युक्त पांचों उपाय कुम्भ भी हैं । सुदृढ वर से रावण, शिशुपालादि, सुदृढ राग --- प्रेमा - है मक्ति से --- नारदादिमुनि जानें, मय से कंठे, संह से युधिष्ठिर कुन्नादि पाण्डवों ने और काम से गोपियों ने भगवत्स्वयं की उपलब्धि की है । यादव गण तो केवल भगवत्स्वयं मात्र से तद्रूप हो गए थे ।^४

१. तदपि तात्त्राचारः सन् कामं क्रोधाभिमानादिकं तस्मिन्नेव करणीयम् । नारदमहिम्नं सूत्र, सूत्र ६५ .

२. तस्माद् वरानुबन्धे निवेशेन वा ।

संहा त्वमेव वा युञ्ज्यात्स्वयंचिन्नेदाते पृथक् । श्रीमद् ७. १. २५.

३. श्रीमद्भागवत ७. १. २६-२८.

४. गोप्यः कामादभयात्करो देवाञ्ज्यादयो नृपाः ।

तन्वन्वावद् वृष्णायः संहापूयं भक्त्या कयं किमौ । श्रीमद् ७. १. ३०

कामं क्रोधं मयं संहमेकं सोऽहमेव च ।

नित्यं हरो विदधतो यान्ति तन्मयतां स्ति । श्रीमद् १०. २६. १५.

उक्त विवेक से स्पष्ट हो जाता है कि मनको भगवान् में लाने के लिए किसी न किसी प्रकार के माव का वाक्य लेना पड़ता है, किन्तु मावों के होने के लिए कुछ प्रत्यक्ष शरीरिक क्रियाओं और चेष्टाओं की सहायता आवश्यक है। इन क्रियाओं से मछि का वह क्रियात्मक रूप हमारे सामने आता है जिसे शास्त्रीय भाषा में वधी मछि कहते हैं।

वधी स्वं रागानुगा मछि - (क) - वधी मछि - श्रीमद्भागवत

में अत्यन्त विस्तार से द्विविध मछि - (वधी स्वं रागानुगा मछि) का निरूपण है। वधी का अर्थ है वात विधियों वाचारा, प्रतिमा पूजा आदि के द्वारा की गई भगवद् मछि। जब वधी मछि के द्वारा साधक का मन स्वाभाविक रूप से भगवदनुत्त हो जाता है तब वह रागानुगा मछि -- सुदृढ़, गाढ, आत्मछि -- का वात्स्वदन करने लगता है। अतः कहना चाहिए कि वधी मछि रागानुगा मछि का साधन है।^१ श्रीमद्भागवत में क्रिया योग^२ चार भाग तर्ज के अन्तर्गत वधी मछि का ही वर्णन है। वधी मछि तीन प्रणालियों से की जाती है,^३ १. वैदिक, स्तांक्रि और २. मिश्र।^४ मछि को शरी, दात्मयी, लोही, लेप्या, लेख्या, लेखी, मनोनयी और मणिमयी इन आठ प्रकार की भगवत्प्रतिमाओं और श्री वत्सु आदि चिन्हों का धूप, दीप,^५ नैवेद्य, तुलसीदल, पुष्प, चन्दनादि से श्रद्धा सहित पूजा करना चाहिए। भगवान् के गुण, लीला और नामों का स्मरण, बार बार होकर भगवत्स्तुति करना

१. मत्स्या उवाच मत्स्या क्षित्युत्पुलकां तनुम् । श्रीमद् ११. ३. ३१

२. श्रीमद्भागवत ११. २७.

३. वैदिकस्तांक्रिही मिश्र इति मे त्रिविधो भवः ।

त्रयाणामीषितैरेव विधितानां समर्चयत् ॥ श्रीमद् ११. २७. ७.

४. सुदर्शन पांचजन्यं गदासीमकुण्डलान् ।

मुक्तां कास्तमं मालां श्रीवत्सं चानुपूजयत् ॥

वेधी भक्ति के अन्तर्गत आता है। भक्ति शास्त्र में वेधी भक्ति को 'मर्यादा मार्ग' कहकर भी पुकारा गया है। १

(ख)- रागानुगामि - इष्ट वस्तु में स्वाभाविक प्रेम मय कृष्णा को 'राग' कहते हैं। २ यह राग सुखानुशयी होता है। भक्त की अपने इष्ट देवके प्रति स्वाभाविक आविष्टता रहती है। वह प्रतिष्ठापन उसी के भावावेशों रहता है और तन्मय हो जाता है ब्रजोंगनाओं की भक्ति ऐसी ही है। ब्रज की गौपियों में कृष्ण के प्रति जिस तीव्र रागात्मिका भक्ति का वर्णन श्रीमद् भागवत में पाया जाता है उससे गौपियों की कृष्ण तन्मयता का पूरा पूरा स्वरूप व्यक्त हो जाता है। 'तन्मयता' ही रागात्मिका भक्ति का लक्षण बताया गया है ३ रागात्मिका वृत्तियों का अनुसरण करते हुए की जाने वाली भक्ति 'रागानुगामि' कहलाती है। काम, क्रोध, द्वेष, मय, स्नेह आदि सभी वृत्तियाँ राग हैं। इन में से किसी भावको भी लेकर की गई भक्ति रागानुगा भक्ति होगी। इनमें से किसी भी भावका आश्रय लेकर मन को भगवान् में लगा'ओं से तन्मयता प्राप्त हो जाती है। ४ 'काम' सबसे अधिक प्रबल राग है क्योंकि काम में इष्ट के सामीप्य की कामना अत्यन्त उत्कट रूप से विद्यमान रहती है। गौपियों की भक्ति काम रूपा है ५ किन्तु उनकी इस काम

१. वेधी भक्तिरियं केशिचन्मर्यादामार्ग उच्यते ।

श्रीहरिभक्तिरसामृतसिन्धु पृ. ८०.

२. श्रीहरिभक्तिरसामृत सिन्धु, पृ. ८०

३. तन्मयी या भवेद् भक्तिः सात्र रागात्मिका विता। वही पृष्ठ ८०.

४. कामाद् द्वेषाद्मयात्स्नेहात् यथा मत्स्नेहवत् मनः ।

आमिष्य तदर्थं हित्वा बल्वस्तदुपतिंगताः ॥ श्रीमद् ७. १. २८

५. श्रीमद्भागवत ७. १. ३०.

हमारी भक्ति में यह विशेषता है कि उन्हें निरन्तर श्रीकृष्ण के पर प्रसन्न रूप माहात्म्य का ज्ञान बना रहता है । १

प्रेमा भक्ति - ब्रज गोपिकाओं की काम रूपी भक्ति ही अपने उज्ज्वल - तम रूप में 'प्रेमाभक्ति' हो जाती है । मीमा, प्रह्लाद, उद्धव और नारद की भक्ति भी इसी प्रकार की हैं । बिच की वतिरूप कोमलता और मत्त्व का वतिरूप गाढ़ भाव प्रेम कहलाता है । भगवान् के प्रति मत्त्व प्राप्त कर लेना भक्ति का सर्वोच्च सोपान है । यही प्रेमाभक्ति है । २

बहुविधा कथवा षडंगी भक्ति - भगवान् में दृढ़ प्रेमाभक्ति प्राप्त करने के लिए श्रीमद् भागवत में बहुविधा कथी भक्ति का भी एक स्थल पर विधान किया गया है । इस भक्ति के छह अंग ये हैं - १. प्रणाम, २. स्तुति, ३. सर्व कर्मपणा, ४. उपासना, ५. ध्यान तथा ६ कथा श्रवण । इन छह अंगों से युक्त कथी भक्ति बिना मनुष्य को भगवान् की प्रेम लक्षणभक्ति प्राप्त होना कामव है । ३

१. यथा ब्रजगोपिकानां । कृतनापिमाहात्म्यज्ञानं ^{विस्तृत} ~~विस्तृत~~ ह्यवादः ।

नारदभक्ति सूत्र - २१, २२.

यत्पत्न्यस्य दुहदामनुवर्तिनं स्त्रीणां स्वर्ग इति कविना त्वमाका
वस्तुचैवतदुपदेशमदं त्वयीति प्रेषां मवांस्तनुमतां किल वन्दुरात्मा ॥

श्रीमद् १०, २६, ३२

२. कान्य ममता विष्णो ममताम संगता ।

भक्तिरित्युच्यते मीमा प्रह्लादोद्धव नारदः ।

नारद पंचरात्र वे म, १, चिन्धु में उक्त पृ. ११५

३. तत्तुष्टे नमःस्तुति कर्मपणाः

कर्म स्तुतिश्चरणयोः श्रवणं कथा नाम ।

संवेद्या त्वमि किमेति षडंगीया किं

भक्तिं जाः परमसंगतां लेत । श्रीमद् ७, ६, ५०.

नवधा भक्ति - एक अन्य स्वरूप पर श्रीमद्भागवत में नौ लक्षणों वाली भक्ति का उल्लेख हुआ है । १ नवधा भक्ति के लक्षण ये हैं -- १. श्रवण, २. कीर्तन, ३. स्मरण, ४. पादसेवन, ५. वर्णन, ६. वन्दन, ७. दास्य, ८. सारथ्य, और ९ वात्सल्य निवेदन । इस नवधा भक्ति के कुछ लक्षण तो वैष्णव भक्ति में जाते हैं और सारथ्य वात्सल्यनिवेदनादि कुछ रागाभुजा भक्ति के अन्तर्गत । नवधाभक्ति के द्वारा भी प्रेम लक्षणाभक्ति को प्राप्त करता ही भक्ति का लक्ष्य होता है । उपर्युक्त लक्षणों से कुछ अन्तर के साथ नवधा भक्ति का निरूपण गोस्वामी तुलसीदास ने राम चरित मानस में भी किया है । २ श्रीमद्भागवत में उत्तरस्थलों पर उक्त नवधा भक्ति के श्रवण कीर्तन, स्मरण आदि प्रकारों का वर्णन किया गया है । ३ श्रीमद्भागवत में नवधाभक्ति के लोक उदाहरण हैं । ४ भक्तों में प्रसिद्ध निम्न लिखित श्लोक में नवधा भक्तों की जो सूची दी गई है उसका आधार सम्मन्तः श्रीमद्भागवत ही सात होता है क्योंकि इन सभीकी सविस्तर कथा इस पुराण में है --

१. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवकम् ।

वर्णनं वन्दनं दास्यं सारथ्यमात्मनिवेदनम् ॥ श्रीमद् ७. ५. २३.

२. प्रथम भगति संतुष्टकर संगे । दूसरी रति मम कथा प्रसंगे ॥ इत्यादि
रा. भा. वारण्य काण्ड प. ४०३

३. श्रद्धालु में कथाः शृण्वन् सुमद्रा लोकपावनी : ।

गावन्नुस्मरन्कर्म जन्म चाभिनयन्मुहुः ॥ श्रीमद् ६९. १९. २३

४. श्रीमद् भागवत . १०. ८३.

श्री विष्णोः श्रवणे परीक्षितमवत् कयासकिः कीर्तने ।

प्रह्लादः स्मरणे तदपि भजे लक्ष्मीः प्रभुः पूजे ॥

कूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिदास्ये^थ शरव्येऽर्जुनः ।

सर्वस्वात्मनिवेदने बलिमुत कृष्णाप्तिरेव० परा ॥ १

मछि के साधन -

मछि भगवत्कृपा का लभ्य है इसमें कोई सन्देह

नहीं किन्तु भगवत्कृपा का पक्का बनने के लिए भी
मछिशास्त्री ने कतिपय साधन बताए गए हैं । इन साधनों को करते
करते भगवान् की कृपा से उनकी प्रेमा मछि प्राप्त हो जाती है ।^२
श्रीमद्भागवत में श्लोकः स्थितो पर मछि के साधनों का निरूपण किया
गया है । संक्षेप में, वे साधन ये बताए गए हैं । १, श्रद्धापूर्वक भगवत्कथा
श्रवण २, निरन्तर भगवन्नाम संकीर्तन ३, पूजा में तत्परता, ४,
स्तुतियों द्वारा भगवत्स्तवन, ५, भगवत्प्रतिमा को साष्टांग प्रणाम,
६, भगवत्पदों की विशेष पूजा, ७, समस्त प्राणियों में भगवद्दृष्टि
८, सर्व कर्मापण स्वं ज्ञात समर्पण ।^३ इनमें से बन्धित साधन की
चर्चा श्रीमद्भागवद्गीता में भी विशेष रूप से की गई है । ४

१. मछिशामुत्तसिन्धु --- श्री स्व गौस्वामी --- पृ० ८७.

२. तस्याः साधनानि नायन्त्याचार्याः । तत्तु विषय त्यागात्
संत्यागाच्च । अव्यावृत्त भजनात् ।

तीर्थे ऽपि भगवद्गुण श्रवण कीर्तनात् । नारदमहि उत्र ३४

मुख्यतस्तु नस्तत्पदैश्च भगवत्पालेक्षाद्वा । ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ७६

मछि शास्त्राणि मननीयानि । तदुद्बोधकं स्मार्ण्यपिकरणीयानि ।।

३. श्रद्धामतल्यायां मे सशक्तमवत् कीर्तनम् ।

परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम । ज्ञापि श्रीमद्, ११, १६.

२० - २४

४. ब्रह्माते ऽप्यसमर्था ऽपि मत्कर्मपरमो भव ।

मदर्थमपिर्माणि कुर्वन् सिद्धिमाप्स्यसि ।। गीता १२, १०.

मछ लक्षण - परम भगवद्भक्त का लक्षण है जब बीर से निर-
पेदा होकर भगवान में निर लीकर तन्मय हो जाना ।
भगवद्भक्त भगवान् की छोड़कर योग सिद्धि, भूगण्ड का वाचस्पत्य
सार्वभौमराज्य, इन्द्र पद, मोक्ष और ब्रह्म पद की भी कामना नहीं
करता । १ वह स्वभावतः अकिञ्चन प्रीतिन्द्रिय शान्त, सर्व भूत
हित र बीर समस्त कामनाओं से रहित होता है । २ उस को मन
श्रीकृष्ण के चरण कमलों में, वाणी गुणगान में, कान क्या श्रवण
में, मन भगवद्भक्तों के दर्शन में, प्राणान्द्रिय भगवच्चरणों पर पड़ी
सुतपी के गंध ग्रहण में, ओं --- त्वचा --- भगवद्भक्तों का कोस्पर्श
करने में रसना नवय में हाथ श्रीहरि के मंदिर का भाजन करने में,
पर भगवद्भक्तों की वाचा में तथा शिर श्रीकृष्ण की चरण वन्दना
में लगे रहता है । ३ मछ के तात्त्विक अनुभाव उदय होने पर उसकी
वाणी गद्गद् और निर प्रवी-भूत हो जाता है वह कभी बाराबार
रोता है, कभी हसता है, कभी निःसंकोच होकर उच्च स्वर से गाने
लगता है और कभी नाच उठता है । ४ प्रनामछि सम्मन्त्र मछ के
इस प्रकार के लक्षण श्रीमद्भागवत में जोर स्थलों पर कहे गए हैं ।

१. न पार्श्वेच्छां न परेन्द्रधिष्यं न सार्वभौमं स्वाधिमत्सु ।

न योगलिङ्गीरसुर्मनं वा भक्तिक्रीडात्प्रेक्षति भक्तियान्त्र्यत् ॥ श्रीमद् ११. १४

१४

२. श्रीमद्. ११. १४. १३ ~~न~~ ११. १४ व १०. ७

३. श्रीमद् ६. ४. १८-२०.

४. क -- मेद्विजितं गानं शृणु हर्षः ॥ श्रीमद् २. ४. २४

ख -- पान्गद्वदा प्रवते यस्म चितं स्मृत्यभीक्ष्णं एतति कवचिज्ज।

वित्त्य उद्गायति नृत्तयै च मधुमति मुञ्चते मुक्तं पुनरिति ।

श्रीमद् ११. १४. २४.

मऊ - महिमा -

मऊ की अन्त महिमा का हस्त बढ़कर कोई प्रमाण नहीं हो सकता कि भगवान् स्वयं उसकी महिमा काव्यापन कर और स्वयंका पवित्र करने की कामना से मऊ की चरण रज के लिये सदा उसके पीछे चलें । ^१ भगवान् निरन्तर अपने भक्तों के अधीन रहते हैं क्योंकि मऊ भगवान् के हृदय पर अधिकार कर चुके हैं । भगवान् एक बार अपनी वात्मा बोरखपाप्मी लक्ष्मी का भी परित्याग कर सकते हैं किन्तु अपने मऊ को कभी नहीं छोड़ सकते । मऊ भगवान् के हृदय रूप हैं और भगवान् भक्तों के हृदय रूप । ^२ अपना अपराध करने वाले को भगवान् क्षमाकर देते हैं किन्तु मऊ का अपराध करने वाले को वे कदापि क्षमा नहीं करते । मऊ स्वयं ही अपने अपराधीको क्षमाकर तो करे अन्यथा मऊ का अपराध क्षमा करने की शक्ति स्वयं भगवान् में भी नहीं है । मऊ की इस क्षमा शक्ति और मऊ का लोकोत्तर माहात्म्य प्रकट करने के लिए श्रीमद्-भागवत में मऊ प्रवर राजा बम्बरीष भी मनोहारिणी वात्सा भिक्षा है जिसमें बताया गया है कि मऊ का अपराध करने वाले दुर्वासि कृष्ण को अन्त में उसी की चरण में जाना पड़ा । ^३ भगवान् की प्रतिज्ञा है

१. निरपेक्षां मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।

कुत्रचा म्यहं नित्यं पूजयेदङ्घ्रिणुभिः ॥ श्रीमद् ११, १४, १६.

२. अहं मऊ पराधीनो सस्वतन्त्र इव दिव ।

साधुभिर्गृह्यता हृदयो मऊमऊ जप्रियः । ।

नास्मात्मानमाशासे मऊः साधुमिदिता ।

त्रियं वात्यन्ति की ब्रह्मन्धेणां गतिरहं परा ॥

साधवां हृदयं मल साधूनां हृदयं त्वहम् ।

मदन्यत्त न जानन्ति नाहं तैम्यो मनागपि ॥ श्रीमद् ६, ४, ६३, ६४, ६८

३. श्रीमद् भागवत. ६. ४. ५.

कि उसी मछ का तिरस्कार करने कीसृष्टि विश्व में किसी के पास नहीं है । १

निष्कर्ष

इस अध्याय में विवक्षित विषयों पर हम निम्नांकित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं ।

१. परमार्थतः निर्गुण ब्रह्मा प्रति पावन करते हुए भी व्यवहार में श्रीमद्भागवत में सगुण ब्रह्म की उपासना का विधान किया है और ब्रह्मचारी विष्णु को परमार्थ माना है ।
२. माया मूल्य विग्रह पारी विष्णु ही श्रीकृष्ण है । श्रीकृष्ण ही पर ब्रह्म है ।
३. शुद्धज्ञान की कौटुम्हिका मछि गुह्यतरा है । मछि बाक नही बाध्य है ।
४. निर्गुण प्रेमा मछि प्राप्ति करना पुरुषका परम पुरुषार्थ होना चाहिये ।

१. न कश्चिन्मत्परं लोकं तेजसा यज्ञा त्रिया ।

विमृतिभिर्वाभिर्बद्धोऽपि किमु पार्थिवः ॥

श्रीमद्भागवत. १०. ७२. ११.

तृतीय अध्याय

भारतवर्ष के प्रमुख वैष्णव सम्प्रदायों में श्रीमद्भागवत का स्थान

(पृ० ११४- १५४)

तृ ती य अ ध्या य

"भारतवर्ष के प्रमुख वैष्णव सम्प्रदायों में श्रीमद्भागवत का स्थान"

दृष्टि कोण—

भारतवर्ष के दर्शन में सर्वत्र मानव की आत्मन्तिक लेशा-निवृत्ति का प्रयत्न दृष्टि-गोचर होता है। इस प्रयत्न को ही "धर्म" नाम से अभिहित किया गया है। इस धर्म के साधन-रूप में यहाँ ज्ञान, कर्म तथा उपासना की त्रिवेणी सनातन काल से प्रवहमान है। इस त्रिवेणी का उद्गम तो भारतीय तत्त्व-ज्ञान के आगार वेद ही हैं, किन्तु उनके उपवृद्धित रूप ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, सूत्र, स्मृति एवं पुराणों में उस त्रिवेणी का संगम हमें स्पष्ट लक्षित होता है। देश-काल की आवश्यकताओं के अनुसार भारतवर्ष में कभी तो ज्ञान-भागीरथी की धारा प्रखर प्रवाह धारण कर लेती है, कभी कर्म-काशिनी में उत्ताप तरंगें उठने लगती हैं, और कभी उपासना की गुप्त सरस्वती प्रत्यक्ष हो जाती है। भारतवर्ष के धार्मिक और सांस्कृतिक इतिहास का अध्ययन करने से इसी तथ्य का अनुभव होता है।

प्राचीन भारत के ब्राह्मण-काल में बौद्धिक तत्त्व-चिन्तन अपनी चरम सीमा में पहुँच गया, जिसका चरमोत्कर्ष हमारा उपनिषद् साहित्य है। किन्तु इस निष्क्रिय तत्त्व-चिन्तन के उपरान्त कर्म-प्रधान युग आया, और कर्म-मीमांसा होने लगी। किन्तु जब कर्म-काण्ड भी जीवित्व की सीमा का अतिव्रमण कर गया तो तथागत गीतम बुद्ध ने पैराग्य और ज्ञान-प्रधान अपना धर्म-चक्र चलाया जो कई शताब्दियों तक भारतवर्ष में घूमता रहा। किन्तु कालान्तर में बौद्ध धर्म जिन जटिल व्यापारों एवं विरूप धर्म-साधनाओं में परिवर्तित हो गया, उनका निराकरण युवा सन्यासी शंकर (वि० सं० ८४५) के अद्वैत-ज्ञान-प्रधान वैदिक धर्म के द्वारा हुआ। दो शताब्दियों तक शंकर के वेदान्त का शासनाद भारत में गूँजता रहा, किन्तु बाद में उसकी तुमल ध्वनि से भी भारतीय हृदय दहल उठा और उसने वैष्णव आचार्यों द्वारा निनादित ^{मिथान} मुरखों को हृदय-हारिणी स्वर-तहरी में ही परमानन्द का अनुभव किया। इसी सक्षम सीमाग्य से भक्ति के चरम स्वरूप और आदर्श का दिग्-दर्शन कराने वाले श्रीमद्भागवत महापुराण का स्निग्ध प्रकाश अखिल भारतवर्ष में फैल गया।

जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, तात्त्विक दृष्टि से श्रीमद्भागवत ने भी अद्वैत ब्रह्म-वाद का ही प्रतिपादन किया है, किन्तु उसने लोक-जीवन के व्यावहारिक पक्ष में सर्वत्र भक्त्यैक-सम्य सगुण ब्रह्म भगवान् की भक्ति का ही उद्घोष किया है। भारत के विभिन्न वैष्णव जाचार्यों ने श्रीमद्भागवत को अपने मत के प्रधान प्रतिपादक के रूप में ग्रहण किया है, विभिन्न दृष्टि-कोणों से उसका अध्ययन तथा स-तर्क विवेचन प्रस्तुत किया है। यहाँ हम भारत के प्रमुख वैष्णव जाचार्यों तथा उनके सम्प्रदायों का उल्लेख कर यह दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि उनमें श्रीमद्भागवत की कितनी मान्यता है, क्योंकि तत्तत् सम्प्रदायों के अनुयायी कवियों और भक्तों ने श्रीमद्भागवत से प्रभावित होकर परवर्ती काल में विविध प्रकार के कृष्ण-भक्ति काव्य का सर्जन किया है।

भारतवर्ष के धार्मिक इतिहास से विदित होता है कि ईसा की दसवीं शताब्दी से वैष्णव धर्म ने एक व्यवस्थित शास्त्रीय रूप धारण करना प्रारम्भ कर दिया था। दसवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक निम्नलिखित वैष्णव सम्प्रदायों की स्थापना हो चुकी थी :-

१- श्री विष्णु-स्वामी द्वारा प्रवर्तित शुद्धाद्वैत-वादी रुद्र-सम्प्रदाय ९वीं शताब्दी^१

२- श्री रामानुजाचार्य द्वारा प्रवर्तित विशिष्टाद्वैत-वादी श्री-सम्प्रदाय

१०३७ से ११३७ ई०

३- श्री निम्बार्कचार्य द्वारा प्रवर्तित द्वैताद्वैत-वादी सनक-सम्प्रदाय ११६२ ई०

४- श्री मध्वाचार्य द्वारा प्रवर्तित द्वैत-वादी सम्प्रदाय ११९७ से १२७६ ई०

उक्त चार जाचार्यों के तत्व-ज्ञान से प्रभावित होकर परवर्ती अनेक जाचार्यों ने अपनी मौलिक प्रतिभा एवं तत्व-चिन्तन के आधार पर और भी वैष्णव सम्प्रदायों की स्थापना की, जिनके समय १४वीं शताब्दी से १६वीं शताब्दी तक विस्तृत है। प्रमुख सम्प्रदायों का उल्लेख नीचे किया जाता है :-

१- डा० दीन दयालु गुप्त ने वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार विष्णु-स्वामी सम्प्रदाय के जाचार्य वित्त्वमंगलाचार्य को शंकर का समकालीन माना है। देखिए- अष्ट-उप और वल्लभ सम्प्रदाय, प्रथम सं० पृ ४१ । किन्तु कांश ने विष्णुस्वामी को १३वीं शताब्दी में माना है। दे०-"ए हिस्ट्री आफ़ संस्कृत लिटिचर", अध्याय-"फ़िलासुफी एण्ड रिलीजन", पृ० ४७६ ।

- १- श्रीरामानन्द का विशिष्टाद्वैत-वादी सम्प्रदाय ।
- २- श्रीवत्सभाचार्य का शुद्धाद्वैत-वादी पुष्टि-सम्प्रदाय ।
- ३- श्रीचैतन्य महाप्रभु का अचिन्त्य-भेदाभेद-वादी सम्प्रदाय ।
- ४- श्रीहितहरिवंश का राधावत्समीय सम्प्रदाय ।
- ५- श्रीहरिदास का सखी-सम्प्रदाय ।

१०वीं शताब्दी से १६वीं शताब्दी तक हुए सभी वैष्णव आचार्यों ने अपने साम्प्रदायिक ग्रन्थों की रचना संस्कृत में की। ब्रज-भाषा का प्रचार होने पर भी शास्त्रीय विवेचन का माध्यम संस्कृत भाषा ही रही। श्रीमद्भागवत को सभी भक्ति-शास्त्र का भक्ति प्रमाणिक प्रस्थान-कल्प ग्रन्थ मान कर चलते रहे।

श्रीरामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत-वादी सम्प्रदाय और श्रीमद्भागवत

यद्यपि श्रीरामानुजाचार्य ने श्रीमद्भागवत पर कोई टीका नहीं लिखी, तथापि इनके सम्प्रदाय के परवर्ती आचार्यों ने श्रीमद्भागवत को अपने सम्प्रदाय में बड़ा महत्व-पूर्ण स्थान प्रदान किया और उसकी टीका लिखी। श्रीवीरराघवाचार्य की स्पष्ट उक्ति है कि "श्रीमद्भागवत महा-पुराण की व्याख्या अनेक विद्वानों ने की है। भक्ति-राज श्री रामानुज ने अपने शिष्या से मुझ मन्द-भक्ति को भी जो प्रशस्त मार्ग दिखा दिया है, उसी का अनुसरण करते हुए मैं श्रीमद्भागवत-व्याख्यारूप इस दुष्कर कार्य को पूर्ण करने का अभिलाषी हूँ। कृपया सुधी-जन मेरा साहस क्षमा करें। सत्यवती-सुत बादरायण व्यास ने गर्भ-जन्म-वरा-मरण-आदि सांसारिक दुःखों से उपहत और वेदार्थ को न जानने वाले प्रकृत जनों को देख कर दयालुता-वश उनका उद्धार करने के हेतु वेद की दो प्रकार से व्याख्या की। अपने शिष्य जैमिनि से उन्होंने पूर्व-मीमांसा की रचना करायी, तथा स्वयं शारीरक-सूत्रों से उत्तर-मीमांसा की रचना की। पूर्व भाग के उपबृंहण के लिए तो उन्होंने पंचम वेद की भांति प्रसिद्ध महाभारत का निर्माण किया और मुख्यतया उत्तर भाग के उपबृंहण के लिए श्रीमद्भागवत की रचना की।" इस कथन से स्पष्ट है कि रामानुज मत में श्रीमद्भागवत को ब्रह्म-सूत्रों की व्याख्या के रूप में स्वीकार किया गया है। उसे वेदान्त

के तत्त्वार्थ को उपबृंहित करने वाले महा-पुराण की संज्ञा दी गयी है। श्रीरामानुज-मत का अन्तरद्वारा अध्ययन करने से अनुभव होता है कि उसमें व्यवहार-पदा में श्रीमद्भागवत की भक्ति या प्रपत्ति तथा अध्यात्म-पदा में उसका अद्वैत-दर्शन कुछ विशिष्टता के साथ ग्रहण किया गया है। इसीलिए सैद्धान्तिक दृष्टि से इस मत का नाम "विशिष्टाद्वैत-मत" है।

सिद्धान्त

श्रीरामानुजाचार्य के अनुसार ब्रह्म चिदचिद्विशिष्ट है। वह चित् भी है और अचित् भी। शंकर ने निर्गुण ब्रह्म को ही ब्रह्म का पारमार्थिक रूप माना था, और सगुण की मायिका। किन्तु रामानुजाचार्य के ब्रह्म को परमार्थतः सगुण माना। माया का उनके मत में कोई स्थान नहीं। जीव और जगत् उसी अंशी ब्रह्म के अंश हैं, अतः सत्य हैं। अन्तर्मायिन्, सूक्ष्म, पूर्णावतार, अंशावतार तथा अर्चावतार प्रतिमा के क्रमशः सूक्ष्मतर रूपों में ब्रह्म अभिव्यक्त होता है। साधक भक्ति-पूर्वक दृष्टि-प्रतिमा के अर्चावतार-रूप की उपासना के प्रथम सीपान से बढ़ता अन्तर्मायिन् की गाढ अनुभूति के चरम पद तक पहुँचता है। जीव के उद्धार का मार्ग भक्ति-मार्ग है। भक्ति के द्वारा अंश अंशी ब्रह्म से सादात्म्य प्राप्त कर लेता है।

१- श्रीमद्भागवतं पुराणमस्मिन् व्याख्यातुमिच्छन्
व्यासार्थैर्यतिराजभाष्यवचसामहं बुधानां मुने ।
मन्दानामपि मादृशामवाप्सामाहं तथा दर्शितं
मन्वानं समुपाश्रितो विवृणुयां मत्सारात्तं काम्यताम् ॥

गर्भ-जन्म-वरा-मरणादि-सांसारिकदुःखोपहतानकालवेदार्थान् जनानकलोभानुकम्पित-
मनास्तदुन्निजवीक्षितानि - - - केन व्याचित्यासुस्तावत्स्वशिष्येण भावता जैमिनिना महर्षिणा
पूर्वभागे व्याख्याय, स्वमुत्तरभागं समीचीनैः शारीरकव्याख्याय प्रायशः पूर्वभागीय-
बृहणात्मकं पञ्चमवेदत्वेन प्रसिद्धं श्रीमहाभारताख्यमितिहासं निर्माय, प्राचान्येन वेदान्ता-
धीपबृहणात्मकं श्रीमद्भागवताख्यपुराणमलं चिकीर्षुः - - - ।"

श्रीमद्भागवत, श्रीवीर-राघव-कृत टीका, बृन्दावन सं० उपोद्घातः पृ० ७।

श्रीमद्भागवत एवं श्रीनिम्बार्कचार्य का द्वैताद्वैत मत

श्रीनिम्बार्कचार्य भारतवर्ष में कई नामों से प्रसिद्ध हैं, यथा निम्बादित्य, भास्कराचार्य, नियमानन्द आदि। इनके स्थिति-काल के सम्बन्ध में भी विद्वान् में मत-भेद है। अधिकतर विद्वान् इन्हें रामानुजाचार्य सन् १०३७ ई० से ११३७ ई० का पश्चाद्वर्ती तथा आनन्दतीर्थ श्रीमध्वाचार्य का समकालीन मानते हैं। डाक्टर भण्डारकर के मतानुसार इनका समय ११६२ ई० है।^१ निम्ब अथवा नीम के वृक्ष पर विष्णु के सुदर्शन चक्र का आवाहन कर सूर्य के प्रकाश का समत्कार इन्होंने जैन साधुओं को दिखाया और उन्हें भोजन कराया — ऐसी समत्कार-कथा निम्बार्क-सम्प्रदाय में प्रचलित है। तभी से इनका नाम निम्बार्क अथवा निम्बादित्य पड़ा। इस सम्प्रदाय की आचार्य-परम्परा में निम्बार्क चौथे स्थान पर जाते हैं। १- हंसावतार भावान् नारायण, २- सनक-सनन्दन-सनातन-सन्तुमार, ३- देवर्षि नारद तथा ४- श्रीनिम्बार्कचार्य। हंस, सनकादि तथा नारद और इनका गुरु-शिष्य-भाव नारदीय पुराण के आधार पर^२ तथा हंसावतार नारायण और सनकादि का गुरु-शिष्य-भाव तथा उपदेश श्रीमद्भागवत के आधार^३ श्री निम्बार्क-सम्प्रदाय में मान्य है। श्रीमद्भागवत में उद्धव के प्रति श्रीकृष्ण ने हंसावतार नारायण और सनकादि का संवाद सविस्तर वर्णन किया है।^४ भावान् के हंसावतार के समय उनसे उक्त चारों कणियों ने सर्व-प्रथम ब्रह्म-विद्या सीखी। सनकादि कणियों के नाम पर द्वैताद्वैत-सम्प्रदाय "चतुःसन-सम्प्रदाय" और "कणि-सम्प्रदाय" भी कहलाता है।

१- "शैविज्ञम्" : पृ० ६३ : फुट-नोट : पूना सं०, १९३६ ।

२- "पुराणसंहितामैता नारदाय विपरिच्यते।

सनकाद्या महाभागा पुनयः प्रचकाशिरै॥

हंसस्वरूपो भावान् यदा तं ब्रह्म शारवतम्।

उपादिदिशदेतेभ्यो विज्ञानेन विबुम्भितम्॥

नारदीय पुराण : उत्तर संह : चरमाध्याय :

३- "एतावान्ययोग आदिष्टौ मच्छिष्यैः सनकादिभिः।

सन्नतो मन आकृष्य मय्युद्धावेश्यते यथा॥

श्रीमद्भागवत : ११।१३।१४ ।

४- श्रीमद्भागवत : स्कन्ध ११।१३।४ : २१।१४० श्लोक ।

सिद्धान्त

द्वैताद्वैत भेदाभेद मत में द्वैत और अद्वैत दोनों का सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की गई है। इस मत का सारांश यह है कि दृश्यमान जगत् और जीव दोनों मूलतः ब्रह्म/ही हैं। किन्तु ब्रह्म की सत्ता जगत् और जीव तक ही सीमित नहीं है। ब्रह्म असीम है। उसका जगदतीत स्वरूप जगत् का उपादान कारण है। अतः जगत् और जीव ब्रह्म के अंश-मात्र हैं।^१ अंश के साथ अंशों का जैसा भेदाभेद-सम्बन्ध है, वैसा ही जगत् और जीव का ब्रह्म के साथ है। अंश समस्त अक्षयों से अंशों का ही अंग-भूत है; अतः अंशों से अभिन्न है, परन्तु अंशों अंश की अतिक्रमण करके भी स्थित रहता है, केवल अंश-मात्र में ही अंशों की सत्ता परिसीमित नहीं होती। अतः अंशों अंश से भिन्न भी होता है। इसी से दोनों का सम्बन्ध "भेदाभेद-सम्बन्ध", "अंशांश-सम्बन्ध", अथवा "द्वैताद्वैत-सम्बन्ध" कहा जाता है।^२ ब्रह्म सर्वशक्तिमान् है। जब ब्रह्म जगत् से वर्तित रूप में विद्यमान रहता है, तब वह निर्गुण होता है; जब परिणत होता है, तब सगुण हो जाता है। ब्रह्म का सगुण रूप ही मुख्य है। जब जीव जगत् एवं स्वयं को ब्रह्म से अभिन्न अनुभव करने लगता है, तब उसकी संज्ञा "मुक्त" हो जाती है। मुक्त होने का एक-मात्र साधन सगुण ब्रह्म की उपासना या भक्ति है। श्री श्री निम्बार्कचार्य ने देवालयों में राधा-कृष्ण की प्रतिमाओं की स्थापना करके भक्ति-पूर्वक उनका अर्चन करने का उपदेश दिया। इनके मत में श्रीमद्भागवत की परम प्रामाणिक शास्त्र-ग्रन्थ स्वीकार किया गया है। जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, निम्बार्क-सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य श्रीशुकदेव ने श्रीमद्भागवत पर "सिद्धान्त-प्रदीप" नामक प्रसिद्ध टीका लिखी है। उपक्रम में श्रीमद्भागवत का महत्त्व निरूपित करते हुए आचार्य ने लिखा है कि "भावात् ने वेद-व्यास के रूप में समस्त वेदों का विस्तार करने के लिए महाभारत की रचना की। इसके अनन्तर उन्होंने वेदान्त का उपबृंहण—अर्थविस्तार और पुष्टि—करने के लिए नारद की आज्ञा आज्ञा से मुमुक्षुओं पर अनुग्रह करने के लिए तीसरी पैंतीस अध्याय और बारह स्कन्ध युक्त कल्प-वृक्षा के समान अभीष्ट फल प्रदान करने वाले श्रीमद्भागवत महापुराण का निर्माण

१- ब्रह्म-सूत्र : २।३।४२ तथा ३।२।२२ पर निम्बार्क-कृत भाष्य "पारिजात-सीरध" २- "एकमेव ब्रह्म विज्ञानरूपं वस्तुतः सर्वाकारम्। जीवब्रह्मणोरभेदः। पि चैतदाण्यवधारो वता-रावतारिणोरिव नित्यस्तेन न क्वापि वाक्यव्याकोपो भवितिसिद्धिश्चान च य मर्सांर्यम्। घटकपाल्लोर्गुणगुणिनोरिव सत्यमिभेदः तददर्शनात्।"

निम्बादित्य-दशश्लोकी पर श्रीहरिव्यासदेव का भाष्यः पृ०

किया। श्रीमद्भागवत का वर्ण्य विषय "भावान्" है, जो "अद्वैत-सम्पन्न" है। "पर-ब्रह्म" "परमात्मा" आदि पद इसी भावान् के वाचक हैं।^१ ग्रन्थकार ने प्रारम्भ में उसी के लक्षण बताकर पर-पक्ष का निराकरण किया है।^२

श्रीमद्भागवत में गोपाल कृष्ण की जिन सरस लीलाओं का विशद वर्णन है, और हिन्दी के कृष्ण-भक्ति-साहित्य में जिसका विस्तार दृष्टि-गोचर होता है, निम्बार्क-सम्प्रदाय के आचार्य शुकदेव ने उसी गोप-वेश-धारी श्रीकृष्ण को परम शारव्य माना है। "श्रीकृष्ण असंख्य दिव्य गुणों के धाम हैं, शरणागत के एक-मात्र ज्ञाता हैं, समस्त सौन्दर्य के निधान हैं। वे चराचर जगत् के कारण हैं। उनका चरित अनन्त है। वे वेद से ज्ञातव्य पर-ब्रह्म हैं। भक्त-प्रीणनार्थ गोप-वेश को धारण करने वाले श्रीकृष्ण एक-मात्र शारव्य हैं।"^३

श्रीमद्भागवत के उपक्रम-श्लोक में "जन्माद्यस्य यतः" वेदान्त-सूत्र के उद्धरण से वेदान्त-शास्त्रों का, तथा "धीमहि" गायत्री-पद के उद्धरण से गायत्री के फलितार्थ का प्रकाश किया गया है। श्रीमद्भागवत का सन्निर्गम लक्ष्य यही है:-

"उपक्रमश्लोके जन्माद्यस्य यत इति वेदान्तसूत्रोपन्यासी वेदान्तानां, तथा धीमहीति गायत्रीपदोपन्यासश्च गायत्र्या फलितार्थप्रकाशकं श्रीमद्भागवतमिति नीत्यति।"^४

उपर्युक्त श्लोक से स्पष्ट हो जाता है कि निम्बार्क-सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत को ब्रह्म-जिज्ञासा महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

१- श्रीशुकदेवाचार्य ने अपने इस कथन का आधार सम्भवतः श्रीमद्भागवत के इस श्लोक को माना है:-

"वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।

ब्रह्मेति परमात्मेति भावानिति शब्देति॥" श्रीमद्भा०:१।२।११

२- "अथ वेदान्तोपबृंहणार्थं श्रीमन्नारदाज्ञयव मुमुक्षुनुग्रहाय पञ्चविंशत्यधिकत्रिंशता व्याय-निबद्ध-द्वादशस्कन्ध-युतं कल्पद्रुमवदभोष्टार्थप्रदं श्रीमद्भागवतमहापुराणं प्रारिप्सु ग्रन्थक-विषयभूतस्य परब्रह्मपरमात्मादिपदवाच्यस्य भावतो मंगलाचरणव्याजिन लक्ष्मणं वदन् परपक्षान् निराकरोति "वन्नाद्यस्य"ति--"

श्रीमद्भागवतः छिद्धान्त-प्रदीपः वृन्दावन सं०, १३६० वि०: पृ० २६ ।

३- "आणितागुणस्त्रिषुः स्वप्नैकवन्तुः सकलभुवनहेतुः सर्वसौन्दर्यसितुः।

विगतसकलदोषो वेदेकः परेशो भवतु मम गतिः स सर्वदा गोपवेशः॥"

वही: पृ० २६ ।

४- वही : पृ० २७ ।

श्रीमध्वाचार्य का द्वैतवादी सम्प्रदाय और श्रीमद्भागवत

श्रीमध्वाचार्य (११९८ ई०)^१ कर्नाटक प्रान्त के प्रमुख वैष्णव आचार्य थे। इनका जन्म-नाम "वासुदेव" था, और आगे चल कर इन्होंने कानाम "पूर्णप्रज्ञ" "आनन्द-तीर्थ" तथा "मध्वा-चार्य" हुआ। ये एक परम मेधावी पुरन्वर विद्वान् होते हुए भी श्रीकृष्ण के परम भक्त थे। इन्होंने अनेक स्थानों पर शास्त्रार्थ करके मायावाद का खंडन किया और भक्ति का उपदेश दिया। इन्होंने रामेश्वर से लेकर कदरिकात्रम तक और पूर्व में नव-द्वीप बंगाल तक पर्यटन किया था। इन्होंने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया जिनमें "गीता-तात्पर्य-निर्णय", "भागवत-तात्पर्य-निर्णय", "महाभारत-तात्पर्य-निर्णय", "ब्रह्म-सूत्र-भाष्य", तथा "दशोपनिषद्भाष्य" विशेष महत्त्व-पूर्ण हैं। श्रीमद्भागवत को सक्षय कर रचित श्रीभागवत-तात्पर्य-निर्णय नामक अपने ग्रन्थ में उक्त महा-पुराण का दार्शनिक सिद्धान्त बड़े ही प्रकाण्ड पाण्डित्य के साथ प्रति-पादित किया है।

सिद्धान्त

मध्वाचार्य का द्वैत-सिद्धान्त शंकर के अद्वैत से प्रायः विपरीत ही हो गया। मध्व के अनुसार जीव नित्य एवं पृथक्-सत्ता-वान् है। जीव की पृथक् सत्ता मानने से उपासना, शास्त्र, परलोक, कर्म आदि सब व्यवस्थाओं का सामंजस्य घटित हो जाता है। इस दृष्टि से मध्व-मत में मोढ़े से वैतण्ण के साथ प्रायः अन्य सब भागवत-मतों का अन्तर्भाव हो जाता है। चैतन्य का गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय तो एक प्रकार से मध्व-सम्प्रदाय के अन्तर्गत ही है। भावदनुग्रह पर माध्व सम्प्रदाय में उसी प्रकार दृढ़ विश्वास किया जाता है जैसे पुष्टि-सम्प्रदाय में। मध्वाचार्य जीव की मुक्ति का कारण ज्ञान न मान कर भावदनुग्रह ही मानते हैं।

द्वैत-वाद अथवा पूर्णप्रज्ञ-दर्शन का सारांश यही है कि जीव और ब्रह्म दो नित्य-पृथक् सत्ताएं हैं। जीव अणु है। वह दास है। ब्रह्म सगुण, सविशेष और स्वतन्त्र है। जीव का परम पुरुषार्थ यही है कि वह सत्त्विकादि मुक्तियों में से किसी को प्राप्त करे। जीव और ब्रह्म में साम्य-बोध एक भ्रम है, तथा अपराध भी। दुश्च जगत् सत्य है। विकार-मय और परिवर्तन-शील होते हुए भी जगत् भ्रम्या नहीं है। कारण यह कि असत्य का ज्ञान नहीं होता।

१- "साइफु एण्ड टीचिंग्स आफ् माध्व" : श्री पद्मनाभाचार्य : नाटेलन, मद्रास ।

ज्ञान तो ज्ञाता और ज्ञेय के अधीन है। किन्तुन से भिन्न ज्ञान की स्थिति असंभव है। अतः ज्ञान सदा सचिकत्पक ही होता है। ज्ञान ही ज्ञेय का प्रतिपादक एवं प्रमाण है। ब्रह्म पूर्ण-त्वा वाणी का विषय नहीं हो सकता, वह शास्त्रैकाम्य है। विष्णु ही परम-तत्त्व ब्रह्म है। जीव की मुक्ति के तीन साधन हैं :- १-भक्ति, २-त्याग, ३-ध्यान।

माध्व-सम्प्रदाय में प्रसिद्ध निम्नांकित श्लोक में इस सम्प्रदाय का सारांश वहीं कुशलता से ग्रथित किया गया है:-

"श्रीमन्मध्वमते हरिः परतरस्तर्ह्य जगत् तत्त्वतो
भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चैर्भावं गताः।
मुक्तिर्नैकगुणानुभूतिरमता भक्तिश्च तत्साधनम्
ह्यक्षादि त्रितयं प्रमाणमखिलात्मनैकैवो हरिः॥"

अर्थात् श्रीमध्वाचार्य के मत में विष्णु ही सर्वोच्च तत्त्व है। जगत् सत्या है। ब्रह्म और जीव का भेद वस्तुतः है, आभास नहीं। जीवों में उच्च-नीच का तारतम्य है और वे हरि के अनुचर हैं; अर्थात् उनकी सामर्थ्य भावदधर्मा है। आत्म-ज्ञान द्वारा जी आत्मानन्द की अनुभूति होता है, वही मुक्ति है। सात्त्विकी भक्ति इस मुक्ति का साधन है। प्रमाण तीन हैं-प्रत्यक्ष, अनुमान और आप्त-वाक्य। हरि केवल वेद-शास्त्रों द्वारा ही ज्ञेय हैं।

भागवततात्पर्य-निर्णय- श्रीमध्वाचार्य ने श्रीमद्भागवत के महत्त्व को स्वीकार करते हुए उसके गुड रहस्य के उद्घाटन के लिए "भागवत-तात्पर्य-निर्णय" नामक एक विस्तृत विद्वत्ता-पूर्ण ग्रन्थ की रचना की। उनका विश्वास है कि श्रीमद्भागवत महा पुराण ब्रह्म-सूत्र, महा-भारत, गायत्री और वेद से सम्बद्ध है।^१ इसके प्रमाण में उन्होंने गरुड़ पुराण से श्लोक उद्धृत किए हैं।^२ जिनका सारांश यह है कि श्रीमद्भागवत ब्रह्मन्सूत्रों का अर्थ, महाभारत के अर्थ का निर्णय, गायत्री का भाष्य-रूप और वेदार्थ से परिपुष्ट है। यह पुराणों का सार-

१-"ब्रह्मसूत्र-महाभारत-गायत्री-वेदसम्बद्धश्चार्थः"

भागवत-तात्पर्य-निर्णय/पृ० ७८९।

२- "कर्तोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारताय विनिर्णयः।

गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थपरिवृंहितः॥

पुराणानां साररूपः साक्षाद् भावतीदितः।

ग्रन्थोऽष्टादशसहस्रः श्रीमद्भागवताभिधः॥"

भागवत-तात्पर्य-निर्णय : पृ० ७८९ ।

रूप और साक्षात् भावत्मुख से कथित है। श्रीमद्वाचार्य ने ब्रह्म-पुराण के उद्घरणों से भी बताया है कि वेद एक विशाल वृक्ष है जिसमें धर्म-रूपी पुष्प, अर्थ-रूपी पत्त, काम-रूपी पल्लव, और मोक्ष-रूपी फल लाते हैं। इन फलों को महर्षि कृष्ण-द्वैपायन व्यास ने लोक में महाभारत और श्रीमद्भागवत आदि के रूप में तोड़ कर वितरित कर दिया है। उन्होंने फलों को शुक — तौते अथवा शुक-देव मुनि — ने अपनी रस-मयी वाणी से बाँट कर दिया है। ग्रन्थ में गुरु-प्रोक्त उक्त वेदार्थों की व्याख्या कर दी है। कुछ फलों की वेदार्थ की व्याख्या करने वाले व्यास ने वृक्ष के भाग ही दिखा दिया है। सज्जनों को उन फलों का रस-पान मोक्ष-पर्यन्त करना चाहिए।^१

भागवत-तात्पर्य-निर्णय में श्रीमद्भागवत के अधिकारी, विषय, प्रयोजन और फल का सम्यक् विवेचन सविस्तर किया गया है। इस ग्रन्थ की रचना का प्रयोजन श्रीमद्भागवत के गूढ़ रहस्य का उद्घाटन करना है। वाचार्य ने श्रीमद्भागवत में वर्णित समस्त वस्तु का समग्र श्रुति, स्मृति, उपनिषत्, पुराण, इतिहास, संहिता और तन्त्रों के आधार पर किया है। और श्रीमद्भागवत को अपना परम प्रमाण-ग्रन्थ स्वीकार किया है। भागवत-तात्पर्य-निर्णय में श्रीमद्भागवत के अनुसार ही बारह स्कन्धों का विभाजन है, और भागवत के प्रत्येक स्कन्ध के प्रत्येक अध्याय का तात्पर्य आवश्यकतानुसार संक्षेप और विस्तार से दिखाया गया है। भागवत के समस्त स्कन्धों का तात्पर्य प्रायः उतने ही अध्यायों में लिखा गया है जितने अध्याय उस स्कन्ध में हैं।

श्रीविजय-ध्वज तीर्थ और श्रीमद्भागवत

माध्व-सम्प्रदाय के प्रसिद्ध वाचार्य विजय-ध्वज तीर्थ ने श्रीमद्भागवत पर "पद-रत्नावली" नामक प्रसिद्ध टीका लिखी है। श्रीमद्भागवत के विषय में उनकी मान्यता है कि काल-दोषों से लुप्त भागवत धर्मों का पुनरुत्थान इसी महा-पुराण के द्वारा होना सम्भव है। "पाराशर्य सरस्वती-सुत व्यास ने वेदों का अनेक शाखाओं में विभाजन किया।

१- "धर्मपुष्पस्त्वर्थपत्रः कामपल्लवसंयुतः। महामोक्षफलौ वृक्षौ वेदौ यं समुदीरितम्।

शातितानि फलानीह कृष्णद्वैपायनेन तु। भारतादीनि यानि ह तानि भागवतं भुवि।।

आर्द्रीकृतानि तानीह शुकप्रभृतिभिर्भिः। स्वापवद्भिर्गुरुप्रोक्तान् वेदार्थान् ग्रन्थनिष्ठितान्।।

कानिचिद्दर्शयामास वृक्षास्याग्रे फलानि तु। व्यासैर्द्विमाणी वेदार्थं भावात्सौक्ययुतः।।

एतेषामय तेजसा वा रसं पिबत सज्जनाः। नामोक्षान्महती प्रीतिरहो मे पश्यतो भवेत्।।

भागवत-तात्पर्य-निर्णय : पृ० ७८९ ।

वेदार्थ के निर्णय के इच्छुक व्यास ने ब्रह्म-सूत्रों का निर्माण किया। किन्तु ब्रह्म-सूत्रों के अन्वेषिकांशों के स्ति मोक्ष के लिए उन्होंने पुराण-संहिताओं की प्रकाशित किया। पुराण-संहिताओं में भी व्यास ने प्रमुखतया वेदान्त के गूढमर्थ की प्रकाशिका बारह स्कन्ध तथा अठारह सहस्र श्लोकों से युक्त भागवत-पुराण-संहिता का प्रणयन किया है। इस संहिता के द्वारा काल-दोषों से युक्त भागवत धर्मों का आविष्करण और पुनरुद्धार करना भी व्यास का उद्देश्य था।

श्रीमद्भागवत शास्त्र में विश्व के समस्त प्राणियों के जन्म-मरण-रूप जावा-गमन-चक्र का उन्मूलन करने के लिए भावान् का गुण-कर्तन किया है। भावान् निर्गुण और सगुणसगुण उभय-रूप है। इसलिये उसके लिए "पर" विशेषण का प्रयोग किया गया है।^१ उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि माध्व सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत का अत्यन्त महत्व-पूर्ण एवं उच्च स्थान है। द्वैत-मत का प्रवर्तन करने वाले श्रीमध्वाचार्य ने इस ग्रन्थपर लेखनी उठा कर इस बात को सिद्ध कर दिया है। जागे चल कर इस सम्प्रदाय की एक महत्व-पूर्ण शाखा चैतन्य ने पल्लवित की और उसमें श्रीमद्भागवत की और भी महत्व-पूर्ण पद प्राप्त हुआ।

श्री वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत-वादी सम्प्रदाय और श्रीमद्भागवत

जान्त्र के कांकर-वाड-ग्राम-निवासी कृष्ण-यजुर्वेदीय सत्समण भट्ट तेलंग ब्राह्मण वल्लभाचार्य के पिता थे। वल्लभ का जन्म सं० १५३५ वि० में हुआ था। अत्यन्त कुशाग्र-

१- "अथ कलिमतापनुत्तमे- - - सत्यवत्यां पराशरादवतीर्णो व्यासनामा मुरमधनः- - - शाखीपशाखाभेदेन विभक्तवैदस्तदर्थं निणयिच्छुर्विरचितब्रह्मसूत्रस्तदनधिकारिजनापकार्य प्रकाशितपुराणसंहितो वेदान्तार्थप्रकाशिकां द्वादशस्कन्धसम्मिताम् अष्टादशसहस्रसंख्यो-
पेतां भागवतपुराणसंहितां चिकीर्षुः काल-दोषेण पिहितान् भागवतधर्मानां विशिक्कीर्षुः
- - - मंगलाचरणानामनेकप्रयोजनाय च सर्वेष्टदेवतां नारायणाख्यां अनुस्मरति- जन्मा-
द्यस्य यत इति।" श्रीमद्भागवतः वृन्दावन-प्रतिः पृ० १२।

२- "भावास्त्वभ्यरूपः- इत्यभिप्रायेण परमित्युक्तम्। परमात्मा हि सकलप्राणिनां संसारोन्मूलनाय अस्मिन् शास्त्रे प्रतिपाद्यते।"

वही : पृ० १२ ।

बुद्धि थे, और किशोरवस्था से ही वेद-वेदांग-पुराणादि में पारंगत हो गये थे। सं० १९४५ में जगन्नाथपुरी में वैष्णव और शांकर मत के विद्वानों में जो शास्त्रार्थ हुआ था, उसमें वल्लभ ने भाग लेकर वैष्णव मत का समर्थन किया और विजयी हुए।^१ निराकार मायावाद का खंडन और साकार शुद्ध ब्रह्म-वाद का प्रतिपादन एवं प्रचार इनके जीवन का लक्ष्य था। वल्लभ ने भारत की कई यात्राएँ कीं और भक्ति-मार्ग का प्रचार किया।

सिद्धान्त

वल्लभ का दौर्भागिक सिद्धान्त "शुद्धाद्वैत-वाद" है। उनसे पूर्व विष्णुस्वामी इस सिद्धान्त का प्रवर्तन कर चुके थे किन्तु वल्लभ के समय में वह क्षीण-प्राय हो चुका था। वल्लभ ने उसे पुनः खल बना दिया। हाँ, विष्णुस्वामी के उपासना-मार्ग से वल्लभ का उपासना-मार्ग अवश्य ही भिन्न है। इसी से मूलतः विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय के अन्तर्गत हो कर भी वल्लभाचार्य वैष्णव धर्म की एक ^{प्रमुख} शाखा के प्रवर्तक माने जाते हैं। यह प्रयत्न शाखा "पुष्टि-सम्प्रदाय" कहलाती है। विष्णुस्वामी ने सागुण एवं तामस भक्ति का प्रचार किया था किन्तु वल्लभ ने निर्गुण, प्रेम-संकीर्ण भक्ति को अपनाया। उनकी सेवा-प्रणाली में बाल, सख, कान्त एवं ब्रह्म-भावना का सामंजस्य है। इनके बीज इन्हें श्रीमद्-भागवत से प्राप्त हुए हैं। श्रीमद्भागवत में तान्त्रिक उपासना-पद्धति का भी विवेचन है।^२

जिसके अनुसार विभिन्नक, पंचामृत-स्नानादि भी वल्लभ ने अपने सेवा-मार्ग में ग्रहण किए हैं।

पुष्टि सम्प्रदाय एवं श्रीमद्भागवत

श्रीमद्भागवत वल्लभ का सर्वाधिक प्रिय स्वध्याय-ग्रन्थ था। अपने यात्राओं में उन्होंने चौराहों स्थानों पर श्रीमद्भागवत का पारायण किया था। ये स्थान "महा प्रभु जी की बैठक" कहलाते हैं। प्रथम बैठक गोकुल में गोविन्द घाट पर है। यहाँ सं० १९५० में उन्होंने श्रीमद्भागवत का पारायण किया था।

प्रायः समस्त तत्त्व-वेत्ता आचार्यों ने अपने मत को वेद, ब्रह्म-सूक्तों और गीता से प्रमाणित कर उसका प्रचार किया है। इस प्रकार उक्त ग्रन्थ "प्रमाण-त्रय" अथवा "प्रस्थान-त्रय" हैं। किन्तु श्रीवल्लभाचार्य ने इस प्रस्थान-त्रय में श्रीमद्भागवत को भी प्रमाण-कीटि में रख कर सम्मिलित कर दिया और "प्रस्थान-चतुष्टय" की स्थापना की।^३ महाप्रभु

१- वल्लभ-मत : पृ० १।

२- श्रीमद्भागवत : स्क० ११: अ० २७।

३- वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि।

समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्॥

तत्त्वदीप-निबन्ध : पृ० १।

वल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी ने "सर्वोत्तम स्तोत्र" में महाप्रभु वल्लभ के १०८ नामों का उल्लेख किया है, उनमें एक नाम "श्रीभागवतगूढार्थ-प्रकाशन-परायण" है।^१ एक अन्य नाम है "श्रीभागवत-पीयूष-समुद्र-मथन-क्षाम"।^२ श्रीमद्भागवत को व्यास की समाधि-भाषा" कह कर आचार्य ने उसका जो महत्व प्रकट किया है वह अपूर्व बात है। इससे भागवत का अलौकिक महत्व एवं अलौकिकत्व प्रकट होता है। इतना ही नहीं, आचार्य ने श्रीमद्भागवत को, व्यास की समाधि-भाषा को, वेद-ब्रह्म-सूत्र-गीता की उक्त प्रस्थान-त्रयी का सन्देह-निवारक माना है।^३ इससे उसकी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध होती है। आचार्य ने उसे व्यास की समाधि-भाषा ठीक ही कहा है क्योंकि भावान् वेद-व्यास ने इस सात्वत-संहिता श्रीमद्भागवत का अनुभव समाधि में ही किया था।^४ वल्लभ ने कहा है कि स्वयं श्री हरि ने कृष्ण-रूप धारण किया और अपने वंश रूप में व्यास को उत्पन्न किया। भक्तों को अपना ज्ञान कराने तथा तदुपरान्त अपना परम पद प्राप्त कराने के लिए श्री हरि ने ही श्रीमद्भागवत-निर्माण-रूप और विस्तृत व्यास का कार्य किया। यह कार्य किसी अन्य शक्ति द्वारा किया जाना शक्य नहीं है क्योंकि जीव का आत्म-ज्ञान ज्ञान से जाग्रतरहता है।^५

१- "श्रीभागवतगूढार्थप्रकाशनपरायणः।।

साकारब्रह्मवादेकस्थापको वेदपारगः।।"

श्रीसर्वोत्तमस्तोत्र : श्लो० ८।

२- "श्रीमद्भागवतपीयूषसमुद्रमथनक्षामः।।

तत्सारभूत-रासस्वीभाव-पूरितविग्रहः।।"

श्रीसर्वोत्तमस्तोत्र : श्लो० १६।

३- "उत्तरं पूर्वसन्देहवारकपरिकीर्तितम् ।

अचिरुद्धं तु यत्त्वस्य प्रमाणं तच्च नान्यथा।

एतद्विरुद्धं यत् सर्वं न तन्मानं कर्तुं न ॥

तत्त्वदीपि-निबन्ध : प्रकरण १ ।

४- "ब्रह्मन्वा सरस्वयामश्रमः परिकीर्तते। शम्वाप्रास इति प्रोक्त ऋषीणां सर्वार्थिनः।।

तस्मिन् स्व आश्रमे व्यासो बदरीलण्डमण्डिते। नासीनोऽप उपस्पृश्य प्रणिदध्या मः स्वयम्।।

भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले। अपश्यत्पुरुषं पूर्वं मायां च तदपाश्याम्।।

अनर्घोपशम साक्षाद्भक्तियोगमधीनम्। लोकास्वाप्तो विद्वांश्चै सात्वतसंहिताम्।।

५. स्वयं भूत्वा हरिः स्वांशं व्यासं चकार सः श्रीमद्भागवत : १।७।२-६।

स्वस्वापनाय भक्तानां पदं प्राप्दये तत्त्वः परम् ॥

सत्यस्य व्यवधानं व्यासोऽप्राप्तवान् यो गतः।
व्यासकार्यं समाप्तं च कृतवानधिकं तथा ॥
व. व. वि. ५७२७ ९.

भावान् नित्य-लीला-धारी हैं। वे जैसे रमण नहीं करते, दूसरे की इच्छा करते हैं। भावान् नाम और रूप उभय प्रकार की लीला करते हैं।^१ उसके उद्धार के लिए प्रयत्न-शील प्रभु ने स्वरूप से आविर्भूत हो कर अपना परम रहस्य वेद-सार-भूत परम ज्ञान - गीता - अर्जुन को दिया। यद्यपि महाभारत में वह ज्ञान व्यास द्वारा वर्णित है, तथापि व्यास के उत्वांश द्वारा अवहित होने के कारण उन भावद्वजनों का वास्तविक मर्म-ज्ञान उनके लिए भी सम्भव नहीं। उनके द्वारा वह भाव-ज्ञान उसी द्वारा उच्चरित है जिस प्रकार लीला कोई बात कहता है। भावद्वज तो अत्यन्त दुर्बल है और बिना भजन के उसका ज्ञान नहीं हो सकता। उस समय तो सभी घण्टित और आचार्य जीव-रूप होने के कारण अल्पज्ञ हैं, अतः भावद्वज्यों का उनके लिए समझना और भी कठिन है। साव ही भावान् ने अपनी स्वरूप-लीला को भी तिरोहित कर लिया है। केवल अपनी "नाम-लीला" से ज़ाह करने के लिए ही उन्होंने अपने वंश-भूत व्यास को उत्पन्न किया है। अपना रहस्य-ज्ञान कराने और भक्तों को अपना परम पद प्राप्त कराने के लिए स्वयं भावान् ने व्यास अवतार ग्रहण किया और लोगों को अल्पधी देव कर वेद-वृक्षा की शाखाएँ दीं।^२ भावान् के चौबीस अवतारों की गणना में सत्रहवें अवतार व्यास माने गये हैं।^३ किन्तु व्यासावतार में सत्त्व का प्रबलान होने के कारण भावान् को अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं था, अतः भावान् ने योग की सहायता से ही व्यास-कार्य-वेदों का विभाजन- और पुराण-रचना, तथा योग-द्वारा ही महाभारत की रचना की। यह सर्व-विदित है कि धर्म का रहस्य वेदों में सन्निहित है। केवल अचिन्त्य ब्रह्म का प्रकाशक होने के कारण वह भावतत्त्वा-यात्र केवल सनकादि ऋषियों तक ही सीमित है। इस समय भावान् ने उसे गीता में प्रकट किया है, और व्यास रूप से उसे ही भागवत के रूप में प्रकाशित किया है। यह भागवत पहिले भावान् के द्वारा कथित है।^४

१- "नारूपे व्याकरवाणि" कल ५८० सुबोधिनी. पृष्ठ १२

२- "ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्या पराशरात्।

चे वेदतरोः शाखा वृद्ध्वा पुंसोऽप्यनेपथः॥" श्रीमद्भागवत : १।३।२१।

३- "श्रीमद्भागवत : १।३।१४ ।

४- "अनिर्वृत्तिस्ततो जाता तेन भागवतं कृतम्। सर्वगोप्यो हि धर्मस्तु वेदे मुख्यतमोदितः॥
ब्रह्ममात्रप्रकाशस्तु कृपया सनकादिभिः। स इदानीं तु गीतायां प्रकटो भावतकृतः॥
तद् व्यासत्वाद् भागवतं पूर्वं भावतोदितम्॥"

श्रीगुरुजीवस्तनवाचः :

कल ५८० सुबोधिनी पृष्ठ १२ पर उद्धृत

श्रीमद्भागवत ही प्रेम है और गीता का समानाधिकरण है।^१ यह समस्त वेदों, पुराणों, और इतिहासों का सार-भूत है।^२ यह ब्रह्म-मात्र-प्रकाशक है, यह द्वितीय-स्कन्धीय पुरुष-सूक्तीय अध्याय से स्पष्ट है।^३ भवान् की इच्छा से जब व्यास का व्यवधान-रूप सत्वावरण हट गया तो उन्होंने श्रीमद्भागवत की रचना की।^४ श्रीमद्भागवत में व्यास ने गीतार्थ को ही विपुलीकृत किया है। गीता संक्षिप्त है, जिसके वक्ता स्वयं श्रीहरि हैं। भागवत-सर्व-निर्णय-पर और उसका विस्तार है। व्यास ने समाधि द्वारा समस्त कृष्णोक्त ज्ञान श्रीमद्भागवत में आसीपान्त कहा है।^५

तत्त्व-दीप निबन्ध के "भागवतार्थ-प्रकरण" में श्रीवल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत के विषय में लिखा है कि पुराणों का पाठ भक्ति-संस्कार के लिए और प्रतिपाद ईश्वर की लीलाओं का मनन करने के लिए होता है। श्रीमद्भागवत की वेद इस लि^६ नहीं रहा गया कि उसका प्रयोजन सर्व-मुक्ति के लिए है। स्त्री-शूद्रादियों का वेदों में अधिकार नहीं है।^७ वेद स्वयं अपना और अन्य का निर्वाह करने में समर्थ नहीं हैं। जब द्राणी इस लोक में जन्मन्त मलिन होने को तो भवान् ने व्यास-रूप से भागवत की रचना की। कलियुग में धर्म कालादि-हेतु-सापेक्ष है। अतः श्रीमद्भागवत उनकी अपेक्षा नहीं रखता और इसके ब्रह्मास से ही जीव बन्धन-मुक्त हो जाता है। इस समय वेद-स्मृति और पुराणों के अर्थ बाधित हो गये हैं, किन्तु श्रीमद्भागवत सर्वथा फल-साधक है।^८ आगमापेक्षयापि

१-"अत्र सार्धेन श्रीमद्भागवतस्य प्रेम्यमुक्तं गीतासायानाधिकरणं च बोधितम्", फल प्रकरण सुबोधनी में अद्वैत ५-१३ पर

२-"सर्ववेदतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम्।" श्रीमद्भागवतः १।३।१२।

तथा-धर्मः प्रौढिक तैत्तिरीय परमो निर्मलसराणां सताम्।

वेदं वास्तवमत्र यस्तु शिखरं ताम्रमोन्मूलनम्॥

श्रीमद्भागवते महामुनिवृत्ते किं वा परैरीश्वरः।

सर्वो ब्रह्मवत्पश्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥" श्रीमद्भा० : १।१।२।

३- श्रीमद्भागवत : २।१।

४- "भावदिच्छया व्यवधायके पतते" फल प्रकरण सुबोधनी ५-१२

५- गीतासंदीपतस्तस्मा वृत्ता स्वयमभूदपरिः। तत्विस्तारी भागवतं सर्वनिर्णयपर्वकम्॥

व्यासः समाधिना सर्वमाह कृष्णोक्तमादितः।" तत्त्वदीपनिबन्ध : प्र० २।

६-विश्वासार्यं पुराणीषु पठितं भक्तिहेतुकम्। प्रतिपापेशलीलायाः पुराणार्थं त्वतः पुनः॥

सर्वमुचितनिवृत्त्यर्थं वेदत्वं तस्य नोक्तवान्। वेदवृत्तवत्त्वादि सतां सर्वं भविष्यति॥

स्वस्थान्यस्य च निर्वाहकैः कर्तुं महि क्षमः। अत्यन्तमलिका लीलास्ततो भागवतं कृतम्॥

एतदभ्यस्तान्तीको मुच्यतेऽनुपजीवनात्। कालादिघर्षे तूनामभावात्क्षान्द्यतं क्ली॥"

तत्त्वदीपनिबन्ध : प्र० २।

"लोकानां पुराणो विश्वासः", इस न्याय से आचार्य ने श्री व्यास को इस समाधि भाषा की गणना पुराणों में की। शास्त्र उपासना-विधायक है, किन्तु यह पुराण तो भक्ति-साधनाभिधायक होने के कारण महान् गौरव-शाली है। स्मृति-रूप भावस्वीकृतियों का इस में प्रतिपादन है अतः तत्त्वद्भावापन्न श्रोता का कर्म-दाय हो कर इसके द्वारा मोक्षो-पलब्धि होती है। चूंकि इस पुराण में वेद का सार उद्धृत किया गया है, अतः इसका वेदवि भी सिद्ध है, किन्तु बुद्धावतार में भगवान् ने वेद का निराकरण किया है इस लिए भागवत को वेद नहीं कहा। श्रीपुरुषोत्तमाचार्य जी ने कहा है कि बुद्धावतार में भगवान् ने वेद-निन्दा केवल दैत्यों के लिए की है।^१ अपितु वेदार्थ के अनुष्ठान से वेद की सफलता है और वह भागवत द्वारा सिद्ध होती है। अतः वेद से भी अधिक भागवत का उत्कर्ष सिद्ध होता है। भागवतार्थ देश-काल-सापेक्ष नहीं है।^२ इसलिए उससे असन्दिग्ध रूप से निःशेष की सिद्धि होती है, किन्तु श्रीमद्भागवत का अनुष्ठान बाजीविका को अजित करने के लिए कदापि न करना चाहिए।^३

इस प्रकार वेद-रूप कर्तृ-वृत्ता का भागवत एक रसात्मक फल है।^४ अतः प्रमाण, प्रेम, साधन और फल से भी यह श्रेष्ठ है, क्योंकि यह वेदादि प्रमाणों का सन्देह-वारक है।^५ श्रीवत्सभाचार्य ने सुबोधिनी के फल-प्रकरण में श्रीमद्भागवत को समस्त वेदों का आभरण-रूप बताया है, क्योंकि यह शास्त्र भावत्कीर्ति-प्रतिपादक है।^६

१-"बुद्धावतारेण कृतैपि वेदनिन्दने सर्वेषां न बाह्यत्वं, अपितु दैत्यादीनामेवेति"

तत्त्वदीपनिबन्धः प्र० ४: आभरण-भा।

२-"भागवतार्थस्तु न तानपेक्षते।"

फल प्रकरण-सुबोधिनी पृष्ठ १४ पर उद्धृत

३-"पठनीयं प्रयत्नेन सर्वहेतुविवर्जितम्। वृत्त्यर्थं नैव मुञ्चते प्राणीः कठगतिरपि।" तत्त्वदी०: प्र० २।

४-"यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्णयति वेदविस्तरः। ब्रह्मासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते।" इस वचन

में गायत्री ब्रह्म है, वेद ब्रह्म है, भागवत फल। स्वयं भागवत में भी उसे वेद-ब्रह्म का फल

ही कहा गया है:- "निगमकल्पतरुर्गतिर्तु फलम्। शुक्लमुखादमृतद्रवमुत्तमम्।" श्रीमद्भा० १।१।३

५-"उत्तरं पूर्वसन्देहवारकं परिकीर्तितम्।" तत्त्वदीपनिबन्धः प्र० १।

६-"अतएव भावत्कीर्तिप्रतिपादकभागवतादिशास्त्रं सर्ववेदेष्वभरणरूपम्।"

फलप्रकरण-सुबोधिनी : पृष्ठ १५.

श्रीवत्सभाचार्य ने श्रीमद्भागवत को तुरीय प्रस्थान मान कर ही सन्तोष नहीं किया बल्कि इसे तीसरे पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का साक्षात् विग्रह भी माना और भेदपाट —बैवाह— स्थित अपने सैव्यस्वरूप श्री गिरिराजन्धारो —वीनायकी— के बारह बगों में श्रीमद्भागवत के बारह स्कन्धों की स्थिति स्वीकार की है। श्रुतियों में भावान् की द्वादशाक्षर वाला कहा गया है।^१ श्रीमद्भागवत भी द्वादश-स्कन्धात्मक होने के कारण पूर्ण-पुरुषोत्तम-रूप है, ऐसा सिद्ध करके श्रीवत्सभाचार्य ने श्रीमद्भागवत की नवीन ब्रह्मास्पद बना दिया।^२ श्रीनाथजी के द्वादशाहुंग और श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्धों की संगति इस प्रकार है:-

प्रथम-द्वितीय स्कन्ध	- - - - -	पाद-युगल
तृतीय-चतुर्थ स्कन्ध	- - - - -	बाहु-युगल
पंचम-षष्ठ स्कन्ध	- - - - -	सत्त्व-द्वय
सप्तम स्कन्ध	- - - - -	दक्षिण हस्त
द्वादश स्कन्ध	- - - - -	उत्तिष्ठान्त वाम हस्त
अष्टम-नवम स्कन्ध	- - - - -	स्तन-युगल
दशम स्कन्ध	- - - - -	मध्य-भाग (हृदय)
एकादश स्कन्ध	- - - - -	शिरसीभाग

उपर्युक्त प्रकार से भागवत के स्वरूप का निरूपण करने के अतिरिक्त श्रीवत्सभाचार्य ने भागवत के अर्थ को सात प्रकार से समझने का आदेश दिया है जिससे एक ही अर्थ को सात प्रकार से जान लेने से संदेह का विरोध नहीं रह जाता।^३ ये ७ प्रकार हैं :-

१-शास्त्रार्थ, २-स्कन्धार्थ, ३-प्रकरणार्थ, ४-अध्यायार्थ, ५-श्लोकार्थ, ६-शब्दार्थ, ७-वर्णार्थ। फिर आनन्द-रूप श्रीहरि की तीसरी शास्त्रार्थ कहा गया है, और वह साक्षात्-रूप से दस प्रकार की है। उनमें अधिकांश और सात इन दो की और सम्मिलित कर देने पर श्रीमद्भागवत में द्वादश अर्थ हो जाते हैं।^४ इसी प्रकार अन्य अर्थों का स्पष्टीकरण

१-"द्वादशी ह वै पुरुषः" फल प्रकरण सुबोधनी पृष्ठ १६ पर उद्धृत।

२- श्रीतुर्वक्तुश्च सत्माधे द्वितीये त्वोनिर्णयः। द्वितीये द्वादशस्कन्धं पुराणं हरिरेव सः ॥
पुरुषो द्वादशत्वं हि सख्यौ बाहु शिरसीन्तरम्। हस्तौ पादौ स्तनीश्च पूर्वपादौ करौ त्तः ॥
सख्यौ हस्तस्ततश्चैको द्वादशश्चापरः स्मृतः। उत्तिष्ठान्तहस्तः पुरुषो भक्तमाजारायत्युत ॥
स्तनी मध्यं शिरश्चेति द्वादशाहुंगस्तु हरिः ॥" तत्त्वदीपनिकण्ठः प्र० ३।

३, ४ अग्रिम पृष्ठ पर

भी शाचार्य ने किया है, जिन्हें विस्तार-भ्रम से यहाँ नहीं दिया जा रहा।

श्रीवल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत का इस प्रकार निरूपण करने का कारण यह दिया है कि द्वादशांग-रूप और अर्थात् श्रीमद्भागवत की धारण करने से स्वयं श्रीकृष्ण धृत हो जाते हैं और उनको भक्ति प्राप्त हो जाती है।^१ श्रीवल्लभाचार्य श्रीमद्भागवत की एक अत्यन्त निष्ठ और दुरुह ग्रन्थ समझते हैं और इसका तात्पर्य समझना भावदुर्गति-शाय मानते हैं। इसलिए इस ग्रन्थ पर ऐकनैक विवरण, टीका और व्याख्यान होने पर भी उन्होंने "सुबोधिनी" को रचना की। उन्होंने कहा है "श्रीमद्भागवत भावद्वान्ता है। उसका अर्थ-विवेचन करने में वात्पति वेश्वानर अग्नि के अतिरिक्त और कोई समर्थ नहीं।^२ अतः श्रीहरि ने मुझे व्यास के समान मानव शरीर देकर कृपा-पूर्वक बाधा दी है। इसी से मैं बड़ी प्रसन्नता से व्यास-रूप विष्णु के प्रिय बहुत से गूढ़ार्थों की प्रष्ट कर रहा हूँ।^३

गत पृष्ठ के अवशिष्ट उत्तरणः:-

१- शास्त्रे स्कन्धे प्रवरणेऽप्यमे वाक्ये पदेऽपरे ।

एकार्षं सप्तधा ज्ञानन्नविरोधेन मुच्यते ॥" तत्त्वदीप-निबन्ध : पृ० ३।

४- ज्ञानन्दस्य हरेर्लीला शास्त्रार्थो दशधा हि सा।

अत्र सर्वा विवर्तिष्य स्थानं पीज्जगद्भूतः ।

मन्वन्तरे शानुक्त्वा निरोधो मुक्तिराश्रयः ।

अधिकारी साधनानि द्वादशांगस्ततोऽत्र हि ॥ तत्त्वदीप-निबन्ध : पृ० ३।

निरूप्य संज्ञास्कन्धा हि द्वादशीव न जान्यता।

तृतीयादिदशस्कन्धैर्लीला दशविधोदिता ॥ तत्त्वदीप-निबन्ध : पृ० ३।

१- एतद्विधारणमात्रेण कृष्णो भवति वै धृतः ।

अर्थस्तु परिज्ञाते ज्ञातो भक्तिं प्राप्नोति ॥ तत्त्वदीप-निबन्ध : पृ० ३।

२- वेद में कहा गया है -"मुखादग्निरवायत", अतः अग्नि और वाणी दोनों की उत्पत्ति मुख से होने के कारण अग्नि ही सर्वतौषिक भावद्वान्ता का रहस्य समझने में समर्थ है। वत्सभ-सम्प्रदाय में वत्सभ को "वेश्वानरावतार" "भावद्वान-वेश्वानर" कहा गया है।

३- अर्थं तस्य विवेचितुं नहि विभुर्वेश्वानराद्यानपतेः ।

अन्यस्तत्र विधाय मानुषात्तु मां व्यासवल्लीपतिः ।

दत्वाज्ञां च कृपावलीकपट्यस्मादतोऽहं मुदा ।

गूढार्थं प्रकटिकरोमि बहुधा व्यासस्य विष्णोः प्रियम् ॥" सुबोधिनी : ३।

वल्गुभाष्टक में भी कहा गया है कि वल्गुभाचार्य ही श्रीमद्भागवत का यथार्थ स्वरूप प्रकट करने में समर्थ हो सके हैं। वागीश के अतिरिक्त वाङ्-—वृत्ति— का भाव समझने में कोई समर्थ नहीं हो सकता, क्योंकि पतिव्रता स्त्री अपने पति के सामने ही अपना स्वभाव प्रकट करती है।^१

जैसा पहिले कहा जा चुका है, श्रीवल्गुभाचार्य श्रीमद्भागवत की अलौकिक ग्रन्थ मानते हैं और तर्क से इसकी संगति लगाना अनुचित समझते हैं।^२ इसीलिए उन्होंने अपनी भागवत-टीका सुबोधिनी में अपना दृष्टि-कोण स्पष्ट कर दिया है कि मैंने श्रीमद्भागवत का लक्षणा द्वारा अर्थ करके इसे बहु-बीज-मात्र-परक सिद्ध नहीं किया है, और न न्यून अर्थ से अन्य की पूर्ति की है। मैंने परोक्ष कथन के बिना इसका अर्थ किया है, और उपर्युक्त बातों कहीं की संगति बिना विरोध के बिठाई है। ग्रन्थ के अक्षरों से जो अर्थ निकलता है, उसी का प्रतिपादन किया है। "इस प्रकार आचार्य ने इसमें अपनी कल्पना का भी प्रवेश वर्जित कर दिया है। शास्त्र से स्वल्प प्रकरण आदि उत्तरोत्तर दुर्बल हैं, यही संगति यहां रखी गई है।^३ श्रीमद्भागवत में तीन प्रकार की भाषा है।^४ १-समाधि-भाषा, २-मतान्तर-भाषा, ३-लौकिकी भाषा, इनका भेद विभिन्न स्थलों पर लक्षणाओं से ज्ञात हो जायगा।"^४

१- न ह्यन्यो वागधीशाच्छ्रुतिगणवचसां भावमाज्ञातुमीष्टे।

यस्मात् सा जी स्वभावं प्रकटयति वधूरग्रतः पत्युरेव॥" विदुषेश : वल्गुभाष्टक : ४।

२- कलौकिकास्तु ये भावा न तास्तर्केण योजयेत्। महाभारत, भीष्मपर्व, जम्बूखण्ड, विमर्शोप-
४-१२

३- लक्षणां भव वक्ष्यामि न न्यूनादन्यपूरणम्।

वार्षिकं तु प्रवक्ष्यामि परोक्षाकथनादुते ॥

अविरोधेन सप्तानामर्थानामिह संगतिः।

उत्तरोत्तरदीर्घत्यं वाच्यं संकीर्ततः परम्॥

भाषात्रयविरोधश्च कल्पभेदात्समाहितः।

भाषात्रयविभेदश्च लक्षणाजीर्णप्यते पुनः ॥

गर्भ्यं तु वक्ष्यामि निबन्धेऽस्ति चतुष्टयम्॥

सुबोधिनी : १।१

४- एषा समाधिभाषा हि व्यासस्यामिततैजसः।

लौकिकी चान्यभाषा च समाधेः पौण्ड्रिके तु ते॥

ते प्रमाणमभिप्रायात् सर्वथा पूर्ववन्नहि ।

न तद्विरोधो दोषाय ते वक्ष्ये वसरे स्वके ॥" तत्त्वद्विप-निबन्ध : प्र० १

श्रीवत्सभाचार्य ने श्रीमद्भागवत पर पर्याप्त साहित्य-सर्वेक्षण किया है। यहाँ संक्षेप में उसका विवरण दिया जाता है:-

- १- श्रीभागवत-सुबोधिनी।
- २- श्रीभागवत-सूक्ष्मटीका।
- ३- श्रीमद्भागवतार्थप्रकरणम्।
- ४- श्रीदशमस्कन्धानुक्रमणिका।
- ५- श्रीपुरुषोत्तमनामसहस्रम्।
- ६- त्रिविधलोचनानामावलिः।

उपरोक्त छहों ग्रन्थ सम्पूर्ण अवस्था सङ्ग्रहः प्राप्त हैं।

१- भागवत पर सुबोधिनी टीका

यह टीका प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं दशम स्कन्ध के प्रथम चार अध्यायों पर ही उपलब्ध है, सम्पूर्ण भागवत पर नहीं। किन्तु आचार्य द्वारा लिखित निरौध-स्कन्ध—दशम स्कन्ध—की टीका पढ़ लेने पर कोई अपरितीक्ष्ण नहीं रह पाता।

२- श्रीभागवत-सूक्ष्म-टीका

यह भागवत के केवल प्रथम श्लोक "तन्मात्रस्य मतः— -" पर ही प्राप्त हुई है। सुना जाता है कि समस्त टीका जूनागढ़ के मदनमोहन मन्दिर में सुरक्षित है, किन्तु अभी देखी नहीं गई है।

३- श्रीमद्भागवतार्थ-प्रकरण

यह आचार्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ तत्त्व-दीप निबन्ध का तीसरा प्रकरण है। इसमें आचार्य ने श्रीमद्भागवत के अर्थ का बहुत ही निपुणता से निर्णय किया है और विरोधाभास का परिहार कर पूर्ण समन्वय स्थापित किया है।

४- श्रीदशमस्कन्धानुक्रमणिका

यह ग्रन्थ बहुत सूक्ष्म कारिकाओं में समाप्त किया गया है। किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बृष्ट-छाप के दो महा कवि सूर और परमानन्द-दास की आचार्य ने इसे सुना कर उन्हें भावस्तीक्षा का स्फुरण कराया था। यह ग्रन्थ बृहत्स्वयं सरित्सागर के द्वितीय भाग में मुद्रित हो चुका है।

५- पुरुषोत्तम-नाम-सहस्र

वल्लभ-सम्प्रदाय में यह स्तोत्र बहुत प्रसिद्ध है। श्रीमद्भागवत में भगवान् का जो पुरुषोत्तमत्व प्रतिपादित है, उसी का निरूपण इस स्तोत्र में किया गया है। प्रथम स्कन्ध से लेकर द्वादश स्कन्ध को समाप्त तक श्रीमद्भागवत में जिन भावल्लीलाओं का वर्णन है, उनका उल्लेख करते हुए आचार्य ने इसको रचना की है। वल्लभ-सम्प्रदाय में यह मान्यता है कि एक बार पुरुषोत्तम-नाम-सहस्र का पाठ करने से समस्त भागवत के पाठ का पुण्य-फल प्राप्त हो जाता है।

६- विविधलीलानामावलि:

इस ग्रंथ में निरोध-स्कन्धीय --दशम स्कन्ध की-- लीलाओं को प्रकट करने वाले नामों का प्रकार-भेद से संग्रह किया गया है। वैसे कि आचार्य ने कहा है कि "भक्ति की प्राप्ति के लिए भक्त ने निरोध-लीला के आधार पर विविध-लीला-नामावलि का निरूपण किया है। प्रथम बाल-लीला के नामों के पाठ से श्रीकृष्ण में प्रेम उत्पन्न होता है। द्वितीय, प्रौढ लीला के नामों के पाठ से श्रीकृष्ण में वासन्ति और तृतीय राज-लीला के नामों के पाठ से श्रीकृष्ण के चरणों में श्रद्धा उत्पन्न हो जाता है। अतः भक्ति की प्राप्ति के इच्छुओं को सदा विविध लीला के नामों का जप करना चाहिए।"

श्रीमद्भागवत भक्ति-शास्त्र है। उसमें बताया गया है कि भक्ति ही भगवान् की सर्वाधिक प्रिय है, तथा भक्ति ही एक-मात्र धर्म है। अवतार दशा तथा जनवतार-दशा दोनों में ही भगवान् जीव-मात्र का उद्धार करने के लिए प्रयत्न-शील रहते हैं। अवतार-दशा में वे स्वेच्छा से एक विशिष्ट रूप धारण कर के सब की दृष्टि-गत होते हैं। श्री-कृष्ण-रूप से पूर्णावतार दशा में उन्होंने अपने सम्पर्क में आने वाले सभी कौटि के प्राणियों का उद्धार किया था। इस समय भगवान् जनवतार दशा में मत्स्य-रूप-धारी भक्ति से

१-१- "निरोधलीलामावित्य भक्त्यै भक्तेन रूपितम्।

नाललीलानामपाठाच्छ्रीकृष्णे प्रेम जायते ।

वासन्तिः प्रौढलीलाया नाम्नां पाठाद् भविष्यति।

श्रद्धां कृष्णचरणौ राजलीलाविधानतः ॥

तस्मान्नानाम्नां नाम्न्यं भक्तिप्राप्तोच्छुभिः सदा । "विविधनामलीलावलिः :

फलश्रुति श्लोक १, २, ३.

प्राणिमयों का उद्धार करते हैं। उसी प्रकार अवतार-दर्शन के होने के कारण दृष्टि-गत नहीं हो रहे हैं। जिस प्रकार अवतार-दर्शन में भावान् अपने स्वरूप से उद्धार करते हैं, उसी प्रकार अवतार-दर्शन में माहात्म्य-ज्ञान-युक्त भक्ति से प्राणिमयों का उद्धार करते हैं। क्योंकि, जब प्राणी का भावान् के साथ माहात्म्य-ज्ञान-युक्त भक्ति का सम्बन्ध होता है, तभी भावान् उसका सत्वर उद्धार करते हैं। भक्ति का तात्त्विक निरूपण भावान् ने व्यास-रूप से श्रीमद्भागवत की रचना द्वारा किया है। किन्तु अनेक मत-मतान्तरों के कारण श्रीमद्भागवत के तात्पर्य में विपरित भाव उत्पन्न हो गए हैं, उन्हीं का निराकरण करने के लिए श्रीमद्वल्लभाचार्य जी ने "तत्त्वार्थ-दीप-निबन्ध" की रचना की। और उस पर "प्रकाश" नाम की टीका लिखी। श्री पुरुषोत्तम जी (जन्म सं० १७२७, वल्लभ सं० १७७०) ने इस पर "शावरण-भांग" नाम की टीका लिखी। उन्होंने भागवत पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी "भागवत-शंका-निराखण्ड" नाम से लिखा।

तत्त्वार्थ-दीप-निबन्ध की "प्रकाश" नामक टीका में वल्लभ ने लिखा है कि श्रीकृष्ण अपने स्वरूप से सब प्राणिमयों के उद्धार के लिए प्रवृत्त-शील हैं। उनका "सर्वोद्धारप्रयत्नात्मक" सिद्ध करने के लिए वेद-व्यास ने सर्वसुखादि श्रीमद्भागवत का निर्माण किया और श्रीमद्भागवत का तत्त्व --- श्रीकृष्ण का सर्वोद्धारप्रयत्नात्मक --- जिस प्रकार सिद्ध होता है, उसका निरूपण करने के लिए अग्नि-रूप वल्लभाचार्य ने "तत्त्वार्थ-दीप-निबन्ध" की रचना की है।^१ श्रीपुरुषोत्तम जी ने अपनी निबन्ध टीका "शावरण-भांग" में लिखा है कि भावान् ने अपने अवतार काल में विद्यमान पुरुषों का अपने रूप अपना स्वरूप से उद्धार किया। जब अवतार-दर्शन में अन्य प्राणिमयों का अपने "नाम" से उद्धार करने के लिए व्यास-रूप से उन्होंने श्रीमद्भागवत की रचना की है। श्रीमद्भागवत भाव-दर्शन का साधन होने के कारण सब को सुख-दायक है, और भावान् के तिरौहित-रूप होने पर भी श्रीमद्भागवत-रूप से प्रकट हो जाते हैं।

मत-मतान्तर से अनुष्य की बुद्धि मोहित हो जाने से श्रीमद्भागवत का शुद्ध अर्थ नहीं समझा जा सकता। इसीलिए श्रीवल्लभाचार्य जी ने तत्त्वार्थ-दीप-निबन्ध लिखा जिससे वेद-व्यास का प्रयत्न सफल हो। प्रधान सत्य भागवतार्थ-निरूपण होते हुए भी उसमें प्रथम गीतार्थ अथवा शास्त्रार्थ का वर्णन किया गया है, कारण भागवत समस्त वेदादि शास्त्रों का निगमिक है। इसीलिए इस निबन्ध में आचार्य जी ने तीन प्रकरण रखे हैं :-

१. तत्त्वार्थदीपनिबन्ध शास्त्रार्थ प्रकरण पृष्ठ १-३३.

१-शास्त्रार्थ प्रकरण,

२-सर्व-निर्णय प्रकरण,

३-भागवतार्थ प्रकरण ।^१

इस तीसरे प्रकरण में ही आचार्य ने श्रीमद्भागवत का अर्थ-प्रतिपादन किया है। किन्तु प्रथम शास्त्रार्थ प्रकरण तीसरे का ही प्रतिपादक है। इसका प्रमाण शास्त्रार्थ प्रकरण के भागवत-सम्बन्धी उल्लेखों से मिल जाता है। इसमें कहा गया है कि ईश्वर-वाचक नाम के सम्बन्ध में उपनिषद् में ब्रह्म, स्मृतियों में परमात्मा, और भागवत में भावान् शब्द का प्रयोग हुआ है। वल्लभ ने अपने तीन प्रकरणों में क्रमशः तीन नाम प्रयुक्त किए हैं।^२ इसी प्रकार भावान् का स्वरूप-निर्धारण करते हुए भी कहा गया है कि वेद के पूर्व काण्ड अर्थात् कर्म-काण्ड में श्रीहरि त्रिधा-शक्ति-विशिष्ट भक्त-रूप हैं। दूसरे अर्थात् ज्ञान-काण्ड में वे ज्ञान-शक्ति-विशिष्ट ब्रह्म-रूप हैं, और त्रिधा एवं ज्ञान, उभय-विशिष्ट अवतारी कृष्ण का निरूपण श्रीमद्भागवत में किया गया है।^३

२- "वेदान्ते च स्मृती ब्रह्म किं भागवते तथा ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भावानिति शब्दते ॥

त्रितये त्रितयं वाच्यं त्रैणीय मयाऽत्र हि ॥

तत्त्वदीप-निबन्ध : प्र० १।६।

३- "हत्वाकलम् सततं शास्त्रार्थः सर्वनिर्णयः।

श्रीभागवतरूपं च त्वं वक्ष्यिष्यामसि ॥

तत्त्वदीप-निबन्ध : प्र० १।५।

३- "यज्ञरूपी हरिः पूर्वकाण्डे ब्रह्मतनुः परे।

अवतारी हरिः कृष्णः श्रीभागवत इयति ॥

तत्त्वदीप-निबन्ध : प्र० १।११।

श्री चैतन्य महाप्रभु का भक्ति-भेदाभेद-वादों सम्प्रदाय और श्रीमद्भागवत

महाप्रभु श्रीचैतन्य- श्रीचैतन्य जयवा गीराहंग का जन्म नव-द्वीप, बंगाल में सन् १४८५ में हुआ था। उस समय बंगाल की धार्मिक स्थिति बड़ी शौचनीय थी। लोग "मंगल-चण्डी" और "मनसा-देवी" की स्तुति-पूजा को ही धर्म का सर्वस्व मानते थे। शास्त्र विद्वान् ब्राह्मणों पर भी शास्त्र का प्रभाव न था। बंगाल का तत्कालीन स्व से बड़ा विभीषीट और चैतन्य का जन्म-स्थान नव-द्वीप भीतिक्ता का शिकार बना हुआ था। भक्ति-मार्ग के पथिक इन्हीं-गिरे ही थे।^१

इस समय २२ वर्ष के युवक चैतन्य की स्वाति एक पण्डित के रूप में फैल चुकी थी। जब वे अपने स्वर्णिम पिता का पिण्ड करने गया गए, तो वहाँ उन्हें "ईश्वर पुरी" नामक वैष्णव विद्वान् का साक्षात्कार हुआ। वहाँ से चैतन्य की जीवन-धारा पलट गई। ईश्वर-पुरी से चैतन्य ने भक्ति-धर्म की दीक्षा ले ली। उन्हें रसेश श्रीकृष्ण की अनन्त मधुरिमा के दर्शन हुए। जब वे भावद्विरह में अहर्निश पीड़ित रहने लगे। वे हरि-नाम संकीर्तन करते हुए नव-द्वीप में विचरण करने लगे। मिन्दक पण्डितों के कारण उन्हें अपनी ब्रूवा माता और तरुणी पत्नी को घर छोड़ कर पुरी जाना पड़ा। उन्होंने १६वर्ष तक भारत का पर्यटन किया और रामेश्वर, वृन्दावन तथा रामकेशि - गौड़ बंगाल- तक गए। पर्यटन-काल में ही भारत-वर्ष के दो पुरन्दर विद्वान्, जिनसे सत्रों शिष्य शांकर वेदान्त पढ़ते थे, चैतन्य के भक्ति-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए। ये थे प्रकाशानन्द सरस्वती और जगुदेव सार्वभौम। इनके कारण चैतन्य-सम्प्रदाय का प्रचार बड़ी तीव्रता से हुआ। इनके वसि-रिक्त बंगाल के विद्वान् श्रीरूप गौस्वामी, सनातन गौस्वामी, तथा उनके भतीजे जीव गौस्वामी चैतन्य के सम्प्रदाय में दीक्षित हो गए। इन तीनों आचार्यों ने श्रीचैतन्य के मत तथा भक्ति-सिद्धान्त पर अपूर्व साहित्य की सृष्टि की है। चैतन्य का मत अत्यन्त लोक-प्रिय हुआ। इसका प्रमुख कारण यह था कि चैतन्य ने लोक-मानस का स्पर्श किया था। सीन्दूर, प्रेम, और माधुर्य की ओर मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है ही। चैतन्य ने लोगों की भावान् का यही मधुर रूप दिखाया। उन्होंने गार्श्वाल दिया कि ईश्वर के इस रूप का अनुभव हो जाने पर मनुष्य की समस्त कामना पूर्ण हो जाती है।

चैतन्य का दार्शनिक सिद्धान्त

पर-ब्रह्म श्रीकृष्ण जनादि जीर जनन्त है। वह सर्व-व्यापक है। ब्रह्म में अपार्थिव शक्तियाँ जीर गुण चरमावस्था में विद्यमान हैं। ब्रह्म का बर्ण है सब से बड़ा "बृहन्तो गुणा अस्मिन्निति ब्रह्म"। ब्रह्म ~~सर्व~~ अपने आकार, गुणों जीर शक्तियों में सबसे बड़ा है।^१ यह पर-ब्रह्म श्रीकृष्ण ही है। वासुदेव, विष्णु, नारायण, शिव तथा अन्य देव जिनके नाम-रूपों तथा शक्तियों का वर्णन शास्त्रों में है, श्रीकृष्ण के ही रूप हैं। ये शक्ति जीर गुणों में श्रीकृष्ण से स्थूल हैं।^२ श्रीकृष्ण अद्वितीय है। वह सर्व-तन्त्र-स्वतन्त्र है। वह विश्व का मादि कारण है। वह प्रत्येक वस्तु में जीर प्रत्येक वस्तु उसमें विद्यमान है। किन्तु श्रीकृष्ण एक मानव-देह-धारी है।^३ यद्यपि स्थूल दृष्टि से देखें तो वह एक प्राकृत मानव शरीर में ही सीमित है किन्तु वह वस्तुतः सर्व-व्यापक जीर जनन्त है।^४ वह सर्वत्र परिपूर्ण, भावन्त-रहित, अपार्थिव, चिर तारुण्य युक्त, तथा परम सुन्दर है।^५ यह श्रीकृष्ण का निज रूप है। जीर अपनी इस अभिन्त्य शक्ति के कारण ही वह पर-ब्रह्म है। वह समस्त विरूद्ध धर्मों का बाध्य है।^६ वह दिक्कालोचनवच्छिन्न है। वह सत्, चित्, जीर आनन्द मय है।^७ सत् जीर चित् तो ब्रह्म श्रीकृष्ण के गुण हैं, किन्तु आनन्द तो उसका स्वरूप ही है। आनन्द जीर माधुर्य के समस्त सम्भव रूप उसमें विद्यमान हैं। अतः वह आस्वाद्य है। उपनिषद् इसीलिए इसे "रस" कहते हैं। "रसो वै सः"।^८ वह सब को आकृष्ट करता है, इसलिये "कृष्ण" कहलाता है। "कृष्ण" ही उसी धामों में सबसे महत्व-पूर्ण है। चैतन्य-सम्प्रदाय में "कृष्ण" नाम को सर्वोच्च माहात्म्य प्रदान किया गया है। श्रीकृष्ण का सोला-धाम है वृन्दावन, ब्रज, यवका गीरुला। यह नित्य धाम है।^९

१-श्रीचैतन्य-चरितामृत २।१।५२ तथा विष्णु पुराण १।१२।५७।

२-श्रीसप्त-भागवतामृतम् १।१।८६ से ९० तक।

३-श्रीमद्भागवत १।२।१२।

४-श्रीचैतन्यचरितामृत १।५।१५।

५-श्रीचैतन्यचरितामृत २।११।८३।

६-श्रीसप्त-भागवत १।१।११०।

७-श्रीचैतन्यचरितामृत २।२०।११२।

८-सैत्तिरीय उपनिषद् : २।७

९-श्रीचैतन्यचरितामृत : १।५।१२-१५।

साधना-पद्धति- श्रीकृष्ण की प्राप्ति करने का उपाय है अनन्य प्रेम। प्रेम का प्रधान लक्षण है आत्मानुसन्धान होकर प्रेमास्पद के प्रति आत्म-समर्पण, प्रेमी और प्रेमास्पद का एकीकरण। श्रीकृष्ण के वृन्दावन साधर अपने प्रेम की मात्रा और उपासना-पद्धति के अनुसार चार श्रेणियों में विभक्त हैं, किन्तु प्रत्येक श्रेणी के भक्त का सामान्य लक्षण है अनन्य भक्ति और श्रीकृष्ण की तुष्टि के लिए प्रेम-सर्व सेवा। ये स्वयंकी और श्रीकृष्ण की गोप-वंश का सदस्य मानते हैं।

भक्तों की ४ श्रेणियाँ ये हैं:-

- १-दास्य भक्त : ये भक्त श्रीकृष्ण की स्वामी और स्वयं की सेवा मानते हैं।
- २-सख्य भक्त : ये भक्त श्रीकृष्ण के प्रायः समकक्ष हैं, उनके साधर हैं।
- ३-वात्सल्य भक्त: जनादि और अनन्त होने के कारण पर द्रष्टृ श्रीकृष्ण के माता पिता का होना, असम्भव है, किन्तु उनके चिर साधर नन्द और यशो-दा अपने को उनका जनक और अपनी समझ कर श्रीकृष्ण को अपना अधीन आश्रित और रक्षणीय समझते हैं। इस भाव के भक्त वात्सल्य भक्त हैं।
- ४-कान्ता भक्त : अथवा गोपियाँ : इनमें राधा प्रमुख हैं। शेष उनकी सखियाँ और परिचारिकाएँ हैं। गोपियों में दिव्य प्रेम का चरम विकास हुआ है। शास्त्रीय शाब्दावली में इसे "महाभाव" कहते हैं। श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के समस्त व्यवहार, यहाँ तक कि क्लृप्त भी, प्रेम के मार्ग से झील-प्रेत हैं। यह परम आकर्षक और आस्वाद्य है। श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों की प्रेम-मयी उपासना में किसी प्रकार का भी बन्धन अथवा संलौच नहीं है। पूर्वोक्त तीन श्रेणियों के भक्तों में यह विशेषता नहीं है।

महा भाव- गोपियों और श्रीकृष्ण के मिलन में सांसारिक इन्द्रिय-सुख की गन्ध तक नहीं है। इन्द्रिय सुख की साखता तो पार्थिव देह में सम्भव है। श्रीकृष्ण और गोपियों तो दिव्य देह धारी हैं। साधारण सांसारिक मिलन में स्त्री-पुरुषों को अपने-अपने नाम-स्त्री-स्त्री-स्त्री का भान रहता है। किन्तु महाभाव में श्रीकृष्ण और गोपियों को अपने-अपने नाम-स्त्री-स्त्री-स्त्री का अनुसन्धान नहीं रहता। दाम्पत्य ही सब से अधिक प्रबल और घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि इसमें से कुछ इन्द्रियसुख की वासना को निकाल दिया जाय, तो यह सम्बन्ध पवित्र-तम बन जाता है। कृष्ण और गोपियों का प्रेम ऐसा ही है। इसका उद्देश्य प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं— पिराद्वय प्रेम ।

महाभाव का चरम रूप मादन है। वह ज्ञानन्दमयी उन्मत्तावस्था है। एक-मात्र राधा ही इसकी अधिकारिणी है। यहाँ तक कि श्रीकृष्ण भी नहीं। जब राधा में मादन-भाव जाग्रत होता है, तो श्रीकृष्ण के मिलन और नैक्य की ज्ञानन्दमयी भावना के साथ विरह की अत्यन्त तीव्र वेदना भी उसमें मिली रहती है।

मानवजीवन का उद्देश्य— ज्ञानन्द की कामना मनुष्य-मान में सर्वत्र है। उसकी समस्त प्रियाएँ ज्ञानन्द-सम्पादन के लिए होती हैं किन्तु पार्थिव वस्तुओं से ज्ञायमान ज्ञानन्द की आशा व्यर्थ है। अतः ज्ञानन्द, मार्ग्य और प्रेम के एक-मात्र निधान श्रीकृष्ण ही हमें ज्ञायमान और वास्तविक ज्ञानन्द दे सकते हैं। अतः श्रीकृष्ण की प्राप्ति ही मनुष्य का चरम लक्ष्य होना चाहिए। इस उद्देश्य तक पहुँचने के लिए चैतन्य सम्प्रदाय में निम्न-लिखित पाँच साधनों पर जोर दिया गया है :-

- १- श्रीकृष्ण के भावों का संग ।
- २- श्रीकृष्ण-नाम का जलण्ड धीर्तन ।
- ३- श्रीकृष्ण की प्रेम-सीताओं का भजन ।
- ४- श्रीकृष्ण की प्रकट सीता के घाम वृन्दावन में निवास, यदि शरीर से न हो तो मानसिक रूप से ही खी ।
- ५- श्रीकृष्ण की प्रतिमा का प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण-भाव से वर्जन ।

उक्त साधनों पर दृष्टि-पात करने से यह ती स्पष्ट हो ही जाता है कि उक्त पाँचों साधनों का सविस्तर विवेचन और माहात्म्य श्रीमद्भागवत में है। इन साधनों की सफलता के अर्द्धा, साधु-संग, जाचार-पालन, आदि जिन सात सीपानों का चैतन्य-सम्प्रदाय में सविस्तर वर्णन है उनका बहुत ही युक्ति-युक्त और वैज्ञानिक विवेचन श्रीमद्भागवत में किया गया है।^१ अतः यह कहना अनुचित न होगा कि चैतन्य सम्प्रदाय की जापार-भूमि तत्काल और व्यवहारतः श्रीमद्भागवत ही है। अतः हम आगे चैतन्य-सम्प्रदाय के भागवत-सम्बन्धी साहित्य का विवेचन करेंगे।

१- श्रीमद्भागवत : ३।२५।३२-४४।

भक्ति के समस्त आचार्यों का सक्षय भक्ति-सिद्धान्त को स्थापित कर शंकर के मायावाद का उन्मूलन करना या चैतन्य सम्प्रदाय मध्य सम्प्रदाय के ही अन्तर्गत है। अतः चैतन्य सम्प्रदायों के आचार्यों ने मध्वाचार्य की स्तुति भक्ति-प्रवर्तक के रूप में की है। इन आचार्यों की श्रीमद्भागवत के रूप में एक ऐसा अप्रतिहत शास्त्र मिल गया था कि उसके सहारे वे भक्ति का प्रचार वे बड़े आत्म-विश्वास से कर पाते थे। श्री बलदेव कृष्ण भूषण ने जीव-गोस्वामी कृत भागवत-सन्दर्भ -- अट्-सन्दर्भ -- की टीका में मध्वाचार्य की स्तुति में कहा है "मायावाद के महान् बन्धकार-समूह को जिसने वेद-वाक्य-रूप किरण-जाल से नष्ट करके लोक में विष्णु की भक्ति का दर्शन कराया, उन सूर्य-रूप आनन्द तीर्थ -- मध्वाचार्य -- की जय हो " १ इसी प्रकार भक्त-प्रवर रूप और सनातन गोस्वामी की स्तुति में उन्होंने कहा है "सत्संगी के सेव्य गीर्वन्द -- इन्द्रिय से ज्ञातव्य -- नामक परम तत्व को जिन्होंने मायावाद के महान् बन्धकार से निकाल कर हस्तस्थ रत्न के स्थान दिया दिया, उन आश्चर्य-कर्मा श्री रूप-सनातन की हम स्तुति करते हैं।" २ जीव गोस्वामी के सम्बन्ध में वे कहते हैं "श्री महान् कृष्ण तत्त्व सांख्य के प्रक, कुतर्क की घूट और विवर्त के गर्त से सुप्त-तैव हो गया था, उसे अपनी वाक्-चुपा से शुद्ध करने वाले श्रीजीव गोस्वामी की हम शरण हैं।" कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त समस्त आचार्यों ने श्रीमद्भागवत का ही आश्रय लेकर विष्णु भक्ता श्रीकृष्ण की भक्ति का प्रचार किया था।

चैतन्य सम्प्रदाय की निश्चित मान्यता है कि बादरायण भगवान् व्यास ने ब्रह्म-सूत्रों का निर्माण कर उसके भाष्य-भूत श्रीमद्भागवत की रचना की। उन्होंने ही उसे शुक देव जी की पढ़ाया। ३

श्रीजीव गोस्वामी ने अपने भागवत-सन्दर्भ के प्रारम्भ में स्पष्ट दिखा दिया है कि इस ग्रन्थ की वही देवे जी श्रीकृष्ण के धरण-कमलों के भजन का एक-मात्र अभिलाषी है। इसे अन्य को देखने की शायद है। ४ जीव गोस्वामी अपने पूर्व-वर्ती उन समस्त गुरुओं के

१- "मायावादं यस्तु मूलोपमूलैर्नाशीमिन्ये वेदवागुपजासः।

भक्तिर्विष्णोर्दशिता येन लोके जीयात् सविः। मानुरानन्दतीर्थः।"

श्रीबलदेव विद्याभूषण-कृत भागवत-सन्दर्भ की टीका : प्र० तत्त्वसन्दर्भ : २।

२- वही : श्लोक ३।

३- "श्रीबादरायणी भगवान् व्यासो ब्रह्मसूत्राणि प्रकाश्य तद्भाष्यभूतं श्रीमद्भागवतमाविर्भा-
ष्य शुकं तद्व्यापितवान्।" वही : पृ० २

४- "यः श्रीकृष्णपदास्मिन् भजनैकाभिलाषवान्।

तैव दृश्यतामेतदन्यस्मै शरण्योऽर्पितः।।" वही : पृष्ठ श्लोक ६।

प्रति कृतज्ञ हैं और उन्हें प्रणाम करते हैं जिन्होंने श्रीमद्भागवत के अर्थ का दान दिया है।^१

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के प्रेम की प्राप्ति कर लेना ही परम पुरुषार्थ बताया गया है। उसी के अनुसार जीव गौस्वामी ने अपने भाववत सन्दर्भ में मंगलाचरण में श्री-कृष्ण की स्तुति में उनके प्रेम की याचना की है।^२

यहां चैतन्य सम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा श्रीमद्भागवत पर जिन ग्रन्थों की रचना हुई है उनका विवरण दिया जाता है। साथ ही यह भी दिखाया जायगा कि उक्त सम्प्रदाय में भागवत को कितना महत्व-पूर्ण स्थान दिया गया है।

श्रीभागवत-सन्दर्भ- इसका प्रसिद्ध नाम षट्-सन्दर्भ है। हरके रचयिता श्रीजीव-गौस्वामी हैं। इस ग्रन्थ की चैतन्य सम्प्रदाय में बहुत मान्यता है। इसमें श्रीमद्भागवत का सांगोपांग अर्थ और रहस्योद्घाटन किया गया है। ग्रन्थ का "सन्दर्भ" नाम ही बहुत उपयुक्त है। सन्दर्भ का लक्षण आचार्यों ने यह किया है कि जितने किसी मतानु-ग्रन्थ के गूढार्थ का प्रकाश, उन्की सारी गितियों का श्रेष्ठता, उन्की मानार्थकता और उन्की जातकत्व का प्रतिपादन हो वह सन्दर्भ कहलाता है।^३ श्रीभागवतसन्दर्भ में ६ सन्दर्भों द्वारा श्रीमद्भागवत की उक्त रूप के वैज्ञानिक व्याख्या की गयी है। अतः स्पष्ट है कि जीव गौस्वामी ने श्रीमद्भागवत को अपने मतानुसार जिस उत्तम संतुष्टता के साथ व्याख्या किया है। श्रीमद्भागवत सन्दर्भ में ६ सन्दर्भ हैं, इसीलिए इस ग्रन्थ को "षट्-सन्दर्भ" भी कहते हैं। इन सन्दर्भों के नाम इस प्रकार हैं:-

प्रथम -- तत्त्व-सन्दर्भ	द्वितीय -- भावतु-सन्दर्भ
तृतीय -- परमात्म-सन्दर्भ	चतुर्थ -- श्रीकृष्ण-सन्दर्भ
पंचम -- भक्ति-सन्दर्भ	षष्ठ -- प्रीति-सन्दर्भ

श्रीभागवत-सन्दर्भ के अनुबन्ध-चतुष्टय में कहा गया है कि श्रीकृष्ण इस ग्रन्थ के विषय, उनका वाच्य-वाचक लक्षण सम्बन्ध, उनका प्रेम-लक्षण प्रयोजन और भक्ति

१- अथ भक्ता भक्तगुरोर्गुरुं गुरुं भागवतादीन्।

श्रीभागवतसन्दर्भ सन्दर्भ वशिष्ठोक्तम् ॥ श्रीभा० सं० : प्रथम तत्त्व-सं० : ७।

२- यस्य ब्रह्मेति संज्ञां क्वचिदपि निगमे याति सिद्धिमाप्स्यति

पञ्चाशी वाचांशकैः स्वैर्विभवति वरामन्नेव मायां पुमांश्च।

एकं यस्मैव रूपं विलसति परमज्योत्स्नि नारायणाख्यं

स श्रीकृष्णो विपत्तां स्वयमिह भावान् प्रेम तत्त्ववभाजाम् ॥ श्रीभा० सं० : प्र० सं० : ८

३- गूढार्थस्य प्रकाशश्च सारीजितः श्रेष्ठता तथा। श्रीभा० सं० : तत्त्वसन्दर्भटीका : वलीव-नीनार्थकत्व के लिये सन्दर्भः कथ्यते बुधैः ॥ विद्याभूषणः

अधिकारी है। किन्तु पुरुष अर्थात् जीव श्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा और करणापाटव इन दोष-चतुष्टय से युक्त होने के कारण उसके द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रत्यक्षादि प्रमाण भी सदोष होगे और वे अत्यन्त अलौकिक अचिन्त्य-स्वभाव वस्तु -- श्रीकृष्ण -- को स्पर्श भी नहीं कर सकेंगे। अतः अक्षादि-सिद्ध, समस्त लौकिकालौकिक ज्ञान के आदि-कारण अत्राकृत वचन लक्षणा वेद ही उस अलौकिक वस्तु (श्रीकृष्ण) के परिज्ञान में प्रमाण हैं। किन्तु शाब्द-प्रमाण-भूत वेद सम्प्रति अत्यन्त दुरूह हैं और वेदार्थ का निरूपण करने वाले मुनियों में भी परस्पर विरोध है अतः वेद के अर्थ का निर्णय करने वाले इति-हास और पुराण रूप शाब्द-प्रमाण पर ही विचार करना चाहिए।^१ वेदार्थ की इति-हास-पुराणों के द्वारा पुष्ट करना चाहिए। वेदार्थ को पूर्ण करने के कारण पुराण को "पुराण" कहते हैं।^२ वेद से वेद का उपबृंहण असम्भव है, और सुवर्ण-कंकण को पूर्ति सीसे से असम्भव है। अतः इतिहास-पुराण भी वेद हैं। ऋग्-यजुः-साम-अथर्वदि वेद और इतिहास-पुराणादि भी ईश्वर के निश्वासे हैं।^३ इतिहास^{पुराण} को "पंचम वेद" नाम^अ द्वाभी वे स्पष्टतः अभिहित किया है।^४ अतः इतिहास-पुराणों का वेदत्व सिद्ध होता है।^५ किन्तु पुराणों के इस प्रकार प्रमाण-कोटि में होने पर भी उनके समस्त रूप का अ-प्रचार होने और उनके भिन्न भिन्न देवता प्रतिपादक होने से क्षुद्र बुद्धि के अर्वाचीन लोगों द्वारा उनका अर्थ दुराशय है।^६ अतः मत्स्य पुराण के अनुसार सात्त्विक, राजस, तामस पुराण के विभागानुसार पुराणों की वैष्टता का तारतम्य करना चाहिए।^७ सत्त्व से ज्ञान होता है और ब्रह्म का दर्शन होता है, अतः सात्त्विक पुराण ही परमार्थ-ज्ञान के लिये प्रबल साधन है, यह सिद्ध हुआ।^८ समस्त वेद-पुराणों के अर्थ-निर्णय के

१-"वेदार्थनिर्णयश्चेतिहासपुराणात्मकः शाब्द एव विचाराणीयः" श्रीभाग० सं० : तत्त्व० : पृ० ७

२-"इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्"

३-"पुराणात्पुराणमिति चान्यत्र" : तत्त्वसन्दर्भः पृ० ७ : वेदार्थस्येति बोध्यम्" टीका : पृ० ७।

४-एवं वा अरे मन्मथस्य महती भक्तस्य निःश्वसितमेतद् यद्वृक्षेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वणि-
रस इतिहासः पुराणम्-" माध्वनिन्दनश्रुती-मैथिली-याज्ञवल्क्यसंवादः भा० सं० : तत्त्व० : पृ० ७।

५-इतिहासपुराणानि पंचमं वेदमोक्षदः। सर्वस्य एव वचनेभ्यः उत्पन्ने सर्वदर्शिनः।

६-"तदेवमितिहासपुराणयोर्वेदत्वं सिद्धम्।" तत्त्वसन्दर्भः पृ० १०।

७-श्रीभाग० सं० : पृ० तत्त्व सं० : पृ० १२।

८-पंचांगं च पुराणं स्यादात्मानमितरत्स्मृतम्। सात्त्विकेण च कल्पेण महात्म्यमधिकं हरेः।
राजसेणु च महात्म्यमधिकं ब्रह्मणी विदुः। तैत्तिरीयेण च महात्म्यं तामसेणु शिवस्य च।
यदुक्तं मात्स्येः" भाट्टसं० : पृ० १२।

९-सत्त्वादितारतम्येनैवेति चेत् सत्त्वात् संज्ञामते ज्ञानमिति सत्त्वं यद् ब्रह्मदर्शनमिति
न्यायात् सात्त्विकमेव पुराणादिकं परमार्थज्ञानाय प्रबलमित्यापातम्। श्रीभाग० सं० : तत्त्व०

लिए भावान् व्यास ने ब्रह्म-सूत्रों का प्रणयन किया और उनका उपजीव्य, समस्त वेद-
इतिहास-पुराणों के अर्थ का सार,, सर्व-प्रमाण-सङ्कर्त, हमारा परम अभिमत, श्रीमद्-
भागवत नामक महा-पुराण उन्होंने रचा।^१ जिसे समस्त पुराणों की रचना कर ब्रह्म-
सूत्रों की भाँ रचना करने पर भी अपरितुष्टि होने के कारण व्यास ने अपने सूत्रों के
अङ्गुलिम भाष्य-भूत समाधि में प्राप्त किया। इसमें समस्त शास्त्रों का समन्वय है क्योंकि
यह समस्त वेदार्थ के सूत्र-रूप गायत्री का व्याख्यान है। इसमें गायत्री में प्रयुक्त "वीमहि"
पद से गायत्री का कवन है क्योंकि गायत्री मन्त्र समस्त मंत्र का आदि-रूप है। उसका
प्रत्यक्ष कवन अभीष्ट नहीं। "जन्माद्यस्य वतः" "तेने ब्रह्म वृदा" आदि पदों से गायत्री
के सर्वलोकप्रयत्न, बुद्धि के प्रेरकत्व आदि अर्थों का बोध होता है। "धर्मः प्रीतिभक्त-
कैतवोऽत्र परमः" आदि पदों से इसका धर्म-विस्तारकत्व प्रतिपादित होता है। यह श्रीमद्-
भागवत भावान् के ध्यानादि लक्षणों से युक्त धर्म की ही धर्म कहता है।^२ मत्स्य-पुराण
में लिखा है कि जिस में गायत्री की अधिकृत कर धर्म-विस्तार वर्णित है वह धृवासुर-
वधोपेत ग्रन्थ भागवत कहलाता है।^३

श्रीमद्भागवत भावान् और भक्त दोनों की प्रिय है वतः यह परम सात्विक है।^४
यह पद्म-पुराण में भी माना गया है।^५ स्कन्द-पुराण में भी कहा गया है कि श्रीमद्-
भागवत का भावद्विग्रह के सामने भक्ति-सहित पाठ करने से कुल-सहित भावद्वय प्राप्त
होता है।^६ वाजपेय गौस्वामी ने अनेक पुराणों के आधार पर श्रीमद्भागवत की ब्रह्म-
सूत्रों का भाष्य कहा है।^७ उन्होंने परमार्थ के दृष्टियों की एकमात्र श्रीमद्भागवत पर मनन
करने की सम्मति दी है।^८

१-यथोक्तमेष पुराणो लक्षणमपीरु जीव सर्ववेदितितितपुराणो मयसार ब्रह्मसूत्रोपजीव्य च भवद्
भुवि सम्पूर्णं प्रचरद्रूपं स्यात्। सत्यमुक्तम्। यत एव च सर्वप्रमाणानां सङ्कर्तभूतमस्मदभिमत-
श्रीमद्भागवतमेषोद्भाषितं भवता।" श्रीभाग० सं० : तत्त्वसं० : पृ० १३।

२-वहीः तत्त्वसन्दर्भः १९ : पृ० १३। ३-वहीः तत्त्वसन्दर्भः १९ : पृ० १४।

४-यत्राधिकृत्य गायत्री वर्ण्यते वेदविस्तरः। धृवासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते। "तत्त्वसं० : पृ० १३।

५-श्रीमद्भागवतस्य भावतिप्रयत्नेन भागवताभीष्टत्वेन च परमसात्विकत्वम्। वहीः पृ० १४।

६-पुराणं त्वं भागवतं पठसि पुरतो हरेः। चरितं देवराजस्य प्रसादस्य च भूषते।

राजी तु नागरः कार्यः शीतवा वैष्णवा कथा--पठितं प्रयत्नेन हरेः सन्तोषकारणम्।
उद्धृतः तत्त्वसं० : पृ० १४।

७-श्रीमद्भागवतं भक्त्या पठते हरिसन्निधौ। नागरे तत्पदं याति कुतूहलसमन्वितः।

८-पूर्वं सूक्ष्मत्वेन मनस्याविर्भूतं तदेव संक्षिप्य सूत्रत्वेन पुनः प्रकटितं परमाद् विस्तीर्णत्वेन
साक्षात् श्रीभागवतम् इति।" तत्त्वसं० : पृ० १४।

९-तदेव परमार्थविवित्पुभिः श्रीभागवतमेव साम्प्रतं विचारणीयमिति लिखितम्। तत्त्वसं० : पृ० १६।

श्रीजीव गोस्वामी ने श्रीमद्भागवत का महत्त्व प्रतिपादित करने के लिए श्रीमद्-
भागवत पर अनेक भाषाओं की टीकाओं, भाष्यों और निबन्धों की रचना की है।^१
श्रीजीवगोस्वामी ने श्रीमद्भागवत के ही आधार पर श्रीमद्भागवत की श्रीकृष्ण का
रूप हो माना है। हेमाद्रिकार के वक्त के आधार पर "मुक्ताफल" से उद्धरण देते हुए
उन्होंने कहा है, वेद प्रभु के स्मान, पुराण मित्र के स्मान, और काव्य प्रिय के स्मान के
उपदेश देते हैं। इन तीनों का समन्वय श्रीमद्भागवत में मौजूद है।^२

श्रीजीवगोस्वामी ने श्रीमद्भागवत की परम निःशेषता की प्राप्ति के लिए विचार-
णाय बताया है और पीरार्पण के अविरोध के साथ अपने छद्म-सन्दर्भ में उल्ला विस्तृत
व्याख्यान किया है।^३ ओषर स्वामी का अनुसरण किया है। साथ ही द्रविड देश के
विस्थात भक्तों, श्री --तत्त्व-- से प्रवृत्त श्रीकृष्णव सम्प्रदाय के आचार्य श्रीरामानुजा-
चार्य के श्रीभाष्यादि में उल्लिखित मतों का भी प्रामाण्य स्वीकार किया है।^४ साथ ही

१-तत्त्व-सन्दर्भः पृ० २०।

१-तत्त्व-भागवत- यह हम शार्ङ्ग पंचरात्र के शास्त्र प्रस्ताव में परिगणित है और
श्रीमद्भागवत का भाष्य-भूत है।

२-श्रीमद्भागवत,

३-वाचना-भाष्य,

४-तत्त्व-दीपिका,

५-शुद्ध-वृत्त।

६-सम्मान-प्रीति,

७-भाष्य-दीपिका,

८-मिष्टका-मेष

९-परमहंस-प्रिया,

ये व्याख्या ग्रन्थ हैं। इनके अतिरिक्त १ निबन्ध ग्रन्थ है:-

१-मत्ता-फल

२-हरिवाता,

३-भक्ति-रत्नावली।

२-तत्त्व-सन्दर्भः पृ० १९।

"महो हि बहूनाः श्रीकृष्णरूपमैवेदम्। यत उक्तं प्रथमस्कन्धे:-

"कृष्णो स्वयामोपगते कर्मज्ञानादिभिः सह। क्लृप्ता नष्टद्वशामेव पुराणैर्लोक्यते।"

३-वेदः पुराणं काव्यं च प्रभुर्भिन्नं प्रियं च।

नोपान्तीति हि मातुर्स्निग्धं भागवतं पुनः। १"

तत्त्व-सन्दर्भः : पृ० २०।

४-"सदैव परमनिःशेषनिश्चयाय श्रीमद्भागवतमेव पीरार्पणविराजितं विचार्यते।

तत्रास्मिन् सन्वर्धनरूपात्मके ग्रन्थे सूत्रस्थानीयमवतारिकावाक्यम्। विजयवाक्यं श्री-

मद्भागवतवाक्यम्- - - ।" तत्त्व-सन्दर्भः पृ० २०।

५-तत्त्व-सन्दर्भः : २० : पृ० २१।

दक्षिण और गीह के विख्यात भाषावेत्त पुरी, विजय व्यास, व्यस तोर्य आदि विद्वानों के गुरु रामाचार्य के भागवत-तात्पर्य-निर्णय, भारत-तात्पर्य-निर्णय और ब्रह्म-सूत्र के भाष्य से भी उदाहरण उद्धृत किये हैं। श्रीमद्भागवत का प्रामाण्य सिद्ध करने के लिए गरुड़-ब्रह्म-स्कन्दादि पुराण, महा-संहिता आदि संहिता, तंत्र-भागवत, ब्रह्मसूत्रादि तंत्र ग्रन्थों से उद्धरण लिये हैं।^१

श्रीजीवाचार्यजी ने भागवत-सन्दर्भ में श्रीमद्भागवत का ज्योत्स्न भावतात्पर्य-वचन भवतः ही बताया है। वह प्रेम तत्त्वाज्ञा-भवणादि लक्षण भावभजन से ही उत्पन्न होता है।^२ श्रीमद्भागवत के उन श्लोकों को श्रीजीव गोस्वामी ने उद्धृत किया है जिनसे श्रीमद्भागवत का भक्ति-परकत्व सिद्ध होता है।^३

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीजीव गोस्वामी ने भागवत-सन्दर्भ में श्रीमद्भागवत पर प्रत्येक दृष्टि-कोण से विचार किया है। उन्होंने उसका परम प्रामाण्य स्थापित किया है।

भागवत-सन्दर्भ के छह सन्दर्भ एक से एक अधिक महत्व-पूर्ण हैं। प्रथम तत्व-सन्दर्भ में श्रीजीवाचार्यजी ने श्रीमद्भागवत के दस तत्वों - सत्य-विद्यादि का सविस्तर वर्णन किया है और सत्यादि के लक्षण कहे हैं।^४ पुराणों के पाँच और दस लक्षणों के आधार अल्प और महापुराण के भी मत हैं उनकी समीक्षा करते हुए उन्होंने श्रीमद्भागवत को महापुराण कहा है।^५ श्रीजीव ने कहा है कि भिन्न भागवतसन्दर्भ में क्रमशः विस्तार से छह सन्दर्भों में श्रीमद्भागवत का तात्पर्यनिर्णय किया है।^६ प्रथम तत्व-सन्दर्भ

१-तत्व-सन्दर्भः २७:पृ० २१। २-तत्व-सन्दर्भः २७:पृ० २३।

३-"तथा ज्योत्स्नात्म्यः पुरुषार्थश्च तादृशास्तदासन्निभं तत्प्रमुखमेव। ततोऽभियमपि तादृशास्तत्प्रमज्जं तत्त्वोक्तान्वयादि लक्षणं तद्भजनमेवेत्याश्रयम्" बहोः पृ० २३।

४-अनयोपशमं साक्षाद् भक्तियोगमपीदमेव। लोकस्याजानतो व्यासश्चक्रे सात्वतसंहिताम्। यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णो परमपुरुषो भक्तिरुत्पद्यते पुनः शौक्योऽमता पता।"

५-तत्व-सन्दर्भः पृ० २६।

श्रीमद्. १.७.६७.

६-अस्य श्रीभागवतस्य महापुराणस्य जलकानां प्रकारान्तरेण च जदन्नपि तस्मैवाश्रय-त्वात्" तत्व-सन्दर्भः पृ० ४५।

७-"अथ प्रेम्णा विस्तरतस्तैव तात्पर्यं निर्णीतं सम्बन्धाभिप्रेत्योक्तैश्च अदिभिः सन्दर्भ-निर्णयनापीषु प्रथमं यस्य वाच्यवाचकतासम्बन्धोद शास्त्रं, तदेव त्वैः प्रीति-कैवेत्यादिको सामान्याकारतस्तादृशः" तेषु वास्तव्यवस्तुषुति"

टिप्पणी- "अथ श्रीमति सुन्दरे भागवते वास्तव परमाद्यभूतं वस्तु केव,

न तु वैशेषिकादिवद् द्रव्यादिरूपम्" इत्येताः ॥ श्रीवैद्यनाथः ॥ ५० ॥

तत्त्व-सन्दर्भः पृ० ३७

में परमार्थ-भूत वास्तव में केवल वस्तु ब्रह्म का निरूपण है। द्वितीय सन्दर्भ में भावतत्त्व, तृतीय में परमात्म तत्त्व, चतुर्थ में श्रीकृष्ण तत्त्व, पंचम में भक्ति-तत्त्व और अन्तिम अष्ट में प्रीति-तत्त्व का बहुत ही मार्मिक विवेचन हुआ है। वास्तव में कीर्तन्य सम्प्रदाय के वाचार्य प्रवर जगदीश्वामी ने "अद्वैतदर्भ" में जो श्रीमद्भागवत का गूढ़ रहस्योद्घाटन किया है, वह अन्य सम्प्रदायों में दुर्लभ है।

श्रीमद्भागवतामृतम्- इस विशाल ग्रन्थ के रचयिता श्रीनारायण गोस्वामी हैं। इस पर बल्लभ विद्याभूषण को "दिग्दर्शनी" नामक विस्तृत टीका है। यह एक परम सिद्धतापूर्ण ग्रन्थ है। इसमें दो खंड हैं। प्रथम खंड का नाम है "भावतृष्णाभर-निन्दारिखंड"। इस खंड में ७ अध्याय हैं। द्वितीय खंड का नाम है "गोलीक-माहात्म्य खंड"। इसमें भी दो खंड ७ अध्याय हैं। श्रीमद्भागवतामृत में श्रीमद्भागवतोक्त भक्ति का ही - विशेष कर गोपी-प्रेम का ही अत्यन्त विस्तृत एवं विवेचनात्मक प्रतिपादन किया गया है। इसमें जनमेजय और वैमिनि का संवाद है।^१

श्रीमद्भागवत में जिस प्रकार गोपी-प्रेम को अत्यन्त उत्कृष्ट बताया गया है उसी प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ में भी प्रतिपादित किया गया है।^२ श्रीमद्भागवत में जिस-जिन की महिमा वर्णित है, उनकी यहाँ स्तुति की गई है। उदाहरणार्थ मथुरा, वृन्दावन, यमुना, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण-भक्ति, नन्द का स्तुति यहाँ की गई है।^३

श्रीमद्भागवतामृत टीका में कहा गया है कि इस ग्रन्थ में धर्म-धर्म-काम-गोला प्रदान करने वाली भावान् को भक्ति का निरूपण किया गया है। भक्ति में प्रमानन्द-अनुभव में श्रीमद्भक्त सुख-द्वारा प्राप्त होती है वह भक्ति गोपीनाथ भावान् श्रीकृष्ण के चरण-कमलों का वाच्य लेकर ही करना चाहिए और वा प्रेम-सहायता हो हीनी चाहिए। जब मुख्य ऐसा भक्ति करते हैं तो उन लोगों को वैकुण्ठ से भी ऊपर गोलीक में श्रीनन्द-किशोर श्रीकृष्ण के साथ निरन्तर स्वर-विहार रूप परम फल प्राप्त होता है।^४ सर्वदा किशोर विभूषित श्रीकृष्ण ही देव है। श्रीमद्भागवत में भी कथित देव ने माता देवदूति को इसी देव मूर्ति की उपासना का उपदेश दिया है:-

"एतत् कथितं किशोरे भूयानुम्रतातरम्" ५

१-भावद्वैतशशास्त्राणामयं सारस्य स्रष्टाः। अनुभूतस्य चित्तचदेवतत्विप्ररूपतः।

शृण्वन्तु वैष्णवाः सर्वे शास्त्रमिदं भागवतामृतम्। सुगोप्यं प्रातः पठन्त्या वैमिर्निर्जनेष्वम्।

श्रीमद्भागवतामृतम्: खण्ड १: अध्याय: १। ११, १२.

२-किशोरिणा प्रभृतयो नितरां ज्यन्ति गोपीनि नितान्तभावति प्रयताप्रदिष्टाः।

वासां हरौ परमसीदमापुरीणां निर्वक्तुमाजिदपि तात न कोऽपि शक्यतः। "वही: १: १: ३

३-वही: १: १: १९९ तक।

४-वही: टीका: १: १।

५- वही: पृष्ठ: १: टीका

इस प्रकार भावान् श्रीकृष्ण चन्द्र वैकुण्ठ के ऊपर श्रीमद्गीता में विह्वल करते हैं।
 ये परम दुर्लभ हैं और उनकी भक्ति को महिमा का वर्णनादि प्रसाद भी अत्यन्त दुष्प्राप्य
 है। अतः उधर प्रसाद करना व्यर्थ है। किन्तु शंका निवृत्ति करने हुए कहते हैं कि भावान्
 की गुण-महुरिमा और परमोदार्य से यह सम्भव है। अपने चरण-कमलों का प्रेम-दान
 करने के लिए भावान् क्षाल पर गीता के मधुरा में अवतीर्ण हुए हैं। अतः उनका प्रसाद
 सुप्रसन्न है। यद्यपि भावान् क्लृप्त-वश के लिए अवतीर्ण हुए हैं, तथापि वह प्रयोजन गौण
 है और प्रेम-दान वत्तापारण रूप से मुख्य प्रयोजन है। श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध में
 कृष्ण की स्तुति में भी कहा गया है:-

"तथा परमार्थज्ञानाद् भुनक्तुमतात्मनाम्।

भक्तियोगनिधानार्थं क्वं पश्येमहि स्त्रियः ॥" १

श्रीधर स्वामी ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है:-

"आत्मारामानपि स्वगुणैराकृष्य भक्तियोगं कारयितुमवतीर्णं त्वां ज्ञां क्वं स्त्रियः
 पश्येमिति।" २

---आत्माराम भक्तियों की भाँ अपने गुणों से आकृष्ट कर उनसे
 भक्ति-योग कराने के लिए अवतीर्ण हुए तुम्हारे हम स्त्रियाँ कैसे देख सकती हैं?---

भावान् श्रीकृष्ण का ब्रह्म-गोपिकाओं से नित्य प्रेम है अतः उनका नाम है "वत्सवीगण-
 वत्सभः" ३। जिन श्रीकृष्ण का गोपियों में महान् प्रेम है वे गोपियाँ भी परम माहात्म्य-
 शास्त्रिणी हैं। वे श्रीकृष्ण की नित्य-छिद्र, निरुपाधि प्रेम को विजय हैं। इसीलिए वे
 नित्य-प्रिया हैं। ४। वास्तव्यदेव यद्यपि भावदयतार हैं तथापि विरोध रूप से प्रेम भक्ति
 का विरोध प्रकाशन करने के लिए वे मूर्तिमान् गोपीभाव के अवतार हैं। ५। इसीलिए
 गोपियों का ही सब से अधिक माहात्म्य-प्रतिपादन किया गया है। श्रीमद्भागवत में
 श्रीकृष्ण ने गोपियों से कहा है:-

"न पारमेष्ठं निरवस्थमुवा स्वलापुकृत्य विबुधायुजापि नः।

या माभ्यन् दुर्लभैश्च शृङ्खलां संवरत्य ततः प्रतिष्ठातु साधुना ॥" ६

अतः गोपियों का महत्त्व अनिवक्तनीय है।

श्रीमद्भागवतामृत पूर्णतया श्रीमद्भागवत की ही आधार मान कर उसके समस्त भक्ति-
 तत्त्व का सांगीयान् वर्णन करता है, तथा अपने सिद्धान्त की प्रामाणिकता के लिए
 श्रीमद्भागवत के वचन ही उद्धृत करता है।

श्रीलघु भागवतामृतम्-

इस ग्रन्थ के रचयिता श्रीरूप गोस्वामी हैं। इस पर श्री बलदेव विद्याभूषण को "टिप्पणी" नामक विस्तृत टीका है। इसमें पूर्व-खण्ड तथा उत्तर-खण्ड नामक दो खण्ड हैं। ग्रन्थकार ने इसके दो भाग किये हैं- वृष्णामृत और भक्तामृत।^१ श्रीरूप ने कहा है कि श्रीमद्भागवत में जो कुछ विस्तार से कहा है, मैं उसे संक्षेप से कहूँगा।^२

लघु-भागवतामृत में श्रीमद्भागवत की आधार मान कर अनेक विषयों का बहुत सुन्दर सप्रमाण निरूपण किया गया है। विशेष कर आस्तित्व और अवतार-तत्त्व का निरूपण अत्यन्त वैज्ञानिक रूप में किया गया है। इसमें श्रीमद्भागवत के आधार पर श्रीकृष्ण के "स्वयं रूप" "लैकात्म्य रूप" और "आवेश रूप", इन त्रिविध रूपों का निरूपण है।^३ फिर उनके भी अनेक उपनिद मिले गये हैं। अवतारतत्त्व का निरूपण करते हुए भगवत्गीता के भावदवतारों की वैज्ञानिक समझ को गयी है, और भावान् के त्रिविध अवतार—पुरुषावतार, गुणावतार और साक्षावतार—को गये हैं।^४ इनका क्रमशः विस्तृत विवेक है। पुरुषावतारों में भगवत्गीता के प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पुरुषावतार गुणावतारों में ब्रह्मा रुद्र विष्णु अवतार और साक्षावतारों में कृष्ण, नारद, वराह, मत्स्य, वज्र, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, हनु-शीर्षा, रसे, धृव-प्रिय, कलभ, पूष, नृसिंह, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, वासुदेव, परशुराम, राम, लाल, नन्दराम, और श्रीकृष्ण, हैं। वृद्ध तथा कृत्तिक अवतारों का निरूपण किया गया है।

गत पुण्ड के शीरे उद्धरण-

१-श्रीमद्भागवतमृतम्-टीका-११११ । श्रीमद्भागवतः १०:२०।

२-श्रीमद्भागवतः श्रीधरा टीका: १०:२०।

३-गोपीधर श्रीमन्नन्दनवल्लभायु वस्य नित्यं प्रेम वल्लभागणवल्लभ हृत्पर्यः "वृद्धां० पू०

१-वृद्धां० पू० १। ५-यद्यपि वक्षित-यदेवौ भावदवतार एव तथापि प्रेमभक्ति-विशेषप्रकाशनायै स्वयमवतीर्णत्वात्तेन तदर्थं स्वयं गोपीभावौपि व्यन्यते।" वहीपू० १।

६-श्रीमद्भागवतः १०:१२:१२।

१-लघुभागवतामृतः १:१:६।

२-श्रीमद्भुक्तान्गीतिः श्रीमद्भागवतामृतम्।

यद् व्यतानि तदेवैव संक्षेपेण निधीयते।।" लघुभा०: १:१:६।

३-लघुभागवतामृतः १:१:१०।

४-लघुभागवतामृत : १:२:३।

श्रीमद्भागवत के आधार पर श्रीकृष्ण का सत्त्व-तनुत्व और निर्गुणत्व का प्रतिपादित किया गया है^१; जैसा कि श्रीमद्भागवत में कहा है:-

"हरिर्निर्गुणः साक्षात्पुरुषः प्रकृतः परः।

स सर्वदृग्द्रष्टा तं भवन्निर्गुणो भवेत्॥" १

विष्णु का भजन करने से निर्गुणता प्राप्ता होती है। सत्त्व तनु से सब प्रकार का मंगल सम्पन्न होता है। अतः विष्णु की भक्ति की नित्यता है।^२ श्रीमद्भागवत में विष्णु के भजन का आग्रह किया गया है।^३

लघुभागवतामृत में श्रीमद्भागवत के आधार पर विष्णु से ब्रह्मा-रुद्रादि की व्युत्पत्ति प्रतिपादित की गई है।^४ भावान् परस्पर विरुद्ध अचिन्त्य शक्ति के जाण्य है, किन्तु अचिन्त्यत्वादि तीनों के जाण्य नहीं हैं। यह भी इस ग्रन्थ में श्रीमद्भागवत के अष्ट स्कन्ध के गण के आधार पर सिद्ध किया गया है।^५ नामे फिर भागवतीयत वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चारों 'बूढ़ों' का प्रतिपादन तथा चतुर्व्यूह के सम्बन्ध में मत-भेदों का उत्प्रेक्ष करके हुए उनकी वैशालिकता से भीमांसा की गई है।^६ इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में प्रतिपादित श्रीकृष्ण के नारायणादि का अन्तर्भाव, भावान् के अन्त्य और अचिन्त्य का अविरोध-स्थापन, ब्रह्म-तीक्षा, जन्मादि-तीक्षा, का मुख्य और गौण कारण, श्रीकृष्ण-लोका की नित्यता आदि विषय निरूपित किये गये हैं।

श्रीकृष्ण की माधुरी सब से अधिक गोकुल में प्रकट हुई है।^७ वह माधुरी चतुर्विध है- १-पेशर्ष माधुरी, २-झोड़ा-माधुरी, ३-वेणु माधुरी, ४-श्रीविग्रह-माधुरी।

२-श्रीमद्भागवतः १०:८८:१। १-विष्णुः सत्त्वं लीतोति शास्त्रे सत्त्वतनुः स्मृतः" अतो निर्गुणता सम्बद् सर्वशक्ति प्रविद्धमिति लघुः पृ० ३८

३-तेन सत्त्वतनीरत्माश्चैवांसि स्फुरितोरितम्।

इत्यसौ विविता शास्त्रे तद्भक्तोरेव नित्यता॥ लघुभा०: पृ० ३९।

४-श्रीमद्भागवतः १:१:२६।

५-अतो विविहरादीनां नितिलानां सुपर्वणाम्।

श्रीविष्णोः स्वाशकीभ्यो न्यूनताभिप्राशिका॥ लघुभागवतामृतः पृ० ४१।

६-श्रीअष्टस्कन्धे च विधौ विरुद्धाचिन्त्यशक्तित्वं गौण-भावा० ६।९।३४-३७-"

७-लघुभागवतामृतः पृ० १५९-१६१। लघुभा०: पृ० १६१।

८-तथापि गोकुले तस्य माधुरी सर्वतोभिका॥ लघुभा०: पृ० २५७।

९-चतुर्धा माधुरी तस्य ब्रह्म एव विराजते।

पेशर्षझोडयोर्वैणोस्तथा श्रीविग्रहस्य च॥ लघुभा०: पृ० २५६।

लघुभागवतामृत के उत्तर खण्ड में भक्त-पूजा की आवश्यकता और भक्त की महत्ता प्रतिपादित की गई है। वहाँ विष्णु से भी बढ़ कर वैष्णव की स्थान दिया गया है।^१ श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है- "मद्भक्तपूजाभ्यधिका"^२। श्रीमद्भागवत में प्रह्लाद, पाण्डव, वादव गण, उद्धव, और ब्रज-गोपिकाओं की परम भक्तों के रूप में महत्व प्रदान किया गया है, उसी प्रकार लघुभागवतामृत में भी इन्हें महत्व दिया गया है। गोपियों की सी भावार्थ ने अपनी आत्मा से भी अधिक प्रिय बताया है।^३ श्रीमद्भागवत में उद्धव के द्वारा गोपियों का महत्व-निरूपण कराया गया है।-भाग० १०:४७:६१-। गोपियों में भी राधा सर्व-श्रेष्ठ है।^४ कर्म-पुराण में भी आया है-

"यथा राधा प्रिया विष्णोस्तत्त्वाः कुण्डं प्रियं तथा।

सर्वांगीणीषु त्वैका विष्णोरत्नन्तमन्तमा॥" ५

आदि पुराण में भी-

"वैष्णवीं पृथिवीं जन्मा यत्र कुन्दधनं पुरा।

तत्रापि गोपिजाः मार्गं तत्र राधाभिना मम।" ६

इस प्रकार वाङ्मय में गोस्वामी कृत वृद्धभागवतामृत तथा श्रीरूप गोस्वामीकृत लघुभागवतामृत श्रीमद्भागवत के अधिप्राय की विपरीत करने वाले दो श्रेष्ठ ग्रन्थ हैं। श्रीमद्भागवत के रागात्मक तत्व की जितनी मार्मिक व्याख्या इन दो ग्रन्थों में हुई है उतनी अन्य वैष्णव-सम्बन्धीयों के भक्ति-साहित्य में दुर्लभ है।

१-आराधनं मुकुन्दस्य भवेदावश्यकं यथा। तथा तदायभवसानां भी वैष्णवीणां स्ति दुस्तरः।"

२-श्रीमद्भागवतः ११:१९:२१।

लघुभा०: उद्ध०: १: कृ० २६१।

३-न तथा मे प्रियतमो ब्रह्मा रुद्रश्च पार्थिव।

न च खड्गमोर्न धारिमा च मेवा गोपाङ्गनी मम।" ल० भा० भैरवपुत्रः पृ० २७०।

४-तत्रापि सर्वाङ्गीणीनां राधिकातिवराभिजाः।

सर्वाधिक्येन कथिता यत्पुराणागमादिषु।" लघु० भा० ३ पृ० २७१।

५-ल० भा०: उद्ध०: पृ० २७१।

६-ल० भा०: उद्ध०: पृ० २७२।

हरिभक्तिरसामृतसिन्धु-

श्रीरूप गोस्वामी का दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ हरिभक्ति-

रसामृत-सिन्धु है। भक्ति-साहित्य में इस ग्रन्थ का स्थान बहुत

महत्व-पूर्ण है। भक्ति को एक दार्शनिक सिद्धान्त का सुव्यवस्थित रूप देकर उसका जो व्यक्तित्व विशद, सूक्ष्म और वैज्ञानिक विवेकन इस ग्रन्थ में हुआ है, वह भक्ति के इतिहास में एक नवीन चेतु है। यह भक्ति का एक लक्षण ग्रन्थ है। इसका लक्ष्य-ग्रन्थ श्रीमद्भागवत का है या नहीं, इसका निर्णय करना है। इस ग्रन्थ पर श्रीजीयगोस्वामी ने अपनी "दुर्लभकामनी" टीका में इस बात का पुष्टि का है। उन्होंने लिखा है कि श्रीरूपगोस्वामी ने श्रीमद्भागवत के रस के आधार पर ही भक्तिरसामृतसिन्धु नामक अपूर्व ग्रन्थ की रचना की है। ग्रन्थ के अवलोकन से यह बात प्रतिपद अनुभव में होती है। इसमें भागवतगीता रागाभ्यास एवं वैष्णो भक्ति के समस्त प्रकारों का संगोपांग और सौदाहरण निरूपण किया गया है। इस ग्रन्थ में अंशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर - चार भाग हैं। प्रत्येक भाग में चारिर्ग है। प्रथम पूर्व-भाग में उत्तम भक्ति के लक्षण, भक्ति के गुण, वैष्णो आदि साधन भक्ति का विस्तृत विवेकन, रागाभ्यास भाष्य-भक्ति का विस्तृत विवेकन एवं प्रेम-तत्त्व का सूक्ष्म विवेकन है। श्रीजीय गोस्वामी ने भक्ति के साधन-रूप में श्रीमद्भागवत का आस्वादन आवश्यक ^{बताया है} ~~लिखा है~~ द्वितीय भाग में साहित्य-शास्त्र की पद्धति का अनुसरण करते हुए भक्ति रस का निरूपण किया गया है। विभावानुभाव-लंघारी-आदि के अनेक उदाहरण श्रीभागवत से दिये गये हैं। तृतीय पश्चिम भाग में शान्त-वत्सल-एवं मधुर भक्तिरसों का संगोपांग सौदाहरण वर्णन है। चतुर्थ अन्तिम भाग में हास्य-मधुर-वीर-कृष्ण-रौद्र-भक्त-बीभत्स भक्तिरसों का विस्तृत विवेकन है। इस भाग का अन्तिम खंड में रसाभासों का वर्णन है।

१-अथ श्रीमान्नील सीर्य ग्रन्थकारः सकलभागवतलीकहिताभिलाषपरवशात्ताया वलाशितः स्व-
हृदयदिज्जलमलीकाविलासिभिः श्रीमद्भागवतरसैरेव भक्तिरसामृतसिन्धुनामानं ग्रन्थमपूर्व-
रत्नमिचि-वानस्तद्वर्णयितव्यस्यैव च सर्वोत्तमतां निरिच्छवानः - - किलाप्यति
भक्तिरसामृतः पूर्वभाः लः १: पुः १।

२-अथ श्रीभागवतास्वादी यथा प्रथमे-

"मिमांसकप्रवर्तरीगलितं कर्तुं शुक्लमुज्ज्वलवस्तुतम्।

पिपता भागवतं रत्नाख्यं मुरती रज्जिा भुवि भपुजाः।" भाः १: १: १ "हरिभाः पुः ७७।

३-आत्मन विभाव श्रीकृष्ण के गुणनिरूपण में- "यथा तुतीय-

"यद्दर्शयन्तीवृत्त राजस्यै निरोक्ष्य दृक्स्वस्त्वयनं मिलोकः।

जात्स्येन पावेह तत् विधातुरवर्जयती कोशलभित्तिभन्धत।"

हरिभक्तिरसामृतसिन्धुः पुः १३२।

उज्ज्वल-नील-मणि-

इस ग्रन्थ के रचयिता भी श्रीरूप गौस्वामी हैं। अपने ग्रन्थ भक्तिरसामृत-सिन्धु में उन्होंने शृंगार भक्ति रस के अतिरिक्त अन्य सभी भक्ति-रसों का सविस्तर निरूपण किया था। किंतु चैतन्य सम्प्रदाय में शृंगार भक्ति का जो उज्ज्वल रूप गृहीत हुआ है उसका सांगीपांग, सूक्ष्म एवं विस्तृत विवेचन करने के लिए उन्होंने शृंगार भक्ति रस पर यह स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा। चैतन्य सम्प्रदाय की भक्ति में शृंगार को "उज्ज्वल रस" या "मधुर रस" कहा जाता है। यह सब से मुख्य रस है, भक्ति-रसराट्ट है, और अत्यन्त गोपनीय माना गया है।^१ श्रीविश्वनाथ षष्ठर्त्ता ने कहा है कि भागवत प्रसंगों में अतिरक्त संलग्न श्रीरूप ने भक्तिरसामृतसिन्धु में भी जलजित, नील-मणि के समान समुज्ज्वल, परम रहस्यमय "उज्ज्वल रस" का उद्घाटन अपने अत्यन्त अन्तरंग सुबुद्ध जनों के लिए किया है।^२

भक्ति-रत्नावली-

इस भक्ति-प्रतिपादक ग्रन्थ के रचयिता स्वामी श्री विष्णुपुरी थे। ये चैतन्य के समकालीन हैं। विष्णुपुरी ने श्रीचैतन्य की प्रेरणा से श्रीमद्भागवत के अनन्य-भक्ति-प्रतिपादक सारभूत अंशों को लेकर "भक्ति-रत्नावली" का संग्रह किया है। उन्होंने स्वयं उस पर अपनी भीतिक संस्कृत टीका भी लिखी है। इस ग्रन्थ में श्रीमद्भागवतीय भक्ति की महिमा, नवधाभक्ति, और भावचरणागति का विशद विवेचन है। श्रीविष्णु पुरी ने कहा है कि जो लोग किसी कारण से अमस्त श्रीमद्भागवत का अक्षर-अन्तादि नहीं कर सकते, उनके लिए भी "भक्ति-रत्नावली" का ग्रन्थ लिखा है।^३

१-"मुख्यरक्षेण पुरा यः संक्षेपेणोदितौ रहस्यवात्।

पृथगेव भक्तिरसराट्ट स विस्तरेणोक्तिस्तथैव मधुरः॥"

उज्ज्वलनीलमणिः पृ० ४।

२-उज्ज्वलनीलमणिः श्रीविश्वनाथषष्ठर्त्ता-कृत कामन्द-चन्द्रिका व्याख्याः पृ० २।

३- "भक्तिरसामृतप्रवणालसा

यत्तु कथाभिरयामपकाशिनः।

कथमयं यत्तु ताननुसार्जनी

भवतु विष्णुपुरीग्रन्थग्रहः॥"

भक्तिरत्नावली : पृ० ७।

निष्कर्ष-

ऊपर हमने भारत-वर्ष के मुख्य-मुख्य वैष्णव सम्प्रदायों में श्रीमद्भागवत की महती मान्यता का दिग्दर्शन कराते हुए तत्तत् आचार्यों एवं सम्प्रदायानुयायी विद्वानों द्वारा प्रणीत भागवत-साहित्य का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। परवर्ती वीरु समकालीन हिन्दी कृष्ण-भक्ति-साहित्य के द्रष्टा विभिन्न कवि उपर्युक्त त्रिन्-त्रिन् सम्प्रदायों के अनुयायी रहे हैं उन पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव उन्हीं सम्प्रदायाचार्यों द्वारा स्थापित हुआ है। श्रीमद्भागवत की भक्ति-प्रवृत्ति से चैतन्य सम्प्रदाय, बल्लभ-सम्प्रदाय तथा हित-हरिवंश-सम्प्रदाय — राधावल्लभ-सम्प्रदाय — विशेष रूप से प्रभावित हुए हैं,^१ जागे हम श्रीमद्भागवतोंवर उन सत्तों का वैज्ञानिक विवेचन करेंगे जिन्होंने हिन्दी कृष्ण-भक्ति के साहित्य को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है।

संस्कृत-विभाग
राधावल्लभ सम्प्रदाय
पुस्तकालय
ब्रह्मचर्य-मठ
वाराणसी

१- राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य : डा० विवेकानन्द स्नातक :

पृ० १५ :

चतुर्थ अध्याय

मध्यकालीन कृष्णभक्ति साहित्य को प्रभावित करने वाले मागवतीवत तत्व

(सामान्य)

(पृ० १५५- १७८)

चतुर्थ अध्याय

मध्यकालीन कृष्ण भक्ति साहित्य को प्रभावित करने वाले भागवतौक्त तत्त्व (सामान्य)

टीपटकोट -

दूसरे अध्याय में विस्तार से कहा जा चुका है कि श्रीमद्भागवत का व्यावहारिक दर्शन भक्ति दर्शन है। इस भक्ति के विविध रूपों एवं अंगीपांगों का सम्यक् विवेचन भी प्रस्तुत किया जा चुका है। किन्तु श्रीमद्भागवत का भक्ति^त इतना व्यापक और विशाल कि उसके सम्पूर्ण रूप का दिग्दर्शन युगपत् कराना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत का दार्शनिक तत्त्व चिन्तन भी इतना समन्वय-पूर्ण, गम्भीर और क्लेशिक उच्च कोटि का है कि सूरि ज्ञ भी मोहित हो जाते हैं। सारांश यह है कि श्रीमद्भागवत का विचार पदा और वाचार पदा दोनों ही अति शक्तिशाली हैं और दोनों ही पदार्थों का गहरा प्रभाव हिन्दी भक्ति साहित्य की आत्मा और शरीर पर पड़ा है। दोनों पदार्थों के मूल तत्त्वों का विवेचन हो चुकने पर भी उनके अमृत कुछ ऐसे उपतत्त्वों का परिचय और स्पष्टीकरण अनिवार्य हो जाता है जिनका स्पष्ट प्रभाव हम अपने आलोच्यकाल के साहित्य पर प्रथम स्थूल दृष्टि पात में ही देख सकते हैं। इन तत्त्वों को हम दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं :- १- सामान्य और २- विशेष।

सामान्य तत्त्व-

इनके अन्तर्गत श्रीमद्भागवत के वे समस्त तत्त्व बीज आते हैं जो समस्त मध्यकालीन हिन्दी भक्ति साहित्य को अनुप्राणित करते हैं। केवल सगुण कृष्ण भक्ति और राम भक्ति साहित्य ही नहीं अपितु निर्गुण भक्ति साहित्य पर भी उनका प्रभाव देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ नाम महिमा को लीजिए। भावान् के नाम की अमोघ शक्ति का स्वीकार सब निर्गुण भक्त कबीर भी करता है :-

“ कबीर सुमिरण सार है और सकल जंजाल ।

आदि अन्त सब सीधिया, दूजा देलौं काल ॥ ”

और सगुण कृष्ण भक्त सूरदास भी गाते हैं -

को को न तरायौ हरिनाम लिई ।

सुवा पढ़ावत गनिका तारी, व्यास तरायौ सरघात किई।

अन्तरदाह जु ॥मिदिया व्यास को एक चित ह्वै भागवत किई। १

उपर राम भक्त तुलसीदास की स्थापना है-

“ब्रह्म रामतैं नाम बहु बरदायक बर दानि ।

राम चरित सत कोटि मंह लिय नहिं जियं जानि ॥” २

इस प्रकार “नाम माहात्म्य” वह सामान्य भक्ति तत्त्व है जो समस्त हिन्दी भक्ति साहित्य का एक प्रमुख वर्ण्य विषय है। इसी प्रकार “सत्संग”, “गुरु महिमा”, विनय स्तुति आदि वे तत्त्व हैं जो सामान्यतया समस्त हिन्दी भक्ति साहित्य में ^{प्राप्त होते हैं किन्तु इस क्षेत्र का विषय कृष्णभक्ति साहित्य में} परिमित होने के कारण हम इन तत्त्वों का अनुसंधान इसी साहित्य में करेंगे।

ऊपर जिस सामान्य तत्त्वों की चर्चा हमने की है वे हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य में केवल श्रीमद्भागवत से ही आए हैं, हमारी यह स्थापना नहीं है। श्रीमद्भागवत से पूर्व भारतीय साहित्य में उनका अस्तित्व न ही यह बात भी नहीं है। भक्ति मार्ग की श्रेष्ठता का स्थापन गीता में अत्यन्त जीजस्वी शब्दों में ही चुका था किन्तु फिर भी भक्ति के पद का ^{प्रबल} समर्थन श्रीमद्भागवत के द्वारा हुआ उसके कारण भागवत की मध्यकाल में सबसे प्रभावशाली भक्ति ग्रंथ माना गया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में - “इस काल की समाप्ति के पास पास ही परम शक्तिशाली भागवत पुराण का अन्त्युदय होता है। उत्तरकालीन धर्म मत और साहित्य को इस पुराण ने अधिक प्रभावित किया है।” वास्तव में बात यह है कि श्रीमद्भागवत पुराण में हमें समस्त पुराण ^{पुराण} भारतीय वाङ्मय का अद्भुत समन्वय प्राप्त होता है। यह समस्त पूर्वालोचित सिद्धान्तों एवं तत्त्व चिन्तन का एक विकसित रूप प्रस्तुत करता है। अतः यह स्वीकार करना अनुचित नहीं है कि भक्तिकालीन सामान्य तत्त्वों का स्रोत श्रीमद्भागवत है।

प्र. खं.

१- सूर सागर, पद ८६

२- रामचरित मानस, बालकाण्ड पृ० १८

३- मध्यकालीन धर्म साफा- डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० ३६

विशेष तत्त्व-

इन तत्त्वों के अन्तर्गत हम प्रमुख रूप से कृष्ण भक्ति साहित्य को प्रभावित करने वाले भागवतोक्त तत्त्वों को ग्रहण करेंगे। इन तत्त्वों की विशिष्ट कृष्ण भक्ति-संप्रदाय में दीक्षित कवियों ने विशेष रूप से और स्वतंत्र कृष्ण भक्त कवियों ने सामान्य रूप से ग्रहण किया है। उदाहरणार्थ "कृष्ण लीला" को लोणिस। यद्यपि हरिवंश पुराण और विष्णु पुराण में श्रीकृष्ण की कतिपय बाल और कैशोर लीलाओं का वर्णन है- तथापि कृष्ण की बाल, पीण्ड, कैशोर और प्रौढ लीलाओं का जो सांगोपांग क्रमिक विस्तृत और मनोरम वर्णन श्रीमद्भागवत में है वह समस्त भारतीय साहित्य में अद्वितीय है और इसीलिए श्रीमद्भागवत को ही हम कृष्ण लीला का वाक्य ग्रंथ मानना उचित समझते हैं। यद्यपि मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवियों ने श्रीमद्भागवत में वर्णित कृष्ण लीलाओं के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर वर्णित कृष्ण लीलाओं का गान भी किया है किन्तु वह ^{अत्यल्प} न्यून है। "प्राधान्येन व्ययदेशा भवन्ति" इस न्याय से कृष्ण लीला का गान करने वाले भक्त कवियों का प्रधान उपजीव्य श्रीमद्भागवत ही ठहरता है। कृष्ण लीला के अतिरिक्त गोपी प्रेम, कृष्ण का अलौकिक रूपमायुर्य, वेणु मायुर्य आदि वे विशेष तत्त्व हैं जिनके एक मात्र निधान श्रीकृष्ण हैं। श्रीमद्भागवत में इन तत्त्वों का जैसा जड़भूत चित्रण है, वैसा अन्यत्र अप्राप्य है। अतः श्रीमद्भागवत के इन तत्त्वों के प्रधान भाण्डागार के रूप में स्वीकार करना भी न्याय्य एवं समीचीन कहा जायगा।

अब हम यहां उक्त सामान्य एवं विशेष तत्त्वों का क्रमशः संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करते हैं-

(क) सामान्य तत्त्व-

१- भक्ति का सर्वश्रेष्ठत्व- भक्ति की अपरिचीम महत्ता की स्वीकृति श्रीमद्भागवत में जिस अ

स्था के साथ पाई जाती है उसका कुछ आभास द्वितीय अध्याय में दिया जा चुका है। आवश्यक पिष्टपेषण न करते हुए यहां हम केवल एक उद्धरण देना ही पर्याप्त समझते हैं :-

"यत्कर्मभिर्यत्पसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् ।

योगेनदान धर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥

सर्वमद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽम्बसा ।
 स्वर्गापवर्गमिदम कथंचिद्यदि वाञ्छति ॥
 न किञ्चित्साधको धीरा भक्ताह्येकान्तिनी मम ।
 वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्य मपुनर्भवम् ॥ १

अर्थात् स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं कि "कर्म, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान धर्म तथा अन्यान्य श्रेय साधनों से जो कुछ स्वर्ग, अपवर्ग अथवा मेरा परम धाम आदि प्राप्त होता है वह सब यदि इच्छा करे तो मेरा भक्त मेरी भक्ति द्वारा ही सुगमता से प्राप्त कर सकता है। मेरे अन्य भक्त मेरे देने पर भी भक्ति के अतिरिक्त कैवल्य मोक्षा की भी कामना नहीं करते।" हिन्दी भक्ति साहित्य में सर्वत्र इस विचार धारा का समर्थन प्राप्त होता है, यह स्पष्ट ही है।

२- स्तुति-

भगवत्-स्तवन भक्ति का ही एक प्रमुख अंग है। जात होकर भगवान् की असीम शक्ति अपनी अत्यन्त शक्ति हीनता भगवान् की भक्तवत्सलता और अपनी कल्मष-परता का ऋणभाव से कथन करने से जीव को परम शान्ति का अनुभव होता है। भगवान् भी परितुष्ट होते हैं- "स्तोत्रं कस्य न तुष्टये । वैदिक ऋषयः स्तुति के अतिरिक्त और क्या हैं ? आदि मानव ने सबसे पहले स्तुति को ही अपनी वांछा सिद्धि का साधन बनाया। संस्कृत का स्तोत्र साहित्य कितना समृद्ध एवं मनोरम है, सुधीं जनों को यह बताने की आवश्यकता नहीं है। स्तोत्र साहित्य में कितने ही ऐसे अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं जो भक्तों को महाकाव्यों के रसास्वादन से भी अधिक अपने भक्तिरस के आस्वादन की और आकर्षित करते हैं। स्तुति की महती शक्ति का उल्लेख करते हुए जपमन्त्र ने अपनी शिव स्तुति में कहा कि "है प्रभो ! तुम्हारी तो स्मृति ही पतित पावनी है। यदि कहीं उसमें स्तुति का योग होजाय तो कहना ही क्या है। दुग्ध तो स्वभाव से मधुर होता है, यदि कहीं उसमें सफ़ेद शक्कर (गुड़िया शक्कर नहीं) और मिल जाय तो उसका स्वाद कितना मधुर और हृद्य हो जायगा।

१- श्रीमद्भागवत ११।२०।३२+३४

२- त्वदनुस्मृतिरेव पावनी स्तुतियुक्ता नष्ट्विक्तुमीश सा ।

मधुराहिप्यः स्वभावतोननु कीदृक्सितशर्करान्वितम् ॥

उपमन्युक्त शिवस्तव श्लोक ५

श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है कि बिना स्तुति युक्त वैधी भक्ति के भगवान् की प्रेम लक्षणा भक्ति प्राप्त होना सम्भव नहीं है। भक्ति के साधनों में स्तुति गान एक प्रमुख और अनिवार्य साधन बताया गया है। श्रीमद्भागवत में भगवान् की जितनी अधिक संख्या में और जितनी सुन्दर स्तुतियाँ हैं, वैसी अन्य पुराणों में दुर्लभ हैं, सम्भवतः अल्प हैं। ऐसा लगता है मानों यह पुराण भावत्स्तुति के उद्देश्य से ही रचा गया है। भगवद्गुणानुवाद के लिए प्रणीत मानों यह पुराण एक विशाल स्तोत्र ही है। समस्त ग्रंथ आदि मध्यावसान में स्तुति परक ही है। नारद मुनि के प्रस्ताव और व्यास देव की प्रतीक्षा से तो यही सत्य जान पड़ता है। ग्रंथकार का मत है कि बुद्धिशाली महापुरुषों ने मनुष्य के तप, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, सत्कथन ज्ञान और दान आदि समस्त सत्कर्मों का एक मात्र अन्तर्गत फल भगवान् का गुणगान करना ही बतलाया है। भागवतकार को जहाँ भी अवसर मिलता है, किसी न किसी पात्र के मित्र से किसी भी रूप में स्थित भगवान् की स्तुति करने लगता है। स्तुति का फल बुद्धि बुद्धि की प्राप्ति है। श्रीमद्भागवत की स्तुतियों की गणना करने पर छोटी बड़ी समस्त स्तुतियों की संख्या लगभग एक सौ पैंतालीस ठहरती है। इनमें से अनेक बहुत बड़ी और अनेक केवल एक एक श्लोक आकार वाली लघुकाय हैं। इनमें से अनेक स्तुतियाँ गद्यात्मक भी हैं। इन स्तुतियों में सगुण एवं निर्गुण उभय रूप ब्रह्म का निरूपण है। नीचे

१- श्रीमद्भागवत ७-६-५०

२- परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम। श्रीमद्भाग० ११।१६।२०

३- इदं हि पुंसस्तपसः क्षुत्स्य वा त्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धि दत्तयोः ।

अविच्युतोऽर्थः कविमिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोक गुणानुवर्णनम् ॥ श्रीमद् ११।५।२२

अत्राप्नुवन्त्येते भीष्मं विश्वात्मा भगवान्हरिः । श्रीमद् १२।५।१

पुराण संहितामैतान्गोष्म भवतो वयम् ।

यस्यां सत्तमश्लोकी भगवाननुवर्ण्यते ॥ श्रीमद् १२।६।४

आदिमध्यावसानेषु वैराग्यात्मान संयुतम् ।

हरिलीला कथाव्रातामृता नन्दित सत्पुरुम् ॥ श्रीमद् १२।१३।११

४- ये मां स्तुवन्त्यनेनांगं प्रतिबुध्य निशाख्ये ।

तेनां प्राणात्यये चाहं ददामि विमलं मतिम् ॥ श्रीमद् ८-४-२५

५- यथा- स्कन्ध ५, अध्याय ३, स्कन्ध ६ अध्याय ६, स्कन्ध १२, अध्याय ६ आदि

प्रमुख स्तुतियों का उल्लेख किया जाता है-

प्रथम स्कन्ध-

कुन्तीकृतभगवत्स्तुति (अध्याय ८)

मोक्षकृतकृष्णस्तुति (११ ६)

द्वितीय स्कन्ध-

शुकदेवकृतभगवत्स्तुति (अध्याय ४)

ब्रह्माकृतभगवत्स्तुति (११ ६)

तृतीय स्कन्ध-

ब्रह्मा कृत भगवत्स्तुति (अध्याय ६)

परीक्षितादि कृष्णगण कृत वराहस्तुति (अध्याय १३)

सनकादि कृत भगवत्स्तुति (अध्याय १६)

देवगण कृत वराह- स्तुति (११ १६)

कर्म कृष्ण कृत भगवत्स्तुति (११ २१)

देवहूति कृत कपिलस्तुति (११ २५)

जीवकृत भगवत्स्तुति (११ ३१)

देवहूतिकृत कपिलस्तुति (अध्याय ३३)

चतुर्थ स्कन्ध-

वन्निकृत त्रिदेव स्तुति (अध्याय १)

देवगण कृत नर नारायण स्तुति (अध्याय १)

वदनाकृत शिव स्तुति (११ ७)

वदना कृत विष्णु स्तुति (११ ११)

कृत्विगण कृत विष्णुस्तुति (११ ११)

सदस्यगण कृत विष्णुस्तुति (११ ११)

रुद्र कृत विष्णु स्तुति (अध्याय ७)	
भृगुस्त्वामि कृत विष्णुस्तुति (, ,)	
ब्रह्मा कृत विष्णु स्तुति (, ,)	
इन्द्र कृत विष्णु स्तुति (, ,)	
यज्ञपत्नीगणकृत विष्णु स्तुति (, ,)	
ऋषिगणकृत विष्णुस्तुति (, ,)	
सिद्धगण कृत विष्णु स्तुति (, ,)	
यजमानो कृत विष्णु स्तुति (, ,)	
लोकपाल गण कृत विष्णु स्तुति (, ,)	
योगेश्वर गण कृत विष्णुस्तुति (, ,)	
शब्द ब्रह्म कृत विष्णु स्तुति (, ,)	
अग्नि कृत विष्णु स्तुति (, ,)	
देवगण कृत विष्णु स्तुति (, ,)	
गन्धर्वागण कृत विष्णु स्तुति (, ,)	
विद्याधरगण कृत विष्णु स्तुति (, ,)	
विप्रगण कृत विष्णु स्तुति (, ,)	
ध्रुव कृत विष्णु स्तुति (अध्याय ६)	
वन्दोजन कृत पृथु स्तुति (अध्याय १६)	
पृथ्वी कृत पृथु स्तुति (अध्याय १७)	
पृथु कृत विष्णु स्तुति (, , २०)	
रुद्र कृत विष्णु स्तुति (, , २४)	
प्रवेतागण कृत विष्णु स्तुति (, , ३०)	

पंचम स्कन्ध-

राजारह्मण कृतभगवत्स्तुतिः	(अध्याय १२)
शिव कृत- भगवत्स्तुति	(अध्याय १७)
मद्भगवद्गणकृत ह्यग्रीवस्तुति	(अध्याय १८)

प्रह्लादकृत नृसिंह स्तुति	(अध्याय १८)
लक्ष्मीकृत भगवत्स्तुति	(,, ,)
मनुकृत मत्स्यावतार स्तुति	(,, ,)
वर्ममाकृत कूर्मावतार स्तुति	(,, ,)
पृथ्वीकृत वराहावतार स्तुति	(,,)
हनुमत्कृत राम स्तुति	(,, १९)
नारदकृत नरनारायण स्तुति	(,,)
हंसादि चतुर्वर्णकृत सूर्यस्तुति	(,, २०)
श्रुतधरादिचतुर्वर्णकृत चन्द्र स्तुति	(,, ,)
कुशलादिचतुर्वर्णकृत अग्नि स्तुति	(,, ,)
पुरुषादिचतुर्वर्णकृत जल देवता स्तुति	(अ० २०)
कृतव्रतादि चतुर्वर्णकृत वायुदेवता स्तुति	(,,)
पुष्करद्वीप वासि कृत ब्रह्म स्तुति	(,,)
नारदकृत संकर्षण स्तुति	(अ० २५)

अष्ट सन्ध-

प्रजापतिदत्ताकृत भगवत्स्तुति	(हंसगुह्य स्तौत्र)
	(अध्याय ४)
शबलारवादि कृत भगवत्स्तुति	(अध्याय ५)
विश्वरूपीपदिष्ट भगवत्स्तुति	(नारायण कवच)
	(अध्याय ८)
दैवगण कृत भगवत्स्तुति	(,, ६)
दैवगण कृत भगवत्स्तुति	(,, ६)
वृत्रासुर कृत भगवत्स्तुति	(,, ११)
नारदकृत संकर्षण स्तुति	(,, १६)
चित्रकैतुकृत संकर्षण स्तुति	(,, ,)

शुकदेवोपदिष्ट विष्णुस्तुति (अध्याय १६)

शुकदेवोपदिष्ट लक्ष्मीनारायण स्तुति (अ० १६)

सप्तम स्कन्ध-

ब्रह्माकृत नृसिंह स्तुति (अध्याय ८)

रुद्रकृत ११ (११)

इन्द्रकृत ११ (११)

ऋणिगणकृत ११ (११)

पितृगणकृत ११ (११)

सिद्धगण कृत ११ (११)

विधाधरगण कृत नृसिंह स्तुति (अध्याय ८)

नागगण कृत ११ (११)

मनुगण कृत ११ (११)

प्रजापतिगण कृत ११ (११)

गंधर्वागण कृत ११ (११)

चारुगण कृत ११ (११)

यक्षागण कृत ११ (११)

किम्बुरुवागण कृत ११ (११)

वैतालिकागणकृत ११ (११)

किन्नरगण कृत ११ (११)

विष्णुपादागणकृत, ११ (११)

प्रह्लाद कृत ११ (११ ९)

ब्रह्माकृत ११ (११ १०)

अष्टम स्कन्ध-

गणेश कृत भगवत्स्तुति (अध्याय ३)

ब्रह्माकृत भगवत्स्तुति (११ ५)

ब्रह्माकृत भगवत्स्तुति (११ ६)

प्रजापतिगण कृत शिवस्तुति	(अध्याय ७)
शिवकृत भावत्स्तुति	(११ १२)
कश्यपीपदिष्टभगवत्स्तुति	(११ १६)
वदितिकृत भावत्स्तुति	(११ १७)
ब्रह्माकृत भावत्स्तुति	(११ १८)
राजासत्यव्रतकृतमत्स्यावतार स्तुति	११ २४)

नवम स्कन्ध-

अम्बरीष कृत सुदर्शनचक्र स्तुति	(अध्याय ५)
बंशुमान् कृत कपिल स्तुति	(अध्याय ८)

दशमस्कन्ध पूर्वार्ध-

ब्रह्मशिवादि कृत भावत्स्तुति	(अध्याय २)
वसुदेवकृत भावत्स्तुति	(११ ३)
दैवकी कृत भावत्स्तुति	(११ ३)
नलकुंवर एवं मणिग्रीवकृत कृष्णस्तुति	(११ १०)
ब्रह्मा कृत कृष्ण स्तुति	(११ १४)
नागपत्नीगण कृत कृष्ण स्तुति	(११ १६)
इन्द्रकृत कृष्ण स्तुति	(११ २७)
सुरभिकृत कृष्ण स्तुति	(११ २७)
वरुणकृत कृष्ण स्तुति	(११ २८)
गीर्वाण कृत कृष्ण स्तुति	(११ २६)
गोपीगण कृत कृष्ण स्तुति	(गीर्वाणी गीत) अध्याय ३१
नारदकृत कृष्ण स्तुति	(अध्याय ३७)
जम्बरू कृत कृष्णस्तुति	(अध्याय ४०)
सुदामा माली कृत कृष्णस्तुति	(अध्याय ४१)
जम्बरू कृत कृष्ण स्तुति	(११ ४८)

दशम स्कन्ध उत्तरार्ध-

मुचुकुन्द कृत कृष्णस्तुति	(अध्याय ५१)
जाम्बवान् कृत कृष्णस्तुति	(,, ५६)
पृथ्वीकृत कृष्णस्तुति	(,, ५८)
माहेश्वर ज्वर कृत कृष्णस्तुति	, ६३)
श्रीरुद्रकृत कृष्णस्तुति	(,, ६३)
राजा नृग कृत कृष्णस्तुति	(,, ६४)
यमुनाकृत बलरामस्तुति	(,, ६५)
कार्ख गण कृत बलरामस्तुति	,, ६८)
नारदकृत कृष्णस्तुति	(,, ६९)
राजागणकृत कृष्णस्तुति	(,, ७०)
नारदकृत कृष्णस्तुति	(,, ७०)
राजागण कृत कृष्णस्तुति	(,, ७३)
पाण्डवगण कृत कृष्णस्तुति	(,, ८३)
मुनिगण कृत कृष्णस्तुति	(,, ८४)
वसुदेवकृत कृष्णस्तुति	(,, ८५)
बलिकृत कृष्णस्तुति	(,, ८५)
राजावहुत्तारकृत कृष्णस्तुति	,, ८६)
श्रुतदेव कृत कृष्णस्तुति	(,, ८६)
वैदकृत कृष्णस्तुति	(,, ८७)

एकादश स्कन्ध-

देवगण कृतनरनारायणस्तुति	(अध्याय ४)
करमाज्जीपदिष्ट भगवत्स्तुति	(,, ५)
देवगण कृत कृष्णस्तुति	(,, ६)
उद्धव कृत कृष्णस्तुति	(,, १६)

द्वादशस्कन्ध-

याज्ञवल्क्यकृत आदित्यस्तुति	(अध्याय ६)
-----------------------------	------------

मार्कण्डेयकृत भगवत्स्तुति (अध्याय ८)

मार्कण्डेयकृत शिवस्तुति (, १०)

सूतोपदिष्ट कृष्णस्तुति (, ११)

सूतोपदिष्ट कृष्ण स्तुति (, १३)

श्रीमद्भागवतोक्त स्तुतियों का सारांश-

परब्रह्म परमेश्वर समस्त भूतप्राणियों के बाहर भी तर जलजित भाव से स्थित है। वह ज्ञादि, अनन्त, अलण्ड और अविनाशी है। वह महामहिम बलव्यवृत्ति सरम पुरुष जगत् की उत्पत्ति स्थिति और लय रूप लीला के लिए सत्त्व, रज और तम रूप तीन शक्तियों का आश्रय लेकर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीन रूप धारण करता है। ब्रह्म का साकार नारायण रूप समस्त अवतारों का मूल उद्भव स्थान है जिसे उसने सदानुग्रहार्थ धारण किया है। ब्रह्म का जो आनन्द मात्र निर्विकल्प और अलण्ड तैजोमय निर्गुण स्वरूप है वह साकार सगुण रूप से किंचित् भी भिन्न नहीं है। वह वस्तुतः अजन्मा होकर भी स्वनिर्मित देव तिर्यङ् मनुष्य आदि योनियों में स्वेच्छा से शरीर धारण कर कर्म मर्यादा को रक्षा के लिए अनासक्त भाव से विविध क्रीड़ाएं करता है। समस्त जीव उसकी माया से बार बार जन्म लेकर संसार चक्र में भ्रमण कर रहे हैं। किन्तु बुद्धिमान् लोग मम रोग निवृत्ति के लिए उस भगवान् की अन्य भक्ति का आश्रय लेकर अकुतोभय हो जाते हैं। भगवान् की महिमा अनन्त है। उसकी माया के प्रभाव और गुणों का अन्त ब्रह्मा, सनकादि नारद और स्वयं दश सहस्र फणावली मण्डित शेष भी नहीं जानते। पृथ्वी के रजःकणों की गिनना सम्भव है किन्तु भगवान्

१- श्रीमद्भागवत १।८।१८

२- नमः परस्मै पुरुषाय भूय से सदुद्भवस्थान निरोध लोलया ।

गृहीत शक्ति त्रितयाय दैक्षिनामन्तर्भायानुपलब्धवत्स्यै ॥ श्रीमद् ४।१।१२

३- श्रीमद् ३।६

४- श्रीमद् १०।८७।३२

५- नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रास्ते। मायावतस्य पुरुषस्य कुतोऽपरेय।

गायन् गुणान् दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुना पि समवयस्यति नास्य पारम् ॥

न ह्यन्तस्त्वद्विप्रतीनां सोऽनन्त इति लोयसे ॥ श्रीमद् ४।३०।३१

श्रुति २।७।४९

के गुणों और पराक्रमों की गणना असम्भव है। आदि पुरुष नारायण श्रीधर मत्स्य कूर्म, वराह, हम्ग्रीव, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि आदि रूप धारण करता है उनके प्रभाव से समस्त लोक निःशोक होकर उनकी लीलाओं का गान करता हुआ आनन्द प्राप्त करता है।

हिन्दी भक्ति साहित्य में जो ईश, विनय, प्रार्थना, वन्दना आदि का काव्य है उसमें भी प्रमुखतया उपर्युक्त विचारों का ही समावेश पाया जाता है, यह स्पष्ट है।

३-नाम महिमा-

समस्त भक्ति साहित्य में भगवन्नाम की अन्त महिमा की प्रतिष्ठा के विषय में थोड़ी चर्चा पहले की जा चुकी है। यद्यपि निर्गुण ब्रह्म का रूप अचिन्त्य है और नाम रूप की अपेक्षा रखता है, तथापि मध्य युग के सभी निर्गुण भक्त साधकों ने अपने हृद्देश में अनुभूत उस परम तत्त्व का नाम द्वारा संकेत किया है। सगुण भक्त तो स्पष्ट ही साकार ब्रह्म के उपासक होने के कारण उसके नाम का माहात्म्य स्वीकार करते हैं- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में - "मध्ययुग के भक्तों में भगवान् के नाम का माहात्म्य बहुत अधिक है। मध्ययुग की समस्त धर्म साधना की नाम की साधना कहा जा सकता है। चाहे सगुण मार्ग के भक्त हों चाहे निर्गुण मार्ग के, नाम जप के बारे में किसी की कोई सन्देह नहीं। इस अपार भव सागर में एक मात्र नाम ही नौका है।" गोस्वामी तुलसीदास ने राम चरित मानस में "राम न सकहिं नाम गुन गार्ह" कह कर नाम का अन्त माहात्म्य स्वीकार किया है। महाप्रभु चैतन्य के सम्प्रदाय में नाम संकीर्तन पर सर्वाधिक बल दिया गया है। सभी वैष्णव सम्प्रदायों में नाम जप और संकीर्तन की भावत्प्राप्ति का अग्रिम साधन माना गया है। किसी सम्प्रदाय में फाँदार के षण्चक्रप्रणालि किसी में अष्टादार किसी में द्वादशादार और किसी में द्वात्रिंशादार मंत्र के जप का विधान है। पुराणों में भगवन्नाम की महिमा का सविस्तार वर्णन है जिनमें

१- श्रीमद्भागवत २।७।३६, ४० तथा ११।४।२

२- श्रीमद्भागवत १०।४०

३- मध्यकालीन धर्म साधना - डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० ५

स्कन्द

श्रीमद्भागवत और पुराण उल्लेखनीय है।

श्रीमद्भागवत में भगवन्नाम की अपार दुरति दायकारिणी अमोघ शक्ति का कुछ आभास देने के लिए अजामिल के उपाख्यान का वर्णन है। अजामिल का नाम मानो महापात की के लिए रूढ़ हो गया है। किन्तु ज्ञान वश ही (भगवद् बुद्धि से नहीं) अपने पुत्र "नारायण" का नाम लेने से ^{वह} यम दूतों के पाश से मुक्त और पवित्र हो गया। ई विवश होकर भी भगवान् का नाम लेने वाला व्यक्ति करोड़ों जन्म के पापों का नाश कर देता है। चोर, मद्यप, मित्र द्रोही, ब्रह्म हत्यारा, गुरुपत्नी गामी, स्त्री, राजा, माता-पिता तथा गौ की हत्या करने जैसे महान् पापों का प्रायश्चित्त भगवन्नाम ग्रहण मात्र से हो जाता है। कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतों से भी मनुष्य उतना शुद्ध नहीं होता जितना भगवन्नामोच्चारण से। संकेत से, हंसी से, गान के आलाप को पूर्ण करने के लिए अथवा ज्वहेलता से भी लिया हुआ भगवन्नाम मंगलकारी है। गिरते पड़ते, अंग भंग होते सर्पादि दंश में, ज्वरादि से पीड़ितावस्था अथवा दण्ड आदि से आहतावस्था में विवश होकर लिया हुआ भगवन्नाम नाम मरी यातना का अन्त कर देता है। पापों की न्यूनाधिक के अनुसार छोटे बड़े प्रायश्चित्तों का विधान है। किन्तु तप, दान और जप आदि प्रायश्चित्तों से केवल पाप ही नष्ट हो पाते हैं, पापी का पाप दूषित चित्त शुद्ध नहीं होता किन्तु जाने अथवा अनजाने किया हुआ भगवन्नाम संकीर्तन चित्त को शुद्ध कर देता है। जिस प्रकार बखान् और गुणकारी औषधि बिना गुण जाने सेवन किए जाने पर भी लाभ पहुंचाती ही है उसी प्रकार मंगलमय भगवन्नाम की प्रभाव ज्ञान सन्धि ग्रहण किया जाय या बिना जाने, अपना कल्याणकारी फल अवश्य देता है।

१- स्कन्दपुराण-वैष्णवलण्ड, मार्ग शीर्ष माहात्म्य अध्याय १५

कृष्णायनमहत्यैषमंत्रः सर्वार्थं साधकः । भक्तानां जपतां भूयः स्वर्गमौजा फलप्रदः ॥

श्रीहरिमक्ति रत्नामृत सिन्धु पृ० ५६ पर पद्म पुराण का वचन

२- श्रीमद्भागवत ६।१।२

३- अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंस्तमपि । यद्व्याजहार विवशो नामस्वस्त्ययनं हरिः ॥

श्रीमद्भागवत ६।२।७

साकैत्यं पारिहास्यं वा स्तौमं हेलनमैव वा ।

वैकुण्ठ नाम ग्रहणमशेषाद्य हरं विदुः ॥ श्रीमद् ६।२।१४

गौत्वामी तुलसीदास ने इसे यों कहा है-

भांय कुभांय अल आलस हू। नाम जपत मंगल दिसि दस हू॥ श्रीरामचरितमानस

४- श्रीमद्भागवत ६।२।१५

५- यथागदं वीर्यतममुपयुक्तं यद्वृच्छ्या। अजानतोऽप्यात्म गुणं कुर्यान्मित्रोऽप्युदाहृतः ॥

श्रीमद्भाग ६।२।१६

नाम का उपयोग केवल पातकनाश और चित्त शुद्धि ही नहीं अपितु भक्त भगवल्लीलाओं का आनन्द लेने के लिए भी नाम का गायन करते हैं क्योंकि इन नामों के उच्चारण से भगवान् के अनेक दिव्य गुणों का ज्ञान होता है।^१ लौकिक कर्मों में प्रवृत्त मनुष्य के हृदय में स्थित होते हुए भी भगवान् उससे बहुत दूर रहते हैं किन्तु सतत गुण गान करने वाले भक्त के अत्यन्त निकट रहते हैं।^२ भगवन्महिमा का गान न करने वाले मनुष्य की जिह्वा मेंढ़क की जिह्वा के समान है।^३ श्रीमद्भागवत में भगवन्नाम की महिमा अनेक प्रसंगों एवं स्थलों पर कही गई है।^४ विस्तार भय से केवल दिङ्मात्र प्रदर्शन किया गया है।

४- गुरु महिमा-

समस्त विश्व के और विशेषतया भारतवर्ष के जाध्यात्मिक साहित्य में गुरु की बड़ी महिमा है। वैदिक काल से आज तक गुरु का सर्वोच्च स्थान निर्विवाद है। ज्ञान तिमिर से अन्ध शिष्य के नेत्रों को गुरु अपने ज्ञानांजन की शलाका से खोलता है। जिस परम गुह्य तत्त्व से यह चराचर जगत् व्याप्त है। उसके दिव्य धाम की दर्शन गुरु ही कराता है। गुरु और गौविन्द में गौविन्द का ज्ञान कराने वाला गुरु ही अक्षि गरिनामय है। गुरु ब्रह्मा है, विष्णु है, महेश्वर है किन्तु हुना साक्षात् पर-ब्रह्म है। गुरु के बिना ज्ञान नहीं हो सकता। ज्ञान के लिए गुरु की शरण ग्रहण करनी ही पड़ती है। सभी धर्म सम्प्रदायों में गुरु के माहात्म्य और परम्परा का निवाह हुआ है, हो रहा है।

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि गुरु भगवत्स्वरूप ही है। साधारण मनुष्य समझ कर उसकी किसी बात की उपेक्षा या अवहेलना नहीं करनी चाहिए,

१- यथाहरीनामै पदैरु द्राहुतैस्तुदुतम श्लोक गुणोपलम्बकम् ॥

श्रीमद्भागवत ६।२।११

२- हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः कर्मविदिप्यत चैतनाम् ।

आत्मशक्तिमिराह्योऽप्यन्त्युपेत गुणात्मनाम् ॥

श्रीमद्भागवत १०।८६।४७

४- श्रीमद्भागवत ५।३।१२, ५।२४।२०, १०।३४। १७ आदि

३- जिह्वासती दादुरिक्वैव सूत न चोफायत्युरुगायगाथा॥

श्रीमद्भागवत २।३।२०

क्योंकि गुरु सर्वदैवमय होता है^१ उसे अपना शरीरादि सर्वस्व निवेदन करते हुए , सर्वदा अनुगमन करते हुए, अत्यन्त तुच्छ सेवक के समान अहर्निश गुरु की शुद्धि में संलग्न रहना चाहिए। भगवत्त्ववेत्ता , शान्त और भगवत्स्वरूप गुरु सर्वदा उपास्य है। शिष्य के लिए गुरुकुल निवास सत्कर्मों का हेतु है क्योंकि वहाँ भगवदाकार ज्ञानदायी गुरु का निवास होती है। गुरु के सदुपदेश से जो वणाश्रमधारी सुगमता से भवसागर पार कर जाते हैं वे ही अपना सच्चा स्वार्थ जानने वाले हैं। गुरु सेवा से सर्वान्तर्यामी परमेश्वर जितना तुष्ट होता है उतना यज्ञ, ब्रह्मचर्य , तप और उपशम आदि किसी अन्य साधन से नहीं होता^४। ज्ञान दोषक का दान करने वाले भगवद्रूप गुरु में मनुष्य बुद्धि करने वाले मनुष्य का समस्त शस्त्र श्रवण अन्य ज्ञान हाथी के स्नान के समान निष्कल है। गुरु के चरणों का आश्रय लिये बिना मनीनिग्रह करने का प्रयत्न करने वाले मनुष्य उसी प्रकार विपत्तिग्रस्त हो जाते हैं जिस प्रकार बिना कर्णधार की नाँका पर यात्रा करने वाले वणिज ।

५- सत्संग-

प्रवृत्ति मार्ग के गहरे दल दल में फँसे हुए मुमुक्षा पुरुष को भगवदनुसृत करने के लिए सत्संग अमोघ साधन है। भारतीय अध्यात्म साहित्य में सत्संग पर अत्यन्त जोर दिया गया है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि भगवद्भक्तों की एक द्वाण की संगति के सामने स्वर्ग और अपवर्ग भी कोई महत्त्व नहीं रखते फिर मनुष्य जीवन में प्राप्त होने वाले भोगों की तो गणना ही क्या है। भगवद्भक्त सत्तों के चरणों से

१- आचार्य मां विजानीयान्भावमन्येत कर्हिंचित् ।

न मर्त्यं बुद्ध्यासूयेत सर्वदैवमयो गुरुः ॥ श्रीमद् ११।१७।२७

२- श्रीमद्भागवत ११।१७।२८-३२

३- मदमिहं गुरुं शान्तमुपासीति मदात्मकम् ॥ श्रीमद्भागवत ११।१०।५

४- श्रीमद्भागवत १०।८०।३२-३३

नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसीपशमेन वा।

तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुद्धया यथा ॥ श्रीमद् १०।८०।३४

५- यस्यसाक्षाद्भगवति ज्ञानदोषप्रदेगुरो।

मर्त्यासिद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुजरं शौचवत् ॥ श्रीमद् ७।१५।२६

६- श्रीमद्भागवत १०।८७।३३

७- मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपा लक्षाद् वा ॥ ना० म० सूत्र ३८

तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं। भव भय से मुक्त होने के लिए सत्संग राम बाण जीर्णधि है।^१ जिसे जन्म मरण रूप अति दुःसाध्य रोग के सर्वश्रेष्ठ वैद्य भगवान् के पास पहुँचना हो उसे सत्संग के मार्ग से जाना चाहिए।^२ यदि बुद्धिमान् साधक भगवान् से कुछ चाहता है तो यही कि यदि भगवन्माया से प्रेरित होकर स्वकर्मानुसार वह संसार में भटकता रहे तब भी जन्म जन्मान्तर तक उसे सत्संग प्राप्त हो।^३ क्योंकि साधुओं का समागम श्रोता और वक्ता दोनों ही को अभिमत होता है उनके प्रश्नोत्तर सभी ई प्राणियों का कल्याण करते हैं।^४ विशुद्ध सच्चिदानन्दधन वासुदेवात्मक ब्रह्म का ज्ञान महापुरुषों की चरण रज को शिरोधार्य किए बिना यज्ञ, तप, वेदाध्ययनादि और साधनों से भी प्राप्त करना असम्भव है।^५ वेदोक्त कर्म में आसक्त पुरुष जब तक महापुरुषों की चरण धूलि का सेवन नहीं कर लेते तब तक उनकी बुद्धि चरम ध्येय (भगवान्) तक पहुँच नहीं सकती। इस प्रकार श्रेयोमार्ग के पथिक के लिए श्रीमद्भागवत में सत्संग की अनिवार्यता का उल्लेख किया गया है। सत्संग से जो और भी बड़ी बात होती है वह है भक्त को भगवान् से भी अधिक प्रिय भगवद्भक्ति की पूर्ण प्राप्ति। भक्ति की प्राप्ति में चाहे अन्य साधन असफल हो जाएं किन्तु सत्संग मोघ नहीं हो सकता। सत्संग में सबसे बड़ी विशेषता है उसका सर्वसंग निवारकत्व । सत्संग हो जाने पर फिर अन्य संग की इच्छा नहीं रहती। सत्संग के द्वारा ही विभिन्न युगों में दैत्य, राजास, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चरण, गुह्यक, विद्याधर, स्त्री, वैश्य,

१- सुत्याम त्वेनोपि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।

भगवत्संगि संगस्य मर्त्यानां किमुताशिनः ॥ श्रीमद् ४।३०।३४

२- तैषां विचरतां पदभ्यां तीर्थानां पावनेच्छया ।

भीतस्य किं न रोवेत तावकानां समागमः ॥ श्रीमद् ४।३०।३०

३- श्रीमद् ४।३०।३८

४- श्रीमद् ४।३०।३३

५- श्रीमद् ४।२२।३६

६- नच्छन्दसा नैव जलाग्निं सूर्यैर्विना महद्भूत्पादजोऽमिषेकम् ॥ श्रीमद् ५।१२।१२

७- श्रीमद्भाग ७।५।३२

८- महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोक्ष ॥ ना० म० सूत्र ३६

सत्संगलब्ध्या भक्त्या मयि मां स उपासिता ॥ श्रीमद् ११।११।२५

शुद्ध और अन्त्यजों ने भगवत्प्राप्ति की। सर्व साधक हीन, निरक्षर गोपियों ने केवल सत्संग जनित भक्ति भाव से ही परम पद प्राप्त कर लिया था।

६- वैराग्य-

अध्यात्म पथ के पथिक को बृद्ध वैराग्यवान् होना चाहिए। अपनी मनोगत समस्त कामनाओं का प्रामाणिकता से परित्याग करके जब साधक अपने से अपने में ही तुष्ट होकर आत्माराम होकर स्थित होता है तब उसके स्थितप्रज्ञ कहते हैं किन्तु स्थित प्रज्ञ होने कलिए पहले अपनी समस्त इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा लेना अनिवार्य है। जिसकी इन्द्रियां वह में होती हैं वही वास्तव में स्थित प्रज्ञ कहलाने का अधिकारी है। इन्द्रिय जय ही वैराग्य है। भारतीय अध्यात्म विद्या में वैराग्य के द्वारा मन जैसी महान् चंचल शक्ति का निग्रह भी शक्य बताया गया है। योग दर्शन में भी अभ्यास और वैराग्य की अनिवार्यता स्वीकार की गई है। भक्ति शास्त्रों में तो भक्ति की साधना के लिए विषयों से वैराग्य होना प्रथम सीपान ही बताया गया है।

श्रीमद्भागवत के पद्म पुराणीकृत माहात्म्य में ज्ञान और वैराग्य को भक्ति के दो पुत्रों के रूप में बताया गया है। इससे ज्ञात होता है कि भारतीय अध्यात्म साधना में ज्ञान और वैराग्य को साधन भी माना गया है और साध्य भी। किन्तु श्रीमद्भागवत में ज्ञान और वैराग्य को अधिकतर भक्ति के साधन रूप में ही गृहीत किया गया है। ~~इन्के द्वारा साध्य फल प्राप्त भक्ति ही है।~~ कहीं कहीं सत्संग रूप में भी गृहीत है।

१- श्रीमद्भागवत ११।१२

२- वशेहि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ गीता० २।६१

३- ज्ञानं महाबाहो मनोदुर्निग्रहं चतम् ।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ गीता ६।३५

४- अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः। पातञ्जल योग दर्शन, समाधि पाद सूत्र १२

५- तस्याः साधनानि गायन्त्याचार्याः । ततु विषयत्यागात् संगत्यागाच्च ॥

ना० भ० सूत्र ३४, ३५

६- अहं भक्तिरितिस्थाता इमां मे तनयां मतो । ज्ञान वैराग्यनामानां काल्याणैर्न जर्जरी ॥

७- वासुदेव भगवति भक्तियोगः प्रश्लेषितः । भागवतमाहात्म्य व० १ रत्नोक्त ४५

जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यद्वत्प्रदर्शनम् ॥ श्रीमद् २।३।७

श्रीमद्भागवत में वैराग्योत्पादन के लिए विविध उपाख्यानो का वर्णन एवं विषयों का निरूपण किया गया है। इनमें पुरंजनापाख्यान, भ्वाटवी वर्णन, ययाति चरित, प्रकृति पुरुष विवेक, संसार का मिथ्यात्व निरूपण, वर्णाश्रम धर्म वर्णन और देहगेह में आसक्त पुरुषों की अधोगति का वर्णन प्रमुख विषय हैं।

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि यह दुर्मति जीव अपने नाशवान् शरीर से सम्बन्ध रखने वाले गृह, धन आदि को मोह वश नित्य मानता है। जिस जिस योनि में जन्म लेता है, उसी उसी में आनन्द मानने लगता है। और उससे इसे वैराग्य नहीं होता। यह अज्ञ जीव अपने स्त्री, पुत्र, गृह, पशु, धन और बन्धु बान्धवों में अत्यन्त आसक्त होकर अपने को बड़ा भाग्य शाली समझता है। इनके पालन पोषण की चिन्ता से अहर्निश इसके अंग जलते रहते हैं फिर भी दुर्वासनाओं से युक्त होकर यह निरन्तर इन्हीं के लिए नाना दुष्कर्म करता ही रहता है। कुलटा और माया-विनी स्त्रियों की चिकनी चुपड़ी बातों और छोटे बालकों के कल-भाषणों से आदिष्ट मन वाला यह प्राणी गृहस्थ के अति दुःखदायी कर्मजाल में फँसकर भी दुःखों का बड़ी सावधानी से प्रतीकार करता हुआ अपने को सुखी मानता रहता है। किन्तु जब दुर्भाग्य से इसका कोई प्रयत्न काम नहीं देता और यह धन हीन हो जाता है तो कुटुम्ब के भरण पोषण में असमर्थ यह पुरुष अत्यन्त दीन होकर दीर्घ निः-श्वास छोड़ने लगता है। कुटुम्ब भरण में असमर्थ इस पुरुष का स्त्री पुत्रादि भी पहले की भांति आदर नहीं करते जैसे किसान बूढ़े बैल का। वृद्धावस्था के कारण इसका रूप नष्ट हो जाता है। रोग के कारण पुरुषार्थ का नाश होजाता है किन्तु फिर भी अपने पुत्रादि द्वारा अपमानपूर्वक दिए हुए रोटी के टुकड़ों पर गृह रक्षा कुत्ते की भांति पड़ा पड़ा मृत्यु की प्रतीक्षा करता रहता है। इस प्रकार श्रीमद्भागवत

१- द्रष्टव्य- श्रीमद्भागवत स्कन्ध ३ अध्याय २०, ३० ? स्कन्ध ४ अध्याय २५-२६
स्कन्ध ५ अध्याय १३-१५ स्कन्ध ६ अध्याय १८-१९। स्कन्ध ११ अध्याय ३, १०,
१६-२६ ।

२- आत्मजायासुतागारपशुद्रविणवन्धुषु । निरुद्ध मूलहृदय आत्मानं बहुमन्यते ।
सन्ध्यमानसवाग् एवामुद्ध नाप्ति । करोत्यविरतं मूढो दुरितानि दुरास्यः ॥

श्रीमद्भागवत ३।३०।६, ७ आदि
विशेष द्रष्टव्य- श्रीमद्भागवत स्कन्ध ३, अध्याय ३०, ३१, ३२

में देह गेह में आसक्त मनुष्य की दयनीय दशा का वर्णन कर मुमुक्षु पुरुष के हृदय में वैराग्य का संवार करने का प्रयत्न दृष्टिगत होता है। वैराग्य के अनेक साधनों में श्रीमद्भागवत में प्रमुख तथा हम निम्नांकित तीन विषयों का निरूपण पाते हैं :-

क- रमणी के मोहक रूप की निन्दा

ख- अर्थनिन्दा

ग- मनुष्य शरीर की दुर्लभता

क- नारी- जहाँ भारतीय साहित्य में नारी को परम पुनीत मातृ शक्ति के रूप में अभ्यर्चनीय बताया गया है, वहाँ इन्द्रियग्राम की सभ्य मथित कर डालने वाले उसके मंदिर रूप यौवन का आध्यात्म मार्ग का एक महान् प्रत्यूह भी बताया गया है। हिन्दी भक्ति साहित्य में नारी के इस मादक रूप की ज्वाला से ही साधक और मुमुक्षु पुरुष को निरन्तर स्वेत रहने का जो आदेश दिया गया है उसका आधार प्राचीन संस्कृत साहित्य ही है। भक्ति के चरम लक्ष्य को लेकर चलने वाले श्रीमद् भगवद्गीता भागवत पुराण में ज्ञान और वैराग्य का निरूपण अनेक स्थलों पर है और नारी के मंदिर आकर्षण की शक्ति का उल्लेख प्रबल शब्दों में किया गया है। नारी को यह निन्दा संस्कृत और उसके अनुप्राणित हिन्दी भक्ति साहित्य में नारी के प्रति किसी द्वेष के कारण नहीं अपितु साधक को सावधान करने के लिए एक साधक रूप में गृहीत है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि जीव का सबसे बड़ा बन्धन स्त्री है। विश्व में कोई भी पुरुष ऐसा नहीं है जो स्त्री रूप माया से मोहित न हो। अतः योग के परम पद पर आरुहण पुरुष को स्त्री संग का सर्वथा त्याग करना चाहिए। यह स्त्री रूपिणी भगवन्माया अत्यन्त प्रबल है। झोंगी के लिए तो यह नरक का खुला द्वार है और तृण से आच्छादित मृत्यु कूप ही है।

१- देवि प्रयत्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातृजगतिऽखिलस्य । ॐ दुर्गासप्तशती
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमेश्वरि देवि चराचरस्य ॥ ३५.१२।७

२- क- किमत्र स्य कनकं कान्ता । प्रशक्तेतरी श्लोक ८

ख- द्वारं किमं नरकस्य नारी ॥ " " ३

३- दीपसिखा सम जुवति तन, मन जनि होसि पतंग । रामचरित मानस

४- न तथास्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्य प्रसंगतः । यौगित्संगा यथा पुंसो यथा तत्संगिसंगतः ॥

तत्पृष्ठं सृष्टं सृष्टेणु को न्यस्तण्डित धीः पुमान् ।

कणिं नारायणमृते यौगित्संग्यैह मायया ॥

शेष उद्धरण आले पृष्ठ पर

स- अर्थ निन्दा-

 "कामदुर्मदान्ध पुरुष कमो भी भगवत्प्राप्ति नहीं कर सकता" इस भारतीय दृष्टिकोण की पुष्टि श्रीमद्भागवत में जैक स्थलों पर हुई है। का नाश से ही मनुष्य में वैराग्य का संसार होता है और वैराग्य से भगवद्भक्ति प्राप्त होती है, यह क्रम है। श्रीमद्भागवत में एक तितित्तु ब्राह्मण के उपाख्यान में अर्थ की अक्षता और अर्थ नाश से वैराग्योत्पत्ति की बात कही गई है। वैराग्य के लिए का नाश प्रथम सोपान है। अर्थ के कारण मनुष्य पन्द्रह अर्थों का शिकार होता है अतः कल्याण कामी पुरुष को दूर से ही अर्थ का परित्याग कर देना चाहिए। वे पंद्रह अर्थ हैं :- चोरी, हिंसा, मिथ्या भाषण, पातण्ड, काम, क्रोध, गर्व, अहंकार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्वर्ग और (स्त्री, धूत, मद्यपानादि) व्यसन। का के कारण ही मनुष्य का अपने प्रिय जनों से वैमनस्य होता है। का मद के कारण ही मनुष्य की सात्त्विकता नष्ट हो जाती है और वह पूर्णतया भगवद् विमुक्त हो जाता है। अतः साधक को अर्थों के आश्रय रूप का में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।

१० पिछले पृष्ठ के शेष उद्धरण-

बलं मे पश्य मायायाः स्त्रीमय्या जयिनी दिशाम् ।

या करोति पदाग्रान्तान्भ्रुविजृम्भेण केवलम् ॥

संगं न कुर्यात् प्रमदासुजातु योगस्य पारं परमारुहदुः ।

मत्सेवया प्रतिलब्धात्मतामो वदन्ति या निरय द्वारमस्य ॥

योपयाति शनैर्माया योषिदैव विनिर्मिता ।

तामोद्धोतात्मना मृत्युं तृणीः कूपमिवावृतम् ॥

श्रीमद्० स्कान्ध ३ अध्याय ३१ श्लोक ३५, ३७, ३८, ३९, ४० अन्यत्र भी ६, १८, ३६-४०

१- श्रीमद्भागवत ११, २३

२- तस्यैव ध्यायतो दीर्घं नष्टरायस्तपस्विनः ।

लिपतो वाष्पकण्ठस्य निर्वेदः सुमहानभूत् ॥ श्रीमद्० ११/२३, १२३

३- स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः ।

भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्शा व्यसनानि च॥

एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् ।

तस्मादनर्थमर्थोऽपि दूरतस्त्यजेत् ॥ श्रीमद्० ११, २३, १३, १८, १९

४- स्वर्गापिर्गयोदरि प्राप्य लोकमिमं पुमान् ।

द्रविणो कोऽनुज्जेत मर्त्याऽनर्थस्य धामनि ॥ श्रीमद्० ११, २३, २३

ग- मानवदेह की दुर्लभता-

विधाता की इस विशाल सृष्टि में मनुष्य प्राणी की ही उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति होने का सौभाग्य प्राप्त है- "न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।" अन्य प्राणियों की जहाँ केवल इन्द्रिय प्रेरणा से क्लेश होकर ही कर्म करने पड़ते हैं वहाँ मानव प्राणी इन्द्रिय ज्यों होकर उत्तम ज्ञान और बुद्धि बल से अपने कर्मों को अभीष्ट दिशा की ओर मोड़ सकता है। जहाँ अन्य योनियाँ भोग भूमि हैं, वहाँ मानव योनि कर्म भूमि है। मानव के कर्मों का ही शुभा शुभ फल होता है मानव का यह विशेषाधिकार ही उसके सर्व श्रेष्ठत्व का कारण है। धर्माचरण के द्वारा मानव अपने चरम पुरुषार्थ मोक्षा का सबसे अधिक सुविधा पूर्वक प्राप्त कर सकता है। इसी दृष्टिकोण की सामने रखते हुए भारत के प्राचीन तत्त्व चिन्तकों ने मानवदेह को बहुत दुर्लभ और महत्वपूर्ण बताया है। वास्तव में विवेक और वैराग्य का हेतु मानव देह ही है किसी अन्य देहधारी में वैराग्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। अथ्यात्म प्रधान संस्कृत साहित्य में अनेक स्थलों पर मानव जन्म को सुदुर्लभ बताया गया है। सूर तुलसी बादि विरचित भक्ति साहित्य में यह विचार पुरातन संस्कृत साहित्य से ही आया है। श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि परमेश्वर ने अपनी ज्येष्ठ माया शक्ति से विविध स्थावर जंगम सृष्टि की। किन्तु उसे सन्तान न हुआ और जब ब्रह्म दर्शन की योग्यता रखने वाले पुरुष शरीर की रचना की तभी उसे प्रसन्नता हुई। अतः सिद्ध होता है कि परमेश्वर को भी प्रसन्नता प्रदान करने वाला यह मानव देह ही सर्वश्रेष्ठ है। यह देह भी अनित्य है किन्तु परम पुरुषार्थ का साधन है अतः अनेक जन्मों के अन्तर इस दुर्लभ नर देह को पाकर बुद्धिमान् पुरुष पुनःमृत्यु

१- देहो गुरुर्मम विरक्ति विवेक हेतुः । श्रीमद्० ११. ६. २५

२- नृदेहमायं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारम् ।

मयानुकूलेन नमस्वतेरितं पुमान् भवाविधं न तरेत्स आत्महा॥

श्रीमद्० ११. २०. १७

३- क- परम भाग सुकृति के फलित सुन्दर देह धरी ॥ सूरसागर प्र० ख० पद ७१

ख- बड़े भाग मानुष तनु पावा। सूर दुर्लभ सब ग्रन्थन्दि गावा ॥

रामचरित मानस उत्तर काण्ड पृ० ५८८

मुख में जाने से पूर्व निःश्रेयस का प्रयत्न करे। विषय सुखों को प्राप्त करने में इस अमूल्य वस्तु (नर देह) का उपयोग न करे क्योंकि विषय सुख तो सभी योनियों में प्राप्त हो जाते हैं।

इस प्रकार पूर्वोक्त तीन विषयों के निरूपण से श्रीमद्भागवत में वैराग्य का उपदेश दिया गया है और यहां तक कहा गया है कि बिना भगवदनुग्रह के वैराग्य प्राप्ति नहीं होती। वैराग्य तो संसार सागर से पार जाने के लिए नौका रूप है।

निष्कर्ष-

उपर्युक्त विवेचन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुंचते हैं :-

१- पौराणिक ब्राह्मण धर्म ने भगवत्प्राप्ति के लिए भक्ति को प्राधान्य दिया और भक्ति का सर्वाधिक प्रचार, महत्वस्थापन एवं परमार्थ साधन में उसका सर्वश्रेष्ठत्व स्वीकार श्रीमद्भागवत पुराण द्वारा हुआ ॥

२- भक्ति के सर्व सामान्य साधनों- यथा- भगवत्नाम संकीर्तन, सत्संग, वैराग्य आदि का श्रीमद्भागवत में जो वर्णन है वह परवर्ती हिन्दी भक्ति साहित्य में सादर गृहीत हुआ है।

३- ज्ञातभाव से एवं स्वात्मना शरणागत होकर स्तुति गान करना परमेश्वर को तुष्ट करने का अमोघ साधन है। श्रीमद्भागवत में इन भगवत् स्तुतियों

१- वृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या। वृत्तान्सरीसृपपशून्स्रगदशमत्यान् ॥

तैस्तैरतुष्ट हृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोक धिषणं मुदमापदेवः ॥

तच्छ्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्मान्तै मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ।

तूर्णं यतैत न पतैदनुमृत्यु यावन्निःश्रेयसाय विषयः सत्तु सर्वतः स्यात् ॥

एतद् विद्वान् पुरा मृत्योरभ्याय घटित सः । श्रीमद् ०११। ६। २८, २९

अप्रमत्त इदं ज्ञात्वा मर्त्यमप्यर्थं सिद्धिदम् ॥ श्रीमद् ० ११। २०। १४

२- नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः ।

येन नीतो दशमेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः ॥

श्रीमद् ० ११। २३। २८

का उत्कृष्टतम निर्देशन हुआ है। परवर्ती भक्ति साहित्य ने उससे ज़दाय प्रेरणा ग्रहण की है।

४- ब्रह्मात्म मार्ग में गुरु के जिस महनीय अनिवार्य पद की प्रतिष्ठा भारतीय पुरातन वाङ्मय में हुई है श्रीमद्भागवत ने उस परम्परा को और सशक्त बनाया है और हिन्दी भक्ति साहित्य को प्रेरणा प्रदान की है।

५- श्रीमद्भागवत प्रमुख साहित्यिक कृष्ण भक्ति परक ग्रंथ होने के कारण उपर्युक्त सामान्य भक्ति साधकों के लिए भी कृष्ण भक्त हिन्दी कवियों का प्रधान उद्योजक है।

----:०:----

पंचम अध्याय

मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य को प्रभावित करने वाले

भागवतीय तत्व (विवेक)

(पृ० १७६ - २००)

पंचम अध्याय

मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण-भक्ति-साहित्य को प्रभावित करने वाले भागवतोंक

तत्त्व (विशेष)

दृष्टिकोण-

रक्तिक शिरोमणि, रसात्मा, रसेश्वर श्रीकृष्ण ही वह विशिष्ट तत्त्व है जिसका अतन्त्रित अनुसंधान और समाराधन मध्यकालीन सगुण भक्तों के एक विशाल वर्ग का प्राणस्पन्दन है। "रसो वै सः" "रसं ह्यैवायं लब्ध्वाऽऽनन्दो भवति" आदि श्रुतियों का अधिष्ठान मध्यकाल में श्रीकृष्ण ही होगया। इस "अखिल रसामृत मूर्ति" वंशी विभूषित, नव नीरदाम कृष्ण तत्त्व अथवा शतशत विद्युत्सताओं (गोपीजनों) से आवेष्टित कादम्बिनी को ही परम ध्येय गैय, श्रेय और प्रेय माना गया। उसके अतिरिक्त किसी तत्त्व को जानने की आवश्यकता स्वीकार नहीं की गई। श्रीमद्भागवत ने पहले ही से मधुर कृष्ण तत्त्व की प्रतिष्ठा कर रखी थी। रास पंचाध्यायी में यही कृष्ण अपनी स्वरूपभूता शक्तिधियों (गोपियों) के साथ आत्म-रमण में प्रवृत्त दिखाया गया है। किन्तु श्रीमद्भागवत में इस कृष्ण तत्त्व का विकास क्रम से दिखाया गया है। प्रारंभ में जो कृष्ण शैशव की मनोरम लीलाओं के कारण अनन्त वात्सल्य और सत्य का केन्द्र होता है, कैसोर में वही पाशुर्य का निधान बन

१- अखिल रसामृत मूर्तिः प्रभुररुचिरुद्ध तारकापालिः ।

कलित श्यामा ललितो राया प्रेयान् विधुर्जयति ॥ श्रीहरि भक्ति रसामृत सिन्धु पृ०१

२- स्मृताऽपि तरुणात्पं करुणया हरन्ती नृणा-

मभंगुर तनुत्विणां वलयिता शतैर्विधुतान् ।

कलिन्दगिरिनन्दिनी तट सुरद्रुमालम्बिनी-

मदोयमति बुम्बिनी भवतु कापि कादम्बिनी ॥ रस गंगाधर मंगलाचरणम् ।

वंशीविभूषित करान्मव नीरदामात् । पोताम्बरादरुण विम्बफला धरोष्ठात् ।

पूर्णन्दु सुन्दर मुलादरविन्दनैत्रात् कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥ (ज्ज्ञात)

३- बाहु प्रसार परिरम्भकरालकोरु नीवीस्तमालम्भ नर्म नलाग्रपातैः ।

द्वैत्यावलोक हसितैर्ब्रज सुन्दरीणामुत्पलपति रम्याचकार ॥ श्रीमद्०१०।२६।४६

जाता है और तारुण्य एवं प्रौढावस्था में वही प्रेम एवं श्रद्धा के सीमान्त पर दिखाई देता है। हिन्दी कृष्ण काव्य में हम श्रीकृष्ण के इन सभी रूपों के दर्शन कर सकते हैं। श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध में श्रीकृष्ण अपनी समस्त विभूति और शक्ति के विस्तार के साथ प्रतिष्ठित है। श्रीकृष्ण के लीलाधरत्व और पुरुषोत्तमत्व का पूर्णतया स्थापन करने वाला दशमस्कन्ध ही है जो कृष्ण भक्त हिन्दी कवियों का प्रधान उपजीव्य है। दशम स्कन्ध में भी पूर्वार्द्ध में वर्णित कृष्ण चरित हिन्दी कवियों का प्रियतम वर्ण्य विषय है। यदि कहा जाय कि मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवियों को कृष्ण लीला सम्बन्धी कृतियों का आधार दशम- स्कन्ध पूर्वार्ध ही है तो अतुचित न होगा। अष्ट- ह्राप के कवियों के लिए यह बात और भी दृढ़ता से कही जा सकती है। साधारणतया दशमस्कन्ध के जिन विशिष्ट तत्त्वों को हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने ग्रहण किया है उन्हें हम स्थूल रूप से चार शीर्षकों में विभाजित कर सकते हैं :-

- १- श्रीकृष्ण की विविध लीलारें
- २- श्रीकृष्ण की अलौकिक रूप माधुरी
- ३- श्रीकृष्ण का परब्रह्मपरमेश्वरत्व
- ४- श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का अलौकिक प्रेम

उपर्युक्त चार प्रमुख तत्त्वों में कौन क्वान्तर तत्त्वों का समावेश है यथा- श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं के अन्तर्गत श्रीकृष्ण के जातकर्म , नामकरणादि संस्कार यशोदा, नन्द, गोपबालक , गौ, गोकुल, वृन्दावन, यमुना, गोवर्धन आदि विषयों का समावेश है। श्रीकृष्ण की अलौकिक रूपमाधुरी में उनका वर्ण और विन्यास ललित त्रिमंजी मुद्रा एवं शोभा वर्णन तथा वैष्ण भूषणादि का विवेचन करना समीचीन है। श्रीकृष्ण के परब्रह्मत्व के स्थापन में उनकी उद्भूत और अलौकिक कर्म-दायता की ओर संकेत पाया जाता है। श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के अलौकिक प्रेम में गोपियों की विरह भावना, प्रेमर गीत रास लीला वैष्णु माधुरी और गोपियों की कृष्ण के प्रति माहात्म्य ज्ञान-पूर्ण प्रेम लड़ाणा भक्ति आदि विषयों का निरूपण प्रासंगिक होगा। अतः निम्न पंक्तियों में उपर्युक्त चारों तत्त्वों का सांगोपांग सविस्तार निरूपण किया जायगा-

१- श्रीकृष्ण की विविध लीलारं

अ- दशम स्कन्ध पूर्वार्ध- (व्रजलीला)

लीला-

लीला सगुण ब्रह्म- भगवान् का अचिन्त्य चरित है। निर्गुण और निराकार ब्रह्म की लीला से कोई सरोकार नहीं है किन्तु भक्तों का भगवान् भक्तों का अनुरंजन करने के लिए नाना क्रीडारं करता है भक्त गण भी उसकी क्रीड़ा में सम्मिलित होते हैं। भक्तों का भगवल्लीला में भाग लेना और भगवल्लीलाओं का गान करना अत्यन्त प्रिय कृत्य है। भगवान् की दिव्य लीलाओं का ज्ञान हो जाने पर भक्त का पुनर्भव नहीं होता। भगवल्लीलाओं के गान द्वारा भक्त जो सबसे बड़ी वस्तु प्राप्त करता है वह है भगवान् का प्रेम। श्रीमद्भागवत में एकाधिक स्थलों पर यह बात कही गई है। भगवल्लीलारं त्रिभुवन को पवित्र करने वाली है। भगवान् के अवतार हेतु में दिखाया गया चुका है कि दुष्टदल और साधु रक्षण के अतिरिक्त अपनी लीला के विस्तार से भक्तों को अनुहृत करना भगवान् की कहीं अधिक प्रिय है। श्रीमद्भागवत में भगवल्लीला का अन्त माहात्म्य वर्णित है और दशम स्कन्ध का लक्ष्य है प्रत्यक्षा कृष्ण लीला- गान।

कृष्ण लीला का सूत्रपात

परीक्षित् द्वारा युद्धदेव से कृष्ण लीला विषयक प्रश्न हुआ कि

१- जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः । ४= श्रीमद् १०।१।३, १०।१।८
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ गीता ४।६

२- श्रीमद् ३।२५।२५

१० सोऽहं परस्य सुहृदः परदेवताया लीलाकथास्त्व नृसिंह विरिंचिगीताः ।

अंशस्तितम्यनुगुणान् गुण विप्रमुक्तो दुर्गाणि ते पद युगालय ह्य संगः ॥

श्रीमद् ७।६।१८

३- अनुजानीहि मां देवं लोकांस्तै यशसाप्सुतान् ।

पर्यटामि त्वोदगायल्लीलां भुवनपावनोम् ॥ श्रीमद् १०।६६।३६

कृष्ण ने अपने पिता वसुदेव का घर छोड़कर व्रज वास क्यों किया और वे अपने जाति भाइयों के साथ कहाँ कहाँ रहे ? उन्होंने मथुरा और वृन्दावन में क्या क्या लीलाएँ की ? अपने मामा कंस का वध क्यों किया ? माया मनुष्य रूप धारी परब्रह्म कृष्ण यादवों के साथ द्वारकापुरी में कितने दिन रहे ? उनकी कितनी पत्नियाँ थीं। शुकदेव ने सब प्रश्नों का यथावत् और सविस्तर उत्तर देते हुए कहा कि दानवों के अत्याचार से पीड़ित गौ रूपधारिणी पृथ्वी ने ब्रह्मा जी की शरण में जाकर अपनी व्यथा कही। तब ब्रह्मा जी ने पृथ्वी तथा समस्त देवताओं की आशवासन दिया कि वसुदेव के यहाँ शीघ्र ही परमात्मा श्रीकृष्ण का आविर्भाव होगा। जब तक श्रीकृष्ण भूलोक में रहें तब तक देवगण और देवांगनारें अपने अंशों से मर्त्यलोक में उत्पन्न होकर उनके साथ रहें। वासुदेव (कृष्ण) के साथ उनके कला रूप शेष-संकर्ण (बलराम) और विष्णु की योग माया भी अवतीर्ण होगी। उधर पृथ्वी पर राजा शूरसेन मथुरा और शूरसेन देश का शासक था। उसके सान्निध्य में वसुदेव ने देवकी की पुत्री देवकी से विवाह किया और जब वह नवौढ़ा के साथ घर जा रहे थे तो देवकी का माई कंस उन्हें विदा करने आया। मार्ग में कंस ने आकाशवाणी सुनी कि इस देवकी का आठवाँ बालक कंस का वध करेगा। तब कंस देवकी का वध करने उद्यत हुआ। वसुदेव ने उसे वचन दिया कि देवकी के सभी पुत्र कंस को सौंप दिए जाएंगे। अनिष्ट की आशंका से कंस ने वसुदेव देवकीको कारागार में डाल दिया और अपनी प्रतिज्ञानुसार क्रमशः उनके हैं पुत्रों का वध कर दिया। सातवें गर्भ रूप में शेषावतार (बलराम) को वासुदेव की आज्ञा से योगमाया ने रोहिणी के गर्भ में स्थापित किया। वासुदेव की आज्ञा से योगमाया ने कन्या रूप में नन्द-पत्नी यशोदा के गर्भ से जन्म लिया। वासुदेव ने कृष्ण रूप से देवकी के गर्भ में प्रवेश किया।

कृष्ण का प्रादुर्भाव-

उपसुक्त काल में देवकी-उदर से कंस के कारागार में कृष्ण का जन्म हुआ। उस समय समस्त पृथ्वी मंगल मयी होगई। आकाश में दुर्धनुषाँ बजने

लगी, अप्सराएँ और विद्याधारियाँ नृत्य करने लगीं और किन्नर गंधर्व गान करने लगे। विष्णु के अवतार कृष्ण उस समय चतुर्भुज रूप में अवतरित हुए थे। वसुदेव देवकी ने उनको परब्रह्म मानकर उनकी स्तुति की। उन्हें अपने वास्तविक रूप का परिचय देकर विष्णु ने उन्हें पुत्र भाव से देखने का आदेश दिया और कहा, 'यदि तुम कंस से डरते हो तो मुझे गोकुल से जाओ और वहाँ से यशोदा से कन्या रूप में उत्पन्न मेरी योग माया को तुरन्त ले जाओ। यह कहकर आदिपुरुष विष्णु एक प्राकृत शिशु हो गए। वसुदेव शिशु को लेकर चले तो कारावास के कपाट स्वतः खुल गए। गोकुल जाने के लिए वृष्णिधिरित यमुना ने मार्ग दिया और पार करने में शेष ने फण मण्डल से आया की। वसुदेव ने नन्द व्रज में पहुँच कर शिशु को यशोदा की शैया पर सुला दिया और सखीजात कन्या को लेकर पुनः मथुरा के वंदोगृह में लौट आए। उधर नन्द पत्नी यशोदा को केवल यह तो जान पड़ा कि उसे कोई प्रसूति हुई है किन्तु क्रम और निद्रा से जेत रहने के कारण उसका लिंग ज्ञान नहीं कर सकी। उधर कंस सूचना पाते ही कारागृह में पहुँचा और कन्या को पृथ्वी पर पड़ा देने उद्यत हो गया किन्तु ब्रह्म उसके हाथ से छूटकर एक देवी का रूप धारण कर आकाश में चली गयी और कंस से बोली, 'रे मूढ़ तेरा जन्तक अन्यत्र उत्पन्न हो चुका है। तब तक कंस ने वसुदेव देवकी को मुक्त कर दिया और

१- निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनादने ।

देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहात्म्यः ॥

आविरासीष्या प्राच्यां दिशोन्दुरिव पुष्कलः ।

तमद्भुतबालकमम्बुजेदाणं चतुर्भुजं संलग्नायुंदायुक्म् ।

श्री वत्सलकर्म गच्छामि कौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोद सीमाम् ॥ श्रीमद् १०।३।८-६

२- यदिकंतादिभेणि त्वंतर्हि सगौकुलं नया। मन्मायामायायुत्वं यशोदागर्भं संभ्राम् ॥

इत्युक्त्वासीद्वरिस्तूष्णीं भवानात्ममायया ।

पित्रोःसम्पश्यतोः सखी वभूव प्राकृतः शिशुः॥ श्रीमद् १०।३।८६-४७

३- यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुध्यत ।

नतल्लिंगं परिव्रान्ता निद्रयाफातस्मृतिः ॥

श्रीमद् १०।३।८४

उन्होंने दामा याचना की। भयभीत कंस ने अपने मंत्रियों से मंत्रणा की। उन्होंने कंसारि को खोज कर उसका वध करने का उसे पूर्ण आश्वासन दिया।

गोकुल में कृष्ण का जन्मोत्सव-

पुत्रोत्पत्ति जानकर नन्द ने गोकुल में महान् उत्सव मनाया। ज्योतिष्- वेत्ता ब्राह्मणों को बुलाया। ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन कराकर विधिपूर्वक पुत्र का जातकर्म संस्कार कराया। यदुकुल के पुरोहित गर्ग से यथा समय नामकरण संस्कार कराया। ब्राह्मणों को पूर्णतया अलंकृत बीस लाल गीरं दान कीं। ब्राह्मण, सूत, मागध और बन्दीजन मंगलमय वाद्यवादि देने और स्तुति गान करने लगे। गायनवादन होने लगा। व्रजमण्डल के समस्त गृहों में चन्दनादि का छिड़काव किया गया उन्हें चित्र विचित्र ध्वजा, पताका, माला वस्त्र, पुष्प और पल्लवों से सजाया गया। गीतों, बैलों और बछड़ों को हल्दी, तेल, गेरू आदि धातुओं से रंगकर मोर पंख, माला, वस्त्र और स्वर्ण शृंगलाजों से सजाया गया। गोपगण बहुमूल्य वस्त्र, जाम्बूगण, अंगरसे और फगड़ियों से वैष्टित होकर बहुमूल्य उपहार लेकर कृष्ण नंद द्वार पर जाने लगे। यशोदा के यहां पुत्र जन्म सुनकर गोपियां अत्यन्त मुदित हुईं। वे सुन्दर जाम्बूगण और अंजनादि से अपना शृंगार कर नाना उपहार लेकर यशोदा के घर चलीं। वहां शिशु को मंगल कामना करते हुए लोगों पर हल्दी और तेल मिश्रित जल का सिंचन करती हुई उच्चस्वर से (बधाई) गाने लगीं। गोपगण आनन्दातिरेक से आपस में दूध दही, घी और जल छिड़कने और मुख पर मक्खन मली लगीं।

१- श्रीमद् १०।४

२- गोप्यश्चाकर्ण्यमुदितायशोदायाः सुतोद्भवम् ।

जात्मानंभूगयां चकुर्वन्नाकल्पां जनादिभिः ।

ता वाशिषः प्रयुजानाश्चिरं पाहीति बालकैः ।

हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिचन्त्यो जनमुज्जुः ॥

गोपाः परस्परं हृष्टा दधि क्षीरं कृतान्भुभिः ।

असिचन्त्यो विसिचन्त्यो नवनीतैश्च चिदिभुः ॥ श्रीमद् १०।५।६।१२, १४

श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव का इसी प्रकार किन्तु विस्तृत वर्णन अष्ट
काव्य के कवियों ने किया है, जैसा कि आगे चलकर हम देखेंगे। दशम स्कन्ध में कृष्ण
की विविध लीलाओं का प्रारंभ जन्म से लेकर तीसरे अध्याय से होता है। दशम
स्कन्धीय समस्त कृष्ण लीलाओं का संक्षिप्ततम विवरण इस प्रकार है (कौष्ठिक
में दिए हुए अंक क्रमशः अध्यायों और श्लोकों के बोधक हैं)

(क) विविध बाल लीलाएँ एवं दैत्यवध- (गोकुल वृन्दावन लीला)

- १- पूतना वध (कंस प्रेषित पूतना दृष्टव्य नामक राजासी का स्तन पान द्वारा
वध-अध्याय- ६)
- २- शकट भंजन (पाद प्रहार द्वारा शकटासुर का वध- अध्याय ७)
- ३- तृणावर्त वध (कंस प्रेषित चक्रवात रूपधारी दैत्य का वध - अध्याय ७)
- ४- छुटनों और हाथों के बल रंग कर विहार करना (अ० ८ श्लोक २१)
- ५- थोड़ा बड़े होने पर बड़ों की पूँछ पकड़ कर चलना (८।२४)
- ६- बिना छुटनों की सहायता के पैरों पैरों चलना (८।२६)
- ७- व्रज के समवयस्क गोप बालकों के साथ विविध क्रीड़ाएँ (८।२७)
- ८- बिना गोदीह्न के समय ही बड़ों को लोल देना
- ९- नानास्तेय उपायों से दूध दही खाना और बन्दरों को खिलाना
- १०- दूध दही के भाजन फोड़ जाना । किसी वस्तु के न मिलने पर क्रुपित होकर
बालकों को रुलाकर माग जाना (८।२६)
- ११- दुग्ध-दधि भाजनों तक हाथ न पहुँचने पर पीढ़ा , ऊँखल आदि का उपयोग
करना।
- १२- भाण्डों में छिड़ कर देना (८।३०)
- १३- गोपियों के घरों में मल मूत्रादि त्याग कर देना (८।३१)
- १४- मृत्तिका मत्तण (८।३२)
- १५- माता यशोदा को मुल में ब्रह्माण्ड दर्शन कराना और पूर्ववत् मातृस्नेह उत्पन्न
कराना (८।३०-३८)

१६- स्तन पान छठ- (६-७) यशोदा के दधि मथन के समय बाल कृष्ण उनके पास स्तन पान के लिए आते हैं। यशोदा जब कृष्ण को अतृप्त होड़कर अंगीठी से उफानता हुआ दूध उतारने के लिए चली जाती हैं तो कृष्ण क्रुद्ध होकर दधि भाण्ड फोड़ देते हैं। बनावटी बांसु निकालते हैं। घर के स्कान्त में मात्न लाते हैं (६।६) किन्तु जब यशोदा लाँटती हैं और पात्र को फूटा हुआ पाती हैं, तब भी कुछ नहीं कहती, हँस देती हैं (६।७)

१७- उल्टी पड़ी हुई ओखली पर सड़े होकर झींके पर का मात्न वानरों को लुटाना (६।८)

१८- उलूखल बन्धन- दधि मथते यशोदा ने देखा कि कृष्ण मात्न की चोरी करके वानरों को लुटा रहे हैं। यशोदा ने चुपके से उन्हें पकड़ लिया और लड़ी से धमकाया। फिर रस्सी लाकर उन्हें ऊँखल से बांधी लगीं किन्तु रस्सी हर बार दो ऊँखल झूटी पड़ जाती। और रस्सियों को जोड़ने पर भी झूटी पड़ती रही। जब यशोदा परिश्रम से पसीने में लथपथ होगई तो कृष्ण माता की दया वश स्वयं बंध गए। इससे कृष्ण ने अपनी भक्तवश्यता प्रकट की (६-८-१६)

१९- यमलार्जुनीदार- यक्षापति कुबेर के मदोन्मत्त पुत्र नल कुबर और मणिग्रीव जो नारद के शाप से यमलार्जुन वृक्षा होगए थे कृष्ण ने उनका उद्धार किया। रस्सी बंधे ऊँखल की वृक्षाओं के बीच में फंसा कर वृक्षाओं को समूल उखाड़ दिया और उससे यक्षापुत्र प्रकट होगए (१०।१।२७)

२०- गौपियों के कथन पर नृत्य करने लगना । (११।७)

२१- मल्लों के समान ताल ठोकर कर कुश्ती लड़ना (११।८)

२२- फल बेचने वाली से अन्न देकर फल मोल लेना और उसे रत्न सज्जि देना (११।१०।११)

२३- वृन्दावन के समीप बलराम और अन्य गोपकुमारों के साथ खेलते हुए बहड़े चराना (११।३८)

२४- वंशी बजाना , ढोल फेंकना , पैरों के घुंघरु बजाना, कृत्रिम गाय बैल बनाना। (११।३६)

२५- बलराम और कृष्ण का सांड बनकर लड़ाई का अभिनय करना (११-४०)

२६- मयूर आदि पक्षियों की बोली का अनुकरण करना (११-४०)

२७- वत्सासुर-वध- यमुना तट पर वत्सचारण के समय एक दैत्य कृष्ण के बछड़ों में बछड़े का रूप धारण कर घुस आया। कृष्ण ने उसे पूंछ सहित पिछले पैर पकड़कर अन्तरिक्ष में घुमाकर एक कपित्थ वृक्ष पर दे मारा। (११-४१, ४४)

२८- प्रातराश (कलैया) लेकर वृन्दावन में वत्सचारण करना । (११-४५)

२९- वकासुर-वध- बक रूप धारण करके आए हुए एक दैत्य ने कृष्ण को निगल लिया। किन्तु कृष्ण ने उसे चौंच चोर कर मारफ डाला (११।४६-५३)

३०- बांस मिचीनी, पुल बांधना, वानर की मांति उहलना कूदना आदि झोड़ाओं में कुमारावस्था व्यतीत करना (११।५६)

३१- वत्सचारण के समय गोप बालकों के होंके आदि चुराना। होंके वाले को मत्ता लग जाता तो चुराने वाला उसे दूसरे के पास और दूसरा तीसरे के पास फेंक देता। जब होंके वाला तंग हो जाता तो हंस कर लौटा देते थे। (१२।५)

३२- कृष्ण को धाई मानकर गोपबालकों का उन्हें छूकर आनन्दित होना ।

(१२।६)

३३- बांसुरी बजाना, नरसिंह (सिंगी) बजाना, झमरों के साथ गाना, कौकिल के साथ कूजना और आनन्दित होना (१२।७)

३४- आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की छाया के साथ दौड़ना, हंसों के साथ उनकी गति का अनुकरण करते हुए चलना। बगुलों के पास उन्हीं के समान ध्यानस्थ के समान बैठना, मयूरों के साथ मिलकर नाचना (१२।८)

३५- बन्दर के बच्चों को पकड़ कर सींचना, उनके साथ स्वयं भी वृक्षां पर चढ़ना, उनकी ओर घुड़कना, एक शाला से दूसरी शाला पर उहलना (१२।९)

३६- किसी नदी के कच्चार में थोड़े से जल में गोते लगाना, उसमें फुदकते हुए मेंढ़कों के साथ फुदकना, जल में अपना प्रतिबिम्ब देखकर हंसना, अपनी ही प्रतिबिम्ब को भला बुरा कहना (१२।१०)

३७- बघासुर वध- अजर वैष्णवारी दैत्य का वध। यह पूतना और बकासुरक का छोटा भाई था। यह गुहा के समान अपना मुँह बार व्रज में पड़ा था। वत्स-चारण के समक्ष गोप बाल उसके मुख में घुस गए थे। श्रीकृष्ण ने उसके मुख में प्रवेश कर उसको मार दिया। (१२।३१)

३८- ब्रह्मा द्वारा वत्सहरण- कृष्ण की शक्ति परीक्षा के लिए ब्रह्मा ने जब गोवत्सों और गोप बालकों का हरण कर लिया तो कृष्ण ने स्वयं की ही उन जैक बड़ों और बालकों के रूप में सर्जित कर लिया। इसका उद्देश्य ब्रह्मा के विश्व द्रष्टा होने का गर्व चूर्ण करना था (अध्याय १३)

३९- अपने स्वरूप भूत गोप बालकों और गोवत्सों में ब्रजवासियों, बलराम और गायों का आत्यन्तिक प्रेम उत्पन्न करना । (१३।२२-३६)

४०- गोप बालकों के साथ वन में क्रीड़ा, हरी हरी घास पर बैठकर भोजन करना जड़ प्रपंच से भिन्न शुद्ध सत्त्वमय गोवत्स एवं गोपबाल का रूप धारण करना । (१४।६०-६१)

(त) विविध पाँगण्ड- लीलारं एवं दैत्य वध (वृन्दावन लीला)

४१- पाँगण्ड (पांच वर्ण से अधिक) अवस्था में प्रवेश करने पर बड़ों के स्थान पर गाय चराने योग्य होना। गोप बालकों से छिरे वन विहार की इच्छा से बलराम सहित वंश वादन करते हुए पुष्पित वन में प्रवेश कर गिरिराज गोवर्धन के समीपवर्ती यमुनातट पर गोचारण एवं क्रीड़ा करना। (१५।१-६)

४२- कूजते हुए राजहंसों के साथ कूजना, दूरस्थ पशुओं की गंभीर स्वर में पुकारना, चकोर, क्रांच, चक्रवाक, मारवाज और मयूर आदि पक्षियों की सी बोली बोलना, व्याघ्र सिंह आदि हिंस्रजन्तुओं के शब्दों से डरे हुए जीवों के समान स्वयं भी मयमोत झाँसा आचरण करना, खेलते खेलते थककर किसी गोप बालक की गोद में सिर रखकर लेटे हुए बलराम के चरण दबाना । कभी बलराम के हाथ में हाथ डालकर खड़े होना, नाचना, गाना, ताल ठोकना, कुश्ती लड़ना, हंस हंस कर साधियों की प्रशंसा करना, स्वयं भी कभी कभी मल्ल युद्ध में थक जाने

पर किसी वृद्धा की जड़ के सहारे कोमल पत्तों की शैया पर विभ्राम करना

(१५।१०-११)

४३- धनुकासुर वध- श्रीदामा, सुबल, स्तोक कृष्णादि मित्रों के वाग्वह से कृष्ण बलराम एक सुफलित ताल वन में गए। पक्व ताल फल खाने ^{दे लिए} सभी सदा लालायित थे। किन्तु वह वन एक दुर्दान्त गर्दभ रूप धारी दैत्य धनुकासुर के अधिकार में था। जब बलराम ने फल लेने चाहे तो वह दैत्य दौड़ता हुआ वहां बाधा और उसने बलराम के वृद्धाःस्थल पर दुलही फाड़ी। किन्तु बलराम ने उसके पैर पकड़ कर अन्तरिक्ष में घुमाकर पहाड़ मारा। इसी प्रकार उसके अन्य भाई गर्दभों का अन्त कर दिया । (१५, २१-३७)

४४- कालियनाग द्वारा यमुना के विषाक्त जल के पान से मरे हुए गौ-गोपीों को जीवित करना (१५।४७-५२)

४५- कालिय दमन- कृष्ण एक बहुत ऊंचे कदम्ब वृद्धा से यमुना स्थित विषाक्त कालियघ्न (वह, कुण्ड) में कूद पड़े। कालिय ने उन पर आक्रमण कर उन्हें लपेट लिया किन्तु कृष्ण ने अपने शरीर को फुलाया जिससे कालियनाग का शरीर फटने लगा और उसने व्यथित होकर उन्हें छोड़ दिया। कृष्ण ने उसके फण मण्डल पर नृत्य किया। उसके एक सौ एक फण थे। कालिय नाग और उसकी पत्नियां कृष्ण की शरण में आए और स्तुति की। कृष्ण ने कालिय को यमुना छोड़कर समुद्र स्थित रमण क द्वीप में चले जाने की आज्ञा दी। उसने वैसा ही किया (अध्याय १६)

४६- दावानल पान- जिस दिन कालिय दमन हुआ उस रात्रि को द्यूत्त्राम

परिश्रान्त ब्रजवासी और गौरे यमुना तट पर ही रह गए थे। किन्तु रात में गोष्म से सुते हुए वन में आग लग गई और उस दावानल में गौ-गोपाण जलने लगे तब कृष्ण ने दावानल पान कर लिया (१७।२०-२५)

४७- विविध शृंगार सज्जाकर वन में गौजीं सहित विहार- नाचन, गाना, मल्लयुद्ध करना, श्रीकृष्ण के नाचते समय किसी गोप बालक का गाना, वंशी बजाना, ताली, सिंगी बजाना, श्रंशंसा करना, कृष्ण बलराम का घुमना, लांघना (कन्दुक आदि) फेंकना, दूसरों के नाचने पर स्वयं गाना बजाना,

प्रशंसात्मक वाह वाह शब्द कहना, मृग , पक्षी आदि की वैष्टाजीं का अनुकरण करना, मेंढकों की भांति उछल उछल कर चलना, नाना उपहास वैष्टाईं करना, बालकों की मुजाजीं की डौली बनाकर झूलना, राजा का अनुकरण करना।

(अध्याय १८)

४८- प्रलम्बासुर वध- गौचारण के समय कृष्ण को उड़ाकर ले जाने के उद्देश्य से प्रलम्बासुर नामक दैत्य गौप वैश धारणकर आया। कृष्ण ने उसे अपने दल में मिला लिया। दो दलों में विभक्त होकर उद्ध्य- वाहक (पिड़ड़ी पर चढ़ा कर दौड़ने का) खेल खेला। प्रलम्ब ने कृष्ण को अस्त्र्य समझकर बलराम को अपनी पोठ पर चढ़ाया और तेज़ी से दौड़ा और पोठ से उतारने के स्थान (घाई) से भी बहुत आगे बढ़ गया। जब वह अपने वास्तविक रूप में आया तो बलराम ने मुष्टि प्रहार से उसका अन्त कर दिया। (१८।२३-३२)

४९- पुनः दावानल पान- एक बार गौं मुंज वन में चली गई। वहां दावानल लग गया। तब गौप गण कृष्ण की शरण आए। कृष्ण ने उनसे कहा, " डरो मत, अपने नेत्र मूंद लो "। इसके उपरान्त कृष्ण उस दावानल का पान कर गए। (१९। ११-१२)

५०- वन भोजन- वर्षा काल में किसी सघन वृक्षा के तले कन्दरा में बैठकर

कन्द मूल फल खाना तथा गौपों के साथ झीड़ा करना। कभी किसी जलाशय के निकट शिला पर बैठकर बलराम एवं गौप बालकों के साथ अन्य भोज्य पदार्थों के साथ घर से लाया हुआ दही भात खाना (२०।२८-२९)

५१- वर्षा ऋतु में वन विहार (अध्याय २०)

५२- शरत्काल में वृन्दावन विहार - गौ गौपों के साथ विहार एवं वैष्णु वादन (अध्याय २१)

५३- चौर हरण- हेमन्त काल में व्रज की गौप कुमारियों ने कृष्ण की पति

रूप में प्राप्त करने की कामना से कात्यायनी देवी का व्रत किया। वे अरुणा-दय के समय यमुना में स्नान करती थीं। एक दिन कृष्ण यमुना तट पर गए और उनके वस्त्र लेकर कदम्ब पर चढ़ गए। उन्होंने गौप कुमारियों से कहा कि तुमने नग्न

स्नान कर वरुण देव का अपराध किया है।” तब उनसे दामा मंगवा कर उनके वस्त्र लौटाए और उन्हें अपने समागम का वरदान दिया। (अध्याय २२)

५४- यज्ञपत्नियों पर अनुग्रह- गौपियों की चोर लौटाकर कृष्ण बलराम और गौपों के साथ गोचारण करते हुए वृन्दावन से दूर निकल गए। वहां जब गौपों की भूख लगी तो कृष्ण ने उन्हें निकटस्थ वन में “बांगिरस” नामक यज्ञ कर रहे ब्राह्मणों के पास भात मांगने भेजा। किन्तु उन दण्ड दृढ, कर्मासक्त ब्राह्मणों ने उनकी प्रार्थना नहीं सुनी। तब कृष्ण ने अपने सखाजों की ब्राह्मण पत्नियों के समीप भेजा। उन परम भगवद्भक्ता, करुणार्द्रहृदया यज्ञपत्नियों ने उनका सम्मान किया और चतुर्विध भोजन सामग्री लेकर कृष्ण के समीप आईं और उनकी शरण होगई। इस घटना से ब्राह्मणों ने अपने आपको धिक्कारा और भगवत्साक्षात्कार न कर सकने के कारण पश्चात्ताप किया।

(अध्याय २३)

५५- इन्द्र यज्ञ भंग- व्रज में पहले नन्दादि गौप गण विविध पक्वान्नादि द्वारा इन्द्र की पूजा करते थे। श्रीकृष्ण ने इन्द्र के स्थान पर गिरिराज गोवर्धन गौजों और ब्राह्मणों का पूजन कराया। (अध्याय २४)

५६- गोवर्धन धारण- जब व्रजवासियों ने इन्द्र-याग नहीं किया तो इन्द्र अत्यन्त कुपित होगया। उसने प्रलय कालीन सांवर्तक मेघ-मण्डल की व्रज पर घोर वर्षा कर उसे बहा देने के लिए भेजा। मूसलाधार वर्षा, वज्रपात एवं उपल वृष्टि होने लगी। व्रजवासी गण एवं गौरं कृष्ण की शरण में आईं। श्रीकृष्ण ने उनकी रक्षा और इन्द्र का दमन करने के लिए ह्वाक पुष्प की भांति गोवर्धन की एक हाथ से उठा लिया। व्रजवासियों ने उसकी छाया में अपनी रक्षा की (अध्याय २५) गोवर्धन धारण के समय कृष्ण की

खवल्यां सात वर्ण की थी २-----

१- इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनावलम् ।

दधार लीलया कृष्णरत्नाकमिव बालकः ॥ श्रीमद् ० १०।२५+१६

२- यः सप्तहायनी बालः करणीकेन लीलया ।

कथं विभ्रद्गिरिवरं पुष्करं गजराजिव ॥ श्रीमद् ० १०।२६।३

५७- सुरभि (कामधेनु) द्वारा श्रीकृष्ण का अभिषेक और इन्द्रकृत स्तुति-

गोवर्धन धारण से व्रज की रक्षा कर लें पर इन्द्र का मद नष्ट होगया। उसने लज्जित होकर कृष्ण से क्षमा मांगी और कामधेनु ने अपने दुग्ध से तथा ऐरावत ने आकाश गंगा के जल से कृष्ण का अभिषेक किया।

(अध्याय २७)

५८- वरुण के वन्धन से नन्द की मुक्ति-

एक बार नन्द ने एकादशी के व्रत के उपरान्त यमुना में स्नान के लिए ज्यों ही प्रवेश किया, वरुण का एक अनुवर उन्हें पकड़कर अपने स्वामी के पास ले गया। जब कृष्ण को पता लगा तो वे तुरन्त वरुण के ^{समीप} पहुँचे। वरुण ने उनसे क्षमा मांग कर स्तुति की और नन्द सहित कृष्ण व्रज लौट आए। (अ० २८)

५९- रास लीला- पूणर्विन्द्र ज्योत्स्ना से श्वेत शरद् ऋतु की रमणीय रात्रियों में कृष्ण ने आत्म रमण की इच्छा की। उन्होंने अत्यन्त मधुर गान आरंभ किया। गोपियाँ अपने समस्त गृह कर्म छोड़कर उनके पास दौड़ आईं। उनके पति, पिता भाई बन्धुओं आदि ने उन्हें बहुत रोका किन्तु कृष्णा कृष्ट मना वे गोपियाँ किसी के रोके नहीं रुकीं। जब वे श्रीकृष्ण के निकट पहुँची तो उन्होंने उनका स्वागत कर वहाँ जाने का कारण पूछा और जब गोपियाँ चुप रह गईं तो कृष्ण ने उनसे कहा कि पति-व्रता स्त्रियों का रात्रि में अपने गृहों को त्याग कर इस प्रकार यहाँ जाना अनुचित है और तुम्हें तुरन्त घर लौट जाना चाहिये। इस पर गोपियों ने उत्तर दिया कि हम तो लौकिक सम्बन्धों का परित्याग करके सर्वात्मा कृष्ण के अनन्य शरण में आ गई हैं। तब आत्माराम योगेश्वर कृष्ण ने उनके साथ रमण किया। जब

१- भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्ल मल्लिकाः ।

वीक्ष्यरन्तु मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ आदि श्रीमद् ० १०।२६-३३ रासपंचा०

२- इति विस्तवितं तासां वृत्ता योगेश्वरेश्वरः ।

प्रहस्य सद्यं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥ श्रीमद् ० १०।२६।४२

गोपियों को अपने सौभाग्य पर मद हुआ तो उसे शान्त करने के लिए कृष्ण उनके बीच से अन्तर्धान हो गए। तब गोपियाँ अत्यन्त व्याकुल होकर उनकी लोज करने लगीं। उन्मत्त होकर न्यग्रोध, प्लवा और जश्वत्थ आदि वृक्षाँ लताओं और मृगियों से उनको पता पूछने लगीं। कृष्ण की विविध लीलाओं का अनुकरण करने लगीं। इधर कृष्ण एक अन्तरंग गोपी (सम्भवतः राधा) के साथ एकान्त में बसे गए थे। गोपियों ने लोज में कृष्ण के चरण चिह्नों के साथ उन स्त्री चरणों को देखकर उसके भाग्य को सराहा जिसको कृष्ण एकान्त में ले गए थे। जब इस प्रेम गर्विता गोपांगना ने भी कृष्ण से स्वयं को कन्धे पर चढ़ाने का आग्रह किया तो कृष्ण वहाँ से भी अन्तर्धान हो गए। सब गोपियाँ मिल कर उस गोपी के समीप पहुँचीं। उसने समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। तब सब प्रेम विह्वला गोपियों ने आर्त होकर श्रीकृष्ण को पुकारा। श्री कृष्ण प्रकट हो गए। उन्होंने गोपियों को सान्त्वना दी और उनके निष्काम पवित्र एवं अनन्य प्रेम का उल्लेख किया। अब श्रीकृष्ण महारास में प्रवृत्त हुए। चुम्बन, परिभ्रमण आदि के साथ श्री कृष्ण ने अपना चर्चित ताम्बूल भी गोपियों को दिया। दो दो गोपियों के बोध में कृष्ण उनके गले में हाथ डाल कर मण्डलाकार नृत्य करने लगे। विविध वायों के साथ संगीत की स्वर लहरी गूँज उठी। कंकण, नूपुर और विक्कणी की सुमधुर ध्वनि होने लगी। अन्त में रास से अति

१- अया राक्षो नूनं भवान् हरिरीश्वरः ।

यन्नाविहाय गौविन्दः प्रीतो यामनयदरहः ॥ श्रीमद् ० १०।३०।२८

२- गोपिकागीत - श्रीमद् ० १०।३१

३- न पारयेऽहं निरवय संयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।

या मामजन् दुर्जर गैह नृसताः संवृश्च्य तद्ः प्रत्यातु साधुना ॥

श्रीमद् ० १०।३२।२२

श्रान्त समस्त गोपियों ने कृष्ण के साथ यमुना में जल विहार किया।^१

६०- सुदर्शन उद्धार- सुदर्शन नामक विषाधर अंगिरावंशीय कणियों के शाम से सर्प हो गया था। शिवार्चन के निमित्त अम्बिका वन में गए गोप गण में से उसने सीढ़ी में नन्द को पकड़ लिया। गोपों ने उसे जल्दी लकड़ियों से मारा किन्तु उसने नन्द को न छोड़ा। तब श्री कृष्ण के चरण स्पर्श से उसको पुनः पूर्व स्थिति प्राप्त हुई। (अध्याय ३४)

६१- शंखचूड़ वध- एक बार राम कृष्ण मधुर गान करते हुए व्रज वनिताओं के साथ वन में विहार कर रहे थे कि कुबेर का एक सेवक शंखचूड़ नामक यज्ञ उनकी सुरक्षा में स्थित व्रज वनिताओं को हर कर ले चला। श्रीकृष्ण ने तुरन्त उसका पीछा किया और एक मुष्टिका प्रहार से ही ब्रह्ममणि युक्त उसका शिर षड़ से जलग कर दिया। वह दिव्य मणि कृष्ण ने बलराम को उपहार में दे दी। (अध्याय ३४)

६२- अरिष्टासुर वध- एक दिन कंस प्रेषित अरिष्टासुर नामक दैत्य विशालकाय वृषभ का रूप धारण कर व्रज में घुस आया। अपने मयंक उत्पातों से उसने व्रज में बड़ा भय उत्पन्न कर दिया था। कृष्ण ने उसके सींग उखाड़ कर पैरों से कुचल कर मार डाला। इसी क्षण पर नारद ने कंस को बखूब कृष्ण का पता बताया। कंस ने राम कृष्ण को व्रज से बुला भेजने के लिए अश्वर को आज्ञा दी। (अध्याय ३६)

६३- कैशिक वध- कंस ने कैशी नामक दैत्य को कृष्ण को मारने के लिए व्रज में भेजा। वह एक विकराल घोंड़े का वैश्व धारण करके आया। कृष्ण ने उसके मुँह में अपनी बायीं भुजा घुसा कर मार डाला। (अध्याय ३७)

६४- व्योमासुर वध- कैशी को मार एक दिन गोपों के साथ कृष्ण गोचारण करते हुए पर्वत पर चौर और सिपाही बन कर लुका छिपी का

का खेल खेल रहे थे। कुछ चोर बने, कुछ भेड़ चराने वाले और कुछ भेड़ बने। इतने में मयासुर का पुत्र व्यासासुर एक गोप बालक का वेष धारण कर उनमें मिल गया और चोर बनकर बहुत से भेड़ बने हुए बालकों को चुरा कर पर्वत गुहा में धर आया। कृष्ण ने उसका कुर्म ताड़ लिया और उसका वध कर दिया। (अध्याय ३७)

६५- मथुरा गमन- कंस की आज्ञा से श्वफल्क- पुत्र अश्वराम कृष्ण को मथुरा से जाने के लिए नन्द के गोकुल में आया। जब गोपियों ने यह समाचार सुना तो वे अत्यन्त व्याकुल हो गईं। हृत्तापजनित उष्ण श्वास से उनके मुख मुरझा गए। कृष्ण के स्मरण से उनकी देहानुसंधान नहीं रहा। कभी वे विधाता की कीसतीं और कभी अश्वराम की क्रूरता पर झुंझलातीं। कृष्ण के जाते समय वे लोक लज्जा का त्याग कर उच्च स्वर से रो उठीं। श्रीकृष्ण ने उन्हें पुनः लौट आने का आश्वासन दिया। श्रीकृष्ण और बलराम के रथ की ध्वजा और पट्टियों से उड़ती हुई धूल जब तक दोखती रही तब तक वे चित्र लिखित सी वहाँ खड़ी रहीं किन्तु उनका मन कृष्ण के साथ ही चला गया था। अन्त में गोपियाँ निराश होकर अपने घर लौट आयीं और कृष्णलीलाओं का गान करते हुए उनके फिर मिलने की आशा में हजहोरान्न व्यतीत करने लगीं। अश्वराम ने मार्ग में यमुना स्नान किया और यमुना के कुण्ड (अन्तर्तीर्थ) में सहस्र शिर युक्त शेष के क्रीड में शयन करते हुए शंख चक्र गदा पद्मादि विभूषित, वैव, ऋषि, विप्र भक्तों से

स्त

१- गोप्यस्ताद्रूपधृत्यबभूवुर्व्याधिता भृशम् ।

रामकृष्णौ पुरीं तैतुमश्वरं व्रजमागतम् ॥ श्रीमद् १०।३६।१३

२- अहो विधातस्तव न कचिद्व्यासंयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनिः ।

तारंवाकृतार्थान् वियुनंत्यपार्थम् विक्रीडितं तैर्मैकं चैष्टितं यथा ॥

श्रीमद् १०।३६।१६

मैतद्विषस्या करुणस्य नामभूदश्वर इत्येतदतोव दारुणः ।

योऽसर्वनाशवास्य सुदुःखितं जं प्रियात् प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥

श्रीमद् १०।३६।२६

३- अश्वराम पृष्ठपादे -

स्तूयमान नारायणदेव के दर्शन किए। तदनन्तर मञ्जूर ने परम भक्ति भाव से उनकी स्तुति की। (अध्याय ३६, ४०) नन्द जादि ब्रजवासी गोपगण राम और कृष्ण के पहुँचने से पूर्व ही मथुरा नगरी के बाहर उपवन में ठहर कर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। कृष्ण ने वहाँ पहुँच कर अञ्जूर को पहले नगर में भेजा और कुछ देर गोपों के साथ उपवन में ठहर कर अमराह्न में नगर की शोभा देखने के लिए मथुरा में प्रवेश किया। वह मव्य और सम्पन्न नगर अत्यन्त सुसज्जित था क्योंकि वहाँ मल्ल युद्ध जादि विविध उत्सव होने वाले थे। राम कृष्ण की शोभा देखकर मथुरा वासी स्त्री पुरुष बक्ति रह गए और गोपियों के भाग्य को सराहने लगे जो निरन्तर कृष्ण की रूप सुधा का पान करती रही हैं। (अध्याय ४१)

(ग) विविध किशोर लीलाएँ एवं मल्लनिग्रह (मथुरा लीला)

६६- रजक उद्धार- मथुरा भ्रमण में कृष्ण बलराम को सर्व प्रथम एक घोड़ी मिली जो रंग रेज़ भी था। वह कंस का मृत्य था और राजकीय वस्त्र से जा रहा था। कृष्ण ने उससे वस्त्र माँगे किन्तु जब उसने अभिमान वश अपमान किया और वस्त्र देने से निषेध किया तो कृष्ण ने अपने हाथ के अग्रभाग से ही उसका शिर घड़ से पृथक् कर दिया।

(अध्याय ४१)

६७- वायक (दर्जी) पर अनुकम्पा - रजक को दण्ड देकर जब कृष्ण बागे बढ़े तो उन्हें एक वायक (दर्जी) मिला। उसने कृष्ण के बालौकिक सौंदर्य से मुग्ध होकर कृष्ण का चित्र विचित्र वस्त्रों से सुन्दर वैज बना दिया। कृष्ण ने प्रसन्न होकर उसे शैलिक आमुष्मिक दोनों दृष्टियों से कृतार्थ कर दिया। (अध्याय ४१)

3- विवृज्य लज्जां हरुदुः स्म सुस्वरं

गोविन्द दामोदर माध्वेति ॥ श्रीमद् ० १०।३६।३१

६८- सुवामा नामक मालाकार (माली) पर अनुकम्पा- वायक से संतुष्ट होकर गोप गण सहित राम कृष्ण सुदशमा नामक एक माली के यहां आए। वह उनका अनुगत दास था। उसने सभी को सुगंधित पुष्प मालाओं से अलंकृत किया। श्रीकृष्ण ने उसे अपनी अवला भक्ति का वरदान दिया। (अध्याय ४१)

६९- कुब्जा पर अनुकम्पा- तदनन्तर राजमार्ग से जाते हुए कृष्ण ने एक युवती सुन्दर मुलाकृति वाली किन्तु कुब्जा (कुबड़ी) स्त्री की देखा। तीन जों से टेढ़ी होने के कारण उसका नाम त्रिवङ्गा था। वह हाथ में चंदन का पात्र लिए कंस की सेवा में जा रही थी। वास्तव में वह तैरन्ध्री (उबटन लगाने वाली स्नानादि कराने वाली नाहन) थी। कृष्ण ने उससे चन्दन का अनुलेपन मांगा और उसने तुरन्त अर्पित कर दिया। कृष्ण ने प्रसन्न होकर उस त्रिवङ्गा को सीधी करने के विचार से अपने चरण से उसके पैर का पंजा दबा कर उसकी ठोड़ी में अपनी दो अंगुलियां लगाकर उसके शरीर को उचका दिया। बस कुब्ज दूर होने पर वह एक बति सुभगा रमणी बन गई। श्रीकृष्ण के प्रति उसमें प्रगाढ़ राग उत्पन्न हो गया और वह उन्हें अपने घर चलने का अत्याग्रह करने लगी। किन्तु कृष्ण ने उसे अपना कार्य समाप्त कर उसके घर जाने का आश्वासन दिया। (अध्याय ४२)

(यही कुब्जा आगे चलकर गोपियों के सापत्न्य भाव का प्रबल कारण बनी और सूर आदि कृष्ण भक्त हिन्दी कवियों के श्रेष्ठ व्यंग्य काव्य की प्रेरणा हुई ।)

७०- धनुर्मास- मथुरा का भ्रमण करते हुए पुर वासियों से कंस की रंग शाला का पता पूछते हुए राम कृष्ण वहां पहुँचे। उन्होंने वहां एक विशाल धनुष देखा। रक्षाकों के रोकने पर भी कृष्ण ने वह विचित्र, विशाल, धनुष बांधें हाथ से उठाकर चढ़ाते हुए ही तोड़ डाला। उस धनुर्मास के महान् रव से दिग् दिगंत गुंज उठे। कंस की सेना ने जब उन पर आक्रमण किया तो धनुष के टुकड़ों से ही उसका संहार कर दिया। इससे मथुरा पुर वासियों ने उन्हें कोई

सुरश्रेष्ठ समझा। इसके उपरान्त नगर शोभावलोकन करते हुए कृष्ण सबल
बल मथुरा के बाहर उपवनस्थ अपने शिविर पर लौट आए। (अध्याय ४२)

७१- कुवल्यापीड वध- दूसरे दिन राम कृष्ण प्रातः कृत्य से निवृत्त होकर
एक सुसज्जित रंग शाला में कंस द्वारा आयोजित मल्ल क्रीड़ा देखने गए। कंस
की योजना मدمत्त हाथी कुवल्यापीड जथा चाणूर , मुष्टिक आदि ३
मल्लों से कृष्ण की मरवा डालने की थी। जैसे ही राम कृष्ण रंग शाला
के द्वार पर पहुंचे तो उन्हें वहां कुवल्यापीड नामक विशाल हाथी खड़ा मिला।
जब महावत (अंबष्ठ) ने मार्ग न दिया तो कृष्ण ने हाथी से प्रबल युद्ध कर
उसके दांत उखाड़ लिए। दांतों से ही हाथी और महावतों की मार डाला।

(अध्याय ४३)

७२- मल्ल निग्रह- कुवल्यापीड का वध कर राम कृष्ण रंग भूमि में प्रविष्ट
हुए। अपनी अपनी भावनाओं के अनुसार भिन्न भिन्न नर नारी उन्हें भिन्न
रूपों में देख रहे थे। रंगशाला में कंस प्रेरित "चाणूर" और "मुष्टिक" नामक
महा मल्लों ने राम कृष्ण का मल्ल युद्ध के लिए आव्हान किया। तब श्रीकृष्ण
ने चाणूर और बलराम ने मुष्टिक से मल्ल युद्ध कर उनकी मार डाला। इनके
अतिरिक्त बलराम ने "कूट" नामक मल्ल की बांस हाथ के छूँसे से मार डाला।
"शल" और "तौशल" नामक मल्ल कृष्ण के चरण प्रहार से सिर कट जाने
के कारण मर गए। अन्य मल्ल प्राण बचा कर भाग खड़े हुए। मल्ल निग्रह के
उपरान्त राम कृष्ण ने अपने समवयस्क गौर्वां को जवाड़े में लींच कर उनसे
प्रेम पूर्वक मल्ल क्रीड़ा की। (अध्याय ४४)

१- मल्लानामशनिर्गुणां नरवरः स्त्रीणां स्वरो मूर्तिमान् ।

गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजांशास्ता स्वप्निवोः क्षिप्रः ।

मृत्युमोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां ।

वृष्णिनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः ॥

श्रीमद् १०।४३।१७

७३- कंस वध- कुवल्यापीड और मत्स्यों के वध से कंस अत्यन्त क्रुद्ध और भय-

भीयत होगया। वह उन्मत्त की भांति जल्पना करने लगा। कृष्ण उझल कर उसके ऊंचे मंच पर पहुँच गए। उसके केश पकड़ कर उसे रंगभूमि पर पछाड़ दिया। इस प्रकार वृज के परम प्रबल बराति कंस का नाश हो गया। कंस की मृत्यु का बदला लेने के लिए उसके आठ छोटे भाई "कंक", "न्यग्रोध" आदि आर किन्तु बल राम ने उन सबको एक परिघ से मार डाला। (अध्याय ४४) तदनन्तर राज महिषियों को सात्वना देकर कंसादि की यथोचित अंत्येष्टि क्रिया कराई। फिर अपने माता पिता देवकी और वसुदेव के पास गए, उनको बन्धन मुक्त किया, विविध प्रकार से उन्हें सान्त्वना दी और उनमें पुत्र स्नेह उत्पन्न किया। कंस के पिता उग्रसेन को पुनः समस्त यादवों का अधिपति बनाया। यदु, वृष्णि, अन्धक, मधु, दाशार्ह और कुकर आदि वंशों में उत्पन्न अपने सगे सम्बन्धियों को जो कंस के भय से विदेशों में भाग गए थे, पुनः अपने अपने घरों में बसाया।

(अध्याय ४५)

७४- यज्ञोपवीत संस्कार एवं विद्याध्ययन- कंस वध के उपरान्त कृष्ण ने नन्द आदि गोपों को वृज में भेज दिया और स्वयं कुछ दिनों के लिए अपने माता पिता देवकी और वसुदेव के पास रह गए। वसुदेव ने फिर अपने कुल पुरोहित गंगाचार्य से राम कृष्ण का यथाविधि यज्ञोपवीत संस्कार कराया। ब्राह्मणों की विविध भांति सुसज्जित सवत्सा गौर दान की। संस्कार से द्विजत्व प्राप्त कर राम कृष्ण ने ब्रह्मचर्य व्रत पालन पूर्वक अवन्ती निवासी सान्दीपनि नामक आचार्य से विद्याध्ययन किया। सर्वज्ञ जगदीश्वर होते हुए भी राम कृष्ण ने अपने स्वतः सिद्ध ज्ञान के मानव लोला से छिपा रखा था। निष्कपट सेवा से प्रसन्न गुरु ने शीघ्र ही उन्हें षडंग वेद, उपवेद, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, नीति शास्त्र आदि समस्त विद्याओं और सौंठ कलाओं में पारंगत कर दिया।

(अध्याय ४५)

७५- गुरु दक्षिणा में गुरुपुत्रानयन एवं "पंचजन" नामक दैत्य का वध-

विद्याध्ययन के उपरान्त गुरु दक्षिणा रूप में गुरु के पुत्र को, जो समुद्र में प्रवास क्षीत्र में डूब कर मर गया था, लाने के लिए कृष्ण समुद्र पर गए। समुद्र ने साक्षात् आकर सौपायन उनकी पूजा की। समुद्र ने अपने जल में निवास करने वाले शंख रूप भारी पंचजन नामक दैत्य का पता बताया। कृष्ण ने उसे मार डाला और शंख ले लिया (इसीलिए कृष्ण के शंख का नाम पांचजन्य है) किन्तु पंचजन के पास गुरु पुत्र नहीं मिला। तब कृष्ण ने संयमनी पुरी में जाकर यम राज से गुरु पुत्र को प्राप्त किया और गुरु सान्दीपनि को लौटा दिया। (अध्याय ४५)

७६- उद्धव व्रज प्रेक्षण एवं गोपियों को संदेश-

ज्वन्ती से विद्याध्ययन कर राम कृष्ण मथुरा आए। एक दिन कृष्ण ने अपने परम अंतरंग मित्र और मंत्री वृहस्पति शिष्य उद्धव को बुलाकर कहा कि " तुम व्रज जाकर मेरे विरह से संतप्त मेरे माता पिता मन्द यशोदा और गोपियों को मेरा संदेश देकर आश्वस्त करो। गोपियां तो मत्प्राणा ही हैं। मेरे दूर चले जाने से वे निरन्तर मेरा स्मरण करती हुई विरह व्यथा से मोहित हो रही हैं। मेरे प्रत्यागमन के संदेश की आशा से ही बड़ी कठिनता से जैसे जैसे प्राण धारण कर रही हैं। उन्होंने मेरे लिए समस्त लौकिक पारलौकिक धर्मों का परित्याग कर दिया है। उद्धव कृष्ण का संदेश लेकर रथाब्द ही कृष्ण

१- गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्न प्रीतिमावह ।

गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्संदेशैर्विमोचय ॥

तामन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थं त्यक्त दैहिकाः ।

ये त्यक्त लोकधर्माश्च मदर्थं तान्निबन्धनम् ॥

मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः ।

स्मरन्त्योऽग विमुह्यन्ति विरहोत्कण्ठय विह्वलाः ॥

धारयन्त्यति कृच्छ्रेण प्रायः प्राणान् कथं वन ।

प्रत्यागमन संदेशैर्बल्लव्यौ मे मदात्मिकाः ॥ श्रीमद् ० १०।४६।३-६

के प्रेम में आपादमस्तक निमग्न , गी- गीप- गीपी संघ से सुशोभित, ब्रजभूमि में आर। नन्दादि गीपों से कुशल प्रश्न हुआ। उद्धव ने कृष्ण के निर्गुण पर ब्रह्मत्व का आख्यान कर के उनकी वियोग व्यथा को शमन किया। दूसरे दिन प्रातः गीपियों ने नंद के द्वार पर एक सुवर्ण रथ देखा और बाद में कृष्ण के समान ही वैष्ण मूषाधारी एक पुरुष (उद्धव) को देखकर उसे धर कर सड़ी होगई। गीपियों और उद्धव में जो वात्सलाप हुआ वह बड़ा ही मनोरम था। (अध्याय ४६, ४७) (इस संवाद में " भ्रमरगीत " नामक प्रसंग है जिसने कृष्ण भक्ति हिन्दी काव्य को अमर प्रेरणा दी है। इसका पृथक् रूप से आगे सविस्तर उल्लेख किया जायगा)

७७- कुब्जा गृह-गमन- उद्धव के नन्द व्रज से लौट आने पर कृष्ण उनकी साथ लेकर अपनी पूर्व प्रतिज्ञानुसार कुब्जा पर प्रेमानुग्रह करने के लिए कुब्जा के घर गए। कुब्जा ने उनका भक्ति पूर्वक स्वागत किया। कृष्ण ने कुछ दिन कुब्जा का प्रेमातिथ्य स्वीकार किया। (अध्याय ४८)

७८- अक्षर गृह-गमन- एक दिन श्री कृष्ण बलराम और उद्धव के साथ अपने परम भक्त अक्षर को अनुगृहीत करने उनके घर गए। अक्षर ने दिव्य गन्धादात पुष्पादि से उनका पूजन कर चरणोदक लिया और ई प्रेमविह्वल होकर स्तुति की। कृष्ण ने उनकी प्रशंसा कर उन्हें आनन्दित किया तथा युधिष्ठिरादि पाण्डवों को कुशल दौम जानने के लिए उन्हें हस्तिनापुर जाने को कहा। (अध्याय ४८) अक्षर ने हस्तिनापुर जाकर सारी स्थिति का अध्ययन किया और मथुरा लौट कर कृष्ण को पाण्डवों के प्रति धृतराष्ट्र दुर्कीर्णादि के विषम व्यवहार का सारा हाल कह सुनाया। (अध्याय ४९)

आ- दशम स्कन्ध उत्तरार्द्ध (द्वारका लीला)

७९- जरासंध से युद्ध एवं द्वारका दुर्ग का निर्माण- कंस के वध के बाद उसकी विधवा रानियां अपने पिता मगधराज जरासंध के घर चली गईं। जरासंध ने

तैइस ज्जाह्णीगि सेना लेकर यादवों की राजधानी मथुरा पर भयंकर आक्रमण किया। कृष्ण ने उसे सत्रह बार पराजित किया। किन्तु कठारखीं बार काल्य-वन नामक यवन वीर तीन करोड़ सैन्य लेकर आया। श्रीकृष्ण ने सुर-द्वार्थ समुद्र में बारह योजन विस्तीर्ण द्वारका दुर्ग का निर्माण कराया और मथुरा के निवासियों को योगबल से उस दुर्ग में पहुंचा दिया। द्वारका की रक्षार्थ बलभद्र को वहां छोड़कर स्वयं निरायुध ही नगर के बाहर आए।

(अध्याय ५०)

८०- राजा मुचुकुन्द द्वारा काल यवन का वध कराना- काल यवन को दैत कर श्रीकृष्ण एक साधारण मनुष्य की भांति भयभीत होकर भागे और एक पर्वत गुहा में छुस आए। वहां मान्धाता पुत्र राजा मुचुकुन्द, सो रहे थे। श्रीकृष्ण ने अपना दुफ्टा उन्हें जोड़ा दिया उनको काल यवन ने श्रीकृष्ण समझ कर लात से मारा। मुचुकुन्द की क्रुद्ध दृष्टि पड़ते ही काल यवन जल कर मत्स्य हो गया। फिर मुचुकुन्द को श्रीकृष्ण ने अपना परिचय दिया। मुचुकुन्द ने भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति की और तपश्चर्या के लिए वदरिकाश्रम चले गए।

(अध्याय ५१, ५२)

८१- द्वारका गमन तथा कृष्ण की रुक्मिणी का विवाह संदेश-

श्रीकृष्ण और बलराम सैन्य से चिरीमथुरापुरी में आए। सेना का संहार करके उसका धन द्वारका की ओर ले चले। इसी समय जरासंध तैइस ज्जाह्णीगि सेना लेकर मथुरा आ पहुंचा। शत्रु सेना का प्राबल्य देखकर रामकृष्ण मनुष्य सीला करते हुए उसके सामने से भागे। जरासंध ने पीछा किया। वे प्रवर्णण पर्वत पर चढ़ गए। जरासंध ने उसके चारों ओर आग लगा दी दोनों भाई उस पहाड़ से कूदकर छिपे छिपे द्वारका आए। जरासंध ने समझा कि राम कृष्ण जल गए और वह मगध लौट गया।

विदर्भ नरेश भीष्मक की कन्या लक्ष्मी की ज्जावतार रुक्मिणी

का कृष्ण में पूर्व राग उत्पन्न हो गया था। किन्तु उनका भाई रुक्मी उन्हें शिशुपाल से व्याहता चाहता था तब रुक्मिणी ने गुप्त रीति से एक विश-वास पात्र ब्राह्मण के द्वारा श्रीकृष्ण के पास द्वारका में सन्देश भेजा कि 'प्रभो मैंने प्राणपण से केवल आपको ही पति रूप में वरण किया है। मैं आपको हूँ। चैदिराज शिशुपाल मेरा स्पर्श न करने पावे। अतः आप शीघ्र ही राजास विधि से मुझसे विवाह करो जिससे यदि आप न जाँचें तो मैं प्राण त्याग करूँगी।'

(अध्याय ५२)

५२- रुक्मिणी हरण एवं रुक्मिणी के साथ विवाह-

रुक्मिणी के गुप्त सन्देशवाहक के साथ कृष्ण रथाबद्ध हो एक रात्रि में ही जानत (सौराष्ट्र द्वारका) से विदर्भ पहुँच गए। बलराम भी भ्रातृ स्नेह वश शिशुपाल आदि विपत्ती राजाओं के कारण विवाह में विघ्न और कलह होने की आशंका से सैन्य विदर्भ की राजधानी कुण्डिन पुर में पहुँच गए। इसी समय रुक्मिणी विवाह से पूर्व अम्बिका पूजनार्थ नगर के बाहर देवी मंदिर में आयीं। पूजापरान्त कृष्ण ने सबके देखते देखते रुक्मिणी को अपने रथ में बंठिठाकर बलराम आदि के साथ वेग से द्वारका की ओर रथ चाल दिया। (अध्याय ५३) शिशुपाल पक्षीय राजाओं ने सैन्य कृष्ण का पीछा किया किन्तु कृष्ण ने स्वयं शिशुपाल, जरासंध आदि समस्त राजाओं को परास्त कर दिया। अन्य सब राजाओं के पलायन कर जाने पर भी रुक्मिणी के अग्र रुक्मी ने एक अज्ञाति सेना से कृष्ण का पीछा किया। कृष्ण से उसका घोर युद्ध हुआ और जब कृष्ण उसे लगे से मारने उद्यत हुए तो दयाद्वं हृदया रुक्मिणी ने उसे बचा लिया। तब कृष्ण ने केवल शत्रु केशादि काट कर उसे विरूप कर दिया। द्वारका पहुँच कर कृष्ण ने रुक्मिणी के साथ विधिवत् विवाह किया। इससे समस्त नर नारियों और 'कुरु', 'सृजय', 'कैकय', 'विदर्भ', 'यदु' और 'कुन्ति' आदि वंशों के लोगों को बहुत आनंद हुआ।

(अध्याय ५४)

५३- प्रद्युम्न का जन्म और शम्बरासुर का वध-

कृष्ण द्वारा रुक्मिणी के गर्भ से कामदेवावतार प्रद्युम्न का जन्म

हुआ। उन्हें दस दिन की अवस्था से पूर्व ही शंभरासुर हरण कर ले गया। और समुद्र में गिरा दिया। वहाँ उन्हें एक मत्स्य ने भक्षण कर लिया। देवात् मत्स्यों ने अन्य मत्स्यों के साथ उस मत्स्य को भी शंभरासुर के रसोई घर में पहुँचा दिया। उसे चीर ने पर रसोई घर की प्रबन्धिका मायावती (जो काम पत्नी रति थी) ने नारद के कथनासुधार अपने पति को पहचान लिया। प्रद्युम्न ने शंभरासुर का वध कर दिया और सपत्नीक द्वारका जागर।

(अध्याय ५५)

८४- स्यमन्तक मणि का उपाख्यान तथा जाम्बवती और सत्यमामा के साथ कृष्ण का विवाह- सत्राजित् नामक यादव को सूर्य ने स्यमन्तक नामक अत्यन्त भास्वर मणि प्रदान किया था। उसे धारण कर सत्राजित् एक बार द्वारका गया। लोगों ने उसे सूर्य ही समझ लिया किन्तु श्रीकृष्ण ने लोगों को वास्तविकता बताई। कृष्ण ने सत्राजित् से वह मणि मथुराधीश उग्रसेन को भेंट करने के लिए मांगी किन्तु उसने निर्णय कर दिया। कृष्ण चुप रह गए। एक दिन सत्राजित् का भाई प्रसेन उस मणि को गले में बाँधकर शिकार खेलने वन में गया जहाँ उसे एक सिंह ने मार डाला। सत्राजित् ने अनुमान लगाया कि सम्भवतः मणि के लोभ से कृष्ण ने ही प्रसेन का वध कराया है। किन्तु वास्तव में प्रसेन को मारने वाले सिंह को भी गिरि गुहा में रहने वाले जाम्बवान् नामक एक प्रबल ऋषि ने मार डाला था और मणि अपने बच्चे को खेलने के लिए दे दी थी। कलंक का परिमार्जन करने और लोगों को वास्तविकता का ज्ञान कराने के लिए कृष्ण प्रसेन को ढूँढने वन में गए। वहाँ जाम्बवान् की गुहा में एकाकी ही घुस गए। अठ्ठाइस दिन तक उससे युद्ध हुआ। जब जाम्बवान् को कृष्ण के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हुआ तो वह उनके शरणागमन हुआ। स्यमन्तक मणि उन्हें अर्पित करे दीया और अपनी कन्या जाम्बवती का विवाह उनसे कर दिया। कृष्ण ने उग्रसेन के समक्ष स्यमन्तक मणि सत्राजित् को लौटा दिया। सत्राजित् अत्यन्तलज्जित

हुवा। उसने अपनी कन्या सत्यभामा का, विवाह कृष्ण से कर दिया। स्यमन्तक मणि भी कृष्ण को देना चाहा किन्तु कृष्ण ने स्वीकार नहीं किया।

(अध्याय ५६)

८५- शतधन्वा का वध और अश्वर को पुनः द्वारका बुलाना-

पाण्डवों और कुंती की लाक्षागृह की विपत्ति का समाचार सुनकर कृष्ण और बलराम हस्तिनापुर गए। उनके पीछे अश्वर और कृत्वर्मा के बहकाने से शतधन्वा ने सौतेले हुए सत्राजित् को मार कर स्यमन्तक मणि का हरण कर लिया। सत्यभामा अपने पिता के वध का समाचार लेकर कृष्ण के समीप हस्तिनापुर पहुंचीं। कृष्ण द्वारका आए। शतधन्वा भयभीत होकर भाग गया था। कृष्ण ने मिथिलापुरी तक उसका पीछा किया और वध से उसका शिरच्छेदन कर दिया। किन्तु शतधन्वा ने स्यमन्तक मणि पहले ही अश्वर को सौंप दिया था। कृष्ण ने लौट कर सत्राजित् का और्ध्वदैहिक कर्षण किया। अश्वर और कृत्वर्मा ने शतधन्वा को सत्राजित् की हत्या के लिए बहकाया था अतः वे भयभीत होकर द्वारका से भाग गए थे। कृष्ण ने अश्वर को द्वारका बुलाया। सबके सामने उनके पास से स्यमन्तक मणि निकलवाकर अपना कलंक मिटाया। कृष्ण ने वह मणि फिर अश्वर को ही दे दिया। (अध्याय ५७)

८६- कृष्ण के अन्य विवाह- एक बार कृष्ण सात्यकि आदि यादवों के साथ पाण्डवों के पास हस्तिनापुर गए और वहां कई महीने रहे। एक दिन कृष्ण और अर्जुन रथारूढ़ हो आसट के लिए गए। यमुना तट पर उन्होंने एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या को देखा। वह सूर्य पुत्री कालिन्दी थी और विष्णु के अवतार कृष्ण को ही पति रूप में वरण करना चाहती थी। श्रीकृष्ण उसे अपने साथ ले आए और द्वारका में शुभ मुहूर्त में उसके साथ पणिय किया। (यह कालिन्दी आध्यात्मिक रूप में यमुना है) यमुना कृष्ण पत्नी है इसीलिए कृष्ण को अतिप्रिय है और कृष्ण

भक्ति में यमुना का अनल्प माहात्म्य है।)

अवन्ति देश के राजा "विन्द" और "अनुविन्द" दुर्योधन के वश वतीं सामन्त थे। उन्होंने स्वयंवर में कृष्ण की वरण करने की इच्छा वाली अपनी बहिन "मित्र विन्दा" को रोक दिया था। किन्तु कृष्ण ने अपनी फूजा "राजाधिदेवी" की बेटी "मित्रविन्दा" को सब राजाओं के देखते देखते हर लिया था और उससे विवाह कर लिया।

कोशल देश के राजा "नाग्नजित्" की कन्या थी "नाग्नजिती सत्या"। उसके स्वयं-वर में कृष्ण ने सात दुर्जय बैलों को नाथने की शर्त पुरी कर उससे विवाह किया। इसके उपरान्त कृष्ण ने अपनी फूजा श्रुत-कीर्ति की पुत्री कैकय देसीया "भद्रा" से विवाह किया तदनन्तर कृष्ण ने मद्रराज की कन्या "लक्ष्मणा" को उसके स्वयंवर से एकाकी ही हरण कर विवाह किया। (अध्याय ५८)

इस प्रकार पट्टमहिषी रुक्मिणी सहित कृष्ण की आठ महिषियां थीं-

१- रुक्मिणी २- जाम्बवती ३- सत्यमामा ४- कालिन्दी ५- मित्र विन्दा ६- नाग्नजिती सत्या, ७- भद्रा और ८- लक्ष्मणा ।

८७- कृष्ण द्वारा मौमासुर एवं मुर दैत्य का वध तथा सोलह हजार एक सौ राज कन्याओं से विवाह-

प्राग्न्योतिषपुर (बासाम) के शासक मौमासुर ने देवताओं का सर्वस्व हरण कर लिया था। देवराज इन्द्र की प्रार्थना पर कृष्ण सत्यमामा सहित गरुड़ पर आरोढ़ हो प्राग्न्योतिषपुर गए। कृष्ण ने मुरदैत्य से रक्षात उसके दुर्ग को ध्वस्त कर मुर को मार डाला। (इसी लिये कृष्ण "मुरारि" कहलाते हैं) अन्त में मौमासुर स्वयं युद्ध में प्रवृत्त

हुआ किन्तु श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र से उसका भी शिरश्छेदन कर दिया। भौमासुर की माता पृथ्वी ने कृष्ण को देवताओं की सम्पत्ति यथावत् लौटा दी और उनकी स्तुति की। भौमासुर ने जोक राजाओं के यहां से हरण कर सौलह हजार एक सौ राज कन्याओं को अपने यहां बंदी कर रखा था। कृष्ण ने उनको मुक्त कर दिया। उन सबने मन ही मन कृष्ण को पति रूप में वरण कर लिया। श्रीकृष्ण ने विशाल पारिवर्ह (दहज) के साथ उन सबको द्वारका भिजवा दिया। तदनन्तर कृष्ण ने इन्द्र मवन जाकर समस्त देव सम्पत्ति उसे सौंपी। सत्यभामा के जाग्रह से कृष्ण ने नन्दन कानन स्थित कल्पवृक्षा को द्वारका लाकर सत्यभामा के उद्यान में लगा दिया। तदुपरान्त शुभ मुहूर्त में कृष्ण ने सौलह सहस्र एक सौ राज कन्याओं से विश्विक्ल पाणिग्रहण कर लिया।

(अध्याय ५६)

८८- रुक्मिणी की प्रेम परीक्षा और सांत्वना-

एक दिन श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी से पूछा कि अन्य अति पराक्रमी लोकाचार्यों एवं शिशुवालादि नरेशों के रहते हुए भी तुमने मुझी को पति रूप में क्यों चुना ? तब रुक्मिणी ने अत्यन्त भक्ति भाव से उनका परब्रह्म परमेश्वरत्व प्रति पावन किया और श्रीकृष्ण ने उन्हें अपनी सर्वाधिक प्रियसी कह कर आश्वस्त किया।

८९- कृष्ण की सन्तति एवं अनिरुद्ध के विवाह में रुक्मी का वध-

श्रीकृष्ण की पत्नियों में से प्रत्येक को दस दस पुत्र हुए। कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न को उनकी पत्नी रुक्मवती (रुक्मिणी के माई रुक्मी की पुत्री) से अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ। यद्यपि रुक्मी श्रीकृष्ण

से वैर रखता था **अञ्ज** तथापि रुक्मवती ने अपने स्वयंवर में कामदेवावतार प्रद्युम्न को ही वरणा किया। प्रद्युम्न अन्य राजाओं को परास्त कर रुक्मवती को हरण कर लाए। श्रीकृष्ण की रानियों में से प्रत्येक को एक एक कन्या भी थी। रुक्मिणी की पुत्री "चारुमती" का विवाह कृत वर्मा के पुत्र से हुआ था। रुक्मी ने अपनी बहिन रुक्मिणी के स्नेहवश अपनी पौत्री "रोचना" का विवाह अनिरुद्ध से कर दिया। विवाह के अवसर पर ही कलिंग नरेशादि को प्रेरणा से रुक्मी ने बलराम से घूत डीढ़ा की। एक आध बार हार जाने पर अन्त में बलराम ही विजयी हुए किन्तु रुक्मी ने घांखली से नहीं माना। तब बलराम ने एक परिघ से रुक्मी का वध कर डाला।

६०- ऊष्ठा अनिरुद्ध समागम एवं कृष्ण बाणासुर संग्राम-

दैत्यराज बलि के शिवभक्त पुत्र बाणासुर के ऊष्ठा **अञ्ज** नाम की अति सुन्दरी कन्या थी। एक दिन स्वप्न में अनिरुद्ध का समागम हुआ। तब ऊष्ठा ने अपनी सखी चित्रलेखा से जोक चित्र बनवाए। जब अनिरुद्ध का चित्र उसके सामने आया तो उसने चित्र लेखा से कहा, "यही मेरा कान्त है।" चित्र लेखा योगिनी थी। उसने द्वारका से अनिरुद्ध को बाणासुर की राजधानी शोणितपुर में ऊष्ठा के स्कान्त महल में पहुँचा दिया। जब बाणासुर को पता चला तो उसने अनिरुद्ध को नागपाश से बांध लिया। समाचार पाकर रामकृष्ण ससैन्य शोणितपुर पहुँचे। कृष्ण का बाणासुर से महान् युद्ध हुआ। बाणासुर की ओर से शिव भी कृष्ण से लड़े। कृष्ण ने नारायणास्त्र से पशु पाशुपतास्त्र को शान्त कर दिया। वैष्णव ज्वर से माहेश्वर ज्वर भी शान्त होगया। अन्त में शिव ने कृष्ण से बाणासुर को अमयदान देने की प्रार्थना की। कृष्ण ने बाणासुर को एक हजार भुजाओं में से चार छोड़कर सब काट दीं और उसका दर्प दलन कर अमय कर दिया। कृष्ण अपने पाँत्र अनिरुद्ध को उसकी वधू ऊष्ठा सहित द्वारका ले आए। (अध्याय ६२, ६३)

६१- नृग उद्धार- इक्ष्वाकु-पुत्र राजा नृग ब्राह्मणों को भीदान करता था। एक बार दान की हुई गाय भ्रमसे पुनः दान करने के अपराध में उसे कृकलास (गिरगिट) का शरीर प्राप्त हुआ था। वह एक कुए में पड़ा था। कृष्ण के कर स्पर्श से उसका उद्धार हुआ और वह उनकी स्तुति कर देव लोक को चला गया। (अध्याय ६४)

६२- बलराम का व्रज गमन- एक बार बलराम अपने बन्धु बान्धवों को देखने द्वारका से नन्द के गोकुल में आए। गोप गोपियों ने उनसे कृष्ण विषयक अनेक प्रश्न किए और गोपियों ने बड़े ही मार्मिक रूप से कृष्ण के प्रति अपने अनुराग को व्यक्त किया। बलराम ने उन्हें कृष्ण के मर्मस्पर्शी सन्देश सुनाकर शान्त किया। इसके उपरान्त बलराम ने वसन्त ऋतु में यमुना के सुरम्य कुंज में विहार किया। वरुण द्वारा भेजी हुई वारुणी देवी ने वृक्षा कीट से बह कर समस्त वन को सुगंधित कर दिया। बलराम ने स्त्रियों सहित वारुणी पान किया और जलक्रीड़ा के लिए यमुना को पुकारा किन्तु जब यमुना ने अवहेलना की तो अपने आयुध (हल) की नौक से उसे खींचा। (व्रज में आज भी यमुना टेढ़ी बहती है।) फिर बलराम ने गोपियों के साथ जल क्रीड़ा की। (अ० ६५)

६३- पाण्डूक वध- जब बलराम व्रज में थे तो कुरु ण देशाधिपति पाण्डूक ने घोषित किया कि " मैं ही वासुदेव हूँ " उस मिथ्या वसुदेव पर कृष्ण ने आक्रमण किया और उसके सहायक काशिराज सहित उसका सुदर्शन चक्र से वध कर दिया और द्वारका आगर। काशिराज के पुत्र सुदक्षिण ने प्रतीकार के लिए शिव के आदेशानुसार दक्षिणाग्नि का अभिचार किया और माहेश्वरी कृत्या को कृष्ण पर छोड़ा किन्तु सुदर्शन चक्र के तेज से वह कृत्या नल लौट पड़ा और उसने ऋत्विक् गण सहित सुदक्षिण को ही जलाकर भस्म कर डाला।

(अध्याय ६६)

६४- द्विविध वध- नरकासुर के मित्र द्विविदनामक महाबली वानर ने जानर्त देश में बड़ा उत्पात मचा रखा था। एक बार जब बलराम अपने वनिता मण्डल

सै जावृत्त रैवतक फल पर निवास कर रहे छ थे, उस समय द्विविद ने जाकर उनको समणियों का अपमान करना और असम्य व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। बलराम ने उस उत्पाती वानर पर अपने हल और मूसल से प्रहार किया। द्विविद ने भी शाल के वृक्ष उखाड़ छ उखाड़ कर उन पर मर्यकर आघात करने की चेष्टा की। अन्त में बलराम ने मुष्टि प्रहार से उसका वर्ध कर दिया। (अध्याय ६७)

६५- साम्ब का विवाह-

कृष्ण की पत्नी जाम्बवती सै 'साम्ब' नामक पुत्र था। साम्ब ने दुर्योधन की पुत्री 'सद्मणा' को उसके स्वयंवर में से हरण कर लिया। दुर्योधन कर्ण आदि ने साम्ब का पीछा किया। साम्ब से कौरवों का घोर दुश्म हुआ किन्तु अन्त में साम्ब को बांधकर सद्मणा सहित हस्तिनापुर पहुँच गया। जब यह समाचार दारुका पहुँचा तो यादवों को बड़ा क्रोध हुआ। वे कौरवों पर आक्रमण की तैयारी करने लगे। किन्तु बलराम ने उनको समझा बुझा कर शान्त किया और स्वयं उद्व के साथ हस्तिनापुर पहुँचा। उन्होंने उद्व को कौरव समा में भेज कर अपना मन्तव्य प्रकट किया। किन्तु कौरवों ने अभिमान वश उनकी उपेक्षा और अपमान किया। तब बलराम क्रुद्ध होकर अपने हल की नोक से हस्तिनापुर को उखाड़ कर गंगा में डुबाने के लिए सोचने लगे। तब कौरवगण मयभीत हो कर तत्काल बहुमूल्य उपायन लेकर साम्ब और सद्मणा को जागेकर बलराम की शरण में आ गए। बलराम उन्हें लेकर सकुशल दारुका आ गए। (अध्याय ६८)

६६- देवर्षि नारद द्वारा कृष्ण को दिनचर्या का अवलोकन और नारद का

विस्मय-

नरकासुर को मारकर उसके यहाँ से मुक्त कर लाई हुई सौलह हजार एक सौ स्त्रियों से कृष्ण के विवाह का समाचार सुनकर नारद को विस्मय हुआ और वे उत्तुक्तावश कृष्ण को दिनचर्या के देखने दारुका आए। समस्त वैभवों से सम्पन्न दारुका में एक भवन में प्रविष्ट होने पर नारद ने कृष्ण को रुक्मिणी से सेवित देखा। कृष्ण ने नारद का यथोक्ति वात्सल्य किया। जब नारद ने दूसरे प्रासाद में प्रवेश किया तो कृष्ण अपनी दूसरी पत्नी और उद्व के साथ

बीसरे खेल रहे थे। कृष्ण ने एक बड़े-से बत्तानी प्राकृत मनुष्य की भाँति उनसे वहाँ भी कृतज्ञ प्रश्न किया। इस प्रकार नारद से तीसरे से बीसवें प्रासाद में जाते रहे और सर्वत्र उन्होंने कृष्ण को विविध कार्यों में संलग्न देखा। कहीं कृष्ण बालकों को दुलार रहे थे, कहीं स्नान कर रहे थे, कहीं पंच महायज्ञ कर रहे थे, कहीं विप्र भोज कर रहे थे, कहीं सन्ध्या वन्दन और गायत्री का जप कर रहे थे। परब्रह्म कृष्ण को यह मानव लोला और योग माया का ऐश्वर्य देखकर नारद भक्ति विमोह होकर और कृष्ण को स्तुति करने लगे। (अर्धयाय ६६)

६७- कृष्ण की दिनचर्या और जरासन्ध द्वारा बन्दी राजाओं के दूत का

कृष्ण की दिनचर्या - माया मनुष्य शरीर धारी परब्रह्म कृष्ण ब्राह्मण मुहूर्त में उठ कर सर्व प्रथम अपने मायादातृ, बलपुत्र, स्वयं प्रकाश, बहिर्भीय और बहिर्नाशी वात्म तत्त्व का चिन्तन करते। तदनन्तर स्नान सन्ध्या अग्निहोत्र सूर्योपस्थान, देवकृष्ण और पितृतर्पण, गोदान-समस्त स्वर्गों को भोजन ताम्बूल चन्दनादि से संतुष्ट कर सबसे अन्त में स्वयं भोजन, ताम्बूलादि-ग्रहण कर 'दारुक' नामक सारथि से परिवारित अपने रथ पर आरोहण कर अपने सुधर्मा नामक राजसभा को जाते थे। एक दिन उनकी समा में उन बीस हजार राजाओं का दूत आया जिनको जरासन्ध ने अपने दिग्विजय के समय अपने गिरिवज्र नामक दुर्ग में बन्दी बना रखा था। वे राजा कृष्ण की सहायता से कारा मुक्त हो पुनः स्वराज्य प्राप्ति चाहते थे। इसी समय आकर नारद ने युधिष्ठिर द्वारा किये जाने वाले राजसूय यज्ञ के उपक्रम की सूचना कृष्ण को दी। (३८०७०)

६८- कृष्ण का इन्द्रप्रस्थ गमन-

कृष्ण ने उद्वेग के परामर्श से पहले युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में हो भाग लेने का निश्चय किया, क्योंकि राजसूय यज्ञ में दिग्विजय करना अनिवार्य है और उससे मित्र से जरासन्ध का वध हो ही जाता। अतः श्रीकृष्ण

१- दीव्यन्तमहीस्तत्रापि प्रियया चोद्धेन च ॥ ३८०७० ॥ २०-२३

२- एवं मनुष्यः पदवीमन्वर्तमानो नारायणोऽस्ति मया गृहीतशक्तिः ॥ ३८०७० ॥

वपने समस्त राजसी वैभव से युक्त होकर जानत, सौ-वीर, मरु , कुरुक्षेत्र
पांचाल और मत्स्य देश को पार कर सपरिवार हन्द्रप्रस्थ पहुँचे और युधिष्ठि-
रादि पाण्डवों से मिलकर प्रसुदित हुए। (अध्याय ७१)

६६- युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ का आयोजन और कृष्ण का भीमसेन

द्वारा जरासन्ध का वध कराना- कृष्ण से राजसूय यज्ञ के लिए प्रोत्साहित
होकर युधिष्ठिर ने अपने भीमसेन अर्जुनादि भाइयों को दिग्विजय के लिए
भेजा। पूर्व में मगधराज जरासन्ध को दुर्जय सम्पन्न कर कृष्ण से भीम और
अर्जुन ब्राह्मणों का वैद्य धारण कर गिरिविज दुर्ग गए जहाँ जरासन्ध रहता
था। वहाँ उन्होंने अपना वास्तविक रूप उद्घाटित करते हुए जरासन्ध से द्वन्द्व
युद्ध की भिक्षा माँगी। जरासन्ध और भीमसेन सत्वार्य दिन तक गदायुद्ध और
मत्स्य युद्ध करते रहे किन्तु दोनों में कोई भी हतायित नहीं हुआ। किन्तु
बाद में भीमसेन ने कृष्ण से जरासन्ध को दुर्जयता को स्वीकार किया। कृष्ण
ने भीम को बताया कि जरासन्ध के शरीर के दो फूट-फूट स्रष्ट हैं जो जरा
नाम का राक्षसी द्वारा उसके जन्म के समय जोड़े गए थे। कृष्ण ने एक वृद्धा
की शाला को चोरे हुए भीम को जरासन्ध के वध का उपाय बताया। भीम
ने जरासन्ध को एक टांग अपने पैर से दबाकर दूसरी को दोनों हाथों
से फाड़कर जरासन्ध को चार डाला। कृष्ण ने जरासन्ध के पुत्र सहदेव को
मगध के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया और जिन बीस हजार राजाओं को
जरासन्ध ने बंदी कर रखा था, उनका मुक्त कर दिया। (अध्याय ७२)

१००- कृष्ण का बन्दी राजाओं को अभयदान तथा हन्द्रप्रस्थ-वागमन-

कारावास से मुक्त हुए, दीन, महीन कृष्णाय राजाओं ने जति-
कृतज्ञ हो मणित गद् गद् स्वर में कृष्ण का स्तवन किया। कृष्ण ने उन्हें सेवकों
द्वारा स्नान, हौरादि कराकर जरासन्ध पुत्र सहदेव से राजोक्ति, वस्त्राभूषण
भोजन मृक् चन्दनादि द्वारा सम्मानित कराकर स्वदेशों को विदा कर दिया।

मीमसेन द्वारा जरासन्ध का वध कराकर कृष्ण भीमार्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ को चले जाए। जरासन्ध के वध से ही कृष्ण ने युधिष्ठिर का दिग्विजय कार्य पूर्ण कराया (अध्याय ७३)

१०१- राजसूय यज्ञ में कृष्ण की वज्रपूजा और कृष्ण द्वारा शिशुपाल का वध-

दिग्विजय के अनन्तर कृष्ण की अनुमति से युधिष्ठिर ने यज्ञ में कत्विजों का वरण किया और उन्होंने शास्त्र विधि से युधिष्ठिर को यज्ञ की आज्ञा दी। युधिष्ठिर ने सर्व सम्मति से यज्ञ में वज्र पूजा के लिये श्रीकृष्ण का वरण कर अतिशय भक्ति भाव से साक्षात् ईश्वर समझ कर उनकी पूजा की। कृष्ण के अल्प माहात्म्य और गुणों का प्रवण कर-दमघोषा पुत्र शिशुपाल जल उठा। वह अपने वाहन से उठ नाना दुर्वाच्यों से कृष्ण की मूर्तना और अपमान करने लगा। तब सबके समक्ष कृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का शिरश्छेदन कर दिया। राजसूय यज्ञ का ज्वमूथ स्नान हो जाने पर कृष्ण युधिष्ठिर के अत्याग्रह पर कुछ दिन इन्द्रप्रस्थ में ही रहे।

(अध्याय ७४)

१०२- राजसूय के ज्वमूथ स्नान का महोत्सव और दुर्योधन का अपमान-

राजसूय में युधिष्ठिर के बन्धु बान्धवों ने विभिन्न सेवा कार्य संभाले थे। भीमसेन ने पाक शाला का, दुर्योधन ने कौशाध्यक्षता का और कृष्णार्जुन ने वातिभ्यु कार्य संभाला था। श्रीकृष्ण स्वयं अतिथियों के पाद प्रक्षालन का कार्य करते थे। ज्वमूथ स्नान में स्त्री पुरुषों की सब जल झोड़ा हुआ। यज्ञ सानन्द सम्पन्न हुआ। एक दिन जब युधिष्ठिर मय दानव द्वारा निर्मित अपने वैभवपूर्ण जति विचित्र, समा भवन में श्रीकृष्णादि से आवृत्त बैठे हुए थे तब दुर्योधन मा वहाँ आया। उसे समा भवन में स्थल में-जल और जल में स्थल का भ्रम हुआ। वह जल में गिर सक पड़ा उस पर भीमसेन, डीपरी

जादि हंसने लगे। दुर्योधन इस अपमान से मन ही मन क्रोधानल से जलता हुआ समा भवन से उठकर चला गया। दुर्योधन के हस्तिनापुर चले जाने पर मावी कर्ण की बाराका से युधिष्ठिर अन्यमनस्क होगरा। (अध्याय ७५)

१०३- शाल्व और यादवों का युद्ध एवं कृष्ण द्वारा शाल्व का वर्ध-

शिशुपाल का मित्र शाल्व रुक्मिणी हरण के समय यादवों से पराजित हो गया था। तब से निरन्तर प्रतीकार की इच्छा रखते हुए शाल्व ने शिव की बाराधना की और शिव की कृपा से 'सौम' नामक दुर्जेय विमान प्राप्त किया। उस विमान पर जाकर वह दारका पहुँचा। उसने दारका पर जाक्रमण किया। यादवों और शाल्व में सदास्त दिन तक युद्ध हुआ। युद्ध में प्रमुख भाग प्रह्मन् ने लिया और वे वास्त होगरा। कृष्ण सब तक इन्द्रप्रस्थ में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ लौटे नहीं थे। अपाकुनों को देखकर जब कृष्ण दारका जाए तो उन्होंने दारका को शाल्व की माया से आविष्टित पाया। कृष्ण स्थावर हो शाल्व से युद्ध करने लगे। कृष्ण और शाल्व में मोघाण युद्ध हुआ। शाल्व ने माया से निर्मित वसुदेव की श्रीकृष्ण के सामने मारा। अन्त में कृष्ण ने गदा प्रहार से शाल्व का माया मय सौम नामक विमान सपष्ट सपष्ट कर डाला और सुदर्शन चक्र से शाल्व का शिरच्छेदन कर दिया। (अध्याय ७७)

१०४- कृष्ण द्वारा दन्तवक्त्र और विदूरथ का वर्ध-

जैसे दिवंगत मित्र पौष्पक, शिशुपाल, शाल्व आदि का बदला लेने के लिए कृष्ण जैसे 'दन्तवक्त्र' ने कृष्ण पर जाक्रमण किया। किन्तु ने अपनी 'कीनोदकी' गदा से सप्तप्रहार से ही बलात्कृत विदीर्ण कर दन्तवक्त्र का वर्ध कर दिया। इसके उपरान्त भ्रातृ शोक से विह्वल दन्तवक्त्र का मार्ग 'विदूरथ' का हस्त होकर कृष्ण से युद्ध करने आया किन्तु वह भी कृष्ण के सुदर्शन चक्र का शिकार हुआ। (अध्याय ७८)

१०५- बलराम की तीर्थ यात्रा और बलराम द्वारा सूत का शिरच्छेदन-

बलराम कौरव पाण्डवों में युद्ध की सम्भावना देख कर किसी पक्ष की ओर से भाग न लेने के विचार से तीर्थ स्नान के बहाने दारका से चले गए। बनेक तीर्थों का पर्यटन करते हुए वे नैमिषारण्य पहुँचे जहाँ ऋषि गण सत्र कर रहे थे। बलराम ने वहाँ व्यासपीठ पर बालीन वैपायन-शिष्य 'रोमहर्षण' सूत को देखा। सूत ने बलराम का अभ्युत्थानादि से यथोक्ति सम्मान नहीं किया था वतः बलराम ने क्रुद्ध होकर कृष्णों से उसका शिर काट डाला। ऋषियों के हा हा कर करने और प्रार्थना करने पर बलराम ने प्रायश्चित्त स्वरूप एक वर्ष तक समस्त भारतवर्ष को परिक्रमा करते हुए तीर्थ स्नान करना और यज्ञ दिध्वंसक बल्लल नामक एक राक्षस का वध करना स्वीकार किया।

(अध्याय ७)

१०६- बलराम द्वारा बल्लल वध और तीर्थ यात्रा-

जब नैमिषारण्य में यज्ञ का फलाल प्रारंभ हुआ तो राक्षस बल्लल ने मलमूत्रादि अपवित्र वस्तुओं की वधार्थ प्रारंभ कर दी और त्रिशूल लेकर आगया। बलराम ने अपने शत्रु संहारक हत-मुसल का आवाहन किया और हत के जग्र भाग से बल्लल को अपनी ओर खींच कर द्रोघ से उसके शिर पर मुसल का प्रहार कर उसका प्राणान्त कर दिया। ऋषियों ने बलराम को दिव्य कमलों की वैजयन्ती माला, वस्त्र और बाभूजाण प्रदान कर उनकी स्तुति की। तदनंतर बलराम प्रयाग, गया, गंगा सागर, महेन्द्र पर्वत, श्रीपर्वत वैष्णव पर्वत, कांची पुरी, श्रीरंग होत्र, दक्षिण मथुरा, रामेश्वर, कन्या दुमारी, अन्नान्तपुर तक जाकर लौटते हुए कैरल, त्रिगर्त, गोकर्ण (संभवतः बाज का गौजा) नामक शिव होत्र, शूर्पाक होत्र (संभवतः बाज का शूख) होते हुए तापी, फोछणी आदि नदियों में स्नान करते हुए दण्डका-

रण्य, माहिष्मती पुरी और मनुतोर्थ होते हुए प्रगास द्वीप (दारका) में लौट आए । फिर यह सुन कर कि भीम और दुर्योधन रणभूमि में म्हाकुंड कर रहे हैं, बलराम उन्हें युद्ध से निवृत्त करने की इच्छा से कुरुद्वीप गए किन्तु वे दोनों नहीं माने। तब दैवेच्छा समझकर बलराम दारका लौट आए । वहाँ से वे पुनः एक बार अपनी ऐवती सख्ति नैमिषारण्य गए जहाँ ऋषि मुनियों ने उनसे विविध यज्ञ कराए । यज्ञान्त स्नान कर बलराम पुनः दारका लौट आए (अध्याय ७६)

१०७- कृष्ण द्वारा ब्राह्मण (बुद्धिमान ?) का वातिष्ण्य एवं दक्षिणा दूर

करना- एक जितेन्द्रिय ब्रह्मज्ञानी वृषि दक्षि कृष्णाय ब्राह्मण के०वि०के० कृष्ण के मित्र थे । एक दिन उनकी पत्नी ने कहा कि " साक्षात् लक्ष्मी पति कृष्ण तुम्हारे मित्र हैं (फिर भी हम लोग दक्षिणा का कष्ट मोंग रहे हैं) - बाबू कल वे दारका में मौज, वृद्धिण बादि-वंशों में उत्पन्न यादवों के स्वामी हैं। तुम बड़े बुद्धिमान हैं। कतः उनके पास जाओ वे तुम्हें बहुत सा धन देंगे वे शरणागत वत्सल हैं। " स्त्री के प्रस्ताव को ब्राह्मण ने सहर्ष स्वीकार कर लिया । जब स्त्री से कृष्ण के लिए कुछ उपहार मांगा तो ब्राह्मण ने चार मुट्ठी चिन्ता फलों से मांग कर एक कपड़े में बाँधकर उन्हें दे दिया। विप्रान् उसे लेकर दारका चल पड़ा । दारका-पहुँचने-पर तीन सैनिक गुल्लों (झामनियों) और तीन कहाजों (द्यौदियों) को पार कर वे ब्राह्मण देवता कृष्ण की महिष्ठियों में से रुक्मिणी के प्रासाद में प्रविष्ट हुए । ब्राह्मण को दूर से ही देखकर कृष्ण ससम्पन्न शैया से उठ खड़े

१- इति संचिन्त्य मत्ता गम्नाय मतिं दधे ।

वप्यस्त्युपायनं किञ्चित् गृहे कल्याणि दायकाम् ॥

याचित्वा क्षुरी मुष्टान् विप्रान् प्रयुक्त तण्डुलान् ।

केल सप्येन तान् कृध्वा भवे प्रादादुपायनम् ॥

श्रीमद् ० १०।८०।१३, १४

हुए और बागे बढ़कर मित्र को सहजाँ मुज पास में रख कर गले लगा लिया और उनके नेत्र सजल होगए। उन्होंने मित्र को पर्यंक पर बिठाकर स्वयं पूजन की समग्री लाकर उनके चरण धोए। विप्र वृत्ति कृष्णाय थे। उनके वस्त्र जोर्ण जोर्ण थे। किन्तु वफौ पति कृष्ण को उनका ऐसा सत्कार करते देख रुबिमणी बादि विस्मित हो गई और उन पर कंर हुलाने लगीं। फिर दोनों मित्र एक दूसरे का हाथ फाड़ कर अपने गुरुकुल में विद्यार्थ्य के समय की घटनाएँ याद करने लगे। कि प्रकार गुरु पत्नी ने एक दिन उन दोनों को र्छन करने के लिए-वन में भेजा था और वहाँ कि प्रकार वे दोनों कंकवात और घोर वज्राँ से पादित हुए रात भर बंधकार में भटकते रहे और फिर सुयोदय होने पर गुरु बादिपति उनको लोज कर ले गए। कृष्ण ने ब्राह्मण से प्रेमपूर्ण पूछा कि तुम मेरे लिए घर से क्या उपहार लाए हो। किन्तु ब्राह्मण वैवता ने वह चार मुट्ठी चिडों को पीट ली कृष्ण को नहीं दी और संकुचित हो कर मुँह नोचा कर लिया। किन्तु वन्तयामी कृष्ण ने उन चिडों को “यह क्या है” कह कर स्वयं हा खोन लिया। कृष्ण ने एक मुट्ठी चिडा साकर ज्यों ही दूसरी मुट्ठी मरी, रुबिमणी ने उनका बाथ फाड़ लिया और कहा कि इसे हा यह क्रिय विप्र पूर्ण काम होगया (इसे बधिक उदारता दिलाकर क्या मुझे भी इसके बधान कर देंगे ?) उस रात्रि को ब्राह्मण ने विविध मौज्य फार्थी का बास्वा-दन कर स्वर्गोफ मानन्द लेते हुए कृष्ण के प्रासाद में व्यतीत किया। दूसरे दिन

१- वयोक्लेश्य पर्यं स्वयं सत्युः समर्हणम् ।

उपकृत्यावनिज्यास्य पादौ पादापनेजनीः ॥ श्रीमद् १०। ८०। २५

२- किमुपायनमानातं ब्रह्मन् भवता गृहात् ।

इत्युक्तो पि विजस्तस्मि ब्रोहितः फथे प्रियः ।

पूक्त प्रभृति राजन् प्रायज्जवाहमुतः ।

इत्येविचिन्त्य वसनाञ्चोर वदान् विन्मनः ।

स्वयं जहार किमिदमिति पूक्त तण्डुलान् ॥ श्रीमद् १०। ८०। ३, ५, ८

3 - श्रीमद् १०। ८०। १०, ११

प्रातः कृष्ण से अत्यन्त सत्कृत और अभिनन्दित हो ब्राह्मण अपने देश को चल पड़े। मार्ग में कृष्ण के सद्ब्यवहार के विषय में सोचते और उनकी ईश्वरता पर मनन करते हुए अपने घर के समीप आए। वे प्रसन्न थे कि समस्त जन्यों का कारण धन कृष्ण ने मुझे नहीं दिया^१ किन्तु उन्होंने देखा कि वह स्थान दिव्य विमानों, सरोवरों और भवनों से युक्त हो गया है और नर नारी सादर उनकी कमानों करने आए। उनकी सर्वांग सुसज्जित देवांगनोपम पत्नी उन्हें सादर अपने समस्त वैभवपूर्ण भवन में लिवा ले गई। परम भगवद् भक्त उन विप्रार ने उस कृष्ण प्रसन्न वैभव को अनासक्त भाव से मीनकर कुछ समय बाद परमगति प्राप्त की। (अध्याय ८०-८१) (यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि श्रीमद्भागवत में कहाँ उस ब्राह्मण का 'सुदामा' नाम नहीं आया है। 'सुदामा' नामक माली की चर्चा दशम स्कन्ध पूर्वार्ध अध्याय ४१ में ही हुई है)।

१०८- स्यमन्त पंक्त तीर्थ (कुरुक्षेत्र) में कृष्ण को गोप और गोपियों से

मेट - एक बार जब प्रलयकालीन ग्रहण के समान सूर्य ग्रहण का एक महान् फँस आया तो कृष्णरूपस्वितार^२ स्यमन्तपंक्त^३ नामक तीर्थ में स्नान करने गए। यह फँस अत्यन्त महान् था और समस्त भारत की अधिकांश प्रजा कुरुक्षेत्र में आया था। कृष्ण कृष्ण और गोपियों का मिलन तो अत्यन्त ही मार्मिक था। कृष्ण ने उनसे मिल कर कहा कि हम अपने प्रियजनों की मलाई के लिए गौकुल से मथुरा चले आए और फिर, सन्तु पक्ष के संहार में लग जाने से बहुत दिन हो जाने पर भी तुमसे नहीं मिल सके। क्या तुम कभी हमें याद करती थीं। यह सुन कर गोपियाँ प्रेम विह्वल हो गईं। लिंग (सूक्ष्म) शरीर का नाश हो जाने पर वे परब्रह्म कृष्ण को ही प्राप्त हो गईं। (अध्याय ८२)

१- बध्नो यं धनं प्राप्य माघन्तुर्वेन मां स्मरेत् ।

इति कारुणिकोक्तं धनं मे मूरि नाददात् ॥ श्रीमद् ० १०।८०।२०

गोपियों पर अनुग्रह कर कृष्ण ने युधिष्ठिर बादि स्वजानों से कुशल पूछी । उधर यादव और कौरव कुल को स्त्रियाँ एकत्र होकर बापस में त्रिभुवन विख्यात कृष्ण चरित कहने लगी । द्रौपदी ने रुक्मिणी , सत्यभामा, जाम्बवती, कालिन्दी , मित्रविन्दा, सत्या , मद्रा , सत्यमाता और छाँडसहस्र कृष्ण पत्नियों से पूछा कि तुम लोगों से कृष्ण कैसे कैसे विवाह किया वह वृत्तान्त सुनाओ । तब उन सबने अपने अपने विवाह की मनोरंजक घटनाएँ द्रौपदी को सुनाई । (अध्याय ८३)

१०६- वसुदेव का यज्ञोत्सव - कुरुक्षेत्र में उस सूर्य पर्य में अन्यायपूर्ण लोगों के साथ व्यास, नाह , च्यवन, देवल , वसिष्ठ , विश्वामित्र, शतानन्द , भरद्वाज, गौतम , वशिष्ठ बादि ऋषि गण भी राम कृष्ण के दर्शनार्थ गए थे श्री कृष्ण ने उन सबका अत्यन्त आदरपूर्वक अभिनन्दन किया और मुनिजनों ने कृष्ण की ब्रह्मभावस्य से स्तुति की। फिर देव गण से उक्त होने के लिए वसुदेव ने उन ऋषियों को वरण कर अनेक यज्ञ किए । तीन मास नन्दादि गोपों और गोपियों के साथ कृष्ण कुरुक्षेत्र में रहे फिर अपने पिता वसुदेव सहित दारका चले आए। (अध्याय ८४)

कृष्ण द्वारा देवकी-पुनर्जनन

११०- वसुदेव ने श्रीकृष्ण और बलराम को प्रत्यक्ष ईश्वर समझ कर एक दिन उनकी स्तुति की और आत्मज्ञत्व का निष्पन्न किया । कृष्ण ने बताया कि वसुदेव स्वयं दारका वासी १० लोग, यहाँ तक कि समस्त चराचर-जगत् भावस्वरूप हो है। इस उपदेश से वसुदेव की भेद बुद्धि नष्ट होगई और वे ब्रह्मभूत हो गए । एक दिन देवकी ने जब यह सुना कि कृष्ण और बलराम ने अपने गुरु सान्दीपनि के पुत्र को यमपुरी से भी वापस ला दिया था तो उनकी भी इच्छा हुई कि वंस द्वारा मारे गए उनके है पुत्र भी वापस मिल जाएँ । देवकी ने जब राम कृष्ण को अपनी कामना बताई तो दोनों माई सौमनाथा का आश्रय ले सुतल लोक पहुँचे । वहाँ वे दैत्यराज बलि से सुप्रसन्न होकर 'स्मर', 'उद्गाथ' परिध्वज' फग', हनुमत् और पूणी' इन अपने अग्रज वहाँ माइयों

को लेकर द्वारका बाहर और उन्हें देवकी को सौंप दिया। देवकी ने उन्हें बति वात्सल्यपूर्वक स्नान पान कराया। बाद में वे वही बालक जो वास्तव में कृष्ण-कुमार थे, कृष्णादि को प्रणाम कर देवलोक चले गए। कृष्ण की इस कद्मुत तोला से देवकी परम विस्मित हुई। (अध्याय ८५)

१११- कृष्ण की अनुमति से कर्ण द्वारा सुमद्दा हरण-

एक बार कर्ण तीर्थ यात्रा के निमित्त प्रयास द्वीप में पहुँचे। वहाँ उन्होंने सुना कि उनके मामा की पुत्री सुमद्दा की बलराम दुर्योधन से व्याहृत चाहते हैं। ^{परन्तु कृष्ण सुमद्दा को ३६ वर्षों की उम्र में ही देना चाहते हैं।} कर्ण उसे प्राप्त करने की इच्छा से त्रिदण्डी संन्यासी का वेष धारण कर द्वारका पहुँचे। बलराम ने संन्यासी वेष में कर्ण का बड़ा ही आतिथ्य किया। उनके घर पर कर्ण ने परम सुन्दरी सुमद्दा को देखा। दोनों अनुरक्त हो गए, कर्ण उसे हरण करने का अवसर ढूँढ ही रहे थे। एक दिन जब सुमद्दा देव यात्रा महोत्सव के अवसर पर रथाबद्ध हो कर दुर्ग से बाहर निकली तो कर्ण, कृष्ण और सुमद्दा के माता पिता की अनुमति से सुमद्दा को हरण करके ले गए। जब बलराम को यह ज्ञात हुआ तो वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए किन्तु कृष्ण ने अनुनय विनय करके उन्हें शान्त कर दिया। फिर बलराम ने रथ, गज, चुरंग दास दासी आदि को दहेज रूप में भी भेजा। (अध्याय ८६)

११२- कृष्ण का श्रुतदेव एवं जनक पर अनुग्रह-

विदेश देश की मिथिला पुरी में कृष्ण का जनन्य भक्त श्रुतदेव नामक ब्राह्मण रहता था। उस देश का राजा बहुलाश्व (जनक) भी उनका जनन्य भक्त था। कृष्ण ने उन दोनों पर ही अनुग्रह करने की इच्छा से रथाबद्ध होकर विदेह देश में फटार्पण किया। वही श्रुतदेव को वार देश श्रुतदेव और बहुलाश्व दोनों ने ही कृष्ण को दण्डवत् प्रणाम किया। कृष्ण ने उन दोनों के युगपत् निर्मलण को स्वीकार किया और

द्वी रूप धारण कर उनका भक्तिपूर्ण जातिध्व्य स्वीकार किया। उन पर अनुग्रह करते हुए कुछ दिन मिथिलापुरी में रह कर कृष्ण दारका जा गए। (अध्याय ८६)

११३- वेद स्तुति- परीक्षित ने शुक्देव से प्रश्न किया कि सदसत्-पर-निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन गुणमय श्रुतियों कैसे कर सकती हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में शुक ने परीक्षित को नारायण और नारद के संवाद रूप में एक गाथा सुनाई कि पूर्वकाल में जनलोक निवासी ब्रह्मा के मानस पुत्रों ने ब्रह्मसत्र का अनुष्ठान किया। वहाँ सनन्दन को वक्ता बनाया गया। सनन्दन ने कहा कि जिस प्रकार सौर हुए सम्राट् को प्रातःकाल होने पर वन्दोजन उत्तका सुयश गान कर उदबुद्ध करते हैं उसी प्रकार स्वरचित निखिल प्रपञ्च को श्रुतियों सहित अपने में लीन करके सौर हुए परमात्मा को श्रुतियाँ उनका प्रतिपादन करने वाले वाक्यों द्वारा जगाती हैं। श्रुतियाँ कहती हैं कि हम कभी तो माया के साथ क्रीड़ा करने वाले और कभी स्वरूप में स्थित परब्रह्म परमेश्वर का प्रतिपादन करती हैं। ब्रह्म ही इस विश्व की उत्पत्ति स्थिति और संहार के विधाय में सगुण (नारायण) रूप से उत्प्रेक्षा (बालोचनात्मक संकल्प) करता है। वही ध्येय^{स्व} जगत् की मूल कारण^{स्व} मूल माया का निरास करता है। वही ध्येय है। (अध्याय ८७)

११४- शंभु मौचन- (वृकासुर वध)

परीक्षित ने शुक्देव से शिव और विष्णु तत्त्व के संबंध में प्रश्न किया तो शुक ने बताया कि शिव तो सगुण एवं त्रिविध वर्णकार के वर्धिष्ठाता हैं किन्तु विष्णु प्रकृति से परे निर्गुण हैं। विष्णु का भजन करने वाला निर्गुण

१- योऽस्योत्प्रेक्षाक जादिमध्य निधैः योऽव्यक्त जेवैश्वरो ।

यः सृष्टैव ननु प्रविश्य कृच्छिणा क्रे पुरःशस्तिताः ॥

यः सम्पदजहात्यजा मनुष्या सुप्तः कुलाय यथा ।

तं वैवत्यनिरस्तयोनिमभय ध्यायेद्गर्ज हरिम् ॥

श्रीमद् १०। ८७। ५०

हो जाता है। एक बार भगवान् शिव वृकासुर को वखान देकर स्वयं संकट ग्रस्त होकर थे। उस समय विष्णु ने उनकी रक्षा की। नारद के उपदेश से वृकासुर ने शिव की वारार्धना कर उनसे यह वर ले लिया कि जिस जिस के सिर पर हाथ रख दूँ वही मर जाय। शिव ने जब यह वर दे दिया तो उस असुर ने सुन्दर पार्वती को हरण करने और वर की शक्ति परीक्षा के लिए शिव के सिर पर ही हाथ रक्ता चाहा। शिव के समस्त लोकों में जाने भी जब कहीं शरण नहीं मिली तो वे विष्णु के दिव्य वैकुण्ठ में पहुँचे। विष्णु ने उनको वृकासुर से बचाया। उन्होंने एक ब्रह्मचारी का वेष धारण कर वृकासुर से कहा कि हमें शिव की बात का कोई विश्वास नहीं है कि उन्होंने तुम्हें जो वर दिया है उसमें मरने को शक्ति है भी या नहीं। कतः तुम स्वयं अपने सिर पर हाथ रख कर बाजमावो। बुद्धि भ्रम से उस दैत्य ने ज्योंही अपने सिर पर हाथ रक्ता, उसका मस्तक फट गया और वह तत्काल भस्मत्व को प्राप्त हो गया। शिव भय मुक्त हुए। (अध्याय ८)

११५- भृगुव्रत त्रिवे परोक्षा-

सरस्वती नदी के तट पर बृहद् ऋषि गण यज्ञ कर रहे थे। उनमें ब्रह्मा विष्णु और रुद्र में सर्वोष्ठत्व के सम्बन्ध में विचार हुआ। परोक्षा के लिए उन्होंने ब्रह्मा के पुत्र भृगु को नियुक्त किया। भृगु सर्वप्रथम ब्रह्मा के निकट गए। उन्होंने ब्रह्मा को प्रणाम नहीं किया। कतः ब्रह्मा क्रुद्ध होकर। तदनन्तर वे रुद्र के निकट गए और उनके स्वभाव की परोक्षा लेने के लिए उनके प्रति उद्देग जनक दुर्वचन कहने लगे। शिव क्रुद्ध होकर उन पर त्रिशूल से प्रहार करने उद्यत होकर। वन्त में भृगु वैकुण्ठ में विष्णु के समीप गए। जाते ही उन्होंने विष्णु के वक्षःस्थल पर पाद प्रहार किया। किन्तु विष्णु ने फिर भी उनका सम्मान करते हुए उनकी स्तुति की। तब से विष्णु का ही सर्वाधिक महत्व प्रतिष्ठित हुआ। (अध्याय ८६)

वनन्य प्रेम से उन्होंने सहज ही परम फल प्राप्त कर लिया । कृष्ण ने वैदोषत धर्म का वाचरण करते हुए गृहस्थ को धर्म , कर्म और काम की प्राप्ति का साधन सिद्ध कर दिया (अध्याय ६०)

ऊपर श्रीमद्भागवत के नव्वे अध्यायों में विस्तृत दशम स्कन्ध (पूर्वाधै और उचरार्द्ध) की समस्त कृष्ण लीलाओं का संक्षिप्ततम विवरण प्रस्तुत किया गया है जिससे हिन्दी कृष्ण काव्य के ज्येष्ठता को कृष्ण लीला का भागवती स्वरूप स्पष्ट हो सके । जैसाकि पहले संकेत किया जा चुका है, कृष्ण मन्त्र कवियों का मन विखीजाकर कृष्ण की ब्रजलीला में ही रमा है । जाहेस्वर्य सम्पन्न , हारकाधोश कृष्ण की लीलाओं का वर्णन सूर वादि कवियों ने किया अवश्य है किन्तु केवल श्रीमद्भागवत की महती मन्त्रित सरणि का बादर अनुगमन करने और श्रीमद्भागवत को लोक भाषा में सर्व सुलभ बनाने के लिए ।

उपर्युक्त दशम स्कन्धीय कृष्ण लीलाओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं :-

निष्कर्ष -

१- बाल लीला का मुख्य उद्देश्य मन्त्र को दिव्य आनन्द में मग्न करना है। सभी श्रेणों के मन्त्र कृष्ण की मनोरम और नैसर्गिक बाल लीलाओं से प्रसुद्धित होते हैं । इन लीलाओं में प्रसुप्त भाग लेने वाले गोप बालक हैं।

२- किशोर लीला का मुख्य उद्देश्य प्रगाढ़ प्रेमाभक्ति का उद्देक करना है , जिसे प्राप्त करने के लिए लोक परलोक के विधि निषेधों का वलि क्रमण कर सर्वात्मना कृष्णार्पण होजाना अनिवार्य है। इस लीला में प्रसुप्त भाग लेने वाले ब्रज की गोप्सियाँ हैं ।

३- कृष्ण की लीलाओं में कुछ प्रेम लीलाओं को छोड़कर बलराम प्रायः निरन्तर

११६- कृष्ण द्वारा कर्जुन की स्वस्व रूप दर्शन एवं ब्राह्मण के मृत पुत्र का वानयन-

एक बार दारका वासी किसी ब्राह्मण का पुत्र जन्मते ही पृथ्वी का स्पर्श कर मर गया। तब उसने बालक के शव को उग्रसेन के द्वार पर जाकर डाल दिया और कहने लगा कि इस पापाचारो राजा के कर्म दौष्ट से ही मेरी बालक की मृत्यु हुई है। जब उस ब्राह्मण के नौ बालक मर गए तब कृष्ण के समीप बैठे कर्जुन ने उसके मृत पुत्रों को लाने की प्रतिज्ञा की किन्तु यम की संयमना पुरी तक जाने पर भी उसका कूट फटा न लग सकने के कारण कर्जुन प्रतिज्ञा भंग के बलेश से अग्नि में प्रविष्ट होने लगे। तब कृष्ण ने उन्हें रोका और अपने साथ उन्हें अत्यन्त दुर्गम जनन्त (शैला) लौक में ले गए। वहाँ शैला पर विराजमान जादि नेत्र-विष्णु को देता। उन्होंने कृष्णार्जुन से कहा कि तुम दोनों ने मेरी कलाओं से पृथ्वी पर नर-नारायण के रूप में लक्ष्मी लीया है। तुम्हें देखने के लिए ही मैंने ब्राह्मण के पुत्रों का हरण किया था। तुम पूर्ण काम होते हुए भी लोक संग्रह के लिए धर्माचरण करो। महा विष्णु से आज्ञा लेकर कृष्णार्जुन ब्राह्मण के बालकों को लेकर दारका-लोट जाए तथा ब्राह्मण को उसके पुत्र सौंप दिये। कृष्ण का अतुलित प्रभाव देखकर कर्जुन अत्यन्त विस्मित हुए। (कथ्याय ८६)

११७- दारका में कृष्ण का लोला विहार-

समस्त सुप्रामा और वैभव से पूर्ण दारकापुरी में श्रीकृष्ण लोलह सल्ल राणियों सहित निवास करते थे। वे उनके साथ विविध क्रीड़ाएँ करते। कभी वे राणियाँ श्रीकृष्ण के साथ जल क्रीड़ा करतीं और कभी अन्य क्रीड़ाएँ। वे ^{कृष्ण} भीम में अहोरात्र उन्मत्त रहती थीं। वे समस्त चराचर-जगत् को कृष्णमय देखतीं। कभी कुरुरों को कभी चक्रवाली को, कभी कौकिल को, कभी हंस को, कभी समुद्र को कभी मलय पर्वत, समुद्र, मेघ और नदियों को संबोधित कर उनसे कृष्ण विषयक प्रश्न और उत्प्रेक्षाएँ करतीं। इस प्रकार कृष्ण के

साथ रहते हैं। श्रीमद्भागवत के वसुदेव (कृष्ण) के साथ संकर्षण (बलराम) का नित्य सम्बन्ध है। बलराम का व्यक्तित्व स्वतंत्र रूप से भी बहुत प्रभाव-शाली एवं महत्वपूर्ण है।

४- श्रीमद्भागवत का प्रत्येक कृष्णपक्षीय पात्र कृष्ण को परब्रह्म परमेश्वर के रूप में मानता है जिसने अपनी माया शक्ति से नरलोक-मनोरम लीला विग्रह धारण किया है।

५- जन्य शरणापन्न भक्त को रक्षा के लिए मगवान् सब कुछ करने के लिए उत्तम रहते हैं। दैत्यवध आदि विविध लीलाएँ इसका प्रमाण हैं।

६- कृष्ण और विष्णु का स्वत्व सर्वत्र प्रतिपादित है और वैष्णव-सिद्धान्त और माहात्म्य अन्य समस्त सार्धतः मार्गों से श्रेष्ठतर बताया गया है। विशेष-कर शैव-सिद्धान्त और माहात्म्य को वैष्णव तत्त्व का अनुगत बताया गया है।

लीला के उद्घरण-

यद्यपि ऊपर कृष्ण लीलाओं का उल्लेख ही हुआ है तथापि उनके वर्णन कुछ विशिष्ट लीलाओं और उनके उद्घरणों के स्वरूप का स्पष्टीकरण आवश्यक है प्रतीत होता है जिनका विशेष वर्णन हिन्दी कृष्ण काव्य में श्रीमद्भागवत के भक्ति परक दृष्टिकोण के कारण हुआ है। श्रीमद्भागवत में प्रत्येक कृष्ण लीला का एक दार्शनिक दृष्टिकोण तथा समाधान पाया जाता है और कृष्ण लीला के गौपी यमुना आदि उद्घरण अपौरुषेय आधिभौतिक रूप के मूल में एक सूक्ष्म दिव्य, आध्यात्मिक रूप भी रहते हैं। वास्तव में वही उनका पारमार्थिक रूप है। इस मूल बात को समझे बिना श्रीमद्भागवत की कृष्ण लीला एक नितान्त प्राकृत व्यापार ही मालूम होगी। अतः यहाँ और आवश्यकतानुसार बाँगे भी ऐसे विशिष्ट तत्त्वों का विवेचन किया जायगा-

व्रज - (गोकुल)

श्रीकृष्ण की नित्य संस्थिति और लीला विहार के कारण ब्रजभूमि को श्रीमद्भागवत में उत्कृष्ट प्रीति और श्लाघनीय माना गया है। ब्रजभूमि को धन्य माना गया है क्योंकि वहाँ शिव और कमला के लिए भी जिनको चरण रज उत्तम्य है वे कृष्ण वैष्णवावन और गोचारण करते हुए विहार करते हैं। ब्रजभूमि में किसी वन में और विशेषकर गोकुल में जन्म पाने के लिए देवता भी लालाछित रहते हैं। देवगण गोकुलवासियों को चरण रज से अपने को पवित्र करना पसंद चाहते हैं, क्योंकि गोकुलवासियों के परम सुहृद् श्रीकृष्ण वहाँ निवास करते हैं। 'ब्रज' शब्द श्रीमद्भागवत में 'गावों' के समूह और 'स्थान विशेष' दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। कुछ स्थलों में पर 'ब्रज' शब्द का प्रयोग ब्रजवासियों के अर्थ में भी हुआ है। अनुमान होता है कि पहले मथुरा के सामने यमुना के दूसरे तट पर एक विशाल सघन वन और शादल भूमि थी। वहाँ पर नन्दादि गोप गण अपने-गो समूह (गोकुल) के साथ रहते थे। उसी बृहद् वन को कालान्तर में 'गोकुल' नाम से पुकारा गया। ब्रज की सोमा पहले 'गोकुल' तक ही विस्तृत थी।

१- जहो जलं श्लाघ्यकामं यतोऽमृतम् । जहो जलं पुण्यकृतं पद्मविनम् ॥

यै जापुंतामुतामः प्रियः प्रियः स्वजन्मता चम्पणैः चम्पति ॥ श्रीमद् ०१/१०/२६

३क ब्रह्मानुत्तमान्वा-समायुज्य ययुः श्रेष्ठ परिष्कृताः ॥ श्रीकृ० १०।११।३०

२- श्रीमद् ०. १०।४४। २२ तथा १०।१४।२४

२॥ स्वस नोत्रिणी त्यात्मबुगमार्गः ॥ श्रीमद् १०। १३। २०

ततो विदूराञ्चरतो गावो वत्सान् उपक्रमन् ।

गोवर्धनादि सिरसि चरन्त्यो वदन्त्युत्तमम् ॥ श्रीमद् ० १०।१३।२६

४- नन्दावयः समागम्य व्रजकार्यममंत्रयम् । आम्बु० १०।११।२१

ब्रह्मस्य सात्त्विकस्तौक्यपूर्णं प्रेम वर्धते ॥ श्रीमद् १०। १३। ३६

५- गोपमुदा महीत्पाताननुमय बृहद्वने ।

नन्दादयः समागम्य व्रजकार्यं समं व्रजन् ॥ श्रीमद् १०। ११। २१

मथुरा नगरी तो स्पष्ट ही ब्रज सीमा से बाहर थी^१। यहाँ तक कि वृन्दावन को भी ब्रज के निकटवर्ती एक सुन्दर नव कानन कहा गया है^२। जब गोकुल पर कंस ढकड़ द्वारा नित्य नर बल्ल्यावार होने लगे तो किती महान् वनिष्ट के होने से पूर्व ही ब्रजवासियों ने ब्रज को परित्याग कर अन्यत्र जाने का निर्णय कर लिया था^३। किन्तु उपर्युक्त सीमा केन्द्र ब्रज की ही बृहत्तर ब्रज में तो समस्त मथुरा मण्डल आता है और आजकल ब्रज चौरासी कोस में विस्तीर्ण माना जाता है।

मथुरा-

श्रीकृष्ण की जन्मभूमि होने का सामान्य मथुरा पुरी को प्राप्त है। मथुरा में कृष्ण का नित्य सान्निध्य रहता है। संभवतः इसीलिए मथुरा भी सप्त पुरियों में परिगणित है^४। स्कन्द पुराण में मथुरा का विस्तृत माहात्म्य वर्णित है। उसमें कहा गया है कि जैसे तत्त्व ज्ञान से दुःख की निवृत्ति हो जाती है वैसे ही मथुरा के दर्शन मात्र से पापों का नाश हो जाता है^५। श्रीमद्-भागवत तथा स्कन्दपुराण में मथुरा का नाम "मथुरा" भी दिखाया गया है^६।

१- यदि कंसाद्विभेणित्वं तर्हि मां गोकुलं नय । श्रीमद् १०।३।४६।

२- वनं वृन्दावनं नाम फलव्यं नवकाननम् ।

गोप गोपीनवां सेव्यं पुण्याद्रि तृणवीरुघम् ॥ श्रीमद् १०।११।२८

३- उत्थातव्यभितोऽस्मामि गोकुलस्य हितोऽणिभिः ।

जायान्त्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः ॥ श्रीमद् १०।११।२३

यावदोत्पातिको रिष्टो ब्रजनाभिभवेदितः ।

तावद्बालानुपादाय यास्यामो न्यत्र सानुगाः ॥ श्रीमद् १०।११।२७

४- मथुरा मगवान्यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः ॥ श्रीमद् १०।१।२८

५- व्योध्या मथुरा भाया काशी कांची अवन्तिका ।

पुरी द्वारावतो जैव सप्तोत्ता मोदादायिकाः ॥

६- स्कन्दपुराण , वैष्णव सप्त, मार्गशीर्ष माहात्म्य अध्याय १७

७- स्कन्दपुराण २।५।१७।८ तथा श्रीमद्भागवत १०।१।१०

प्राचीन काल में मथुरा^१ माथुरा^२ और शूरसेन^३ देशों की राजधानी थी। उस समय शूरसेन ही वहाँ के शासक थे। यदुवंशीय अन्य राजाओं की राजधानी भी मथुरा ही थी। कृष्ण के जन्म से अतिरिक्त कृष्ण की वंसावधादि अन्य अनेक लीलाओं के कारण भी मथुरा कृष्ण भक्तों का पुण्यस्थल बन गया है।

वृन्दावन कथा वृन्दारण्य-

श्रीकृष्ण का विविध बाल एवं किशोर लीलाओं के कारण वृन्दावन महान् वाक्प्राण का केन्द्र है। श्रीकृष्ण के अधिकांश लीला विहारों का केन्द्र वृन्दावन ही था। अतः वृन्दावन का माहात्म्य मथुरा से भी अधिक है। वृन्दावन का प्रमुख विशेषता है उसका प्राकृतिक सौन्दर्य। वहाँ सदा सघन वृक्षाँ कुजों और वृन्दा (तुलसी) के सघन गुल्मों से आवेष्टित रहता है। वृन्दा (तुलसी) कृष्ण प्रिया है जिसका माहात्म्य श्रीमद्भागवत में बहुत है। श्रीमद्भागवत में वृन्दावन के प्राकृतिक सौन्दर्य का बहुत ही ललित वर्णन मिलता है जिसका सारांश यह है कि वृन्दावन में फरनों के कल कल नाद से फिल्लियों का फनकार दब जाता है था। वहाँ की भूमि प्रपातों से निरन्तर उड़ते हुए जल कणों के कारण आर्द्र वृक्षाँ और अत्यन्त हरित वृक्षाँ से आवेष्टित थी। अगाध नदी (यमुना) के मुक्ति प्रसंग की आर्द्रता और वहाँ उगे हुए वृक्षाँ की हरीतमा की सूर्य की तीक्ष्ण किरणों भी नहीं सुखा सकती थीं। वहाँ चित्र विचित्र फल पत्तों सुशोभित रहते थे। मयूर, मृग, कौकिल, सांसादि कलरव करते रहते थे। समस्त वृन्दावन शीतल चन्द्र ज्योत्स्ना से रंजित रहता था। उसके नवसल्लव यमुना जल के स्पर्श से शीतल मन्द पवन की गति से हिलते रहते थे। लता-धूम सदैव सुन्दर सुरभित पुष्पों से मण्डित रहते थे।

१- श्रीमद् १०।१।२७-२८

२- अच्युतलसि कल्याणि गोविन्द चरण प्रिये।

३- सद्यत्वालि कुलै बिभ्रद् दृष्ट स्तेऽति प्रियेऽच्युतः॥ श्रीमद्. १०.३७.६.

४- श्रीमद् १०।१८।१८ । १०।२६।२१

अपनी उपर्युक्त विशेषताओं के कारण वृन्दावन में ग्रीष्म काल में भी वसन्त ऋतु हो दिखाई देती थी । इसलिए श्रीकृष्ण ने बलराम सहित गोचारणादि के लिए वृन्दावन को चुना था । श्रीकृष्ण के चरण चिन्हों से अर्ध शोभा प्राप्त करने के कारण गोपियों के विचार से तो वृन्दावन मूलोक को कीर्ति सर्वत्र फैला रहा है । श्रीकृष्ण के निवास के कारण वृन्दावन के वातावरण से क्रोध, लोभ, द्वेषादि की निवृत्ति होगई थी । और नैसर्गिक और रहने वाले प्राणी भी परस्पर प्रेम से रहते थे । वृन्दावन में लोक प्रसिद्ध झीढ़ारं करते हुए कृष्ण और बलराम वहाँ की नदी, पर्वत-कन्दरा, कुंज वारं सरोवरों में विहार करते थे । उसी निसर्ग-सुन्दर वृन्दावन में कृष्ण बलराम स्व अन्य गोप बालकों के साथ गोचारण करते हुए वेणु वादन करते थे ।

१- ब्रजेविभ्राहितोरेव गोपालच्छद्म मायया ।

ग्रीष्मोनामर्तुर्मवन्नाति प्रेयाःशरीरिणाम् ॥

स च वृन्दावन गुणैर्वसन्त इव लक्षितः ।

यत्रास्ते मगवान्चाक्षाद् रामेण सह केशवः ॥ श्रीमद् ० १०।१८।२-३

२- वृन्दावनं सरिव भुवो वितनोति कीर्तिं यदेवकी सुत फटाप्लुज लब्ध लक्ष्मि ।

गोविन्द वेणु मनु मत् मयूर नृत्यं प्रेक्षाद्रि सान्त्वपरतान्य समस्त सत्त्वम् ॥ श्रीमद् ० १०-२१

वृन्दारण्यं स्वपद स्पर्शं प्राविशद् गतिकीर्तिः ॥ श्रीमद् ० १०।२१।४

३- यत्र नैसर्गवैराः सहासन्मृगादयः ।

मित्राणीवाजितावाच हृत रुद तर्जकादिकम् ॥ श्रीमद् ० १०।२३।६०

४- स्व तौ लोक सिद्धामिः झीढामिष्वेस्तुवै ।

नाद्रि द्रोणि कुंज काननेषु सरस्सु च ॥ श्रीमद् ० १०।१८।१६

५- कुसुमित वनराजि ^{गुप्ति} _म दिक्कुल घुष्ट सरः सरिन्महीध्रम् ।

मधुपति रङ्गाह्व चारयन्ताः सह पशुपाल वतश्चकुल वेणुम् ॥

श्रीमद् ० १०।२१।२

यमुना-

ब्रज में प्रवहमान कलिंद-तनया यमुना कृष्ण लीला का अत्यन्त महत्वपूर्ण उपकरण है। कृष्ण जन्म से ही कृष्ण और यमुना का सम्बन्ध सुदृढ़ है। कृष्ण के जन्म के थोड़ी ही देर बाद वसुदेव उन्हें यमुना पार करके नन्द के गोकुल में ले गए। वहाँ से बढ़ी हुई यमुना ने भी उन्हें मार्ग दिया^१। गोकुल भी यमुना तट पर ही स्थित है। कृष्ण का शैशवयमुना के पुलिन प्रदेश पर गोप बालकों के साथ विविध क्रीड़ा करते हुए व्यतीत हुआ। कंस के अत्याचारों से पीड़ित होकर जब गोप गण गोकुल से वृन्दावन आए तो बलराम और कृष्ण को यमुना के पुलिन // प्रदेश देकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। श्रीकृष्ण ने यमुना तट को गोप बालकों के साथ खेलने के सर्वोत्तम स्थान के रूप में चुना। वहाँ बड़ी बालुका कोमल और स्वच्छ थी। वहाँ हरे भरे वृक्षा थे, कमलों के सुवास से वाक्-चिंत प्रमत्तों का गुंजन और पक्षियों का कलख होता रहता था। बलराम कृष्ण अपने गो-वत्सों को यमुनातट पर ही चराया करते थे। ब्रजवासियों के लिए यमुना केवल एक रमणीय जलाशय ही नहीं है वह उनके जीवन का साधन है। कालिय नाग के रहने के कारण जब यमुना का जल विषेला हो गया और उसके पीने से ब्रजवासी गो-गोपगण मृत प्राय हो गए तो श्रीकृष्ण ने कालिय

१- मघोनि वर्णत्यसदृशमानुजा गभीरतोयोयजवौर्मिके निला ।

मयानकावर्त शताकुला नदी मार्गं वदौ सिन्धुरिव त्रियः पतैः ॥

श्रीमद् ० १०।३।५१

२- वृन्दावनं गोवर्धनं यमुना पुलिनानि च ।

वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राम माधवयोरुभे ॥ श्रीमद् ० १०।११।३६

३- बहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः स्वकेलि सम्पन्नदुलाब्जबालुकम् ।

स्फुटत्सरौगन्ध हृतालपत्रिक ध्वनि प्रतिध्वानलसद्बुमाकुलम् ॥ श्रीमद् ० १०।१३।५

४- कदाचियमुनातीरे वत्साश्चारक्योः सदैः ॥ श्रीमद् ० १०।११।४१

नाग को मार मगाया और यमुना का जल शुद्ध किया^१। कृष्ण ने गोप कुमारिकाओं के चौर हरण की लीला भी उन कुमारियों के यमुना में नग्न स्नान के विरोध स्वरूप की थी। जलाशय में नग्न स्नान से वरुण देव का अपमान होता है। यमुना के नग्न स्नान का विरोध कर श्रीकृष्ण ने यमुना के प्रति अपनी पूज्य बुद्धि का प्रकाशन किया। कृष्ण की सबसे मधुर लीला- रास लीला के उदीप्त विभाव के रूप में भी यमुना का महत्व है। यमुना का विशाल शीतल रजत कणा-कीर्ण मनोहर पुलिन प्रदेश ही रास लीला की रंग स्थली है।^२ अन्त में यमुना का सबसे अधिक महत्व श्रीमद्भागवत में उसे कृष्ण पत्नी कालिन्दी के रूप में प्रतिष्ठित कर प्रदान किया गया है। कृष्ण की बाठ प्रमुख महिषियों में एक कालिन्दी भी है।^३ इस प्रकार कृष्णप्रिया होने के कारण कृष्णभक्ति के वेष्माव सम्प्रदायों में यमुना की बड़ी मारी मान्यता है। श्री बल्लभाचार्य के "यमुनाष्टक" में यमुना की बड़ी महिमा गाई गई है। ✓

गिरिराज गोवर्धन-

ब्रज स्थित गोवर्धन पर्वत ब्रजवासियों और उनके गोधन के लिए वरदान तुल्य है। श्रीमद्भागवत में हन्द्र यज्ञ भंग प्रसंग में श्रीकृष्ण ने गोवर्धन को स्वयं अपना रूप बताया है। अपने "गोवर्धन" नामको सार्थक करते हुए यह पर्वत

१- कण्वविक्र ॥ श्रीमद्भागवत १०। १६

२- यूयं विवस्त्रा यदपो वृत्तव्रता व्यगाहतेतद्वदु देवहेतुनम् ॥ श्रीमद् १०। २२। १६

३- नमः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिम्बालुक्मम् ।

रमे तत्परलानन्द कुमुदामोदवायुना ॥ श्रीमद् १०। २६। ४५

४- कालिन्दीति समाख्याता वसामि यमुनाजले ।

निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युत दर्शनम् ॥ श्रीमद् १०। ५८। २२

ज्योपयेम कालिन्दीं सुपुण्यत्वदां ऊर्जिते ।

वितन्वन्परमानन्दं स्वानां परम मंगलम् ॥ श्रीमद् १०। ५८। २६

५- शैलोऽस्मीति हुवन् मूरि वलिमादद् बृहद् वपुः ॥

श्रीमद् १०। २४। ३५

ने केवल हरित तृण, जल, कन्द मूल फलों और कन्दों से "गोधन" का संवर्धन करता था वपितु इन्द्र कोप के कारण जल और उपल वृष्टि से नष्ट होते हुए व्रज का हसने हँस बनकर भी जाण किया था। इसी लिए गोवर्धन पर्वत का नाम होमह्वर भी पड़ गया। श्री कृष्ण सेवकों में गोवर्धन को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। श्रीकृष्ण ने इन्द्र की पूजा का निराकरण करके गोवर्धनाचल की पूजा का आरम्भ किया। इसी से कृष्ण भक्ति में गोवर्धन के माहात्म्य का सहज अनुमान हो सकता है।

गौर -

भारतीय संस्कृति में गौ का स्थान बड़ा ऊँचा है। गौ को माता के समान पूजनीय माना गया है। गौ में समस्त लोकों की स्थिति और सम्पदाओं का जड़ निधान परि कल्पित किया गया है। जब पृथ्वी पर जसुरों के अत्याचार बढ़ते हैं तब वह गौ रूप धारिणी होकर ही जगन्नियन्ता से अपने उद्धार के लिए प्रार्थना करती है। जैसे पुराणों से इसकी पुष्टि होती है। मगवान् के अवतार के प्रसुप्त हेतुजों में "गो ब्राह्मण हिताय" भी परिणित होता है। श्रीकृष्णावतार के साथ गौ ने और भी अधिक समाज और महत्व प्राप्त किया और भारत वर्ण में राष्ट्रीय मान बिन्दु की भाँति प्रतिष्ठित होगई।

१- हन्तायमद्रिखता हरिदास वयो यद्रामकृष्णचरणस्पर्श प्रमोदः ।

मानं तनोति सहगोणयोः स्तवोर्यत्पानीयं सूयसकंदरकंदं मूलैः ॥

श्रीमद् ० १०। २१। १८

२- तस्मादुगवां ब्राह्मणानामैश्वर्यम्यतां मखः ।

य इन्द्रयागं संमारास्तेरयं साध्यतां मखः ॥ श्रीमद् ० १०। २४। २५

३- भूमिर्दृष्टनुपव्याजं देत्यानीकं शताश्रुतैः ।

बाक्रान्ता भूरि भारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥

गोभूत्वाश्रुमुखी सिन्धुं क्रन्दन्ती करुणं विभोः ।

उपस्थितान्तिके तस्मै व्यसनं स्वमवोक्तं ॥ श्रीमद् ० १०। १। १७-१८

श्रीकृष्ण का बाल और किशोर जीवन गौ बों के साथ बीता । गौ बों की सेवा शूष्णा, उन्हें चराना, दुहना, कलकृत करना, उनके बछड़ों के साथ क्रीड़ा करना तथा उन्हें प्राणाधिक प्रेम करते हुए, समस्त संकटों से उनकी रक्षा करते हुए उनका संवर्धन करना श्रीमद्भागवत की दशम स्कन्धीय लीलाओं से समर्थित है। हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों ने इस 'गोपाल' कृष्ण का आदर्श श्रीमद्भागवत से ही ग्रहण किया है।

नन्द वादि गोप गण स्व गोप बालक (कृष्ण सखा)

गोप बालक स्व गोपियाँ श्रीकृष्ण लीला के नित्य सहचर हैं। गोपियों की श्रीकृष्ण के प्रति प्रेमा भक्ति तो कृष्ण काव्य का प्रबल सर्व प्रधान विषय ही है वतः उसे बागे पृथक् रूप से विकसित किया जायगा। यहाँ श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं के उपकरण रूप नन्द वादि वयोवृद्ध गोप गण स्व गोचारण वादि क्रीड़ाओं के सहचर सुबल, स्तोक कृष्ण, श्रीदामा वादि गोप बालकों के विषय में किञ्चित् विचार किया जाता है। वयोवृद्ध गोपों में सबसे महत्वपूर्ण नन्द हैं। नन्द को श्रीकृष्ण के पालक पिता होने का सौभाग्य प्राप्त है। वसुदेव सखीजात शिशु कृष्ण को नन्द ब्रज में ले गए थे। नन्द के प्रांगण में ही श्रीकृष्ण बड़े हुए और जैक शिशु सुलभ क्रीड़ाओं से नन्द और उनकी पत्नी यशोदा को बाह्लाद प्रदान करते रहे। इस बाल लीला के गान में सूर ने अपनी काव्य प्रतिभा का जैसा चमत्कार दिखाया है उसके परिचय की आवश्यकता नहीं है।

नन्द ने अपने गोकुल में श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव बड़े ही धूम धाम से मनाया । नन्द ने अपने घर बाहर हुए अन्य गोपों को इस प्रसन्नता के

१- श्रीमद् ० १०।११।३८ , १०।११।१-६ तथा १०।१७

अन्यत्र भी -

कुसुमित वनराजि शुष्मिभृगदिजकुलमुष्ट सरःसरिन्महीध्रम् ।

मधुपतिखगाह्य चारयन्ताः सहपशुपाल बलशकुज वैष्णुम् ॥

श्रीमद् ० १०।११।२

बवसर पर वस्त्र, वामूणण और गौर दान में दी^१। नन्द और कृष्ण के पिता वसुदेव में परम भेरी थी और वे परस्पर मिलते रहते थे। नन्द स्व ब्रजवासी अन्य गोप श्रीकृष्ण में अत्यन्त ही स्नेह रखते हैं। श्रीकृष्ण उनके प्राणाधार हैं, वे पूर्ण^{तया} कृष्णाश्रित हैं। जब श्रीकृष्ण कालिय दह में सर्प-ग्रस्त थे तो नन्दादि गोप गण भी उनके पीछे कुण्ड में घुसने लगे और श्रीकृष्ण की प्राण रक्षार्थ परम व्याकुल होगये। नन्दादि गोप गण श्री कृष्ण के अप्राकृत, अद्भुत कर्मों को देखकर परम विस्मित रहते थे। अन्य गोपगण श्रीकृष्ण की विचित्र लीलाओं के विषय में नन्द से वार्तालाप करते। श्रीकृष्ण का गोपों के प्रति आत्यन्तिक प्रेम था किन्तु गोप गण उसके कारण के विषय में अनभिज्ञ थे और विस्मय चकित रहते थे। एक बार जब नन्द यमुना में स्नान कर रहे थे तो वरुण का एक दूत उन्हें फल कर जने स्वामी वरुण के समीप ले गया। गोप गणों के श्रवण से श्रीकृष्ण वास्तविकता जानकर तुरन्त वरुण के समीप पहुँचे। वरुण ने उनकी अभ्यर्थना की। श्रीकृष्ण तब नन्द को सहस्रत ब्रज में लाए। नन्द ने अन्य गोपों से श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व की चर्चा की। और गोपों ने उन्हें साक्षात् ईश्वर समझा^५। श्रीकृष्ण ने गोपों पर अग्रह कर उन्हें भी अपना अज्ञातीत धाम और फिर सगुण ब्रज के लोक का दृश्य दिखाया जिसे देखकर वे परमानन्दित एवं विस्मित हुए। गोवर्धन धारण के समय भी गोपों और नन्द में

१- नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः । इत्यादि श्रीमद् ० १०।५

२- श्रीमद् ० १०।५। १६-३२

३- श्रीमद् ० १०।१६, २२-२३

४- श्रीमद् ० १०।२६

५- नन्दस्त्वतीन्द्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम् ।

कृष्णोच सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितो ब्रवीत् ॥

ते त्वीत्सुवयधियो राजन्मत्वा गोपास्तमीश्वरम् ।

अभिः स्वगतिं सूक्ष्मा मुपाधास्यदधीश्वरः ॥ श्रीमद् ० १०।२८। १०-११

६- श्रीमद् ० १०।२८। ११-१७

श्रीकृष्ण के अति प्राकृत व्यक्तित्व के सम्बन्ध में बातचीत हुई थी और नन्द ने गार्गाचार्य के कथन के अनुसार श्रीकृष्ण का ईश्वरत्व प्रतिपादित कर उनकी शंका निर्मूल की थी^१।

कृष्ण के प्रियतम सखा गोप बालकों का कृष्ण की बाल लीला में बड़ा ही महत्व है। इनके सहयोग से लीला में एक विचित्र रस की सृष्टि होती है। इनके अभाव में श्रीकृष्ण की वत्सवारण, गो चारण, वन भोजन, वन विहार, मल्ल क्रीड़ा आदि शताधिक बाल लीलाओं की कल्पना ही नहीं की जा सकती। अनेक चित्र विचित्र रूप देहधारी देवियों का वध श्री कृष्ण ने अपने सखाओं के साथ क्रीड़ा करते हुए उनके सान्निध्य में ही किया^२। सूर आदि कवियों ने ग्वाल बालों को श्रीकृष्ण के साथ आत्मसात् कर जिससे तन्मय भाव से उनको चित्रित किया है उसका प्रेरणा स्रोत श्रीमद्भागवत ही है। श्रीमद्भागवत में कृष्ण बलराम के खेल के साथियों में "श्रीदामा", "सुबल" तथा "स्तोककृष्ण" का एक स्थल पर तथा "श्रीदामा", "वृष्णभ" और "मद्र सेन" का दूसरे स्थल पर उल्लेख^३ है। श्रीकृष्ण और बलराम इन गोप बालकों के दो दल बनाकर पीठ पर चढ़ी साने सिलाने आदि के विविध खेल खेलते थे और कृष्ण पराजित होते थे। गोप सखाओं के साथ ग्रीष्म ऋतु में गोचारण

१- श्रीमद्भागवत १०। २६

२- " " स्कन्ध १० अध्याय ११ से ३७ तक

३- श्रीदामा नाम गोपौलो राम केशवयोः सखा ।

सुबल स्तोक कृष्णाया गोपाः प्रेम्णोदमज्ज्वन् ॥ श्रीमद् १०। १५। २०

राम संघट्टिनो यर्हि श्रीदाम वृष्णभादयः ।

क्रीडायां जयनिस्तास्तानूहुः कृष्णादयो नृप ॥

उवाह कृष्णोभगवत् श्रीदामानं पराजितः ।

वृष्णभं मद्रसेनस्तु प्रलम्बो रौहिणी क्षुत् ॥

श्रीमद् १०। १८। २३-२४

४- श्रीमद् १०. १८. १९-२५

करते हुए श्रीकृष्ण वृद्धों की सघन झायामें विमान करते थे । इस प्रसंग में श्रीमद्भागवत में एक स्थान पर कृष्ण ने अपने दस सखाओं को एक साथ सम्बोधित करते हुए वृद्धों के महदुपकार की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया है। उनके नाम हैं :- १- स्तोके कृष्ण २- बंशु ३- श्रीदामा ४- सुबल ५- कर्जुन ६- विशाल ७- कणम ८- तेजस्वी ९- देवप्रस्थ वीर १०- वल्लभ । पुरावादि कवियों ने अपने पदों में "श्रीदामा" और "सुबल" का उल्लेख प्रायः किया है।

यशोदा-

कृष्ण काव्य में वात्सल्य रस का सबसे बड़ा वाहय यशोदा है। विश्व साहित्य में कदाचित् ही यशोदा के समकक्ष वात्सल्य के किसी अधिष्ठान की सृष्टि हुई हो। सूरदास ने श्रीमद्भागवत से किसी अधिष्ठान की सृष्टि हुई हो। सूरदास ने श्रीमद्भागवत से यशोदा के वात्सल्य-जीवित व्यक्तित्व को लेकर अपनी दिव्य लेखनी से उसके चरित्र को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया । श्रीमद्भागवत में यशोदा का जो स्वरूप विद्यमान है, उसकी प्रमुक्तम विशेषतारं संक्षेप में इस प्रकार है :-

१- निदाघार्कतये तिग्मे झायामिः स्वामिरात्मनः ।

जातपत्रायितान्बोद्धुं हुमानाह व्रजोक्तः ॥

हेस्तोक कृष्ण हे वंशौ श्रीदामन्सुबलार्जुन ।

विशालर्णम तेजस्विन्देव प्रस्थ वल्लभ ॥

पश्येतान्महाभागान्परार्थिकान्त जीवितान् ।

वातवर्णार्तिप हिमान्सहन्तो वारयन्ति नः ॥ श्रीमद् ० १०। २२। ३०-३१, ३२

२- खलु श्याम ग्वालनि संग ।

सुबल हलधर बरु श्रीदामा करत नाना रंग ॥

सूर सागर प्रथम खण्ड पृ० ३३३

वात्सल्य का जगाध सागर उसके हृदय में प्रतिदाण तरंगित होता रहता है। अपने पुत्रों की दोग कामना से जहर्निश वह स्वस्ति वाक्, दान, टौने टोटके बाँदि करती रहती है। जब श्रीकृष्ण यमुना में कालिय नाग के पास में ग्रस्त थे तो पता पाकर यशोदा तत्काल वहाँ पहुँच गई तथा कालिय हृद में प्रवेश करने लगे तब गोपियों ने बलात् उसे रोक लिया। यशोदा अपने पालित पुत्रों - श्रीकृष्ण और बलराम की संवर्धना के विविध कार्यों - उबटन, स्नान, वस्त्रावेष्टन, कल्याण-भोजन, क्रीडाजादि के संभार में ही अपने जीवन का चरम साफल्य समझती है। बलराम और कृष्ण अपनी माता रोहिणी का उतना कहा नहीं मानते जितना यशोदा का। जहाँ वह बलराम और कृष्ण में एक समान स्नेह रखती है, वहाँ अन्य गोप बालकों को भी बहुत प्यार करती है।

यशोदा जहाँ मातृत्व के उच्चतम वासन पर सुशोभित है वहाँ वह एक परम गृह कार्य दत्ता वादश गृहिणी भी है। उसके सदाचार वास्तिकता बादि गुणों से गृह धन धान्य और सौभाग्य पूर्ण है क्योंकि वह स्वयं परम सौभाग्य शालिनी है। नारी सौंदर्य का भी वह उत्कृष्ट प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रकार श्रीमद्भागवत में यशोदा का एक बड़ा ही सजीव चित्र विद्यमान

१- तर्क माळमपाययत्तनं स्नेहस्तुतं सस्मितमीदाती मुलम् ।

कृष्ण मुत्पृज्य जैन सा ययावुत्तिच्यमाने पयसि त्वधिष्ठिते ॥

श्रीमद् ० १०।६।५

२- श्रीमद् ० १०।७।१९

३- ,, १०।१६।२१

४- ,, १०।१५।४४-४६

५- ,, १०।११।१२- २०

६- ,, १०।६- १-७ तथा १०।६।२०

७- दौर्म वासः पृथु कटितटे विप्रती सूत्रनदं ।

पुत्रस्नेहस्तुतं कुच युगं जातकम्पं च सुभुः ।

रज्ज्वाक्याश्रिम मुजवलतु कंकणी कुण्डले च । रिवन्मववत्रं कबर विगलन्मास्तकि

निर्ममन्थ ॥ श्रीमद् ० १०।६।३

है जो कृष्ण भक्त कवियों के लिए विशेष प्रेरणादायी रहा है।^१

जट्कतु-

परमेश्वर की विचित्र दृष्टि में काल प्रेरित नाना ऋतु मानव प्राणी के अन्तर्गत एवं बहिर्गत को बहुत प्रभावित करती है। इसीलिए विश्व के बाहुल्य में- विशेषकर शीतोष्ण कटिबन्ध (*Tropical Zone*) में स्थित भारतवर्ष के साहित्य में ऋतु सम्बन्धी साहित्य काफी मात्रा में पाया जाता है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में जट् ऋतु वर्णन पर बहुत सामग्री है। यह सामग्री बालम्बन और उद्दीप्त दोनों विभावों के रूप में पायी जाती है। श्रीमद्भागवत में हमें दोनों रूपों में जट् ऋतु वर्णन प्राप्त होता है। किन्तु विशेषतया उसका उद्देश्य कृष्णलीला की मनोरम पृष्ठभूमि प्रस्तुत करना है। वर्णन और शब्द ऋतु का तो बहुत ही मनोरम वर्णन श्रीमद्भागवतकार ने एक पृथक् अध्याय में किया है। जिसका अनुकरण गोस्वामी तुलसीदास ने किया। शब्द ऋतु के मनोहारी वातावरण में ही श्रीकृष्ण की रास लीला का उपलब्ध होता है। हिन्दी के कृष्ण भक्ति साहित्य में वर्णन, शब्द और

१- तनी मंत्रन्यास प्रणयति हरिर्गद्गदमयी

स बाष्पादा रता तिलकमलिकै कल्पयति च ।

स्तुवाना प्रत्युषे दिशति च मुने कर्मणमसी ।

यशोदा मूर्तिव स्फुरति सुखात्सत्यपटला ॥ भक्ति रसाभूत सिन्धु में उद्धृत पृ० ३६६

२- श्रीमद् ० १०।२०

३- भगवानपितारात्रीः शब्दोत्फुल्लमल्लिका : ।

वीक्ष्यरन्तु मनश्चै योगमायामुपाश्रितः ॥

श्रीमद् ० १०।२६।१

वसन्त काल में कृष्ण की गोपियों के साथ विविध प्रेम लीलाओं का बाधार
श्रीमद्भागवत का कलु वर्णन ही है।

२- श्रीकृष्ण की जलौकिक रूप माधुरी

भारतीय साहित्य में श्रीकृष्ण का सर्वांग सुन्दर व्यक्तित्व
कुछ ऐसी बाधारभूत धारणा पर चित्रित हुआ है कि कवि द्वारा सौंदर्य की
जितनी कल्पना की जा सकती है, श्रीकृष्ण के वास्तविक रूप वर्णन में वह
सब अपर्याप्त और अक्षय ही सिद्ध होती है। जिसने उसे देखा है वह उसका
वर्णन नहीं कर सकता- 'गिरा जनक नयनं त्रिभुवनं बानी । श्रीमद्-
भागवत में श्रीकृष्ण को अन्तः सौंदर्य के निधान रूप में चित्रित किया गया
है। अपनी योग माया से परब्रह्म ने श्रीकृष्ण रूप में मानव लीला के योग्य
जो दिव्य विग्रह धारण किया था उसके सौंदर्य से वे स्वयं ही विस्मित थे
फिर ह्तर प्राणियों का तो कहना ही क्या है। समस्त सौभाग्य लक्ष्मी
का बाह्य रूप उनका दिव्य विग्रह अपने की प्रतीकों से बाभूषणों को भी

१- ताः समादाय कालिन्दा निर्विश्य पुलिनं विभुः ।

विकसत्कुन्द मन्दार सुरभ्यन्तः षट् पदम् ॥

शरच्चन्द्रांशु सन्दोहध्वस्तदौजातमः शिवम् ।

कृष्णाया हस्ततरलाचितलोपलबालुकम् ॥

श्रीमद् ० १०।३१।११-१२

२- कास्त्रया से कलपदायत मूर्च्छितेन

सम्प्रीक्षितार्यं चरितान्न चेतत्रिलोक्याम् ।

त्रैलोक्य सौमगं भिन्नं च निरीदय ह्य

यद् गोविन्दममृशाः सुलकान्यविभ्रम् ॥

श्रीमद् ० १०।३६।४०

सुशोभित करता था^१। सौंदर्य का जितने अधिक सारगर्भित वर्णन और बड़ा हो सकता है। जैसा कि दूसरे अध्याय में कहा जा चुका है, श्रीकृष्ण विष्णु के ही दिव्य देहधारी रूप हैं विष्णु के साकार रूप की जिन विशेषताओं की चर्चा वहाँ की जा चुकी है, वे प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण पर भी घटित होती हैं। हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण का वह चतुर्भुज विष्णु रूप तो ग्रहण किया ही है किन्तु विशेष कर जिस वन माला धारी, बर्हापीड (मोर फल का मुकुट धारण किए) नटवर वैष्णवधारी बाल और किशोर कृष्ण को चित्रित किया है उसका आधार दशम स्कन्ध पूर्वार्ध में वर्णित गोपाल कृष्ण^२ है।

वैष्णवगुण-

श्रीकृष्ण अपने सजल बलधर के समान श्याम वर्ण शरीर पर विभूत की सी कान्ति वाला पीताम्बर पहनते हैं। गुंजा के बामूणण, कानों में कुण्डल गले में वन माला और सिर पर मोर फल का मुकुट धारण करते हैं। हाथों में कवल (नवनीत बादि का) झड़ी, सींग का बाल और वेणु लिए गोपाल कृष्ण प्रणम्य है। गले में वैजयन्ती माला और कानों में कर्णिकार (कनैर) पुष्प के बामूणण भी कृष्ण को प्रिय हैं। पीताम्बर के फटे में

१- यन्मर्त्य लीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयतागृहीतम् ।

विस्मयार्तं स्वस्य च सौभगैर्द्वैः परं फलं भूषणं भूषणार्णम् ॥ श्रीमद् ०३। २। १२

२- देखिये : अध्याय २^१ विष्णु का साकार रूप^२ ।

३- श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध, अध्याय ११, १२, १३, १४, १५

४- नौमीद्वयैः प्रवपुषो तद्विदम्बराय गुंजावतंसपरिपिच्छ लसन्मुलाय ।

वन्धस्त्रये स्वतन्त्रे विजाण वेणु लक्ष्मन्त्रिये मृदु फले पशुपाणिनाय ॥ श्रीमद् ०१०। १४१

५- बर्हापीड नटवर वपुः कर्णयोः कर्णिकार

त्रिप्रदवारः कनक कपिशं वैजयन्ती च मालाम् ।

रन्ध्रान्वेणोरधर सुध्या पूरयन्तोऽप्य वृन्द-

वृन्दारण्यं स्वफरमणं प्राविशद् गीत कीर्तिः ॥ श्रीमद् ० १०। २१। ५

बांसुरी बसे हुए, सींग और बेंत बगल में दबारे हुए, बाएं हाथ में नवनीत दधि और बीड़न का स्निग्ध कवच लिए अंगुलियों में फल बादि दबारे हुए बालकृष्ण के गोप- शिशु सखाओं के साथ वन भोजन की म्हांकी का बच्चा ही सजीव चित्रछद्म श्रीमद्भागवत में विद्यमान है। गोपाल कृष्ण का शरीर मयूरर पिच्छ पुष्प और गेरु बादि नवीन धातुओं से भी चित्रित रहता था। कृष्ण बलराम और उनके साथ गोप बालक कमर में एक फेंटा करते थे जिससे युद्धादि के समय स्फूर्ति रहे। धोती के ऊपर यह फेंटा कसना ब्रज का विशेष ह पहनावा है। श्रीकृष्ण और बलराम सिर पर काक पद्म (लम्बी तुलसी) रखते थे।

कृष्ण और बलराम अपने शरीर की शृंगार सज्जा कभी कभी नूतन वाय्र पल्लव , मयूर पिच्छ और फूलों के गुच्छों से करते थे। स्थल और जल में उत्पन्न होने वाले कमलों की मालाएँ पहनते थे । बलराम नील परिधान और कृष्ण पीत परिधान धारण करते थे। गोचारण के समय उनके

१- विप्रश्च वेणुं कठर पटयोः शृंगवेत्रे च कदो ।

वामे पाणौ मसृणकवले वत्फलान्यंगुलीषु ॥

विष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्मर्मभिः स्वेः ।

स्वर्गे लोकं मिक्षति बभुषे यज्ञमुग्धालकेलिः ॥

श्रीमद् ० १०।१३।११

२- बर्हप्रसून ववधातु विचित्रितांगः । प्रौढाम वेणुवले शृंगर वोत्सवाद्यः ।

श्रीमद् ० १०।१४।४७

३- वास्फोट्य गाढ रश्मो न्यस्तद् विमोदं ॥ श्रीमद् ० १०।१६।६

४- किञ्चिदनुनिमुद्वेन काकपदाधरो बववित् ॥ श्रीमद् ० १०।१८।१२

५- कृत प्रवाल बर्हस्तवकोत्पलाब्जमालानुपूरुपरिधान विचित्र वेणौ ।

मध्ये विरजतुलं पशुपाल गोष्ठ्या रं यथा नटवरौ बवच गायमानौ ॥

श्रीमद् ० १०।१९ । ८

उनके कन्धों पर ६ गायों की बाँधों की रस्सी (नियोग पाश) भी पड़ी रहती थी^१ । मस्तक पर सुन्दर तिलक रहता था^२ । पुष्पों के कर्णामरण उन्हें विशेष शोभा प्रदान करते थे^३ । जब सुवर्ण के कुण्डल धारण करते थे तो उनकी कान्ति से उनका मुख पक्व बदरीफल के समान पाण्डु वर्ण प्रतीत होता था^४ । वे स्थान के जनन्तर सुगन्धि अंग राग का प्रयोग करते और फिर स्वच्छ वस्त्र धारण करते थे^५ । कुन्द पुष्प की मालाओं से विचित्र वेष रचना करते थे ।

वर्ण , अंग विन्यास एवं मुद्राएं -

श्रीकृष्ण का स्वेच्छोपाय नर देह साधारण मनुष्य शरीर की भाँति मात्र भौतिक नहीं अपितु शुद्ध सत्त्व मय है। अतः उस दिव्य देह का रूप सौंदर्य आदि कभी अचिन्त्य है। उसका वर्ण सजल मेघ के समान श्याम है। वह सर्वांग सुन्दर और दर्शनीय है। उसका मुख अत्यन्त मनोहर है जिस पर मधुर मुस्कान सदा खेलती रहती है। उसके चरण कमल कौश

१- नियोग पाशकृत लक्ष्मणयोर्विचित्रम् ॥ श्रीमद् ० १०।२१।१६

२- श्रीमद् ० १०।३५।१०

३- ,, १०।३५।१२

४- बदर पाण्डु वदनो मृदु गण्डं मण्डयन्मनककुण्डल लक्ष्म्या ॥

श्रीमद् ० १०।३५।२४

५- पुष्पान्धानुलिप्तांगो स्नातो विजुवाचसो ॥ श्रीमद् ० १०।३८।३९

६- कुन्द दाम कृत कौतुक वेषो ॥ श्रीमद् ० १०।३५। २०

७- अस्यापिदेव वपुषो मनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि ।

भैरो महित्ववसितुं मनसान्तरिण साधातवेव किमुवात्म सुतानुभूतैः ॥

श्रीमद् ० १०।१४।२

के समान अत्यन्त कोमल है। भगवच्चरणों का भक्ति साहित्य में बहुत वर्णन हुआ है। भक्त का मनोमग्न वहर्निश भगवान् के चरणारविन्दों में ही बटका रहता है वहीं उसे विश्राम मिलता है और वहीं उसकी अन्तर्गत तृप्ति होती है। इसीलिए भक्ति साहित्य में भगवच्चरणों की अनन्त महिमा गाई गई है। श्रीमद्भागवत में शताधिक स्थलों पर भगवच्चरणों को परम ध्येय बताया गया है। हिन्दी के भक्त कवियों ने भी अपने इष्टदेव के चरणों की वन्दना में तत्परता दिखाई है। श्रीकृष्ण के चरणों में कमल, यव, जंकुश, वज्र, ध्वजा आदि समस्त शुभ भगवत्लक्षण विद्यमान थे। जब रास क्रीड़ा के समय श्रीकृष्ण अर्धनग्न अन्तर्धान होकर थे तो गोपियों ने इन्हीं लक्षणाओं से युक्त चरण चिन्हों को श्रीकृष्ण की चरण सरणि के रूप में पहचाना था। श्रीकृष्ण की गोधूलि धूसरित कुंचित नील जलकावली भी भक्तों के मनोमग्न के लिए श्याम घटा के समान ही ~~अमोल्य~~ अमोल्य दायिनी है। श्रीकृष्ण की चारुहास मयी मनोहर चितवन तो मानों भक्तों का सर्वस्व है। इस चितवन ने गोपियों

१- तं प्रेक्षाणीय सुकुमार घनावदात्

श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुन्दरात्म्यम् ।

क्रीडन्त मप्रतिभयं कमलोदराग्निं

सन्दश्य मर्मसु रुणा मुजया चक्षद ॥ श्रीमद० १०।१६।६

२- उन्निद्र हृत्पंकज कर्णिकालये योगेश्वरास्थापित पादपल्लवम् ॥

श्रीमद० २।२।१०

३- क- चरन कमल बन्दों हरि राई । सूरदास (सूरसागर पद १)

स- पुनि मन बचन कर्म सुनायक । चरन कमल बन्दों सब लायक ॥

तुलसीदास - रामचरित मानस पृ० ७१५

ग- मन रे पस हरि के चरन ।

सुमग सीतल कमल कोमल जगतज्वाला हरण ॥ मोराबाई की पदावली

(संपा० श्री पद्मराम चतुर्वेदी) पृ० १०१

४- क- दिन परिचाये नील कुन्तलैर्नरुहाननं विभ्रदावृतम् । श्रीमद० १०।३१।१२
स- कुटिल कुन्तल श्रीमुख च ते जह उदोदाता पद्मकूट दशाम् । श्रीमद० १०।३१।१५
स- ते गौरजङ्घुरित कुन्तलबद्ध बह- वन्य प्रसून रुचिरदाणं चारुहोसम् ॥

श्रीमद० १०।१५।४२

५- त्वसुन्दरस्मित निरीक्षण तीव्र काम तन्मात्मनां पुरुष भूषण देहिदात्म्यम् ॥

४३- पदानि व्यक्त भैरवनि नन्द स्त्री भैरवमयी ।
अष्टमते दिव्यजायते ज व जां क ज ग बादिभिः ॥

का सर्वस्व हरण कर लिया है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की इस प्रणय मुसकान मयी वितवन का जैन स्थलों पर उल्लेख हुआ है। अन्य जगों के विन्यास में अमय दाया बाहु युगल, और लक्ष्मी का क्रीडास्थल विशाल वदाः स्थल कुन्दकली के समान शुभ्र दन्त पंक्ति, अरुण कमल नयन, चारु कपोल और सुन्दर नासिका भी उल्लेखनीय है।

श्रीमद्भागवत की मीमंसा स्तुति में श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का बहुत सुन्दर चित्रण हुआ है। मीमंसा ने अपने प्राणात्यय के समय त्रिभुवन कमनीय तमाल वृक्षा के समान श्याम वर्ण, सूर्य रश्मियों के समान तेजोवर्ण पीताम्बर धारी, सुन्दर अलका वाली से आवृत मुख कमल वाले श्रीकृष्ण का ध्यान किया था। गोपियाँ भी इसी कृष्ण की सुललित गति, दिव्य विलास, मनोहर मुसकान और प्रणय कटाक्षों से मुग्ध होकर प्रेमान्नाद वश उसकी लीलाओं

१- त्वत्सुन्दरस्मित निरीहाण तीव्र काम तप्तात्मनां पुरुषाण भूषण देहि-
दास्यम् ॥ श्रीमद्० १०।२६।३८

२- दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लवा न्यग्रोध नो मनः ॥

नन्द सूरुर्गतीं हृत्वा प्रेमहासावलोकनेः ॥

श्रीमद्० १०।३०।५

३० अन्य मी -

श्रीमद्भागवत १०।२६।३५ , १०।२६।४३ । १०।३०।२ ,

१०।३१।६, १०।३१।१० १०।३५।४ । १०।३५, १६-१७ , १०।३८.९.

१०।३८।१६ , १०।३८।३० आदि

३- श्रीमद्० १०।२६।३६

४- , १०।३८।६

का अनुकरण करती हुई तन्मय हो गई थी^१। गोपियाँ तो कृष्ण के सौंदर्य
रस का पान करना ही नेत्रों का परम लाभ मानती हैं^२।

ललित त्रिभंगी मुद्रा-

भक्तों का परम ध्येय श्रीकृष्ण का वेणु वादन रत त्रिभंग
ललित वह रूप है जिसमें वह अपनी बायीं मुजा पर बायाँ कपोल रखकर बाँकी
मुकुटि नचाते हुए अक्षर स्थित वंशी को उसके छिन्नो पर कोमल अंगुलियाँ फेरते
हुए बजाते हैं^३। इस त्रिभंग ललित (बाँके बिहारी) श्याम सुन्दर न जाने
कितने चित्र हिन्दी के भक्त कवियों ने अपनी लेखनी-तुलिका से उतारे हैं^४।

१- त्रिभुवनकमल तमाल वर्ण रविकर गौर वराम्बर दधाने ।

वपुरलक कुलावृता ननाब्ज विजयसत्ते रतिरस्तु मेऽनवथा ॥

ललित गति विमलसवल्गुहास प्रणय निरीक्षा कल्पितोरुमानाः ।

कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः प्रकृतिमगन्किल यस्य गोपलध्वः ॥

श्रीमद् ० १।६।३३,४०

२- वदाम्बता फलमिदं न परं विदामः सख्यः फलनु विविशयोर्व्येत्यैः ।

वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं धर्मा निपीतमनुक्तकटाक्षामोक्षाम् ।

श्रीमद् ० १०।२१।७

३- वामबाहुकृतवामकपोलो वलितमुरधराफिक्ते वेणुम् ।

कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥

श्रीमद् ० १०।३५।२

४- तरुतमालाखरे त्रिभंगी कान्ह कुंवर ठाढ़े हैं साँवरे सुबरन ।

मोर मुकुट पीताम्बर वनमाला राजत उर व्रज जन मन हरन ।

सला बंसु पर मुज दीन्है, लीन्है मुरति अधर मधुर विस्व मन ।

सूरदास कपल नयन को न किर बिलोकि गोवर्धन धरन ॥

सूरदास, सूरसागर प्र० सं० पृ० ४८२

३- श्रीकृष्ण का परब्रह्म-परमेश्वरत्व

विष्णु के अवतार स्वरूप श्रीकृष्ण के परब्रह्म परमेश्वरत्व की और द्वितीय अध्याय में संकेत किया जा चुका है। श्रीमद्भागवत में प्रतिपद पर श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व का स्थापन हुआ है और उन्हें स्पष्ट रूप से 'मगवान्' कहा गया है। सप्तम स्कन्ध में युधिष्ठिर नारद संवाद में नारद द्वारा कृष्ण को मनुष्य रूप में हिमा हुआ साक्षात् परब्रह्म बताया गया है। नारद ने युधिष्ठिर से कहा कि योगियों का अनुसंधान^{लेख} द्वितीय और निरुपाधिक परमानन्दानुभव रूप परब्रह्म ही श्रीकृष्ण रूप में उन (पाण्डवों) के प्रिय, सुहृद्, मातुलेय (मामा के पुत्र भाई) वात्मीय, पूज्य, जाज्ञा-कारी और गुरु-सभी रूपों में दिखाई पड़ रहे हैं। नारद के कथन पर युधिष्ठिर को महान् विस्मय हुआ था। भागवत के दशम स्कन्ध में जिसमें कृष्ण लीला सांगोपांग वर्णित है- कृष्ण के पर ब्रह्मत्व और परमेश्वरत्व की प्रतिष्ठा कृष्ण के अतिमर्त्य (*Super-human*) और अद्भुत कर्मों के आधार पर की गई है। वास्तव में कृष्ण के कतिपय अति मानुषिक कृत्यों, यथा शकट मंजन और यमलार्जुन वृक्षाओं के धराशायी करने की और गोप बालकों ने नन्द बाबू गोपों और यशोदा बाबू गोपी का ध्यान आकर्षित कर लिया परन्तु पहले उन्होंने विश्वास नहीं किया। फिर कुछ लोगों ने

१- सो वांश कलाः पुंसः कृष्णस्तु मगवान् स्वयम् ॥ श्रीमद् ० १।३।२

२- येनां गृहानावसतीति साक्षाद् गूढं परं ब्रह्म मनुष्य-लिंगम् ॥

श्रीमद् ० ७। १५। ७५

३- स वा जयं ब्रह्म महद्भिर्मुन्यैवैतस्य निर्वाणं सुखानुभूतिः ।

प्रियः सुहृद् : सखु मातुलेय आत्माहंणीयो विधिक्षुर्गुरुश्च ॥

श्रीमद् ० ७। १५। ७६

श्रुत्वा कृष्णं परं ब्रह्म पार्थः परम विस्मितः ॥ श्रीमद् ० ७। १५। ७७

४- ऊचुरव्यवस्थित मतीन्गोपान्गोपीश्व बालकाः ।

रुदतानेन ब्रह्म पादेन दिक्षमेतन्न संशयः ॥

न ते श्रद्धाधरे गोपा बालमाश्रित मित्युत ।

अप्रेम्य बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥ श्रीमद् ० १०। ७। १६, १७

धीरे धीरे सन्देह भी होने लगा^१। किन्तु श्रीकृष्ण के गोवर्धन धारण के उपरान्त तो ब्रजवासी गोपों के आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा। उन्होंने नन्द^२ से वास्तविक रहस्य पूछा। नन्द ने गर्गाचार्य के कथन से उनकी शंका निर्मूल की। बल्ल के गर्गाचार्य ने बताया था कि इस बल्ल ने प्रत्येक युग में अवतार लिया है और इसके श्वेत, रक्त और पीत वर्ण रहे हैं इस समय यह कृष्ण वर्ण में उत्पन्न हुआ है। यह नारायणांश है। इसे वासुदेव भी कहते हैं। कृष्ण की निम्नलिखित बाल लीलाएं उनका वर्तमानवीय रूप विशेषतया प्रकट करती हैं :-

- १- पूतना वध
- २- शकट मंजन
- ३- वृणावर्त वध
- ४- यमलार्जुनोद्धार
- ५- ब्रह्मा द्वारा वत्सहरण के उपरान्त गो-वत्स और गोप बालकों की सृष्टि
- ६- कालिय दमन
- ७- दावानल पान

- १- केचित्पदिग्ध चेतसः ॥ श्रीमद् ० १०।११।५
- २- क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम् ।
ततो नो जायते शंका ब्रजनाथ तवात्मजे ॥ श्रीमद् ० १०।२६।१४
- ३- तस्मान्नन्द कुमारोऽयं नारायण समो गुणैः ।
श्रिया कीर्त्यानुभावेन तत्कर्मसु न संशयः ॥ श्रीमद् ० १०।२६।२२
- ४- वर्णास्त्रयः किलास्यासन्नृहणतोऽनुसुतां तनूः ।
शुक्लो रक्तस्तथा पीतः क्लान्तिं कृष्णतां गतः ॥ श्रीमद् ० १०।२६।१६
- ५- श्रीमद् ० १०।२६। २३
- ६- श्रीमद् ० १०।२६।१७

८- गौवर्धन - धारण और

६- वरुण पाश से नन्द की मुक्ति

भगवदवतार कथन में सर्वत्र अन्य अवतारों की शृंखला में कृष्ण का नाम और एक प्रसंग में लीला गान की ओर पूर्वाध्यायों में संकेत किया जा चुका है। अवतारों में भी सबसे अधिक महत्व राम और कृष्ण अवतारों का है।

राम कृष्ण का जैव-

राम कृष्ण और कृष्ण का जैव श्रीमद्भागवत में प्रतिपादित हुआ है क्योंकि अनेक अवतारों में अनेक कार्यों का किया जाना भी यहाँ एक ही व्यक्ति के द्वारा किया हुआ माना गया है। सभी अवतारों का स्मृत्यु पुराणों में प्रतिपादित है और यही विचार धारा मध्यकालीन हिन्दू हृदय में गहराई से पैठी हुई है। कृष्ण भक्त हिन्दी कवियों ने वहाँ कृष्ण के परब्रह्मत्व और परमेश्वरत्व को स्वीकार किया है, वहाँ समस्त अवतारों की स्मृता को भी बड़ी आस्था से मान्यता प्रदान की है। सूर ने एक ही पद में राम और कृष्ण और वामन के स्मृत्यु को बड़ी सुन्दरता से प्रतिपादित किया है। श्रीमद्भागवत के पूर्वोक्त एवं अन्य अनेक उद्धरणों में वासुदेव और राम आदि का स्मृत्यु भक्त कवियों के लिए आवश्यक पूर्व का कार्य करता प्रतीत होता है। ब्रज में बाल लीला करने वाले कृष्ण के

१- न वै स आत्मात्मवतां सुहृत्तमः

सक्तस्त्रिलोक्या भगवान्वासुदेवः ।

न स्त्री कृतं कश्मलमश्नुवीत

न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥ श्रीमद् ० ५।१६।६

२- सूर पुराण ब्रह्म निगम नाही गम्य, तिनहिँ ऊँर मन यह विचारै ॥

सूरदास , सूरसागर द्वि० स० पु० १२५

तथा-

पय प्यावत पूतना संहारी , छैल जु बलि से दानि ।

सुपनखा नासिका निपाती, सूर सदा यह बानि ॥

वही पु० १५४३

लिए तो भागवत में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जो ब्रह्म अद्वितीय परम पुरुष, अनन्त और अगाध बोध स्वरूप है, वही नाट्य वेण धारी गोप-वंशीय बालक श्रीकृष्ण है।

४- श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का अनन्य और अलौकिक प्रेम

श्रीकृष्ण और गोपियों का पारस्परिक प्रेम कृष्ण भक्ति उद्दिष्ट साहित्य का मेरु दण्ड है। कृष्ण भक्ति साहित्य में किसी भी अन्य बात पर उतना जोर नहीं है जितना गोपी भाव की भक्ति को प्राप्त करने पर। यद्यपि आगे चलकर और भी सूक्ष्म "सहचरी भाव" बादि प्रतिष्ठित हुए। यद्यपि प्रेमभाव के विष्णव सम्प्रदायों में गोपी ही प्रतिनिधि स्वरूप है। किन्तु एक तनान्य सूत्र रूप में कहना चाहिए कि गोपी ही प्रेम का एक मात्र आदर्श है। भक्त प्रवर कविवर परमानन्द दास ने "गोपी प्रेम की धुन" कहकर अत्यन्त संक्षेप में गोपी प्रेम के जिस सर्वातिशायी उदात्त पद को ध्वनित कर दिया है, उसे बड़े से बड़े आकार वाले शास्त्र ग्रंथ भी संभवतः नहीं कर पाते। परमानन्द दास तो गोपियों के प्रेम और भागवत पुराण के अभाव में भारत के आध्यात्मिक जीवन की इतिश्री ही मान लेते हैं। नारद भक्ति सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में भी भक्ति के चरम आदर्श रूप में ब्रज गोपिकाओं

१- तत्रोद्बहत्पशुप वंशशिशुत्व नाट्यं

ब्रह्मादयः परमनन्तमगाध बोधम् ।

वत्सान्तस्त्रीनिव पुरा परितो विविन्व-

देवं सपाणि क्वलं परमैष्ट्यवष्ट ॥

श्रीमद् ० १०।१३।६१

२- परमानन्द सागर : पद संग्रह (संपादक डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल) पृ० २८६

३- जो गोपिन को प्रेम न हो तो अरु भागवत पुरान ।

तो सब बोधहु पंथहि हो तो कष्ट गमेया ज्ञान ॥ वही पृ० २८६

को ही चुना गया है^१। मानो भक्ति और गोपी भाव पर्याय ही हों। गोपी भाव से भावित हुए बिना भक्ति की कल्पना ही नहीं की जा सकती। श्री वल्लभाचार्य ने "गोप्यः वत्सार्क गुरुः" कहकर प्रेम मार्ग में गोपियों का सर्वश्रेष्ठत्व स्वीकार किया। तब यह परम रहस्यमयी वस्तु गोपी क्या है? वास्तव में गोपी परम गोपनीय प्रेम धन का अदाय कोण ही है। इस प्रेम की जितनी अवस्थाओं और रूपों की कल्पना की जा सकती है उन सबका अधिष्ठान गोपी का विशाल हृदय है। वात्सल्य, दाम्पत्य, सत्य, दास्य- सभी भावों के रूप में एक विशुद्ध प्रेमबन्ध का अगाध सागर ही गोपी के हृदय में मौजें मारता रहता है। यही नहीं गोपी तो अपने समस्त मनोरोगों- काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मान आदि को भी कृष्णा-नुराग के गाढ़ रंग में रंग कर उनका पृथक् अस्तित्व ही समाप्त कर देती है। गोपी का समस्त क्रिया व्यापार- देहेन्द्रिय प्राण धारण इसी कृष्ण प्रेम को प्राप्त करने के लिए है। यह है संक्षेप में गोपी का परिचय। गोपी भारतीय मनोणा की एक अद्भुत अमर सृष्टि है।

श्रीमद्भागवत में कृष्ण और गोपियों के प्रेम को सबसे अधिक उदात्त रूप में बहुत ही विस्तृत भाव फल पर चित्रित किया गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "कथा को विस्तार देने में और गोपी प्रेम लीला को इतना उदात्त रूप देने में भागवत पुराण अद्वितीय है।"^२ गोपियों के श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम में काम वासना का स्पर्श भी नहीं है - स्पर्श हो भी

१- यथा व्रजगोपिकानाम् ॥ नास्वभक्ति सूत्र , सूत्र २१

अत एव तदभावाद्भल्लवीनाम् ॥ शाण्डिल्य भक्ति सूत्र , सूत्र १४

२- मध्यकालीन धर्म साधना , पृ० १२३

नहीं सकता क्योंकि परमात्मा की ओर उन्मुख काम भी दिव्य वस्तु हो जाता है लौकिक सुखभोग की वस्तु नहीं रह सकता। बीर हरण के प्रसंग में स्वयं श्रीकृष्ण ने कहा है कि जिसका चित्त मुझ में लग गया है उनका काम सांसारिक भोग का हेतु नहीं हो सकता जैसे ^{उने या} समुद्र उबाले हुए घान कंदुर उत्पन्न नहीं कर सकते। गोपियों के प्रेम की इससे अधिक महत्ता क्या हो सकती है कि स्वयं श्रीकृष्ण उस के महत्व का स्थापन करें। श्रीमद्भागवत में रास लीला के प्रसंग में श्रीकृष्ण का गोपियों के प्रति वचन है कि हे गोपियों! तुमने लोक और परलोक के सारे बन्धनों को काट कर मुझसे निष्कण्ट प्रेम किया है ; यदि मैं तुमसे प्रत्येक के लिये अनन्त काल तक पुष्प पुष्प जन्म लेकर तुम्हारे प्रेम का बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता। मैं तुम्हारा कृणी हूँ और सर्वदा कृणी रहूँगा। तुम अपने सौजन्य से मुझे उक्त भाव कर और भी कृणी बनादो रही ठीक रहेगा।^{११} यह गोपियों के प्रेम की महत्ता का सीमान्त है।

गोपियों का पूर्व स्वरूप-

गोपियों के नित्य सिद्धा और साधन सिद्धा दो प्रमुख भेद हैं। नित्य सिद्धा वे हैं जो भगवान् के नित्य परम धाम में अमिन्न रूप से लीला में भाग लेती हैं। साधन सिद्धा वे हैं जिन्होंने कृष्णावतार के समय घराघाम पर अवतीर्ण होकर कृष्ण लीला में भाग लिया था। साधन सिद्धा गोपियों में से कुछ पूर्व जन्म की देव कन्यारं, कुछ, अधिगण कुछ मत्त और कुछ भुक्तियां थीं। उनकी कनारं विभिन्न पुराणों में मिलती हैं। जो भुक्तियां गोपी रूप से अवतरित हुईं उनमें से मुख्य थीं - उद्गीता, सुगीता, कल-गीता, कलकण्टिका और विपरी। श्रीकृष्णोपनिषद् में क्या है कि

“१- न मय्यपैतिजधियां कामः कामाय कल्पते ।

मर्जिता स्वधिता धाना प्रायो बीजाय नेष्टते ॥

श्रीमद् ७ १०। २२। २६

रामावतार के समय जो लच्छकारण्य वाली मुनि जन भगवान् राम के रूप सौंदर्य पर मुग्ध हो गए थे, राम ने उन्हें ब्रज में गोपी रूप में अवतीर्ण होने का वरदान दिया था। पद्म पुराण के पाताल लच्छ में उग्रतपा, सत्यतपा, हरिधामा, जाबालि, शुक्तिवा, सुवर्ण आदि लोक कणियों के तपश्चर्या द्वारा गोपी रूप में अवतरित होकर कृष्ण लीला में भाग लेने की कथा है। किन्तु इन सभी ग्रंथों से प्राचीन श्रीमद्भागवत में गोपियों को देवगिनाओं का अवतार बताया गया है जो श्रीकृष्ण के प्रियकार्य करने के लिए अवतरित हुई थीं। नन्दादि गोप और उनकी स्त्रियाँ (गोपियाँ) देवता ही हैं। इस प्रकार गोपियों और कृष्ण का प्रेम सम्बन्ध पूर्व जन्मों से जोड़ कर उसे ब्रह्म से ब्रह्म तर सिद्ध किया गया है।

कृष्ण लीला में भाग-

कृष्ण के जन्म से ही गोपियों का जीवन कृष्ण के साथ संबद्ध हो गया और वे यादजीवन कृष्ण के प्राणा बनी रहीं। कृष्ण का जन्म तो मथुरा में कसुदेव के देवकी के यहां हुआ किन्तु उन्हें तत्काल गोकुल पहुँचा दिया गया और नन्द कसोदा का पुत्र योजित कर दिया। जन्म महोत्सव भी गोकुल में मनाया गया। इस महोत्सव में सबसे अधिक उत्साह से भाग लेने वाली गोपियाँ ही थीं। आज उनके परमाराध्य का जन्म हुआ था। सौंदर्य की राशि ये गोपियाँ बहुमूल्य वस्त्राभूषण, हुंकार, वंजन,

१- दे० भागवतार्क (कल्याण) में श्री हनुमान पौदार का मातल चोरी और और हरारा शीर्षक सेल , पृ० ६६, ६७, ६८, *अर्क संहिता भी देखिए।*

२- कसुदेव गृहे साधाम् भगवान् पुरुषः परः ।

जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः ॥ श्रीमद् ० १०।१।२३

नन्दाया ये व्रजगोपा यार्क्षोमीयां च योजितः ।

कृष्णायो कसुदेवाया देवक्याया यदुस्त्रियः ॥

सर्वे ये देवताप्रथा उमयोरपि मारत ।

ज्ञातयो वन्तु सुहृदो ये च वंसमनुवताः ॥ श्रीमद् ० १०।१।६२, ६३

मणिमय कुण्डल , हार , केयूर और पुष्पावृत केश कलापों से अपूर्व शोभा
विखरती हुई, नाना बहुमूल्य उपहार लिए अतिशय जाह्लाद और औत्सुक्य
से शीघ्र ब्रजेश्वरी यशोदा के घर जा पहुँची । उस समय उनके आनन्द और
उत्साह की सीमा नहीं । बालक के चिरजीवित्व की कामना कर वे लोगों
पर हड़िद्रा और छि तैल मिश्रित जल छिड़कने और उच्च स्वर से (बघाई)
गाने लगीं ।

गोपियों का वात्सल्य भाव-

क्यापि श्रीमद्भागवत की गोपियों का प्रसृत भाव श्रीकृष्ण
के प्रति उनका मधुर दाम्पत्य भाव ही है तथापि ~~गोपियों~~ के वात्सल्य के दर्शन
भी उनमें होते हैं। अवस्था भेद से श्रीमद्भागवत की इन गोपियों की प्रौढ़ता
अथवा वृद्धावस्था ही अनुमान की जा सकती है। हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों
द्वारा चित्रित गोपियों में यशोदा के अतिरिक्त अन्य गोपियों में श्रीकृष्ण के
प्रति वात्सल्य के स्थान पर मधुर भाव का ही प्राधान्य है, किन्तु श्रीमद्-
भागवत में यशोदा के अतिरिक्त अन्य सामान्य ब्रज गोपिकाओं में भी गहरे
वात्सल्य का भाव पाया जाता है। श्रीमद्भागवत के पूतना वध प्रसंग में गोपियों
का श्रीकृष्ण के प्रति वात्सल्य भाव बहुत सुन्दर ढंग से व्यक्त हुआ है। कृष्ण
की प्राण रक्षा के लिए गोपियाँ माता यशोदा और रोहिणी की अपेक्षा
भी सर्वकें मालूम होती हैं। विहालकाय राक्षसी पूतना के वधाःस्थल पर से

१- गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोदभवम् ॥

आत्मानं भूषयान्कुर्वन्नाकल्पाज्जनादिभिः ॥ श्रीमद्० १०।१।६

२- गोप्यः सुमुष्ट मणिकुण्डलनिष्कण्ठ्य-

श्चित्राचराः पथि शिलाच्युतमात्यक्षणाः ।

नन्दातर्यं सवलया व्रजतीविरजु-

व्यालील कुण्डल पयोधर हार शोभाः ॥

ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालकैः ।

हृदिद्रावृणतैलादिभिः सिचन्त्यो जनमुज्जगुः ॥

श्रीमद्० १०।१।११-१२

कृष्ण को झपट कर सबसे पहले उठाने वाली गोपियाँ ही थीं^१। इस समय कृष्ण की आयु केवल एक मास की थी। गोपियों ने जन्त में अनिष्ट निवारण के लिए कृष्ण के सर्वांग पर गौ की पूँछ घुमाई, गोमूत्र से स्नान कराया, अंगों में गौ रज और गोमय लगाकर केशवादि नामों से रक्षा की। गोपियों ने विधिवत् जाचमनकर^२ 'ज्ज' जादि ग्यारह बीज मंत्रों से पहले अपना अंगन्यास और करन्यास किया फिर कृष्ण के अंगों में बीजन्यास कर विविध भगवन्नामों से उनकी रक्षा की^३। श्रीमद्भागवत में इसी प्रसंग में कहा गया है कि बाल धातिनी पूतना को भी जब सद्गति प्राप्त हुई तो जिन गोपियों ने कृष्ण के प्रति मातृवत् वात्सल्य दिखाया उनकी सद्गति के विषय में कहना ही क्या है? इस प्रकार कृष्ण के प्रति गोपियों का वात्सल्य भाव श्रीमद्भागवत में स्पष्टतया व्यक्त हुआ है।

गोपियों का मधुर भाव- (कान्तासक्ति)

गोपियों के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति जो मधुर कान्त भाव है उससे वे निरन्तर^४ मधुर रस^५ का आस्वादन करती रहती

१- बालं च तस्या उरसि श्रोहन्त मकुतोभयम् ।

गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातिं सम्प्रभाः ॥ श्रीमद्० १०।६।१८

२- श्रीमद्० १०।६।१६-२६

३- पूतना लोकबालहृत्सी राक्षसी रुधिराशना ।

जिघांसियापि हरये स्तनं दत्वाप सद्गतिम् ॥

किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने ।

यच्छन्निप्रयत्नं किं तु रक्तास्तन्मातरो यथा ॥

श्रीमद्० १०।६।३५-३६

हैं। भक्ति शास्त्रों में मधुर रस की साधना को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। यह मधुर रस नितान्त दिव्य, वात्मानन्द की ~~विविध~~ ~~विविध~~ है जिसका जड़ जगत् से कोई सम्बन्ध नहीं है। श्रीरूप गौस्वामी ने मधुर रस की परिभाषा देते हुए अपने ग्रंथ 'भक्ति रसामृत सिन्धु' में कहा है कि "वात्मोचित विभावादिकों से जब मधुरा रति सत् पुरुषों के हृदय में पुष्ट होती है तब वह 'मधुर' नामक भक्ति रस कहलाता है। यह मधुर रस 'निवृत्त' जनों के लिए अनुपयोगी है। यह दुरुह है रहस्यमय है और अत्यन्त विस्तृत अंगों वाला है।" टीकाकार श्री जीव गौस्वामी ने "निवृत्त" शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है -- "प्राकृत (सांसारिक) शृंगार रस के साथ इस (दिव्य) भागवत रस की समानता को देखकर जो इस (दिव्य) भागवत रस से भी विरक्त हो गए हैं" इस प्रकार मधुर भक्ति रस नितान्त अपार्थिव वस्तु है। इस रस के एक मात्र बालम्बन हैं कृष्ण और उनकी ३ प्रियारं ब्रज गोपिकारं। ये ब्रज गोपिकारं किशोरियाँ हैं। इनमें माधुर्य का नव नवोन्मेष होता रहता है। इनका हृदय सतत् प्रणय तरंगों से बान्धोलित होता रहता है। ये कृष्ण को रमण भाव से कब भजती हैं। ये बड़ी अद्भुत हैं। ये प्रणम्य हैं। श्रीमद्भागवत की गोपियों में

१- वात्मोचित विभावाद्यैः पुष्टिं नीता सताहृदि ।

मधुरारव्यो भवेद् भक्तिरसोऽसौ मधुरा रतिः ॥

निवृत्तानुपयोगित्वाद् दुरुहत्वाद्यं रसः ।

रहस्यत्वाच्चसंदिप्य विततांगोऽपि लिख्यते ॥

भक्ति रसामृतसिन्धु, पश्चिम विभाव ५ लहरी, श्लोक १, २ पृ० ४२६

२- निवृत्तेषु - प्राकृत शृंगार रस साम्यदृष्ट्या भागवतादप्यस्माद्भिरसोऽविरक्तेषु ।

वही पृ० ४२६

३- अस्मिन्नर्तुम्बनः कृष्णः प्रियास्तस्य च सुभुवः ॥

वही पृ० ४२६

४- नव नव वर माधुरी धुरीणाः प्रणय तरंग करम्बितान्तरंगाः ।

निज रमणतया हरिभजन्तीः प्रणम्य ताः परमाद्भुताः किशोरीः ॥

म० २० सिन्धु में पृ० ४२६, २७ पर उद्धृत

हमें ये सभी लक्षण मिलते हैं। श्रीमद्भागवत में बताया है कि नन्द ब्रज की कुमारिकाओं ने हेमन्त में कात्यायनी देवी का यजन करके उससे वर याचना की थी कि नन्दकुमार कृष्ण को उनका पति बनाए। इस प्रकार गोप कुमारिकाओं ने प्रारंभ से ही श्रीकृष्ण को कान्तभाव से मना। कान्तासक्ति में भक्ति के अन्य प्रकारों यथा- गुणमाहात्म्यासक्ति, वषट्पासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, वात्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति, परम विरहासक्ति आदि का बड़े ही सहज भाव से समावेश हो जाता है और श्रीमद्भागवत की गोपियों में इन सबके उदाहरण प्राप्त होते हैं। कारण कि मूल मूल एक वस्तु है प्रेम, जिसके लिए कहा गया है - "एकधाप्यैकादशधामैवति" गोपियों के प्रेम में वषट्पासक्ति, तन्मयतासक्ति और परमविरहासक्ति का सर्वाधिक प्राधान्य है और इन्हीं प्रेम दशाओं का श्रीमद्भागवत में सर्वाधिक प्राधान्य है और इन्हीं तीन प्रेम दशाओं का श्रीमद्भागवत में सर्वाधिक चित्रण भी है। हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों ने भी गोपी प्रेम की इन्हीं दशाओं का वर्णन अधिक किया है।

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम जिन रूपों में व्यक्त हुआ है उनमें से कुछ प्रमुख रूपों के कतिपय उदाहरण

१- हेमन्ते प्रथमे मासिनन्द ब्रज कुमारिकाः ।

धैरुर्हविष्यं मुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनं व्रतम् ॥

कात्यायनि महामाये महायोगिन्क्रीडोत्थरि ।

नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥

श्रीमद् ० १०।२।१-४

२- नारद भक्ति सूत्र, सूत्र ८२

नीचे दिए जाते हैं :-

क- गुणमाहात्म्यासक्ति-

न सलु गोपिका नन्दनौ भवानसिल देहिनामन्तरात्महृक् ।

विस्वनसार्थितो विश्वगुप्तये सस उदेक्षान्सात्वताङ्गुले ॥

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्पणापहम् ।

श्रवण मंगलं श्रीमदाततं भुविगुणकन्ति ते मूर्खिदाजनाः॥ १

(गोपियाँ कहती हैं - " यह निश्चय है कि आपकी केवल यशोदा के पुत्र नहीं हैं अपितु समस्त देहधारियों के अन्तःकरणों के साक्षी हैं। हे सखे ! ब्रह्मा की प्रार्थना पर आपने विश्व की रक्षार्थ यदुकुल में जन्म लिया है। जो लोग सन्तप्त जीवों को जीवन दान देने वाली , कविजन क कीर्ति , पाप नाशिनी , श्रवणमात्र से मंगल करने वाली और शान्ति-दायिनी आपकी अमृतमयी कथाओं का मूलोक्त में कथन करते हैं वे ही सबसे बड़े दानी हैं। ")

ख- स्मासक्ति-

अतियद्भवानहिन काननं वृट्टिरुंगायेत्त्वामपश्यताम् ।

कुटिलकुन्तलं श्रीमुखवते जड उदीक्षातां पद्मकृदृशाम् ॥

कास्त्र्ये ते कलपदायक मूर्च्छितेन सम्मोहितार्यं चरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ।

त्रैलोक्य सौमग मिदं च निरीक्ष्य रूपं यद्गोद्विज हुम मृगाः पुलकान्यद्विभ्रम् ॥ २

१- श्रीमद्भागवत १०।३१। ४-६

२- .. १०।३१।१५ तथा १०।३६।४०

(गौपियाँ कहती हैं -“ जब आप दिन के समय वन में विचरते हैं तो आपको न देख सकने के कारण हमें एक एक क्षण युग के समान मालूम होता है। फिर सन्ध्या समय जब हम धुंधराली अतकावली से मण्डित आपका मनोहर सुत्तारविन्द देखती हैं तो हमें नेत्रों के पत्तक बनाने वाला ब्रह्मा मूर्त मालूम होता है। हम ही क्या त्रिलोकी में और भी ऐसी कौन स्त्री होगी जो मधुर पदावली से युक्त उच्च स्वर से गाय जाने वाली आपके स्वरालापों को सुनकर और इस त्रिभुवन सुन्दर रूप को देखकर, जिससे गौ, मृगी, मृगों और वृक्षों तक को रोमांच हो जाता है, अपनी आर्य-मर्यादा से विचलित न हो जायकी ।)

ग- पूजा सक्ति-

धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य स्ता
या नन्दनन्दनमुपास विचित्रवैष्णम् ।
आकर्ष्यै वैष्णुरणितं सहकृष्णसाराः ५,
पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥ १

(गौपियाँ परस्पर कहती हैं -“ सखियो, मूढ बुद्धि होने के पर भी ये मृगियाँ धन्य हैं जो कृष्ण की लुके बांसुरी का स्वर सुनते ही कृष्ण सार मृगों के साथ आकर अपने प्रणय कटाक्षों द्वारा विचित्र वैष्णवारी नन्दनन्दन की पूजा करती हैं।)

घ- स्मरणासक्ति-

बाहुश्चैत नलिननाम पदारविन्दं
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाध बोधः ॥

१- श्रीमद्भागवत १०। २१। ११

संसाररूपपतितोत्तरणावलम्बं

गैर्लज्जामपि मनस्युदियात्सहृदा नः ॥ १

(गोपियाँ कहती हैं - " हे कमल नाम ज्ञाघ ज्ञान सम्पन्न , योगियों द्वारा जिसका हृदय में चिन्तक किया जाता है तथा जो संसार रूप में गिरे हुए प्राणियों को उससे निकालने के लिए एक मात्र अवलम्ब है, बापका वह चरण कमल हम गृह-वासिनी (प्रपंच ग्रस्त) अवलावों के हृदय में भी प्रकाशित है रहे क्योंकि हमें निरन्तर बापका स्मरण बना रहे)।

उ - दास्यासहित-

तन्नः प्रसीद ब्रजिनार्दन तैः ऽग्रिमूलं

प्राप्ताविसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ।

त्वत्सुन्दरस्मित निरीक्षायां तीव्रकाम

तप्तात्मनां पुरुष मूषणदेहिनास्यम् ॥

मत्र सौ मवत्किंकरीः स्म नो

जलरुहाननं चारु दर्शय ॥ २

(गोपियाँ कहती हैं - " हे दुःख दहन । बाप हम पर प्रसन्न होइए । हम बापकी सेवा करने की अभिलाषा से अपने घर बार छोड़ कर बापके चरणों की शरण में बायी हैं । हे पुरुष-श्रेष्ठ, बापकी सुन्दर मुस्क-राष्ट जोर धितवन से हमारा चित्त अत्यन्त काम सन्तप्त हो रहा है, बाप हमें अपना दास्य प्रदान कीजिए । हम बापकी दासियाँ हैं। हे सौ । अब आप हमें स्वीकार कीजिए और हम अवलावों को अपना

१- श्रीमद् ० १०।८३।४६

२- ,, १०।२६।३८ तथा १०।३१।६

मनोहर मुस कमल दिखार । ")

च- आत्मनिवेदनासक्ति-

मेवं विमोऽर्हति मवान्नादितुं नृशंसं सन्त्यज्य सर्वं विजयास्तव पादमूलम् ।

मल्लं भजत्वं दुरवग्रहं मां त्यक्त्वास्मान् देवो यथादिपुरुषो भजते सुमुक्षुः ।

यत्पत्यपत्यं सुहृदामनु वृत्तिरं स्त्रीणां स्वधर्मं इति धर्मविदा ह्ययोक्तम् ।

वत्सवैवमेतदुपदेशं पदे त्वयीशे प्रेष्ठो मवांस्तुमुक्तां किल बन्धुरात्मा ॥ " १

(गोपियां कहती हैं - " हे विमो ! आपको ऐसे कठोर शब्द न कहने चाहिए । हम संपूर्ण विजयों का त्याग करके एक मात्र आपके चरणों में ही अनुरक्त हैं। अतः हे स्वच्छन्द ! इस प्रकार हमें त्यागिये मत , वत्सि ह्यसि प्रकार वादि पुरुष नारायण सुमुक्षुओं को भजते हैं उसी प्रकार आप भी आप भी हमें अंगीकार कीजिए । हे प्रिय ! धर्मवत्ता आपने जो हमें स्त्रियों के धर्म पति , पुत्र , बन्धु बान्धवों की सेवा करने का उपदेश दिया सो उपदेश के विषय मूल आप ईश्वर में ही हमारे ये सब भाव केन्द्रित हों , क्योंकि समस्त देह धारियों के बन्धु बोर आत्मा तो आपही हैं।)

इ- तन्मयतासक्ति-

तन्मनस्काश्च तदालापास्तद्विचिष्टास्तदात्मिकाः ।

तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥

स्वविधां भगवतो या वृन्दावनचारिणः ।

वर्णयन्त्योऽपि गोप्यः क्रीडास्तन्मयार्थयुः ॥ " २

१- श्रीमद् ० १०। २६। ३१- ३२

२- " १०। ३०। ४३ तथा १०। २१। २०

(शुक्रदेव परीक्षित से कहते हैं - " कृष्णमना, कृष्णवार्ता परायणा, कृष्ण लीला परायणा, कृष्ण प्राणा गोपियां कृष्ण का गुण नान करती हुई स्वनी भाव विमोह हो गईं कि उन्हें अपने देह गेह की सुध-बुध्न रहो । वृन्दावन विहारी कृष्ण की विविध लीलाओं का परस्पर वर्णन करती हुई गोपियां तन्मय होगईं । ")

ज- परमविरहासक्ति-

अहो विधातस्तव न क्वचिद्व्या-

संयोज्यमेत्र्या प्रणयि देहिनः ।

तांश्चाकृतार्थान्वियुनक्ष्यमार्थकं

विक्रीडितं तेऽमकं चेष्टितं यथा ॥

कूरस्त्वमकूर समारव्यया स्म

नक्षत्रदुर्हि दत्त हरेषु वताञ्जवत् ।

येनैकदेशेऽस्तिसर्गं सौष्ठवं

त्वदीयमद्राक्ष्यं वयं मधुविणः ॥

मेतद्विधेस्याकरुणस्य नाम

भूदकूर इत्येतत्तीव दारुणः ।

योऽसावनाश्वास्य सुदुःखितं जन

प्रियात्प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥ १

निवारयामः समुपेत्य माध्वं

किंनो करिष्यन्तुलवृद्धवान्ध्याः ॥

मुकुन्दसंगान्निमिषार्थं दुस्त्यजा-

द्वेन विध्वंसित दीनवैतसाम् ॥

यस्यानुराग ललितस्मितवल्लुमंत्र

लीलावलोक परिरम्पण रासगोष्ठ्याम् ॥

नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदा
 विना तं गोप्यः कथन्वतितरेषु तमो दुरन्तम् ॥
 यो ह्यदायि ब्रजमनन्त सतः परीतो गोपे-
 विंशन्धुररजञ्जुरितालकप्रक् ।
 वेणुं क्षणान्स्मिन्महाददा निरीक्षणैः
 क्षितं क्षिणौत्यमुमुक्षु नु कथं भवेत् ॥
 एवं बुवाणा विरहाक्षुरां मृशं ब्रजस्त्रियः
 कृष्णविणक्त मानसाः ।
 विसृज्य लज्जां रुहदुः स्म सुस्वरं
 गोविन्ददामोदर माध्वेति ॥ १

(गोपियाँ कहती हैं - " और विधाता । तुम कभी किसी पर दया नहीं बाँती । तू भैरी और प्रणय के द्वारा पहले तो लोगों का संयोग क करता है फिर उनकी कामनाओं पूरी होने से पहले ही तू उनमें अकारण वियोग करा देता है। हमें तेरा यह खेल बच्चों की चष्टा के समान (अज्ञता-पूर्ण) मालूम होता है। और विधाता । तू कदा ही क्रूर है, 'क्रूर' नाम से ही तू ही यहाँ बाया है और अपने ही दिए हुए हमारे नेत्रों को एक मूर्ख की भाँति हरे से जा रहा है। और ! इन्हीं नेत्रों से तो हम मधुसूदन के एक एक कर्ण में तेरी सृष्टि का समस्त सौंदर्य निहारती थीं । यह 'क्रूर' तो कदा ही निर्दय है। ऐसे क्रूर व्यक्ति का नाम 'क्रूर' कभी नहीं होना चाहिए था। यह तो हम वियोगिनी बबलाओं को धैर्य दिए बिना ही हमारे प्रिय तम को हमारे दृष्टिपथ से दूर ले जाना चाहता है। सखियों ! चलो हम स्वयं ही जाकर माधव को रोकेगी, कुल के बड़े बूढ़े और बन्धु जन हमारा क्या कर लेंगे ? क्योंकि जिस प्रिय को बाधे पल के लिए भी झोड़ना अत्यन्त कठिन है उसका संयोग दुर्भाग्यवश विच्छिन्न हो जाने से हम अत्यन्त दीन

और व्याकुल हो रही हैं। सखियों ! जिसकी प्रणयमयी मनोहर मुस्कान युक्त मधुर बातचीत, लीलामय कटाक्ष और जालिंजनो से युक्त रास गोष्ठी में हमने कनेक रातों एक क्षण के समान बिताई थीं जब उसके बिना हम उसके विषम वियोग की बंधियारी को कैसे काटेंगी ? सखियों ! सायंकाल में गौधूलि-धूसरित जलकावली और पुष्पमालाओं से हुषामित तथा अपने गोप मित्रों से घिरे, वेणुनाद करते हुए व्रज में प्रविष्ट होने वाले कृष्ण चन्द्र के बिना हम कैसे जीवित रह सकेंगी जो अपनी मनोहर मुस्कान और कटाक्ष युक्त निरीक्षण से हमारे चित्त को बेध डालते हैं। " शुक्देव परीक्षित से कहते हैं कि कृष्णासक्त चित्ता गोपिकारं जने परम विरह कातर होकर ऐसी बातें कर रही थीं, लोक लाज छोड़कर " हे गोविन्द !, हे दामोदर !, हे माधव ! इस प्रकार फुकारती हुई जोर से रो पड़ीं ।)

ऊपर श्रीमद्भागवत के मूल वंशों से गोपियों की परम विरहासक्ति का किंचित् आभास कराया गया है। श्रीमद्भागवत में गोपियों की विरह भावना जैसे मर्मस्पर्शी रूप में व्यक्त हुई है, उसका यथार्थ व्यक्तीकरण एक दुष्कर कार्य है। उस लोकोत्तर दिव्य भाव (प्रेम) की कुछ फलक अपने मूल रूप में मिल सके इसी उद्देश्य से ग्रंथ के मूल वंशों को यहाँ उद्धृत कर दिया गया है। इन वंशों के अध्ययन से यह स्पष्ट होते खिलम्ब न लेंगा कि मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवियों ने श्रीमद्भागवत में चित्रित गोपी प्रेम को किस तत्परता और निष्ठा के साथ हृदय-गम एवं आत्मसात् कर अपनी सहज प्रतिभा और भक्ति भावना से उसे और भी विततांग, गंभीर और हृदयहकरी बना दिया। गोपियों के इस अनेक रूप कृष्ण-प्रेम की फाँकी हमें श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध पूर्वार्ध के निम्न-लिखित प्रसंगों में मिलती है :-

१- वेणु गीत (अध्याय २१) रूपासक्ति तथा तन्मयता सक्ति

२- वीर हरण (अध्याय २२) तन्मयता सक्ति ।

३- रास लीला (रास पंचाध्यायी अध्याय २६, ३०, ३१, ३२, ३३)

रूपा सक्ति, गुण माहात्म्य सक्ति, स्मरणासक्ति, दास्या-
सक्ति, सत्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति
वीर परम विरहासक्ति ।

४- युगल गीत (अध्याय ३५) रूपासक्ति तथा तन्मयतासक्ति ।

५- कृष्ण बलराम का मथुरा नमन (अध्याय ३६) रूपासक्ति,
तन्मयतासक्ति एवं परम विरहासक्ति ।

६- उद्धव की व्रजयात्रा (अध्याय ४६) तन्मयतासक्ति एवं परम-
विरहा सक्ति ।

७- उद्धव गोपी संवाद एवं भ्रमरगीत (अध्याय ४७) रूपासक्ति,
तन्मयता सक्ति एवं परम विरहासक्ति ।

वेणु कथवा मुरली-

गोपियों को कृष्ण की वीर वाक्य करने में श्रीकृष्ण की मुरली का बड़ा हाथ है। अपने त्रैलोक्य विमोहन स्वर से यह मुरली समस्त जड़ चेतन जगत् को अपने वश में कर लेती है। श्रीमद्भागवत में वेणु के प्रभाव का बड़ा ही विशद वर्णन है। परवर्ती संस्कृत कृष्ण साहित्य में भी कृष्ण के वेणु वादन के इस प्रभाव का बड़ा बीजस्वी वर्णन पाया जाता है। सम्भवतः इसका मुख्य आधार श्रीमद्भागवत ही है। श्रीमद्-

१- सन्ध्यान्मुमुक्षुत्वमत्कृति परं कुर्वन्सुहृत्सुम्बुरं ।

(क) ध्यानादन्तरम् सनन्दनमुत्तान् विस्मायन्वेधसम् ।

बौत्सुवयावलिभिर्बलिं चतुस्तम् मोगीन्द्र माधूर्ण्यम्

भिन्दन्नण्डकटाहमिति ममितो बभ्राम वंशी ध्वनिः ॥

विदग्धमाधव से भवितरसामृतसिन्धुमे पृ० १६८ पर उद्धृत

(ख) लोमान् रुद्रमन् शुनीः प्रवरमन् शोनी हहान् हर्षयन्
कौबान् विदुवमन् भोगान् विवशमन् गोवन्दमानन्दयन्
तापान् संश्रमयन् मुनीन् प्रबलमन् सप्तबाण् शोभयन्
उन्काण् प्रदीरमन् विजयते वंशी विनायः शिरणेः । अंकान

भागवत में श्रीकृष्ण की वंशी जथा मुरली के लिए सर्वत्र 'वेणु' शब्द का प्रयोग हुआ है। भागवत में कहीं भी वंशी जथा मुरली शब्द नहीं आया। अनुमान होता है कि ये शब्द परवर्ती हैं। भरत के नाट्यशास्त्र और और अमरकोश में भी वाद्य के रूप में वंशी जथा मुरली का नाम नहीं है केवल 'वेणु' और 'वंश' का उल्लेख है। संस्कृत में वेणु शब्द पुलिंग है और भागवत में भी सर्वत्र पुलिंग में ही प्रयुक्त हुआ है। किन्तु उसके श्रीकृष्ण के अधरानृत पान आदि कार्य स्त्रियोक्ति सापत्न्य भाव ही लिए हुए है। इस-लिए परवर्ती साहित्य में वेणु के स्थान पर अधिकतर वंशी और मुरली शब्दों का ही प्रयोग हुआ। हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य में तो वंशी, बांसुरी, मुरली, मुरलियाँ आदि स्त्रीलिंग शब्दों का ही प्राधान्य है। क्योंकि सूर आदि कृष्ण भक्त कवियों ने वंशी को गोपियों की सपत्नी के रूप में चित्रित किया है।

वेणु माधुरी और उसका प्रभाव-

मुरली श्रीकृष्ण की योगमाया है जिससे कि चराचर जगत् मोहित रहता है। इसकी ध्वनि सभी मृत प्राणियों के मन को हर लेती है

१- वातोर्ध्वं सुष्ठुष्णिरं नाम ज्ञेयं वंशकृतं बुधैः ।

वेणु स्व विधिस्तत्र स्वस्त्रान्य समाश्रयः ॥

भरत नाट्य शास्त्र अध्याय ३० श्लोक १

वेणुध्माः स्युर्वेणविका वीणावादास्तु वेणिकाः ॥

अमरकोश, द्वि० काण्ड सूत्र वर्ग पंक्ति संख्या १६५५

२- गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुः ।

दामोदराघर सुधामपि गोपिकानाम् ।

मुने स्वयं यवशिष्टरसं वृविन्यो

वृष्यत्वचोऽहं मुमुक्षुस्तस्मै ययार्याः ॥

श्रीमद् ० १०।२१।६

किन्तु इसका सबसे अधिक प्रभाव गोपियों के हृदय पर पड़ता है। यह उनके हृदय में स्मरोदय कर देती है। श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध पूर्वार्ध के दो अध्याय तो पृथक् रूप से वेणु माधुर्य और उसके लोकोत्तर प्रभाव का वर्णन करने के लिए ही रचे गए हैं। इनमें गोपियाँ स्वयं ही वेणु माधुरी का वर्णन करती हैं। इन दोनों अध्यायों में जो कहा गया है उसका संधिप्लुत सार यह है: श्रीकृष्ण की मुरली के स्वर में एक विचित्र जादू है। जलद श्याम वर्ण कृष्ण की मुरली के स्वर को भेष का मन्द मन्द गर्जन समझकर मत मयूर नाचने लगते हैं। उनका नृत्य देखकर पर्वतों पर विचरण करने वाले समस्त प्राणी निश्चेष्ट होकर खड़े रह जाते हैं। वेणुनाद से मुग्ध होकर मृगियाँ कृष्ण सार मृगों के साथ श्रीकृष्ण के निकट जा जाती हैं। गायें कान उठाकर मुरली की मधुर ध्वनि सुनती हुई निश्चेष्ट हैं और उनके बल्ले दूध भरते हुए स्तनों से घूट लेकर मुँह से टपकाते हुए निश्चेष्ट खड़े हैं। पक्षिगण अपना कलख छोड़कर निनिमेष नेत्रों से श्रीकृष्ण की रूप माधुरी के साथ स्काग्र भाव से वेणु माधुरी का भी स्वास्वादन करते रह रहे हैं। श्रीकृष्ण की सखियों की मधुर वंशी ध्वनि से आकृष्ट देव और देवांगनारं विमान पर चढ़कर जागर हैं। कामदेव से देवांगनाओं के केश-बन्ध से पुष्प गिरे लगे हैं, कटि वस्त्र सिसक गए हैं किन्तु उन्हें देहा-नुसन्धान कहाँ है ? सचेतन प्राणी ही नहीं नदियाँ और भेष जैसे अचेतन

१- हतिवेणुखं राजन् सर्वभूतमनोहरम् ।

श्रुत्वा ब्रजस्त्रियः सर्वां वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे ॥ श्रीमद्० १०। २१। ६

तद्ब्रजस्त्रिय बाधुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् ।

काश्चित् परीक्षां कृष्णस्य स्वसलीम्योऽन्वैवर्णयन् ॥ श्रीमद्० १०। २१। ३

२- वेणुगीत अध्याय २१ तथा युगलगीत अध्याय २५

३- कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सव रूपशीलं

श्रुत्वा च तत्त्वणित वेणु विचित्र गीतम् ।

देव्यो विमानगतयः स्मरन्नुन्न सारा

प्रश्यत्प्रसून कवरा मुमुहुर्विनिव्यः ॥

श्रीमद्० १०। २१। १२

फकारों पर भी वंशी ध्वनि का प्रभाव है। भँवरों से लक्षित होने वाले काम विकार से जिनका वेग रुक गया है वे नदियाँ अपनी तरंग रूप मुजाबों से कृष्ण के चरणों में कमल के पुष्पों की भेंट बढ़ाती हैं। भय कुहारों के रूप में पुष्प वर्णा करता हुआ वंशी वादन रत अपने सखा कृष्ण को अपनी हृन् हाया करता है। श्रीकृष्ण के मधुर पदावली युक्त उदार वेणु नाद को सुन कर मनुष्य पशु वादि जंगम प्राणी स्थिर हो जाते हैं और वृक्षादि स्थावर प्राणी रोमांचित हो जाते हैं। पुष्प और फलों के मार से ज्वलित बन्य लता घुम प्रेम पुलकित होकर मधुधारा प्रवाहित करने लगते हैं। जिस समय श्रीकृष्ण स्वयं ही सीसे हुए ञ्ज , कणम, गंधार, मध्यम, पंचम, धैर्य और निषाद इन सप्त स्वरों की मूर्च्छनार्थ इस्व, मध्यम और दीर्घ और विष्णु दीर्घ मेंलों से बांसुरी पर जलापते हैं तो उनके स्वरों का मर्म न जान सकने के कारण इन्द्र , शिव , ब्रह्मादि प्रमुख देव गण नत शिर हो कर मुग्ध भाव को प्राप्त हो जाते हैं।

१- गा गोपकुरुर्व नक्तोरुदार

वेणुस्वनैः कलपदैस्तनुमृत्सु सख्यः ।

अस्पन्दनं गतिमतां पुत्तकस्तवणां

नियोगि पाश कृत तदाणयो विचित्रम् ॥

श्रीमद् ० १०।११ । १६

२- श्रीमद् ० १०।३५।६

३- विविध गोपवरणेषु विदग्धो वेणुवाण उरुधा निज शिखाः ।

तव सुतः सति यदाधरविन्दै दत्तवेणुरनयत्स्वर जातीः ॥

सवनशस्त्रदुपधार्य सुरेशाः शश्वर्षपरमेष्ठि पुरोगाः ॥

कवय जानत कन्धर चिताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥

श्रीमद् ० १०।३५।१४-१५

अन्यत्र- मुरह रंधन समये माकुह मुरलीरवं मधुरम्
नीरसमेधो रसतां कृष्णरूपेति कृष्णानुताम् ॥ अनुतापशितक

उपर्युक्त विवेचन श्रीकृष्ण की वेणु माधुरी के चराचर जगद् व्यापी महान् प्रभाव का कुछ आभास देने के लिए श्रीमद्भागवत के आधार पर किया गया है। कृष्ण भक्त हिन्दी कवियों ने विशेष कर सूरदास ने श्रीकृष्ण की वेणु माधुरी का विशद् वर्णन करने के लिए श्रीमद्भागवत के पूर्वोक्त दो अध्यायों का कितना अनुकरण किया है, वह इसके अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है। सूर के पद तो कहीं कहीं भागवत के श्लोकों के हायानुवाद से प्रतीत होते हैं।

रास लीला-

कृष्ण भक्ति साहित्य में जहाँ श्रीकृष्ण को अखिल-कल्याण गुण-गण-वारिधि कहा गया है वहाँ उनके चौंसठ गुणों की विशेष रूप से गणना की गई है। इन चौंसठ गुणों में भी साठ गुण साधारण कोटि में और चार असाधारण गुण चतुष्क में जाते हैं। इन चार असाधारण गुणों में प्रथम है श्रीकृष्ण का लीलाधिक्य । सभी भगवदवतारों में श्रीकृष्ण ही "लीला पुरुषोत्तम" है । और श्रीकृष्ण की लीलाओं में भी उनकी सबसे मधुर लीला है। "रास लीला" जिसकी स्कान्त अधिकारिणी ब्रज गोपिकाएँ ही हैं। रासलीला श्रीकृष्ण की ही एक मात्र विशेषता है। अन्य अन्य किसी अवतार में यह असाधारण लीला माधुरी नहीं है। श्रीमद्भाग-

१- सूर सागर प्रथम लण्ड दशम स्कन्ध पद ६२०

२- समस्त विविधास्वर्यकल्याणगुणवारिधिः ।

गुणानामिह कृष्णस्य दिङ्मात्रमुपदर्शितम् ॥

श्रीहरिभक्तिरसामृत सिन्धुः पृ० १७०

३- सन्ति कापि मे प्राज्या लीलास्तास्ता मनोहराः ।

नहि जाने स्मृते रासे मनो मे कीदृशं भवेत् ॥

श्रीहरिभक्तिरसामृत सिन्धु पृ० १६७ पर बृहद्वायनपुराण का वचन

भागवत में गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति मधुर-भाव (कान्तासक्ति) रास लीला के प्रसंग में ही प्रकट हुआ है। गोपियों की विशुद्ध प्रेम लक्षणा-मक्ति की निष्पत्ति श्रीमद्भागवत की रास लीला से ही होती है। जहाँ उद्धव गौपी संवाद और भ्रमर गीत के प्रसंग से केवल वियोग मक्ति का उद्भेद होता है वहाँ रास लीला दोनों का समन्वय प्रस्तुत करती है। पहले संयोग मध्य में तीव्र वियोग और अन्त में फिर पूर्ण संयोग-आत्मा का परमात्मा से तादात्म्य। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की यह रास लीला (मधुर लीला, प्रेम लीला) एक उच्च दार्शनिक धरातल पर स्थित है। स्थूल दृष्टि से देखने पर श्रीकृष्ण और गोपियों की यह प्रेम लीला प्राकृत स्त्री पुरुषों की उदाम शृंगार चैष्टा और कामलीला जैसी मालूम होती है किन्तु भागवत कार ने उसे सर्वत्र बाध्यात्मिक छुट देकर भगवान् की परामक्ति का साधन और हृदय के राग रूप "काम" से मुक्त होने का उपाय बताया है। यही रास पञ्चाध्यायी की फल वृत्ति है।^१ जैन भारतीय और अमरातीय विद्वानों ने रास लीला की दार्शनिक व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। डा० मुंशीराम शर्मा सोम ने रास लीला के रहस्य का उद्घाटन इन मार्मिक शब्दों में किया है - "गो का अर्थ है इन्द्रिय। अतः गोप या गौपी का अर्थ हुआ इन्द्रियों की रक्षा करने वाला। < < < < । कृष्ण आत्मा के प्रतीक हैं जो वंशी ध्वनि से संगीत बादि स्वरों से गोपियों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। जैसे इन्द्रिया या वृत्तियाँ एक मन एक प्राण

१- रेमे रैमो ब्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्ब विप्रमः ॥

श्रीमद्० १०।३३।१७

२- विक्रीडितं ब्रजवधूमिरिदं च विष्णोः

श्रद्धान्वितो नु शृणुयादथ वण्यैः ।

मक्तिं परा भगवति प्रतिलम्ब्य कामं

हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

श्रीमद्० १०।३३।४०

होकर अन्तरात्मा में मग्न हो जाने की तैयारी करती है, वैसे ही गोपियाँ वंशी ध्वनि से कृष्ण की ओर केवल गति करती हैं। इसके पश्चात् रास लीला का नृत्य आता है जो अपनी तरंगों द्वारा गोपियों को कृष्ण सामीप्य प्राप्त करा देता है। सामीप्य का अनुभव अपनी शक्ति और अहम्मन्यता का स्फुरण करता है। अतः पूर्ण मग्नता की दशा नहीं आ पाती। आत्म प्रकाश पर अहंकार का आवरण छा जाता है। पर जैसे ही कृष्ण रूपी आत्म-ज्योति अन्तर्हित होती है, आत्म-मग्न होने की प्रेरणा तीव्र हो उठती है और अहंकार क्लिप्त हो जाता है। वियोग की अनुभूति लक्ष्य प्राप्ति के लिए छीलिर जाव-
श्यक मानी गई है। अहंकार के नष्ट होते ही पार्थिव के समस्त बन्धन क्षिप्त भिन्न हो जाते हैं, मनो वृत्तियाँ आत्मा में लीन हो जाती हैं। गोपियाँ कृष्ण के साथ महारास रचने लगती हैं। यही है आत्मा का पूर्णानन्द में लीन होना । भारतीय संस्कृति का यही चरम लक्ष्य है।^१ " इस पंचाध्यायी में दशम स्कन्ध पूर्वार्ध के अध्याय २६, ३०, ३१, ३२ और ३३ सम्मिलित हैं। यह रास पंचाध्यायी श्रीमद्भागवत के पंच प्राण कहलाती है क्योंकि इसमें श्रीकृष्ण की निज स्वरूप भूता गोपिकाओं के साथ परम गुह्य और अन्तरंग लीला वर्णित है।^२ श्रीकृष्ण की यह रास लीला स्वयं श्रीकृष्ण को भी विस्मय मुग्ध कर रही है।^३

१- डा० मुंशीराम शर्मा सोम- भारतीय साधना और सूर साहित्य पृ० २०८

२- रास लीला की महिमा - (लेख श्री हनुमान प्रसाद पौदार) कल्याण भागवतांक वर्ण १६

३- परिस्फुरतु सुन्दरं चरितमत्र लक्ष्मीपते-

स्तथा भुवननन्दिनस्तदवतार वृन्दस्य च ।

हरेरपि चमत्कृतिप्रकरवर्धनः किंतु मे,

विमर्शि हृदिविस्मयं कमपि रासलीला सः ॥

श्रीहरि० सिन्धु पृ० १६८

राधा-

इस मनोमुग्धकारिणी रास लीला का कृष्ण भक्त हिन्दी कवियों ने बहुत वर्णन किया है। गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की रास झीड़ा में राधा ^{एक गोपी हैं। किन्तु} श्रीमद्भागवत में कहीं भी राधा का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। राधा ही क्या किसी भी गोपी का नामोल्लेख श्रीमद्भागवत में नहीं हुआ है। हाँ, एक विशिष्ट गोपी और श्रीकृष्ण तथा उसके विशिष्टानुराग का स्पष्ट संकेत वहाँ है। श्रीमद्भागवत में केवल इतना बताया है कि रास झीड़ा के समय श्रीकृष्ण सब गोपियों को छोड़कर अपनी किसी अन्तरंग प्रिय स्त्री को स्कान्त में लिया ले गए थे। इस श्लोक के "वाराक्षि" या "राक्षि" शब्द ने लोगों को राधा की कल्पना प्रदान की और जबकि ने "राधामाधाय हृदये व्यक्तं तत्प्राजं व्रज सुन्दरीः" कह कर उसे स्पष्ट कर दिया। राधा के बावि-भाँव के सम्बन्ध में डा० शशिभूषण दास गुप्त का अभिमत है कि राधा के दो पक्ष हैं, एक तात्त्विक, दूसरा ऐतिहासिक। बारहवीं शताब्दी के पूर्व तक राधा एक विष्णु शक्ति तत्त्व के रूप में थी। किन्तु साहित्य में राधा का उल्लेख बहुत पहले से ही पाया जाता है और साहित्य के माध्यम से ही राधा का बाविभाँव और विकास हुआ। तत्वाश्रित रूप से धर्म मत के साथ राधा का मिश्रण १२ वीं शताब्दी से हुआ और उसकी परिपूर्णता वृन्दावन के गौड़ीय वैष्णवों की भक्ति साधना में दिखाई दी। विविध पुराणों में बाजकल जो राधा का उल्लेख मिलता है वे परवर्ती काल में जोड़े गए अंश हैं। जो कुछ हो, इसमें सन्देह नहीं कि मध्यकाल में राधा एक महान् शक्तिशाली

१- जन्याराक्षि नूनं भगवान्हरिरीश्वरः ।

यन्नोविहाय गोविन्दः प्रीतोयामन्यद्ग्रहः ॥ श्रीमद्० १०।३०। २

२- गीतगोविन्द, तृतीय सर्ग, श्लोक १

३- श्रीराधा का क्रम विकास : डा० शशिभूषणदास गुप्त पृ० १००

पात्र के रूप में कृष्ण भक्ति का एक अनिवार्य अंग बन गई। वह श्री कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति के रूप में ^{जो १४वीं शताब्दी} ~~विद्वद्भिः~~ राधा को ही प्राधान्य देकर खितहरिवंश जी ने राधावल्लभीय सम्प्रदाय तक चला दिया। निम्बार्क, चैतन्य ^{आर्य} ~~आदि~~ वल्लभ ^{समी} ने राधा का महत्व स्वीकार किया। हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों ने समस्त प्राचीन दर्शन, काव्य और पुराणों की परंपरागत राधा विषयक सामग्री से अपनी राधा की सृष्टि की। राधा के विरह विधुर भ्रममय व्यक्तित्व के चित्रण की प्रेरणा हिन्दी कवियों को विशेषकर महाकवि जयदेव के गीत गोविन्द से प्राप्त हुई। राधा का श्रीकृष्ण की प्रियतमा गोपी के रूप में चित्रण हिन्दी कवियों ने मत्स्य और पद्म पुराणों के आधार पर ही किया जान पड़ता है। गौड़ीय वैष्णवों ने प्रसिद्ध पुराणों में केवल पद्म पुराण और मत्स्य पुराण में राधा का उल्लेख माना है। स्कन्द पुराण में राधा के प्राधान्य को जिस रूप में रखा गया है, उससे उस अंश के प्रद्विष्ट होने की वाशंका होती है। अन्य गोपियों द्वारा राधा के वैकर्म्य का स्वीकार स्कन्द पुराण में समर्थित है^१ जो निश्चय ही एक परवर्ती साम्प्रदायिक प्रभाव का द्योतक है।

भ्रमर गीत-

गोपी प्रेम के गंभीर रूप की जननी तीव्र विरह भावना

१- श्री राधा का क्रम विकास : डा० शशिभूषणदास गुप्त पृ० ११३

२- वात्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवात्मास्ति राधिका ।

तस्या दास्य प्रभावेण विरहोऽस्मान्ना संस्पृशेत् ॥

तस्यास्वाश विस्ताराः सर्वाः श्रीकृष्ण नायिकाः ।

नित्य संभोग स्वास्ति तस्याः सामुत्थ योगतः ॥

स्कन्द पुराण, वैष्णव खण्ड, भागवतमाहात्म्य २, ११, १२

और तन्मयता के लिए श्रीमद्भागवत का भ्रमर गीत प्रसंग बहिर्तीय है। यह भ्रमर गीत वियोग काव्य और उपालम्भ काव्य की दृष्टि से विश्व साहित्य की वस्तु है। इसमें उद्धव द्वारा गोपियों की प्रेम लक्षणात्मकता का महत्व स्वीकार किया गया है। कृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम जो इस प्रसंग में रूपासक्ति, तन्मयतासक्ति और परम विरहासक्ति - इस तीन ऊपरी रूपों में दृष्टिगोचर होता है, अपनी सीमान्त पर उपह्वित गया है। कृष्ण भक्त हिन्दी कवियों की भ्रमर गीत सम्बन्धी रचनाओं का आधार श्रीमद्भागवत का यही प्रसंग है। यही भ्रमरगीत साहित्य का उद्गम स्थल है। यद्यपि हिन्दी कवियों ने अपनी प्रतिभा से इस काव्य विषय को बहुत विशाल और मनोहर बना दिया और देशकाल की परिस्थितियों से मूल वस्तु में यत्किंचित् परिवर्तन भी हुए किन्तु इससे मूल वस्तु का महत्व कम नहीं होता। "भ्रमर गीत" विषय को लेकर अनेक विद्वानों ने विविध दृष्टियों से उसका विवेचन किया है अतः आवश्यक पिट्ट पेण्डन न करके हम श्रीमद्भागवत के मूल प्रसंग का सार यहाँ प्रस्तुत करते हैं :-

जब श्रीकृष्ण मथुरा में निवास कर रहे थे तो उन्होंने एक दिन अपने प्रिय भक्त, मित्र और मंत्री बृहस्पति-शिष्य उद्धव का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा कि "सौम्य तुम ब्रज को जाओ और मेरी माता पिता तथा मदिरह विधुरा गोपियों को मेरा सन्देश सुनाकर सात्वना दो। गोपियों का ~~हृदय~~ चित्त सदा मुझमें ही लगा रहता है। मैं उनका प्राण हूँ। मेरे लिए उन्होंने सर्वस्व परित्याग कर दिया है। मुझ प्रियतम के दूर चले जाने से वे अत्यन्त विरह व्यथित हैं और मेरे प्रत्यागमन के संदेश को आशा

से जैसे तैसे अपने प्राण धारण किए हुए हैं। कृष्ण का संदेश लेकर उद्वेग रथा-
 उद्वेग हो सारथ समय ब्रज में जा पहुँच। नन्द यशोदा से मिलकर उन्होंने परस्पर
 कुल्ल रोम पूछा। कृष्ण बख्ति का सानुराग कथन करते सुनते वह रात बीत
 गई। ब्राह्म मुहूर्त में गोपियाँ जगीं और दीपक जलाकर घर की देहलियों पर
 वास्तु देवता की पूजा करके दही मथने लगीं— उस समय भी वे अपने प्रिय
 कृष्ण की ब्रज लीलाओं का गान कर रही थीं। सूर्योदय होने पर गोपियों
 ने नन्द के द्वार पर एक सुवर्ण मय रथ देखा। वे वापस में पूछने लगीं—
 यह किसका रथ है ? कहीं कछूर ही तो फिर नहीं जागया। जो पहले
 हमारे प्रियतम कृष्ण को ले गया था ? क्या अब हमें ले जाकर हमारे मांस
 से अपने मृत स्वामी (कंस) का बार्ध्व देहिक कर्म करेगा ?” जब गोपियाँ
 यह तर्क वितर्क कर रही थीं, तभी उद्वेग जा पहुँच। कृष्ण के समान पीता-
 म्बर मालादि वैष्णवादी उद्वेग को गोपियों ने उत्सुकता वश धर लिया और
 यह जानकर कि वे श्रीकृष्ण के सन्देशवाहक हैं, उनसे कहने लगीं — हम जानती
 हैं कि आपके स्वामी (कृष्ण) ने आपको यहाँ अपने माता पिता का प्रिय
 करने के लिए ही भेजा है, नहीं तो इस गोकुल में और कौन है जिसे वे याद
 करेगा ? हाँ, स्वजनों का स्नेह बन्धन तोड़ना तो बहुत कठिन है इसलिए
 माता पिता को याद करते होंगे। (हमें वे क्यों याद करने लगे , हम
 उनकी स्वजन छोड़ ही हैं) स्वजनों के सिवा औरों के साथ तो किसी न
 किसी प्रयोजन से प्रेम किया जाता है। जब तक स्वार्थ रहता है तब तक प्रेम
 का स्वांग रखा जाता है। पुरुषों का स्त्रियों के साथ वैसा ही स्वार्थ

१- तामन्त्यस्का मत्प्राणामर्धेत्येव देहिकाः ।

मयि ताः प्रेक्षां प्रेष्टे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः ।

स्मरन्त्योऽङ्गं विमुह्यन्ति विरहोत्कण्ठय विह्वलाः ॥

धारयन्त्यति कृच्छ्रेण प्रायः प्रणयान्धवन ।

प्रत्यागमन संदेशैर्बलव्यो मे मदात्मिकाः ॥

श्रीमद् ० १०।४६।४-५-६

पूर्ण लगाव होता है जैसा प्रमरों का पुष्पों के साथ^१ । गणिका अपने निशि-
 कवन प्रेमी को , प्रजा असमर्थ राजा को, अधीत विष शिष्य गुरु को, लब्ध
 दक्षिणा कृत्विग्गण यमना को, पक्षिगण नष्टफल वृद्ध को , कृत
 भोजन अतिथि घर को, मृग गण दग्ध वन को और बार पुरुष भोग
 चुकने पर कृष्ण स्व कुरागिणी स्त्री को छोड़कर चल देते हैं।^२ इस प्रकार
 गोपियां तन्मय हो श्रीकृष्ण पर ताने कसने लगीं , और लज्जा छोड़कर रौ
 उठीं । उनमें से एक गोपी कृष्ण के समागम का स्मरण कर रही थी । तब
 मैं उसे एक मौंरा उड़ता हुआ दिखाई पड़ गया । उस उसी को अपने प्रियतम
 का भेजा हुआ दूत मान कर उस पर बरस पड़ी । २ दूर्त के बन्धु प्रमर ।
 सपत्नी के स्तनों पर पड़ी हुई माला में लगे कुंज से लिप्त अपनी मूंछों
 से तू हमारे पैरों को मत छू । ऐसी दौण्डिफ प्रेम करने वाला तू जिनका
 दूत है, वे मधुमति अपनी मानिनी कामिनियों का यह प्रसाद अपने ही पास
 रेंसे । उन्होंने हमें एक बार ही अपना मादक अघरामृत पिलाकर तुरन्त वैसे
 ही छोड़ दिया है जैसे तू फूलों को छोड़ देता है। न जाने चंचला लक्ष्मी
 जैसे उनके चरण कमलों की सेवा करती है। मालूम होता है उनकी चिकनी
 चुपड़ी बातों में उस बेचारी का चित्त भी (हमारे समान) चुरा लिया
 है। २ प्रमर । तू कृष्ण की यही गाथा गाकर हमारी चापलूसी न कर ।

१- अन्येष्वर्थकृता भेत्री यावदर्धविहम्बनम् ।

पुष्पिः स्त्रीषु कृता यत्सुमनःस्विव ञट्पदेः ॥ श्रीमद् ० १०।४७।६

२- काचिन्माधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसंगमम् ॥

प्रिय प्रस्थापित दूर्त कल्पयित्वैदमब्रवीत् ॥ श्रीमद् ० १०।४७।११

३- मधुप । कितवबन्धो मास्मृशांघ्रिं सपत्न्याः

कुच विलुक्तिमालाकुंजमश्नुभिर्नः ॥

वस्तु मधुमतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं

यदु सवसि विहम्ब्य यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥

सकृदधर सुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा सुमनस इव सपत्न्यैः स्मान्मवादृक् ।

परिचरति कथं तत्पाद पद्मं तु पद्मा ह्यपि क्व हृतचेता उत्तमश्लोक जल्पेः ॥

श्रीमद् ० १०।४७।१२-१३

यह तो तू कृष्ण की (मथुरावासीनी) नयी प्रियाओं को ही बुना ।
 वे ही इस चाटुकारी से प्रसन्न होकर तेरी इच्छा पूर्ण करेंगी। यदि तू
 कहे कि कृष्ण ने मुझे तुम गोपियों को ही मनाने के लिए भेजा है तो
 यह सरासर झूठ है। त्रेलोक्य में कौन सी स्त्री उन्हें दुष्प्राप्य है ? हम
 ग्रामीणार्थ क्या चीज़ हैं । तू भोर चरणों से अपना सिर हटाते । मैं
 जानती हूँ यह कष्ट पूर्ण विनय तू कृष्ण से सीस कर जाया है । किन्तु
 वह अकृतज्ञ अब विश्वसनीय नहीं है जितने सर्वस्वार्पण करने वाली अब-
 ताओं का इस प्रकार त्याग कर दिया है। वह बड़ा क्रूर है, उसने बाली
 को व्याध के समान मार डाला , स्त्रीवश होकर अनुरक्ता शूर्पणखा
 को विल्पा कर दिया और पूजा भेंट लेकर भी बलि को वरुण पाश
 से बांध डाला । अतः हम तो इस काल की भिन्नता से बाजु बाईं ।
 किन्तु हाय हम करें क्या ? हम उसकी चर्चा करना छोड़ भी तो नहीं
 सकतीं । उसकी मीठी याद मुलाई नहीं जा सकती । जैसे कृष्ण-मृग की
 पत्नियाँ व्याध के शब्द का विश्वास करके मारी जाती हैं, वैसे ही हम
 कृष्ण की बातों में जागई और अब विरहाग्नि में जल रही हैं। अहो !
 प्रियतम के सखा प्रमद । तुम फिर लौट जाए । तुम हमारे सम्मानीय हो ।
 क्या तुम हमें प्रिय के पास से चलना चाहते हो ? नहीं नहीं वहाँ तो निर-
 न्तर नव वधू विराजमान हैं । क्या वे हम दासियों की भी कोई बात चलाते
 हैं। क्या वे अपना हाथ कभी हमारे सिर पर भी रखें ? ”

गोपियों के ऐसे प्रेम लपेटे ढटपटे ” वचन सुनकर उद्धव स्तब्ध
 रह गए । वे गोपियों की प्रेम लदाणा भक्ति से बहुत प्रभावित हुए । उन्होंने
 गोपियों की कृष्ण तन्मयता के कारण उन्हें कृतार्थ और लोक पूजित बताया।
 उद्धव ने दान , व्रत , जप , तप , होम , स्वाध्याय और इन्द्रिय दमनादि
 समस्त शुभ कर्मों की परि समाप्ति का भक्ति लाभ में ही मानी । गोपियों
 ने तो लोभान्ध वश ही सर्वस्व त्याग कर उत्तम प्रेम लदाणा भक्ति से परम

पुरुष कृष्ण का वर्ण कर लिया यही तो चरम प्राप्तव्य है। गोपियों ने विरह के द्वारा ही ऐकान्तिक भक्ति प्राप्त की और उद्व को उसका परिचय देकर उद्व को भी अनुगृहीत किया ।

उद्व ने गोपियों को श्रीकृष्ण का जो संदेश दिया उसका सारांश यह था कि कृष्ण जात्मा रूप से सर्वत्र व्याप्त है इसलिए गोपियों से उसका वियोग नहीं हो सकता । अतः उन्हें मन सहित इन्द्रियों का दमन कर जात्म साक्षात्कार करना चाहिए । प्रिय का दूर रहना ही अच्छा है। इससे निरन्तर तन्मयता बनी रहती है। संकल्प विकल्पात्मक मन का शान्त होकर स्थिति हो जाना ही परमात्म तत्त्व को प्राप्त करने का उपाय है। अपने प्रियतम कृष्ण का यह संदेश सुनकर गोपियाँ बहुत संतुष्ट

१- जहो यूयं स्म पूणार्था भवत्यो लोक पूजिताः ।

वापुर्देवेभ्यवति यातामित्यर्पितं मनः ॥

दान व्रत तपो होम जपस्वाध्याय संयमेः ।

श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णो भवतिर्हि साध्यो ॥

भगवत्पुत्रम इतीति मत्प्रतीमिरनुव्रमा ।

भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥

दिष्ट्या पुनान्मतीन्दैहान्स्वजनान्भवनाति च ।

हित्वा वृणीत यूयं यत्कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥

श्रीमद् ० १०।४७। २३-२६

२- सर्वात्ममावीक्षितो भवतीनामधोऽणि ।

विरहेण महामागा महान्यैः सुग्रह कृतः ॥

श्रीमद् ० १०।४७। २७

३- श्रीमद् ० १०।४७। २८-३७

और वानन्दित हुई। उन्होंने उद्धव से कहा कि यह बड़े सोभाग्य की बात है कि शत्रु नाश करके कृष्ण सपरिवार सकुशल, सुसम्पन्न जीवन व्यतीत करते हैं। क्या वे मथुरा की भद्र महिलाओं से कभी हम गंवारी ग्वालिनियों की भी चर्चा करते हैं। क्या वे कभी हमारे साथ बीती उ चंद्रिका चर्चित वृन्दावन की रास क्रीड़ा की मधुर रात्रियों को याद करते हैं ? हम सब उनके विरहानल में जल रही हैं। क्या वे कभी जाकर हमें जीवन दान देंगे ? ये नदी , फल , वन , गोई और वंशी की ध्वनि हमें बार बार श्याम सुन्दर का स्मरण करा देते हैं। यहाँ की भूमि पर अवित उनके चरण चिन्हों के कारण हम उन्हें कभी नहीं मुला सकती। उनकी सुललित गति उदार-स्मित, विचित्र लोला, बाँकी चितवन और मधुर वाणी ने हमारा चित्त चुरा लिया है उन्हें भूलें तो भूलें कैसे ?”

कृष्ण श्रेम के कारण गोपियों के चित्त का ऐसी विकलता देखकर उद्धव अत्यन्त प्रभावित हुए। उनके द्वारा कृष्ण का सदेश पाकर गोपियों का विरह ताप शान्त होगया। गोपियों ने कृष्ण को इन्द्रियातीत सर्वात्मा जानकर सदेश वाहक उद्धव का भी भली भाँति स्तकार किया। उद्धव

१- ताः किं निशाः स्मरति यासु तदा प्रियामि-

वृन्दावने कुमुद कुन्द शशांक रम्ये ।

रमे ववणञ्चरण नूपुर रास गोष्ठ्या-

मत्सामिरीडित मनोज्ञ कथः कदाचित् ॥

ब्रौमद् ० १०।४७।४३

२- गत्या ललितयोदारहास लीलावलीकनैः ।

मादृश्या गिरा हृतधियः कथं तं विस्मरामहे ॥

ब्रौमद् ० १०।४७।५१

३- ततस्ताः कृष्ण सन्देशैर्व्योक्त विरहज्वराः ।

उद्धवं पूजयच्चिह्नुर्जात्वात्मानमधोदाजम् ॥

ब्रौमद् ० १०।४७।५३

इस समय तक गोपियों के कृष्ण प्रेम रसाण्वित में बापाद मस्तक मग्न हो चुके थे । वे गद् गद् होकर कह रहे थे—“ विश्व के देह धारियों में बस गोपियाँ ही सर्वश्रेष्ठ हैं , जिनका चित्त ठहरे सर्वात्मा कृष्ण में ही बहु वासक है। वहाँ ये वनवासिनी प्राकृत स्त्रियाँ और कहीं परमात्मा कृष्ण में इनका सुदृढ़ अनुराग । इसे सिद्ध होता है कि यदि ज्ञानी प्राणी भी भगवद् भजन करे तो उसका परम कल्याण होता है, जैसे जन्तु बिना जल पिये जल पर भी प्राणी को झर कर देता है । वही । क्या ही कक्षा हो । यदि मैं वृन्दावन में इन ब्रजांगनाओं की चरण रज का स्नेह करने वाली कोई लता फाँड़ी या जीवध हो जाऊँ । धन्य हैं ये गोपांगनाएँ जिन्होंने समस्त विधि निषेध और सर्वस्व परित्याग करके श्रुति-विमृग्य भगवन्मार्ग का अनुसरण किया है। जिनका हरि कथा मय गान बेलोबय को पवित्र करता है, नन्द ब्रज की उन गोपांगनाओं की छिछ चरण रेणु को मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ । इस प्रकार प्रेमाभक्ति में रंग कर उद्वेग मधुरा लौटे और ब्रज वासियों की प्रगाढ़ भक्ति का वर्णन उन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति किया ।

निष्कर्ष-

उपर्युक्त पंक्तियों में श्रीमद्भागवत के मूल अंशों के आधार

१- बाधामहो चरणरेणुषु नामहंस्यां

वृन्दावने किमपि गुल्मलताजघीनाम् ॥

या हुस्त्यां स्वजनमार्यपर्यं च हित्वा ।

भक्तुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिमिर्विमृग्याम् ॥

वन्दे नन्दब्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।

यासां हरिकथोद्गीतं मुनाति भुवनत्रयम् ॥

श्रीमद् ० १०।४७।६१,६३

पर उद्धव की व्रजयात्रा, भ्रमर गीत और उद्धव गोपी संवाद का चार प्रस्तुत किया गया है। उद्देश्य यह ^{है} कि श्रीमद्भागवत के मूल भ्रमरगीत प्रसंग से हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों के भ्रमर गीत की तुलना की जा सके। जहाँ दोनों में कई समानताएँ हैं वहाँ विभिन्नताएँ भी हैं। श्रीमद्भागवत की गोपियाँ उद्धव द्वारा दिए गए कृष्ण के ज्ञान सन्देश का अनादर और विरोध नहीं करतीं बल्कि कृष्ण के सन्देश से उनकी विरह कठ व्याप्त तक ज्ञान्त हो जाती हैं। श्रीमद्भागवत की गोपियाँ उतनी तर्क कुतर्क और वाद विवाद करने वाली भी नहीं हैं। जहाँ श्रीमद्भागवत की गोपियों के इस प्रसंग में प्रेमाभक्ति को ज्ञान से अधिक प्राथम्य दिया गया है, वहाँ ज्ञान पदा का न तो स्पष्टन किया गया है न उक्ता उपहास। श्रीमद्भागवत की सार्वत्रिक सामंजस्य नीति के दर्शन हमें यहाँ भी होते हैं और "सुखन्द पदवी" (भक्ति मार्ग) की श्रुति (ज्ञान) विमृश्य बताकर दोनों का साध्य-साधन भाव प्रतिपादित किया गया है। ज्ञान पूर्वक की गई भक्ति ही परम दुर्लभ पदार्थ है। उद्धव के ज्ञानोपदेश से गोपियों की कृष्ण में परमात्म भाव की पुष्टि होवाने के उपरान्त कृष्ण में उनकी प्रगाढ़ प्रेमाभक्ति का और भी उत्कर्ष हो गया। यही श्रीमद्भागवत का चरम लक्ष्य है। हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों ने निर्गुण ज्ञान पदा को सर्वथा निरादृत किया और "निर्गुन कौन देस की बासी" कहकर उसका उपहास किया। किन्तु क्या किया जाय, वह युग की पुकार थी। युग धर्म था। भक्ति की मागीरणी में ज्ञान की मंजूषा बह गई।

इस अध्याय में श्रीमद्भागवत के उन विशिष्ट तत्वों का वैज्ञानिक वगोकरण और विवेचन किया गया है जिनका सीधा प्रभाव हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों पर पड़ा है। सत्स्वर कृष्ण ही वह ध्रुव केन्द्र है जिसके चारों ओर मध्यकालीन भक्त कवियों का महान् ज्योतिर्मण्डल पछिमा कर रहा है।

—:०:—

१- कर्मभिर्प्राप्यमाणानां यत्र क्वापीस्वरच्छया ।

मंगलखरितैर्दानै रतिर्नः कृष्ण ईश्वर ॥ श्रीमद् १०।४७। ६७

अष्ट अध्याय

श्रीमद्भागवत एवं बल्म सम्प्रदाय के अष्टापी हिन्दी कवि

(पृ० २१-३२)

"श्रीमद्भागवत एवं ब्रज-सम्प्रदाय के अष्टछाप कवि"

दृष्टिकोण-

लीला गान की परम्परा-- जयदेव (१२वीं शती) के समय तक श्रीकृष्ण का रसिक रूप पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुका था। बहुत पहिले ही हरिवंश पुराण (लगभग १००ई०) में श्रीकृष्ण का गोपियों के साथ विहार "हल्लीश-झीहन"^१ के रूप में चित्रित हो चुका था। कालान्तर में उनका यह रसिक रूप अधिकाधिक विकसित होता गया। श्रीमद्भागवत और ब्रह्म-वैवर्त पुराण में हम उसका चरम विकास पाते हैं। अनुमान होता है कि भारत वर्ष में रसिक कृष्ण की लीला-वर्णन की विभिन्न परम्पराएँ रही होंगी। श्रीमद्भागवत उनमें से एक परम्परा का ग्रन्थ है जिसमें श्रीकृष्ण के शरद्-रास^२ का वर्णन है। जयदेव का गीत गोविन्द किसी दूसरी परम्परा का ग्रन्थ माना जाता है जिसमें श्रीकृष्ण के वसन्त रास^३ का उल्लेख है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- "सम्भवतः दसवीं गुजारहवीं शताब्दी में भागवत परम्परा से भिन्न भी कोई लीला गान की परम्परा थी। जयदेव का गीत गोविन्द पूर्ण रूप से भागवत परम्परा का ग्रन्थ नहीं है। उसमें राधा एक प्रमुख गौपी हैं जो भागवत में अपरिचित हैं।"^४ परवर्ती हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य में दोनों परम्पराएँ मिल कर एक हो गयी हैं। हिन्दी कवियों ने जयदेव के गीत गोविन्द और श्रीमद्भागवत दोनों से ही रसिक कृष्ण के चित्रण की सामग्री ग्रहण की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अनुमान किया है कि मैथिल कोकिल विद्यापति ने सम्भवतः गीतगोविन्द के अनुकरण पर अपनी सरस पदावली लिखी थी।^५ विद्यापति को अभिनव जयदेव की उपाधि भी मिली थी।^६

हिन्दी कृष्ण काव्य का सूत्र-पात- विद्यापति :- हिन्दी में कृष्ण काव्य का प्रारम्भ रसिक कृष्ण की प्रेम लीलाओं के चित्रण से ही हुआ। हिन्दी में कृष्ण काव्य का प्रणयन करने वाले प्रथम कवि विद्यापति (१४० ई०) हैं। विद्यापति वैष्णव थे या शैव? भक्त थे या

१- हरिवंश पुराण, विष्णु पर्व, अध्याय ३१।

२- "भावानपि ता रात्रीः शरदात्फल्गुमत्सिकाः।

वोक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपश्रितः॥ श्रीमद्., १०-२९-२१।

३- "विहरति हरिरिह सरसवसन्ते। नृत्यति युवतिर्नैनं स्मं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते।"
गी० गी०, प्र० स०, ३-२१।

४- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य, पृ० १६७।

५- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: हिन्दी साहित्य का इतिहास : पृ० ५७।

६- "सुकवि नव जयदेव भनिज रे। विद्यापति की पदावली : सम्पा० रामबृद्धा बेनीपुरी :
कवि परिचय : पृ० १५।

शृंगारी ? इन प्रश्नों का उत्तर विवाद-ग्रस्त है, किन्तु ऐतिहासिक क्रम में राधा-कृष्ण का नाम लेकर रचना करने वाले प्रथम उत्तरेसनीय कवि कविपति ही हैं जिन्होंने अपनी सरस पदावली में राधा-माधव के प्रेम, विरह और विहार का वर्णन किया है। कविपति संस्कृत के पण्डित थे। संस्कृत के कृष्ण काव्य से उनका प्रगाढ़ परिचय था। रसिक कृष्ण के लीला गान की प्रेरणा निश्चय ही उन्हें संस्कृत के कृष्ण काव्य से मिली होगी। श्रीमद् भागवत पुराण का अध्ययन भी कविपति ने किया था। श्रीमद्भागवत की एक प्रति स्वयं उन्होंने अपने हाथ से लक्ष्मण (सं० ३०९ सन् १४० ई०) में की थी। यह प्रति अनावधि सुरक्षित है।^१ कविपति जैसे रस-सिद्ध भावुक कवि का श्रीकृष्ण के भागवत वर्णित मधुर रूप पर मुग्ध हो लोक-भाषा में उसका चित्रण करना सहज सम्भव है। कविपति ने श्रीकृष्ण के सौन्दर्य और वैष्णु-माधुर्य का वर्णन अनेक स्थलों पर किया है।^२ गोपी-विरह का यह वर्णन तो श्रीमद्भागवत के गोपी-विरह वर्णन से साम्य रखता है:-

"मधुपुरे मोहन गेल रे, मोरा विहरत छाती।

गोपी सकल बिसरलनि रे जत छल अहिवाती॥

सूतलि छलहु अपन गृह रे नीदह गेलउं सपनाई।

करसौं छुटल परसमनि रे कोन गेल अपनाई॥

कत बहवो कत सुमिरव रे हम भरिए गरानि।

जानक धन सौ धनवन्तो रे कुवजा भेल रानि॥" ३

कविपति एक स्वच्छन्द भावुक कवि थे। उनमें हम किसी विशिष्ट सम्प्रदाय का आग्रह नहीं पाते। किन्तु उनके बाद हम कृष्ण काव्य को अधिकतर पूर्वालोचित वैष्णव सम्प्रदायों की धार में आबद्ध पाते हैं। हमारे आलोच्य काल के अधिकतर समर्थ कवि या तो किसी वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित थे या स्वामी हितहरिवंश या अथवा हरिदास जी की भाँति स्वयं किसी सम्प्रदाय के संस्थापक थे। कुछ कवि स्वच्छन्द भी रहे किन्तु उनकी संस्था न्यून है। दोनों श्रेणियों के कृष्ण कवियों पर श्रीमद्भागवत का वस्तु एवं तत्त्वगत प्रभाव पड़ा है। साम्प्रदायिक कवियों के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- "सब सम्प्रदायों के कृष्ण भक्त भागवत में वर्णित कृष्ण की ब्रज लीला को ही ले कर चले हैं, क्योंकि उन्होंने अपनी प्रेमलक्षणा भक्ति के लिए कृष्ण का मधुर रूप ही पर्याप्त समझा।"^४ वास्तव में कृष्ण भक्ति साहित्य में मधुर रस की प्रतिष्ठा ही सब कवियों का विशेष ध्येय रहा। काव्य का

१- कविपति कृत कीर्तिलता, सम्पा० डा० बाबुराम सक्सेना, धर्मिका पृ० ८।

२- क- "कंदलुन गुपाल सुन्दर मिलल नन्दकुमार" कवि० पदावली: पृ० ५५

३- वही: पृ० ५५ नई कदम्बकैतरु तर धिरे धिरे, मुरति बजाव" वही: पृ० ३ ग-"मुरली-" वही: पृ० ५५

४- हिन्दी साहित्य का इतिहास: ४०५४८

सूत्र पात भी रसिक कृष्ण को लेकर हुआ। श्रीकृष्ण के बालरूप की ओर ही उनके मधुर केशोर्म के रूप की स्थापना पहिले हुई थी। श्रीकृष्ण के बाल रूप की उपासना का प्रचार तो बाद में वल्लभाचार्य ने किया और "मशौदीतसंगलालित" "नवनीतप्रिय" बाल कृष्ण को अपना आराध्य बनाया। किंतु वल्लभ सम्प्रदाय में कृष्ण की मधुर भक्ति का स्थान भी महत्व पूर्ण है।^१ निम्बार्क, चैतन्य, रित हरिवंश के सम्प्रदाय तो प्रधानतया मधुर भक्ति पर ही आधारित हैं। मीरा, रसखान बा दि स्वच्छन्द कवि भी मधुर भक्ति के ही पौष्पक रहे।

हमारे आलोच्य काल में सभी जेणी के कृष्ण भक्त कवियों की संख्या इतनी बढ़ी है, उनका साहित्य इतना विशाल है, कि और उस पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव इतना विविध रूप एवं व्यापक है कि उसके एकांश दिगुदर्शन कराना भी किसी शोधार्थी के लिए असम्भव है। पूर्ण प्रतिनिधित्व की रक्षा करते हुए हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों की रत्न-माला में से संग्रह-त्वाग का कार्य भी कम दुष्कर नहीं है। "को बड़ छोट कहत अपराधू"। ऐसी स्थिति में हम स्थानी-पुलाक एवं प्रधान-मल्ल-निर्वहण न्याय से प्रमुख, प्रथित एवं समर्थ प्रतिनिधि कवियों का चयन कर उनकी रचनाओं पर इस प्रबन्ध के द्वितीय, तृतीय एवं पंचम अध्यायों में विवेचित भागवतोक्त तत्वों के प्रभाव का दिगुदर्शन कराने का प्रयत्न ही समीचीन समझते हैं। किन्तु हिन्दी के कृष्ण भक्ति साहित्य में जष्टछाप के कवियों की रचनाएं अग्रगण्य हैं। अतः पहिले उन्हीं की रचनाओं पर श्रीमद्भागवत के प्रभाव का निरूपण किया जायगा।

जष्टछापः— वल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी विठ्ठलाय जी ने सं० १६०२ में अपने पिता के चार शिष्यों तथा अपने चार शिष्यों को मिला कर आठ भक्त कवियों की मण्डली बनाई जो जो "जष्टछाप" के नामसे विख्यात हुई। इन कवियों का काल-क्रम इस प्रकार हैः—

१- कुंभदास	---	सं० १५२५--१६४०
२- सूरदास	---	सं० १५३५--१६४०
३- परमानन्ददास	---	सं० १५४०--१६४१
४- कृष्णदास	---	सं० १५५१--१६४६
५- गोविन्दस्वामी	---	सं० १५६२--१६४३
६- छीतस्वामी	---	सं० १५७३--१६४३
७- चतुर्भुजदास	---	सं० १५८७--१६४३
८- नन्ददास	---	सं० १५९०--१६४०

१- श्रीवल्लभाचार्यकृत "मधुराष्टक स्तोत्र" : पृष्ठ

२- जष्टछापपरिचय : श्रीप्रभुदयाल मल्लिक : पृ० ९६।

श्रीमद् वल्लभाचार्य द्वारा अपने सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत को प्रस्थान चतुष्टय में गृहीत कर लिख जाने पर अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण लीला गान के लिए श्रीमद्भागवत को ही अपना प्रधान उपजीव्यग्रन्थ बना लिया। सूरदास की श्रीवल्लभाचार्य ने अपने सम्प्रदाय में दोषित करने के उपरान्त श्रीमद्भागवत की अनुश्रमणिका सुनार की तथा श्रीकृष्ण की लीला गान करने का आदेश दिया था। श्रीवल्लभाचार्य श्रीमद्भागवत के जिस प्रसंग की व्याख्या करते थे, सूरदास उसी प्रकरण पर अपने ललित मुक्तक पद रच डालते थे।^१ अष्टछाप के तृतीय प्रसिद्ध कवि परमानन्ददास को भी महाशुभ वल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत की अनुश्रमणिका की और उनसे भी श्रीकृष्ण की लीला लीला का गान करने का अनुरोध किया था।^२ परमानन्द दास ने तो श्रीमद्भागवतोक्त भक्ति को अपने स्थिति काल की विष्ट धार्मिक परिस्थिति के लिए एकमात्र अवलम्बन स्वीकार किया था। उन्होंने बड़ी वेदना के साथ तात्कालिक धार्मिक दुर्दशा का चित्रण किया है।^३ अष्टछाप के आठवें कवि श्रीनन्ददास ने तो श्रीमद्भागवत पर विपुल साहित्य की रचना की है जिसका उल्लेख प्रसंगानुसार किया जायगा। यहाँ कालस्मानुसार अष्टछाप के कवियों पर इस ग्रन्थ के द्वितीय, तृतीय, और पंचम अध्यायों में विवेचित भागवतोक्त सामान्य और विशेष तत्वों के प्रभाव का पर्यवेक्षण करेंगे तथा यथावसर श्रीमद्भागवत के मूल वंशों से उनकी रचना की तुलना भी। अष्टछाप के कवियों ने जहाँ दशमस्कन्धीय श्री-कृष्ण-लीला का विशेष वर्णन किया है वहाँ श्रीमद्भागवत की अन्य कथाओं और आख्यायिकाओं का उपयोग भी भक्ति-निरूपण में किया है। विशेष कर सूरदास ने अनेक दृष्टान्त और अन्तःकथाएँ श्रीमद्भागवत से ली हैं।

१-कुंभदास:- (सं० १५२५-१६४०) अष्टछाप के सब से क्योष्ठ कवि कुंभदास थे। इसीलिए इनका उल्लेख सर्वप्रथम किया गया है। सूरदास के वल्लभ सम्प्रदाय में दोषित होने से पूर्व श्री-कुंभदासही ही गौयक में श्रीनाथ जी की कौतूहल सेवा करते थे।^४ इनकी रुचि विशेषतया मधुर भक्ति की और श्री जिसका आदर्श गोपियाँ हैं।^५ उन्होंने लीला सम्बन्धी पद रचित कर युगल लीला के पदों की रचना की है। श्रीमद्भागवत के गोपी-प्रेम से ये विशेष प्रभावित थे और गोपियों की रूपासक्ति के भाव इन्होंने श्रीमद्भागवत से लिए हैं:-

क-मैननि भरि देखी नन्दकुमार।

ता दिन तैं सब भूलि गई हौं अंग अंग सब हारि।

बिन देखे हौं विदल भई हौं अंग अंग सब हारि।^६

१-अष्टछाप परिचय : श्रीप्रभुवल्लभ मीतलः पृ० १३७ । २- वहीः पृ० १७९।

३-माधवी या घर बहुत धरो।---- अष्टछापानि की वार्ताः सं० द्वारकाप्रसाद परीसः पृ० २३

४-अष्टछाप परिचय : पृ० १९। ५-वहीः पृ० १९।

स- शैनि टकटकी लगि रही।

नख सिख की लाल गिरिधर के देखत रूप बही।

घर बौहार सकल सुधि भली गुवालि मनखि दही॥" १

ग- कबहुं देखिहीं इन नैननि।

सुन्दर झ्याम मनोहरि मूरति की की सुख दैननु।

वृन्दावन बिहार दिन दिन प्रति गीप वृन्द संग लेननु॥ २

उक्त पदों में श्रीमद्भागवत की गीपी प्रेम के कतिपय प्रसंगों की झलक स्पष्टता से देखी जा सकती है। एक उदाहरण प्रामाण्य होगा:-

"चित्तं कुल भवतापहृतं गृहेषु

यन्निर्वशात्पुत्रं करावपि गृह्यकृत्यै।

पादौ पदं न चलतस्तव पादमूला-

पामः क्वं क्रमयौ करवाम किंवा॥" ३

श्रीकृष्ण के रूप वर्णन में कुम्भदास की पंक्ति - "कुम्भदास प्रभु गीवरधनधर लालन है युवतिन सुखदाई।" ४ श्रीमद्भागवत के पद "यन्मितीत्सवरूपशाली" ५ का भाव लिए हुए है। मुरली के स्मरोदयकारी प्रभाव के विषय में भी कुम्भदास ने लिखा है- "बोली मुरली की पुनि पुनि, तुव तन मदन दहीगी"। ६

लीला गान -- रासलीला -----

कृष्ण तरनि तनया तीर रास मंहेल रच्यौ।

गधर कल मुरखिया वैष्णु बावै।

बुवती जन बूध संग, नितत कोक रंग,

निरसि बभिमाम तपि काम लावै॥

मुतर मंजोर, कटि किंकिनी कुनित रव

वफा गुभीर वनु मेघ गावै।

दास कुम्भदास हरिदास कर्ष

हरनि नख सिख स्वरूप गदुभुत विरावै॥

१-अष्टछाप परिचय : पृ० १०७। २- वही: पृ० १०७। ३-श्रीमद्भा०: १०-२९-३४।
४-अष्टछा०: पृ० १०५। ५-श्रीमद्भाग०: ४०-२१-१२। ६-अष्टछा०: पृ० १०९।

गावत गिरिधरन कां, परम मुदित रास रंग,
उरपति रय मा न लेत नागर नागरी।
चर्वित ताम्बूल दैत, ध्रुव ताल गति लेत, गिदि गिदिता
गिदिता, तला धुंग वैई अलाग लाग री॥

१

श्रीमद्भागवत की रास पंचाध्यायी के आधार पर ही उपर्युक्त पदों की रचना हुई है:-

नवाः पुलिनमाविश्य गौणीभिर्हिमवालुकम्।

रैमे तत्तरत्नानन्दकुसुमामोदवायुना॥

२

वत्समाना 'क्षुराणां' किंकिणीनां च योषिताम्।

सप्रियाणाम भूच्छब्दस्तुमूली रासमण्डले॥

३

कस्याश्चिन्नाद्यविदिष्यतकुण्डलत्विजामण्डितम्।

गण्डं गण्डं सन्दपत्या अदात्ताम्बूलचर्वितम्॥

४

कुंभदास ने "चर्वित ताम्बूल दैत" लिख कर श्रीमद्भागवत के भाष्य की स्पष्ट स्वीकृति दी है। उक्त पदों में गौवर्धन वर्धन के लिए प्रयुक्त "हरिदास कर्क" शब्द भी कुंभदास ने भागवत के (हन्तायमद्विरबला हरिदासकर्म)"-१०-२०-१८-, श्लोक से लिया है। इस प्रकार के जीर भी उदाहरण दिये जा सकते हैं।

२- सूरदास सं० १५३५-१६४० :-

सूरदास के साहित्य पर श्रीमद्भागवत के प्रभाव की संक्षिप्ततम रूप में भी व्यक्त करना इस प्रबन्ध में शक्य नहीं है। श्रीमद्भागवत को सूर ने बड़ी सर्वाधिक उपजीव्य बनाया है। डा० हरवंश ताल ने अपने शोध प्रबन्ध में सूर सागर और श्रीमद्भागवत का तुलनात्मक अध्ययन पृथक् रूप से प्रस्तुत किया है। वास्तव में यह विषय है ही बहुत विस्तृत। यहाँ हम कतिपय उदाहरणों में ही इस विषय को समित रखने के लिए विवश हैं।

श्रीमद्भागवत का महत्व-प्रतिपादन - सूर ने श्रीमद्भागवत^{श्रवण} की मानव जीवन की सफलता के लिए अनिवार्य बताया है-

क- नर तैं जनम पाह कह जीनी।

उदर भरी कुर सुकर लीं प्रभु की नाम न जीनी।

श्रीभागवत सुनी नहिं प्रवननि गुरु गौविंद नहिं जीनी। ५

ख- जनम ती बादिहि मयी सिराइ।

श्रीभागवत सुनी नहिं प्रवननि नेकु रुचि उपजाइ।

जानि भक्ति करि, हरि भक्तन के कहुं न धोए पाइ॥ ६

१-जष्टछां०पु०:पृ०:११५। २-श्रीमद्भा०:१०, २९, ४५। ३-४-वहाँ:१०; ३३; ६, १३।

५-सूरसागर:का०ना०पु०:पद६५। ६-वहाँ:पद१५५।

ग- इत उत देखत जनम गयी।

श्रीभागवत सुन्यो नहि कबहुं, बीचहि भटकि मर्यो।

सूरदास कहे सब जग बूझ्यो, जुग जुग भवत तय्यो॥ १

भावान् की भक्तवत्सलता की चर्चा करते हुए सूर ने श्रीमद्भागवत की परम प्रमाण मानते हुए वेद और गीता के साथ उसका इस प्रकार नामील्लेख किया है:-

गीता वेद भागवत में प्रभु की बोले हैं बाण।

जन के निपट निपट सुनियत हैं, सदा रहत हैं साय॥ २

मध्य काल में शाक्तों और वैष्णवों में कलह चलता रहता था। किन्तु वैष्णव धर्म --भागवत धर्म-- अपने अहिंसा, सात्त्विकता आदि गुणों के कारण और श्रीमद्भागवत जैसे समर्थ शास्त्र को अपने पीछाक रूप में पाकर अनुदिन लोक-प्रिय और विजयी हो रहा था। सूर ने वैष्णव --भागवत-- की श्रेष्ठता का प्रतिपादन स्वयं श्रीकृष्ण द्वारा दुर्योधन के प्रति इस प्रकार कराया है:-

"तुम साकट के भात भागवत, राग द्वेष तैं न्यारे" ३

भागवत-कथन- सूर सागर में कृष्ण सीता गान में कल्पि सूर ने अपनी प्रतिभा का विशेषा चमत्कार दिखाया है तथापि उनका सूर सागर द्वादश स्कंधों में समस्त श्रीमद्भागवत की ही प्रस्तुत करता है। सूरदास ने मूल चतुःश्लोकी भागवत के क्रमशः उपबृंहण के विषय में कहा है:-

"श्रीमसु चारि स्लोक दए ब्रह्मा की समुझाइ।

ब्रह्मा नारद सीं जे नारद व्यास सुनाइ॥

व्यास कहे सुखदेव सीं द्वादस स्कंधकाइ।

सूरदास सीई कहे पदभाषा करि गाइ॥ ४

सूर ने श्रीमद्भागवत के अनुसार ही भागवत की वक्तु-श्रोतु-परम्परा का वर्णन किया है।^५ और भागवत रचना का कारण भी बताया है:-

भग्यो भागवत जा परकार। कहीं सुनी सो अब चित्त धार॥

सखजुग लाख बरस की जाह। जित दस सहस्र कहि गाइ॥

द्वापर सहस्र एक की भई। कलियुग सत संवत रहि गई॥

सौदर कहन सुनन कीं रही। कलि मरजाव जाइ नहिई कही॥ ६

तारि हरि करि व्यास अवतार। करी संहिता वेद विचार॥

बहुरि पुरान अठारह कि। पि तरु सांति न आई छिए॥

तब नारद तिनकें तिग जाह। चारि स्लोक कहे समुझाइ॥

दासी-सुत सैं तैं नारद भग्यो। दोऊ दासपन की मिटि गयी॥

१, २, ३, ४, ५- सूरसागरः का. ना. प्र. पद क्रमशः १९६, १९६, २४२, २२५, २२७-८।

सुर सागर का साक्ष्य बताया है तथा उसे भव -

सागर तरने का साक्ष्य बताया है।

श्रीभागवत सुनी जो कोह। ताकीं हरि पद प्रापति होइ।

सुनी भागवत जो भित लाह। सुर सौ हरि भजि भव तरि जाह॥ २

सुर सागर में सुरदास ने श्रीमद्भागवत की प्रायः समस्त कथाओं और अन्य विषयों का वर्णन "सुर की भागवत विचारि" ^१ यथा "सुर क्यौ भागवतनुसारि" ^२ इस प्रकार की उपसंहा-
रात्मक प्रस्तियों सहित किया है। सुर सागर के स्थात्मक संस्करण में मुख्य मुख्य कथाएं
ये हैं:-

प्रथम स्कन्ध- सूत शौनिक संवाद, श्रीकृष्ण द्वारका गमन, वृतराष्ट्र वन गमन, अर्जुन का द्वारका
से शोक समाचार लेकर लौटना, परीक्षित जन्म, पाण्डवों का परीक्षित को राज्य देकर
स्वर्गारोहण, परीक्षित का दिग्-विजय, परीक्षित की शृंगी कृष्ण का शाप, परीक्षित
शुक्र सम गमन।

द्वितीय स्कन्ध - विराट् रूप वर्णन, भावदूषित की प्रधानता का निरूपण, भावान् के लीला-
कतारों की कथा,।

तृतीय स्कन्ध- उद्धव और विदुर का भेंट, मैत्रेय विदुर संवाद, ब्रह्मा की उत्पत्ति, वाराह-
अवतार का, जय-विजय कथा, हिरण्याक्ष वध, कर्म देववृत्ति कथा, कपिलदेव का अवतार, देव-
कृति कपिल संवाद।

चतुर्थ स्कन्ध- सती और दक्ष की कथा, ध्रुव कथा, प्रभु कथा, पुरजनीपास्थान।

पंचम स्कन्ध- कृष्णभदेव कथा, बह्म भरत और रघुमण्य संवाद,।

षष्ठ स्कन्ध- कथागितीपास्थान।

सप्तम स्कन्ध- मुनिहं अवतार कथा-प्रतादचरित्र-।

१-सुर सागरः पद २३०।

२-वहीः पद

३-वही पद २२९।

४-वहीः पद २९३।

षष्ठम स्कन्ध- गज-द्रोह कथा, समुद्र मंथन और देवासुर संग्राम कथा, मीरिनी अवतार कथा,

नवम स्कन्ध- पुरुरवा की कथा, ज्यवन और सुकन्या की कथा, बलराम-रेवती विवाह, राजा जंबवीण की कथा, सीभरि ऋषि की कथा, गंगावतरण कथा, श्रीराम कथा, परशुराम की कथा।

दशम स्कन्ध- श्रीमद् भागवत दशम स्कन्ध में कृष्ण लीला का संगोपांग वर्णन है। सूर का मन यहीं रमा है। सूर ने दशम स्कन्धीय लीलाओं का वर्णन अत्यन्त विस्तार से किया है। कृष्ण भक्ति परक अन्य ग्रन्थों में भी कृष्ण लीला विषयक सामग्री लेकर पद लिखे हैं— उदाहरणार्थ सूरसागर दशम स्कन्ध में श्रीकृष्ण द्वारा श्रीधर द्राह्मण के जंग भाँ की कथा है^१ जो श्रीमद्भागवत में नहीं है। सूर की कृष्ण लीला का स्फुरण हुआ था फलतः उन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा और कल्पना से भागवत की कृष्ण लीला को मनोहर रूप में उपवृत्तित किया। सूर ने लिखा है कि भागवत के नौ स्कन्धों की तो शुक देव ने परीक्षित को जैसा कहा था वैसा ही जब तक मैं वर्णन करता रहा^२ किन्तु अब दशम स्कन्ध में हरि का ध्यान करके मैं --मौलिक रूप में-- कहता हूँ।^३ अतः सूर के कृष्णलीला गान का विवेचन हम पृथक् रूप से जागे करेंगे।

एकादश स्कन्ध- नर-नारायण अवतार कथा, हंसावतार कथा।

द्वादश स्कन्ध- परीक्षित की परम पद प्राप्ति,।

इस प्रकार सूर ने भागवत की अष्टहता का निर्वाह किया है।

अ- भागवतोक्त सामान्य भक्ति-तत्त्व ४

सूर ने एक सामान्य वैष्णव भक्त के रूप में जो रचना की है उसमें भागवत के भक्ति-तत्त्वों की स्पष्ट स्वीकृति है।

१-सूरसागरः पद ६७५।

२-शुक ज्यों नृप कीं कहि समुझायो। सूरदास त्योंती कहि गायो॥ सूरसा०ः पद ६१८।

३- ब्यास कह्यो सुकदेव सीं, श्रीभागवत बहानि।

द्वादस स्कन्ध परम सुभ, प्रेम भक्ति की बानि।

नव स्कन्ध नृप सीं कहै, श्रीसुकदेव सुजान।

सूर कहत अब दसम सीं, उर धरि हरि की ध्यान॥

सूरसागरः पद ६१९।

४-देखिए इस प्रबन्ध का अध्याय २ तथा ४।

१

१-भक्ति मार्ग का सर्वोष्ठतम- मध्य काल में भक्ति मार्ग को एक विशिष्ट वैज्ञानिक साधन पथ के रूप में ग्रहण किया गया और श्रीमद्भागवत ने उसे प्रशस्त किया। सूर ने समस्त साधनों की अपेक्षा भगवद्भक्ति की श्रेष्ठता का स्थापन किया है। भक्ति-रहित कर्म काण्ड आदि साधन बन्धन के कारण होते हैं। कर्म काण्ड एक "पुष्पिता वाक्" है। भक्ति के बिना भगवान् अव्यक्त दुर्लभ हैं। भक्ति की पापनाशिनी शक्ति सर्वोपरि है-

क- मारि न सके, विघ्न नहिं गाँवै, जम न चढ़ावैं कामर।

प्रिया कर्म करतहुं निशि वासर भक्ति की पंथ उजागर।।

सोचि विचारि सकल द्युति संकी, हरि हैं और न जागर।

सूरदास प्रभु दाहि और भक्ति उत्तरि पत्नी भव सागर।। १

ख- कुसुमित कर्म कर्म की मारग जड़ कीड करत बनाई।

तदपि विमुख पांती सो गनियत, भक्ति हृदय नहिं आई।

भक्ति पंथ मेरे भक्ति नियरें जब तक कीरति गाई।

भक्ति प्रभाव सूर लखि पावौ भजन छाप नहिं पाई।। २

ग- रे मन समुझि सोचि विचारि।

भक्ति बिनु भगवंत दुर्लभ कहत निगम पुकारि। ३

घ- सूर हरि की भक्ति कीन्हें जन्म पातक जाइ। ४

श्रीमद्भागवत में कहा गया है-

एतावानैव भक्तिसमस्मिन् लोकेऽस्मिन् पुंसां कर्मः परः स्मृतः।

भक्ति-योगी भवति तन्नाम-ग्रहणादिभिः ॥ ५

२- भक्त महिमा-

जिस प्रकार भक्त भगवान् के बनन्याय में रहता है वैसे ही भगवान् भी भक्त-पराधीन हैं। सूरदास ने भक्त की बड़ी महिमा गाई है और प्रत्यक्ष भगवद्वाच्य के रूप में है--

क- अन्तरजामी नाउं हमारी, हीं अंतर की जानीं।

तदपि सूर में भक्त बल्ल हीं, भक्तनि हाथ विकानीं।। ७

ख- भक्त बल्ल है बिरद हमारी, वेद तुमृति हूँ गायीं।। ८

१-सूरसागरः पद ९१। २-वहीः पद ९१। ३-वहीः पद ११६। ४-वहीः पद ११६।

५- श्रीमद्भागवत ६:३:२२। विशेष दृष्टव्य- १:२:६, ७, ८, १३। १:२:२२। ६:१:१६।

६-श्रीमद्भा०:४:१। ७-वही: २:७:५५। सूरसागरः पद २४३। ८-वहीः पद २४४।

ग- हम भक्तनि के भक्त हमारे।

सुन शर्जुन परतिग्या मैरी यह व्रत टरत न टारे।

भक्तनि काज लाज हिय परिकै पाइ पियादे पाऊं।

जहं जहं भोर परे भक्तनि कीं तहं तहं जाइ छुड़ाऊं॥

जो भक्तन सीं बैर करत है सो निज बैरी मैरी।

देसि बिचार भक्त हित कारन हांकत हौं रप तेरी॥

जातिं जीत भक्त अपनै की हारैं हारि बिचारीं।

१

सूर ने भक्त और भगवान् में बंधन स्थापित किया है। भक्त का अनिष्ट करने की सामर्थ्य त्रैलोक्य में किसी के पास नहीं है-

क- हरि हरिभक्त एक, नहिं दोह। पै यह जानत बिरला कोह। २

ख- नहीं जिलोकी ऐसी कोह। भक्तनि कीं दुख है उकै जीव। ३

श्रीमद्भागवत में भगवद्भक्त के जो कार्य और लक्षण बताए गए हैं^१ सूर ने उनका वर्णन इस प्रकार किया है-

नर देहो पाइ चित वरन कमल दीजै।

मन बचन खेतनि संग, दरस परस को जे॥

लोलागुन जमृत रस झवननि पुट पावै।

सुंदर मुख निरखि प्यान नैन मांदि लावै।

गद्गद् सु मुख रीम अंग प्रेमभीजै।

सूरदास गिरिपर जस गाह गाह जावै॥

४

३-स्तुति विनय - स्तुति का लक्ष्य भगवान् की अनन्त महिमा और भक्तवत्सलता

का स्थापन तथा स्वदोज्ज वर्णन है करना है। निर्गुण निर्विकार ब्रह्म ही माया के भिन्न गुणों से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के लिए त्रिवेद के रूप में अवतरित होता है।^५ भगवान् की महिमा का पूर्णतया कल्प किसी के लिए सम्भव और शक्य नहीं है।^६ किन्तु भक्त के प्रति उनके वात्सल्य की दृष्टता नहीं है। सूर ने श्रीमद्भागवत की वृद्धि स्तुति के आधार पर लिखा है-

१-सूरसागर : पद २७२।

२-बही: पद २९०।

३-बही: पद ४१०।

४-श्रीमद्भागवत: १०: ११।

५-सूर०: पद ७२।

६-श्रीमद्०४: १।

७-बही: २: ७: ४१।

करि दंढवत विनय ठञ्चारी। तुम अनन्त विग्रह बनवारी॥

तुम ही करत विगुन विस्तार। उतपति, धिति पुनि करत संसार॥ १

स्वतन्त्र रूप में भी सूर के विनय और स्तुति परक पद भावदूषित हैं।^{सर्वस्व} इनमें अनन्त भावना-
हात्म्य और भावद्वलता का जैसा स्थापन हुआ है वह भक्ति-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है-

क- वासुदेव की बड़ी बड़ाई।

जगतपिता जगदीश जगतगुरु निज भक्तनि की सहत ठिठारै। २

स- करना करुनासिंधु की मुस कहत न जावै।

कपट हेत परतैं बकी, जननी गति पावै।

कैद उपनिषद् बासु कीं विरगुनहिं बतावै।

सोह सगुन ह्वै नंद की दांवरी बंधावै॥ ३

ग- तुम अनादि अविगत अनन्त गुन पूरन परमानन्द।

सूरदास पर कृपा करी प्रभु श्रीवृन्दावन चंद॥ ४

क्रम

१-नाम महिम १-

भावान् के नाम की अनन्त महिमा सूर ने गाई है। सरसागर के
सातराः पदों का प्रारम्भ "हरि हरि हरि सुभिरन केरी" पंक्ति से होता है। इसी से
सूर की नाम-निष्ठा का पता चल जाता है-

क- जनतैं रसना राम क्यूँ।

मानौ धर्म साधि सब बैद्यी पढ़िबैं में कीं कहा रक्षौ।

प्राण प्रताप ज्ञान गुरु गम तैं दधि मधि घृत से तण्यौ मक्षौ।

चार की चार, सख सुख की सुख, हस्मान् खिज जानि गक्षौ।

नाम प्रतीति भई जा जन कीं, लै आनंद दुख दूरि दक्षौ।

सूरदास पनि धनि यह प्राणा जो हरि कीं प्रत लै निवक्षौ॥ ५

ख- सूर एक यौ नाम बिना नर फिरि फिरि जानी हारौ। ६

ग- बिहिं जिहिं जोनि जन्म वास्यौ बहु जोर्यौ गष की भार।

तिहिं काटन कीं समरय हरि की तिजनि नाम कुठार। ७

घ- भव अम्भोधि नाम निज नौका करी सेहु चढ़ाव। ८

१-सूरसागर : पद १२१। २-वही: पद ३। ३-वही: पद ४। ४-वही: पद १६३। ५-वही: ३५१।
६-वही: पद ६०। ७-वही: पद ६८। ८-वही: पद १५५।

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि जो भावद्भक्त है वास्तव में वही श्रेष्ठ है, उच्च वर्ण से श्रेष्ठता नहीं आती। कुरदास ने भी नाम जप करने वाले को श्रेष्ठ कहा है-

खीड़ भली जो रामहिं गावै।

स्वपक्षु श्रेष्ठ होत पद सेवत विनु गोपाल जिन जनम न भावै। १

५-गुरु-महिमा-

सूर ने श्रीमद्भागवत अष्ट स्कन्ध सप्तम अध्याय की एक आख्यायिका के आधार पर गुरु की महिमा इस प्रकार बताई है-

हरि गुरु एक रूप नृप जानि। यामिं कहु सन्देह न जानि।

गुरु प्रसन्न हरि परसत होइ। गुरु के दूखित दुखित हरि जोइ।

तातिं हरि गुरु सेवा की वै। मेरी वक्त मानि यह लजि। २

एक स्वतन्त्र पद में सूर ने गुरु के विषय में कहा है-

गुरु विनु ऐसी कीज करै।

माला तिलक मनोहर बाना, लै सिर छत्र परै।

भव सागर तैं बूढ़त राखै, दीपक हाथ परै।

सूर स्वाम गुरु ऐसी समरथ, जिन में लै उधरै। ३

६-सत्संग-

साधु जनों के महत्त्व और सत्संग के अमोघ कल्याणकारी प्रभाव का सूर ने यों वर्णन किया है-

जा दिन संत पाहुने आवत।

तोरय कोटि स्नान करं फल वैसी दरसन पावत।

नयी नैह दिन दिन प्रति उनके चरन कमल जित लावत।

मन बच कर्म और नहिं जानत सुमिरत जी सुमिरावत।

मिथ्यावाद उपाधि रहित है विमल विमल जसु गावत।

बंधन कर्म कठिन जे पहिले, तौऊ काटि बहावत।

संगति रहैं साधु की कतुदिन, भव दुख दूरि सुस्ति कहावत।

सूरदास संगति करि तिनकी जे हरि सुरति करावत।। ४

१-सूरसागर : पद २२३।

२-वही : पद ४१६।

३-वही : पद ४१७।

४-वही : पद : २६०। दृष्टव्य : श्रीमद्भा० : ११ : ११ : ४७, ४८।
तथा ११ : १२ : १-६।

७-वैराग्य- श्रीमद्भागवत में भक्ति के साधन और साध्य दोनों ही रूपों में वैराग्य का विशद वर्णन है जो समस्त ग्रन्थ में इतस्ततः विकीर्ण है। छर की रचनाओं में भी वैराग्य-परक पदों की संख्या बहुत है। उनमें अपने मन का प्रबोध, अपने दोषों का प्रदर्शन, देह-मोह की आसक्ति की निन्दा, तथा स्त्री-धन आदि विषयों के चिन्तन से परमार्थ की हा नि का उत्प्रेष किया गया है। साथ ही मानव देह की ईश्वर-प्राप्ति का अत्यन्त दुर्लभ साधन बता कर उसके द्वारा शीघ्रातिशीघ्र भगवत्प्राप्ति कर लेने का परामर्श दिया गया है ।

क- जग में जाँचत ही की नाती।

मह बिजुरें तन छार होइगो, को उन बात पुछाती।

में मेरी क्यूँ नहिं कीजे, कीये पंच जुहाती।

विषयासक्त रहत निसि वासर, कुत खिरी दुःख ताती।

साँच भूँठि करि माया वीरी, बापुन सूखी खाती।

कूदसास कु थिर न रहै जो बापी सीजातौ॥ २

स- रे मन, छाँड़ि विषय की रंजिनी।

अन्तर गहत कनक कामिनि कोँ हाव रहैगो पचिनी। ३

ग- रे म न, जग पर जानि ठगानी।

हान-मद, कुत-मद, तरुनी के म द, भव मद हरि विखरायी। ४

घ- वीरे मन, समुक्ति समुक्ति कु सेत।

हतनी जन्म अकारव लोखी, स्याम चिकुर भर सेत।

तब लागि सेवा करि निरुज्य सौँ जग लागि हरिथर सेत।

सूरजदास भरम जनि भूली करि विपना सौँ सेत॥ ५

१-श्रीमद्भागवतः स्कन्ध ३, अध्याय ३०, ३१, ३२।

२-सूरसागरः पद १०३।

३-सूरसागरः पद ५१।

४-वहीः पद ५८।

५-वहीः पद ३२२।

जा—भागवतीवत विशेष तत्त्व ।

१-विविध कृष्ण लीलाओं का गान-

सूरदास ने श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध की

निम्नलिखित लीलाओं का गान किया है:-

दशम स्कन्ध पूर्वार्ध- कृष्ण-प्रादुर्भाव, गोकुल में जन्मोत्सव, पतना-वध, शकटासुर-वध, वृणा-वर्त वध, नामकरण, शिशुघ्नीडा, माखन-चोरी, उलूखत बन्धन, यमलार्जुनोद्धार, वृन्दावन-प्रस्थान, गोचारण, वकासुर वध, ब्रह्माकृत गोप बाल एवं गोवत्स हरण, वेनुक वध, कालिय दमन, दावा-नल पान, प्रलंब वध, चीर हरण, यज्ञपत्नियों पर अनुग्रह, गोवर्धन पूजा, गोवर्धन-धारण, इन्द्रकृत कृष्ण स्तुति तथा कामधेनु कृत कृष्णाभिषेक, वरुण बन्धनसे नन्द का मोक्ष, रास-लीला--श्रीकृष्ण का अन्तर्धान होना, गोपिका गीत, रास नृत्य तथा जलझोटा--, किनाकर शाप-मोक्ष, वृन्दावन विहार एवं वेणुवादन, शंखचूड़ वध, वन भोजन, वृणासुर वध, केशि वध, अम-म 1सुर वध, अक्षर ब्रज गमन, गोपिकाओं की उद्दिग्धता, अक्षर कृत कृष्णस्तुति, मधुरागमन, रजक वध, पनुर्भा, कुवल्यापीठ वध, मत्स्य एवं कंस वध, वसुदेव मिलन, यज्ञोपवीत, गोपीविरह, उद्धव ब्रजागमन, भ्रमर गीत, उद्धव प्रत्यागमन, अक्षर गृह गमन।

दशम स्कन्ध उत्तरार्ध- काल्यवन दहन, द्वारका प्रवेश, रुक्मिणी पत्र प्राप्ति, कृष्ण रुक्मि-णी विवाह, शतधन्वा वध, श्रीकृष्ण के अन्य विवाह, भीमासुर वध तथा कल्पवृक्षान्वन, रुक्मि-णी परीक्षा, प्रद्युम्न विवाह, अनिरुद्ध विवाह, नृग उद्धार, बलराम ब्रज आगमन, पीण्डक वध, सुदक्षिण वध, द्विविध वध, साम्ब विवाह, नारद संशय, वरासंधवध, राजाओं की प्रार्थना, पाण्डव वध, शिशुपाल वध, पाण्डव सभा में दुर्योधन का अपमान, शास्त्र वध, दन्तवन्धन वध, सुदामा ब्राह्मण पर अनुग्रह, कुरुक्षेत्र में गोप गोपियों से मिलन, देवकी पुत्र जानयन, सुभद्रा-हरण और सुभद्रा-कर्जुन विवाह, जनक और श्रुतिदेव पर अनुग्रह, वेद स्तुति, शम्भु-मोक्ष--भस्मासुर-वध--, भृगु कृत विदेव परीक्षा, कर्जुन को स्व-स्वरूप-दर्शन एवं शंखचूड़ ब्राह्मण के पुत्रों का महाकाल पुर से जानबूझ ।

इस प्रकार सूरदास ने श्रीमद्भागवत में वर्णित कृष्ण लीला का सांगोपांग वर्णन किया है। हाँ, यह बात अवश्य है कि जिन लीलाओं में उनकी चित्तवृत्ति अधिक रही है उनका वर्णन उन्होंने विशेष, उत्साह और उत्साह के साथ किया है। इनमें बाल लीला और केशीर्थ की प्रेम लीलाएं उल्लेखनीय हैं। इनमें सूर नेत्र आपाद-मस्तक निमग्न हो, हृदय में कृष्ण लीला के स्फुरण का अनुभव कर, जिनके गानमें अपनी नव नवीन्मेष शालिनी प्रतिभा का परिचय दिया है। किन्तु यह बात स्मरणीय है कि श्रीमद्भागवत की कृष्ण लीला विष्णु-
१-इस प्रबन्ध का पंचम अध्याय

यक मूल सामग्री निरन्तर सूर का उपजीव्य रही है। कहीं कहीं सूर ने श्रीमद्भागवत के श्लोकों का अनुवाद सा ही कर दिया है, यथा कृष्ण जन्म प्रसंग में -

सूरसागर- जानै जानन्द बहुन्वी गति।

देवनि दिनि दुंदभी कवाई, सुनि मयुरा प्रगटे जादव पति।

किवापर किन्नर कलोल मन उपजावत मिलि कंठ गमित गति।

गावत गुन गंधर्व पुलक तन, नाचति सब सुर नारि रसिक गति।

वरणात सुमन सुदेस सूर सुर, जय जय कार करत मानत रति।

शिव विरंचि इन्द्रादि कम र मुनि, फूले सुख न सम तत मुदित मति॥ १

श्रीमद्भागवत-

मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनामसुरद्वहाम्।

वायमानेऽप्यने तस्मिन्नेदुदुन्दुभ्यो दिशि।

जगुः मंसकिन्नरगंधर्वास्तुष्टुषुः सिद्ध चा रणाः।

किवाध्याश्च नमृतुरप्सरोभिः समं तदा॥

मुमुक्षुर्मुनयो वैद्याः सुमनांसि मुदान्विताः।

मन्दं मन्दं जलधरा जगुर्ब्रह्मसागरम्॥ २

तृणावर्त वध के प्रसंग में:-

सूरसागर- गति जानंद जांगन में ठाढ़ी, गोद लिए सुत सारंगधानी।

तृणावर्त को सुरति जानि बिय पठ्यौ असुर कंत अभिमानी।

गदू भइ मन में बैठाय, सहि न सकी जननी अकुलानी।

जापुन गई भवन में दोरी कछु इक काज रही लपटानी।

बीहड़ महा भयावन जायौ, गोकुल सब प्रत्य करि मानी।

महा दुष्ट ते उठ्यौ गुपालहिं चली अकास कृष्ण यह जानी॥ ३

श्रीमद्भागवत- एज्जदारीहमारुद्धं ताल्यन्ती सुतं पती।

गरिमाणं शिशोर्वोदुं न सेहे गिरि-भूट-वत्॥

भूमी निषाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता।

महापुरुषमादधौ जगतामास कंसु॥

दैत्यो नाम्ना तृणावर्तैः कंसभृत्यः प्रणोदितः।

चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमभकम्॥

गोकुलं सर्वमावृण्वन् मुष्णंश्चक्ष्मणि रेणुभिः।

हंरयन्सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः॥ १

बात सीला के प्रसंग में:-

सूरसागर- कबहुं धरनि पर बैठिकै, मन में कहु गावत। २

श्रीमद्भागवत- उद्गायति क्वक्षिन्मुग्धस्तद्वशी दारुबन्धवत्। ३

कृष्ण जन्मोत्सव के प्रसंग में:-

सूरसागर- ब्रज भगी महर हैं छत जब यह बात सुनी।

सुनि धाई सब ब्रज नारि, सहज सिंगार किए।

तन पहिरे नूतन चीर, काजर नैन दिए।

कसि कंचुकि तिलक तिलार, सोभित नैस्य हार दिए।

कर कंन कंन बार मंगल साज किए।

सुभ प्रव्रजनि तरल तरौन, बैनी सिधिल गुही।

सिर बघात सुमन सुदेस, मानी मेघ फुही॥ ४

श्रीमद्भागवत-

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिताः यशोदायाः सुतोद्भवम्।

आत्मानं भूषाद्यैर्बुधैस्त्वाकृत्यायनादिभिः॥

नवकुङ्कुमकिञ्चित्कमुत्पङ्कजभूषणैः।

वलिभिस्त्वरितं वगुणैः पृगुश्रोण्यश्चसत्कुचाः॥

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्कण्ड्यः

चित्राम्बराः पथि शिखाच्युतमात्यवर्णाः।

मन्दालम् सवस्त्रा व्रजती विरेजु-

व्यालोलकुण्डलपयोपरहारशोभाः॥ ५

१-श्रीमद्भागवतः १०:७:१८-२१।

२-सूरसागरः पद ७४०।

३-श्रीमद्भागवतः १०:११:७।

४-सूरसागरः पद ४२१।

५-श्रीमद्भागवतः १०:५:९-११।

सूरसागर- छिरस्त हरद दहा हिय हरजत। १

श्रीमद्भागवत- हरिदाहणतिलादिभः सिंचन्त्यो जनमुज्जगुः। २

सूतनावध के प्रसंग में:-

सूरसागर- पय संग प्राण पंचि हरि सानी। ३

श्रीमद्भागवत- प्राणीः समं रोजसमन्वितोऽपिबद्ध। ४

इस प्रकार अन्य अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

सूरदास ने दशमस्कन्धीय कृष्णलीलाओं का एक जीर उपयोग किया है- वह है सीताओं के संकेत मान से अपने दृष्ट देव की अनन्त महिमा और वत्सलता का प्रति-
पादन। भागवतोक्त अन्य कथा प्रसंगों का भी ऐसा ही उपयोग उन्होंने किया है किन्तु उनके
लि कहा जा सकता है कि वे कथाएं अन्य पुराणों में भी प्राप्त होती हैं। बलि की कथा,
प्रह्लाद की कथा, अजामिल की कथा, गजेन्द्र-प्राद की कथा, ऐसे ही हैं। यहां एक उदाहरण
स्पर्शित होगा:-

छिरनकस्थप बह्यी उदय बरु अस्त लीं हठी प्रह्लाद चित्त चरन लायी।

धीर के परे तैं धीर सनहिनि त्वा, संभ तैं प्रगट ह्वै जन छुड़ायी।

प्रस्थी गज प्राह तै चत्यी पाताल कौं काल के त्रास मुख नाम जायी।

छांड़ि सुख धाम बरु गरुड तजि सांवरी धवन के गवन तैं अधिक धायी॥ ५

उपर्युक्त पद में संकेतित कथाएं श्रीमद्भागवत में भी हैं।

अब छर के दशम स्कन्धीय कृष्ण लीलाओं के संकेत युक्त कुछ पदों के उदाहरण प्रस्तुत
किए जाते हैं:-

क- करनी करुनासिंधु की कछुहत्त न जावै।

कपट हेत परसैं तकी, जननी गति पावै।

वेद उपनिषद वासु कौं निरगुनहिं बतावै।

सोह सगुन ह्वै नन्द को दाँवरी बंधावै।

उग्रसेन की आपदा सुनि सुनि बिलखावै।

कंस मारि राजा करै, आपुहि सिर नावै।

जरासंध बन्दो फटै नृप कुल जस गावै।

सूरदासी बानती कोठ से पधुंचावै। ६

१-सूरसागर: पद ६३७। २-श्रीमद्: १०:५:१२। ३-सूरसा: पद ६६९। ४-श्रीमद्: १०:६:१०।

५-सूरसागर: पद ५। ६-सूरसागर: पद ५।

स- क्लानिधान सकल गुन सागर गुरु धौं कहा पढ़ाए ही।

तिहिं उपकार मृतक सुत जाचे सो जम पुर तैं त्याए ही। १

ग- द्रुमु तुम दीन के दुख हरन।

दूर देखि सुदामा जावत घाह परस्यौ चरन।

लच्छ लौं बहु लच्छ दीलौं दान अवडर डरन। २

घ- गोप गाइ गोसुत जल बासत गोवर्धन कर धार्यौ। ३

ढ०- जब अरिष्ट कैसी काली मणि दावानलहिं पियौ।

कंस बंस बधि जरासंध हति गुरु सुत जानि दियौ। ४

ऊपर के उदाहरणों में श्रीमद्भागवत की दशमस्कन्धीय कृष्णलीलाओं के सैंत माश से झर ने अपने दृष्ट को महिमा और भक्त-वत्सलता का दिग्दर्शन कराया है।

कृष्ण लीला के सभी उपकरणों --वृन्दावन, यमुना, गोवर्धन, गौण, गोप बालक, नन्द, यशोदा आदि-- का भागवतोक्त स्वरूप सूर ने ग्रहण किया है। उदाहरणार्थ वात्सल्यमयी यशोदा के स्वरूप को देखिए:-

सूरसागर- सांभ भई घर आवहु प्यारे।
दौरत कहा चीट लगिहि कहुं, पुनि सेलिही सकारे।
आपुहि जाइ बांह गहि त्वाई, सेल रही लपटाइ।
पूरि भारि ताती जल त्वाई, तेल परसि बन्हवाइ।
सरस बसन तन पीछि स्याम की भीतर गई लिवाइ।
झर स्याम कहु करौ विमारी पुनि राखीं पीढ़ाइ॥ ५

श्रीमद्भागवत- श्रीहन्तं सा सुतं वात्सरतिवेलं सहाश्रमम्।
यशोदा जोहवीत्कृष्णं पुनस्नेहस्नुतस्तनी॥
कृष्ण कृष्णरविन्दादा तात एहि स्तनं पिब।
गतं विहारैः क्षुत्क्षान्तः क्रीडाश्रान्तोसि पुत्रक॥

धूतिधूसरितांगस्त्वं पुत्रमज्जनमावह।

त्वं च स्नातः कृताहारो विहरस्व स्वतंकृतः।

१-झरसागरः पद५। ३-वहीः पद१५८। २-वहीः पद२०२। ४-वहीः पद१२१।

५-वहीः पद८४४। घ-

इत्थं यशोदा तमशोणशोसरं मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धपीरुप।

हस्ते गृहीत्वा सह राममच्युतं नीत्वा स्ववाटं कृतवत्थयोदयम्॥ १

३-श्रीकृष्ण की बलीकिक रूप-माधुरी

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण के सौन्दर्य के लिए कहा गया है कि निखिल सृष्टि के सौन्दर्य को एकदेश में ही रखा पित करके उसके आभास-भाव को पाया जा सकता है। १ इसी आधार भूत धारणा को ले कर सूर ने श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन किया है। उनका वर्णन, गंग-विन्यास, मुद्राएं, वेष-भूषा आदि सब कुछ भागवतोक्त रूप के अनुसार है।

वर्ण- क- नील वस्त्र अभिराम स्याम तत निरखि जननि दीउ निष्ठ कुलाए। ३

स- हर स्याम प्रभु वन्दनीयमणि ब्रज वनिता उर लाइ गही री। ४

गंग-विन्यास- बंधु सुमन गरुन पद पकज, गंगुस प्रमुक्त चिह्न बनि गाए।

सुभा चिबुक द्विज अघर नासिका, दवन कपोल मोहिं सुठि भाए।

भुव सुन्दर, करुना रस पूरन, लोल मनहु जुगल बल जाए।

भाल बिसाल ललित तटकनि गनि, बाल दसा के चिह्न सुवाए।

गंग बंग प्रति मार निकर मिलि छवि समूह सै सै मनु छाए।

हरदास सो क्यों करि बरनै जो छवि निगम नेति करि गाए। ५

बाल कृष्ण की अल्प दन्त संक्ति का भागवत में वर्णन है। हर ने अनेक स्थलों पर उसका उल्लेख किया है:-

श्रीमद्भागवत- दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुहं निरीक्ष्य,

मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुः प्रमोदम्। ६

सूरसागर- क-सोभित सुकपोल अघर अल्प अल्प दसना। ७

स-अल्प दसन, कतवत करि बोलनि, ८

१-श्रीमद्भागवतः १०:११:१४-२०।

३-सूरसागरः पद ७२२।

४-वहीः पद ६४७।

२-श्रीमद्भागवतः १०:१९:२१।

५-सूरसागरः पद ७२२।

६-वहीः पद ७२२।

६-श्रीमद्भागवतः १०:८:२३।

७-सूरसागरः पद ७०८।

८ वही पद ७०९

भगवान् के चरणारविन्दों की आराधना ही भक्त-भक्तों का चरम लक्ष्य है। श्रीमद् भागवत में भगवच्चरणारविन्दों को एकमात्र अकुतोभय शरणस्थल माना गया है। सभी वैष्णव भक्त कवियों ने भगवच्चरणारविन्दों का सौन्दर्य और उनकी पावनीशक्ति का वर्णन कर उनकी शरण लेने का आग्रह किया है:-

भवि मन मन्द मन्दन चरणा।

चरन युक्त्वं शक्ति मनोहर सकल सुख के करना।

सक संकर ज्ञान धारत निगम ज्ञानम वरन।

पद पराग प्रताप दुर्लभ, रमा को हित करना।

वासु महिमा प्रगटि कैवट पीठ पग छिर धरन।

कृष्ण पद मकरंद पावन, भिटै जीवन मरन॥ १

वैष्ण-भूषा-

रौहिनि सुत वसुमति सुत की छवि गीर स्वाम हरि हल धर गात।

नीलाम्बर यतिाम्बर बौद्धे, वह सोभा कबु कही न जाति।

सीत मुकुट मकराकृत कुण्डल भक्तक विविध कपोलनि भाँति।

कटि काछ्मा कर लकुट मनोहर, भौचारन चले मन अनुमानि। २

गोप बालकों की मण्डली के मध्य में वन भोजन रत बालकृष्ण की छवि का चित्र सूर ने श्रीमद्भागवत से ही लिया है।-

सूरसागर- वृन्दा विपिन विसद जमुना तट, सुचि ज्योतिार बनाई।

सानि सानि दधि भात लियो कर सुदृढ स्तन कर दैत।

मध्य गोपाल मण्डल मोहन छाक बाँटि के सेत।

देवलोक देखत सब कौतुक, बाल केति कुरागे।

गावत सुनत सुनत सुख करि मन, सूर दुरित दुख भागे॥ ३

श्रीमद्भागवत- विभ्रद् वेणुं जठरपटयोः शृंगवेनै च कदी।
 वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु।
 तिष्ठन्मध्ये स्वपरि सुहृदौ हास्यन्नर्मभिः स्वेः।
 स्वो लोके मिषति बुभुवे यज्ञभुग्नालकेतिः॥ १

सूर ने श्रीकृष्ण को विष्णु के विग्रह में भी चित्रित किया है:-

ज्ज्ञात के नाथ स्वामिन् प्रभु कृष्ण स्वामी।

नाथ सारंगधर दूपा करि मोहि पर सकल जघ हरन गरुड़गामी॥ २

बाबू कृष्ण के अनन्त सौन्दर्य का वर्णन अशक्य समझ कर सूर ने कहा है:-

सुन्दरता की पार न पाकी हम देसि महतारी।

सूर सिन्धु की बूंद भई मिलि मति गति दुष्टि हमारी॥ ३

३-श्रीकृष्ण का परब्रह्म परमेश्वरत्व

सूरदास ने श्रीकृष्ण को परब्रह्म परमेश्वर माना है। ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों में श्रीकृष्ण ही उनके दृष्ट हैं। अपनी असीम सामर्थ्य के कारण वह परमेश्वर भी है। उनके अद्भुत काय उनकी ईश्वरता का बोध कराते हैं। श्रीमद्भागवत में इस विषय का सर्वत्र प्रतिपादन है।^१ सूर की कतिपय पंक्तियां प्रस्तुत की जाती है:-

क- वेद उपनिषद् बाहु कीं गिरिगुणहिं बतावै।

सोह सगुन ह्वै नन्द की दाँवरी बंधावै। ५

ख- नागरी स्याम सौं कहति बानी।

सुनहु गिरिवरन नर सोस सोहं करि, जपत सूर नाग नर सहस बानी।

रुद्र पति, रुद्र पति, लोक पति, शोक पति, धरनि पति, गगन पति, जगम बानी।

अखिल ब्रह्मण्ड पति तिरुं भुक्ताधिपति नीरपति यवनपति वेद बानी॥ ६

परब्रह्म ही भक्तवत्सलता के कारण अवतार लेकर दुष्ट दलन करता है। कभी वह केवल प्रेम के वश होकर अवतार धारण कर भक्तों की आनन्द देनेवाली सीखाने करता है-

क- का न किसी जन हित जदुराई।

प्रथम कही जो बल द्यारत, तिहिं बस गोमुख गाह चराई।

भक्त नख बपु धरि नर के हरि, दनुज दृष्टी उर दरि सुरसाई। ७

१-श्रीमद्भागवत: १०:१३:११। २-सूरसागर: पद २१४। ३-वही: पद ७०९। ४-श्रीमद् ०:७:१५:७५

५-सूरसागर: पद ४।

६-वही: पद २५६५।

७-वही: पद ६।

निगम हैं अगम हरि कृपा न्यायी ।

प्रीति बस देवकी गर्म लौन्हों बासक प्रीत के हेतु ब्रज वेष कीन्हों ।

प्रीति के हेतु बहुमति पय पान किया प्रीत के हेतु अवतार कीन्हों ।

प्रीति के हेतु बन धेनु-चारत कान्ह, प्रीतिके हेतु नंद सुवन नामा ।

प्रीतिके हेतु सूरज प्रमुहि पाहे, प्रीति के हेतु दोउ स्याम स्यामा ॥ १

राम कृष्ण अैव-

विष्णु के २४ अवतारों में राम और कृष्ण अवतारों की प्रमुक्तता है। सूर ने राम और कृष्ण में ही नहीं विष्णु के सभी अवतारों में श्रीमद्भागवत के अनुसार अैव स्थापित किया है-

दो गोपाल कहाँ के बासी, कासों है पहिचानि ।

पय प्यावत पूतना संहारी, क्लेश जु बलि से दानि ।

सूपनखा नासिका निपाती, सूर सदा यह बानि ॥ २

४- श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों का अनन्य और अलौकिक प्रेम-

गोपी प्रेम सूर के साहित्य का प्राण है। श्रीमद्भागवत में गोपी प्रेम का जो स्वरूप व्यक्त हुआ है, सूर ने उसे आदर्श रूप में स्वीकार कर उसके समस्त उपकरणों यथा, वेणु, रास, प्रमरगीत आदि का सविस्तर वर्णन करते हुए उसे रस कीटि तक पहुँचा दिया है। सूर ने राधा कृष्ण के प्रेम का निष्पन्न अन्य वैष्णव पुराणों के आधार पर किया है किन्तु प्रेम की प्रगाढ़ता का आदर्श भागवत का गोपी प्रेम ही है। विशिष्ट गोपी राधा के नामोल्लेख मात्र से सामान्य इष्ट वस्तु 'प्रेम' के निष्पन्न में कोई अन्तर

१- सूर सागर पृष्ठ २६३५

२- श्रीमद् ० १०।४७।१७

३- सूर सागर पृष्ठ ४४५७

चितवति एक टक मग चकोर लौं, जब तैं तुम बिहारे नागर नट ।
 मरि मरि नैन डारति हैं, सजल करति जति कंबुकि के फट ।
 मनहु विरह की बिज्जुरता लागि, लियौ नैन सिव सीस सहस फट ।
 जैसें जबै अग्न बोस कन, प्राण रहत ऐंही अवधिहिं तट ।
 सुरदास प्रभु मिलहु कृपा करि, ये दिन कहुं तेउ आस निकट ॥^१

परम विरहासक्ति-

गोपियों की परम विरहासक्ति का ऐसा चित्रण
 सूर ने किया है, वैसा विश्व-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। श्रीमद्-
 भागवत का गोपी विरह-सूर का प्रेरणा स्रोत है। गोपियों द्वारा लोक-
 लज्जादि का त्याग, अतीत संयोग की सुख-स्मृति और विरहाग्नि की
 तीव्रता का श्रीमद्भागवत में इ उल्लेख है। सूर के श्लोक: पदों में ये भाव
 व्यक्त हुए हैं -

क- चलनकों कहियत हैं हरि जाज ।

कोउ एक कंस कपट करि पठ्यौ, कहु सदैस दै हाथ ।
 सु तौ हमारी सिर जाव है, सरबस अपनै साथ ।
 सो यह मूल नाहिं सुनि ज्वनी, सहिये धरि जिय लाज ।
 धीरज जात, चली अवहीं मिलि, दूरि गए कह काज ।
 हांडौ जगजीवन की वासा, बरु गुरु जन की कानि ।
 बिनती कमलनयन बौं करिये सूर सभै पहचानि ॥^२

ख- चलत हरि छिः जु रहत ये प्राण ।

१- सूरसागर पद ४७३६

२- श्रीमद् ० १०।३६।१६-३१

३- सूरसागर पद ३६०१

कंह वह सुल, जब सहीँ दुसह दुल, उर करि कुलिस समान ।
 कंह वह कंठ स्याम सुन्दर मुज, करवि अघर रस पान ।
 अंकवत नेन चकोर दुधा बिधु, देखत मुल कवि जान ।

सूर सुनिधि हमरें है बिहुरत, कठिन है करम निदान ॥ १
 ग- अनल तैं बिरह अगिनि अति ताती ।

न्याइहि नागरि नारि बिरह बस, जरति दिया ज्यों जाती ।
 जे जरि मरी प्रगट पावक परि, ते त्रिय अधिक सुहाती ।
 ढरति नोर नयननि मरि मरि अब, व्यनकृतता मरमाती ।
 सूर जिथा सोई पे जानै, स्याम सुमग रंग राती ॥ २

वेणु माधुरी और उसका प्रभाव-

सूर ने श्रीकृष्ण की वेणु माधुरी और उसके लोको-
 चर प्रभाव का बड़ा विशद वर्णन किया है। गोपियों और मुरली का
 सापत्न्य भाव भी दिखाया है। श्रीमद्भागवत के वेणु गीत और सुगल
 गीत विशेषकर सूर की प्रेरणा के स्रोत हैं :-

क- जब हरि मुरली अघर धरत ।
 धिर चर, चरधिर, पवन थमित रहै, जमुना जल न बहत ।
 लग मोहैं, मृग जूथ मुलाहों, निरसि मदन कवि करत ।
 पसु मोहैं सुरभी बिथकित, तून दंतनि टेकि रहत ।
 सुक सनकादि सकल मुनि मोहैं, ध्यान न तनक गहत ।
 सूरजदास भाग हैं तिनके, जे या सुतहिं लहत ॥ ३

१- सूर सागर पद ३६०२

२- " ३५८१

३- " १२३८

ख- मुरली हम कहँ सौति मई ।

नैकु न होति अघर तँ न्यारी, जैसे वृणा डई ।

सूर वक्त याके टोना से, सुनत मनोज जई ॥ १

ग- मुरली हम पर रीण मरी ।

अस हमारी जापुन जँवत, नैकुहँ नहीं डरी ।

ऐसी ढीठि टरी न उहाँ तँ जऊ हम रितनि मरी ।

यह तौ कियो ज्ञान हमारी, अब हमें जानि परी ॥ २

रास लीला-

सूर ने श्रीमद्भागवत की रास पंचाध्यायी के का विशद और सांगोपांग वर्णन किया है। किन्तु उनके रास वर्णन में भागवत के रास के कुछ वैशिष्ट्य भी हैं। जो उन पर अन्य ग्रंथों के प्रभाव का प्रतीक है। सूर ने रास को राधा कृष्ण के गान्धर्व विवाह के रूप में भी चित्रित किया है। राधा कृष्ण का विवाह कराया है और रास मण्डल के मध्य राधा को एक प्रसन्न गोपी के रूप में प्रतिष्ठित किया है। किन्तु भावना और कथाक्रम, रासरस, कृष्ण का वन्दन होना, गोपिका गीत तथा महारास श्रीमद्भागवत के अनुसार है-

सूर सागर-

सरद निसि देखि हरि हरण पायो ।

विधि वृन्दावन, सुमग फूले सुमन, रास रुचि श्याम
के मति जायो ।

१- सूर सागर १८५८

२- , , १८६०

३- जाकी व्यास वरत रास ।

हे गंधर्व विवाह वित है सुनी विविध विलास ॥ सूर सागर पद १६८६

श्रीमद्भागवत -

मगवानपिता रात्रीः सरदोत्फुल्ल मल्लिकाः ।

वीक्ष्य रन्तु मनश्चै, योगमायामुपाश्रितः ॥ १

प्रमर गीत-

समस्त हिन्दी प्रमर गीत साहित्य का स्रोत श्रीमद्-
भागवत ही है। भागवत के प्रमर गीत में जो उपासम्म, व्यंग्य और जन्य
प्रेम का तत्व है वह सूर जादि सभी कृष्ण भक्त कवियों का आधार है,
वपनी सहज प्रतिभा और मनोरम कवि कल्पना से सूर जादि कवियों ने
उसे और प्रभावोत्पादक बना दिया है। भागवत की वल्लभ कथन उज्ज्वल
शैली से प्रभावित सूर ने प्रमर गीत का रूप पद देसिए-
सूर सागर-

मधुर कफि मीत मर ।

प्रेम बारि करि प्रीति सगाई, रस लै जनत गर ।

ढहकत फिरत आपनै स्वार्थ पागंड अप्र मर ।

चाडि सरे पल्लवानत नाही प्रीतम करत नर ।

मूढ उवाट भेति बोरार, मन हरि हरि जु तर ।

सूरकास प्रमु धूति धर्म दिग, दुख के बीज बर ॥ २

श्रीमद्भागवत-

जन्यैष्वर्ध कृता भैत्री छद्म यावदर्थ विहम्बनम् ।

पुष्पिः स्त्रीषु कृता यात्तुमनः स्विष षट्पदैः ॥ ३

सूर ने श्रीमद्भागवत की एक मूल मन्त्रित पद्धति को ग्रहण
कर उसका कितना विस्तार कर दिया है, यह बताना कठिन है। सं० १५६७
वि० में बल्लमाचार्य के पुष्टि मार्ग में दीक्षा होने से पूर्व ही वे एक परम
विभक्त और भगवद् भक्त महात्मा थे और सामान्य मन्त्रित मार्ग के पथिक

१- श्रीमद्० १०।२६।१

२- सूरसागर पद ४१२५

३- श्रीमद्० १०।४७।६

थे । पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित होजाने पर भी उनकी सामान्य भक्ति भावना में कोई अन्तर नहीं आया और साम्प्रदायिकता के कारण उनके वाचार्थ में कमी नहीं आई । श्रीमद्भागवत के जिस सामान्य प्रेम लक्षणा भक्ति पर जोर दिया उसी को सूर ने भी अपनाया । भागवत की अन्त-रात्मा से सर्वाधिक तादात्म्य स्थापित करने वाले कृष्ण भक्त कवि सूर हैं।

३- परमानन्द दास- (संवत् १५५०-१६४१)

पुष्टि सम्प्रदाय में ब्रह्मचर्य परमानन्ददास की रचनाओं में स्वयं उनको "सागर" की उपाधि दी गई थी। "सागर" शब्द श्रीमद्भागवत वाची है जैसा कि श्री दारकदास परीत ने वातां एवं वल्लभ कृत "पुरुषोत्तम सहस्रनाम" के एक श्लोक के आधार पर बताया है। वातां में आया है, जो अनुक्रमणिका द्वारा श्रीभागवत रूपी समुद्र श्री वाचार्थ की महाप्रसू ने परमानन्ददास के हृदय में धर्यो। इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि परमानन्द दास ने भागवतीय कृष्ण लीला का ही गान किया था। पुष्टि सम्प्रदाय के अनुसार परमानन्द दास ने भागवतोक्त प्रेमाभक्ति को कृष्ण की चार अवस्थाओं- बाल, लीला कुमार, पौगण्ड और किशोर लीलाओं के माध्यम से प्रतिपादित किया है। बाल लीला के गान से स्नेह कुमार लीला के गान से ^{आसक्ति, मोंगड लीला के गान से व्यसन, और किशोर लीला के गान से} तन्मयता प्राप्त होती है। परमानन्ददास ने मुख्यतया भागवतोक्त विशिष्ट तत्वों में कृष्ण लीला और गोपी प्रेम को ग्रहण किया।

१- अष्टहाप (सं० १६६७ की वातां और भाव प्रकाश) । सम्पा० कठमणि शास्त्री

२- परमानन्द सागर : भूमिका में श्री परीत का लेख पृ० २ ^{पृ० १४३}

श्लोक यह है - हयवैशित धितेन श्रीभागवत सागरात् ।

समुद्रधूतानि नामानि चिन्तामणि निभानि हि ॥

३- अष्टहाप (सम्पा० कठमणि शास्त्री) पृ० १४१

लीलानान-

१- बाल लीला- (जन्म से ढाई वर्ष की अवस्था तक)

परमानन्द दास ने इसके अन्तर्गत, कृष्ण जन्म, जन्म महोत्सव, नाम करण, उलूखल बन्धन, मृषिका मदाण, मासल बीरी आदि भागवतीय कृष्ण लीलाओं का वर्णन किया है। सर्वत्र कृष्ण के परब्रह्मत्व की ओर संकेत किया है -

बाल विनोद गोपाल के देखत मोहि भावै ।
 प्रेमपुलकि जानन्द मरी बहुमति गुन गावै ।
 बल समेत धन सांमरौ वागिन में धावै ।
 बदन भूमि गौद लियो सुत जानि खितावै ।
 सिव विरंचि मुनि देवता जाको पार न पावै ।
 सो परमानन्द ग्वाल को हंसि मलो मनावै ॥ १

गोपियों के कृष्ण लीला गान सम्बन्धी निर्मांकित पद का आधार श्रीमद्भागवत का एक श्लोक है, जो पद के साथ उद्धृत किया जा रहा है-

हरि लीला गावत गोपी जन जानन्द में निसिदिन जाई ।
 बालचरित्र विचित्र मनोहर कमल नैन ब्रजजन सुखदाई ।
 दोहन मण्डन सण्डन लेपन, मण्डन गृह सुत पति सेवा ।
 चारियाम कवकास नहीं पल सुमिरत कृष्ण देव देवा ।
 मवन मवन प्रति दोष विराजत, कर वंन नूपुर बाजे ।
 परमानन्द घोष कोतुहल निरसि पाँति सुरपति लाजे ॥ २

१- परमानन्द सागर पद ८०

२- ८१

श्रीमद्भागवत-

या दोहनेऽवहने मथनोपलेप प्रसक्तं नार्धं रुदितोदाण मार्जनादौ ।
गायति चैनमनुस्वतधियोऽशुकण्ठयो धन्या ब्रजस्त्रिय उरुभ्रमचित्तयानः ॥ १

२- कुमार लीला- (ढाई वर्ण से लेकर पांच वर्ण की अवस्था तक)-

इसके अन्तर्गत कवि ने गोचारण, मुरली वादन आदि का वर्णन किया है तथा श्रीकृष्ण की वैष्णभूषा सौंदर्य आदि का भी चित्रण किया है।^२

३- पौण्ड्र लीला- (पांच वर्ण से लेकर नौ वर्ण की अवस्था तक)-

इसके अन्तर्गत कवि ने चौर हरण, गोवर्धन कारण, इन्द्रमान भंग आदि का वर्णन किया है।^३

४- किलोहर लीला- (नौ वर्ण की अवस्था से ग्यारह वर्ण की अवस्था तक)- इसके अन्तर्गत कवि ने वैष्णु वादन और रास लीला का वर्णन किया है। यह रास भागवत के अनुकूल शब्द रास ही है-

रास मंडल में बन्धो माधो गति में गति उपजावे हो ।

सख विमल निस चन्द विराजत, क्रीडत जमुना कूले हो ।

परमानन्द स्वामी कौतूहल, देखत सुरनर मूले हो ।^४

१- श्रीमद्भागवत १०।४४।१५

२- परमानन्द सागर पद ११६, १२०, १२२ आदि

३- वही पद २७२ से २८६

४- .. २१६

परमानंद दास जी ने भागवत की गोपियों की प्रेम लक्षणा भक्ति को ही अपना बादरी माना है। भक्त कवि ने 'भगवन्नाम माहात्म्य' व्रज माहात्म्य आदि का भी वर्णन किया है।

४- कृष्ण दास- (संवत् १५५६- १६३६)-

कृष्णदास ने भागवत की गोपी जनों की मधुर भक्ति को विशेष रूप से ग्रहण कर राधा कृष्ण की रास और निरुज लीला का वर्णन किया। उनके काव्य में मधुर भक्ति रस का प्राधान्य होते हुए भी श्रीकृष्ण की अन्य विधि लीलाओं, श्रीकृष्ण की अलौकिक रूप माधुरी, श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व आदि विषयों का वर्णन पाया जाता है :-

१- लीलागान-

कृष्णजन्मोत्सव-

नाचत गोप कुम कुमा हिरक्त दैत वसित नग दांति ।

वरणत कुसुम निकर सारन मुनि व्रज जुवती मुसकान ॥ १

(तुलसीय नामद्भागवत १०।५)

गोवर्धन धारण और इन्द्रमान मंग-

जै जै लाल गोवर्धन धारी, इन्द्र मान मंग कीनीं ।

वामबाहु राख्यो गिरिनायक, दासन को सुख दीनीं ।

सात दिवस सुरपति पवि हाय्यो गो सुत सींगन मीनीं ।

कृष्णदास स्वामी सौ हन के पाँव पड़्यो मति हीनीं । ३

१-सहस्रनाम परमानंद दास गोपिन की प्रेम कथा सुक व्यास कहीरी- ४००अ

परमानन्द सागर पद ४२१

२- डा० दीन दयालु गुप्त- अष्टशाय और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० २५१ प्र० सख्त

३- अष्टशाय परिचय- कृष्णदास काव्य संग्रह पृ० २२६

रास लीला-

रास रस गोविंद करत बिहार ।

सुर सुता के पुलिन रम्य मंद, फूलकुन्द मंदार ।

मलय पौन बहै सरद पूर्णिमा चन्द्र मधुप मंकार ।

ब्रजमामिनि संग प्रमुदित नाचत तन चर्चित वन सार । " १

ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि कृष्णदास ने मागवत के शब्द रास का ही वर्णन किया है।

२- श्रीकृष्ण की रूप माधुरी-

क- वावत बनहि कान्ह गोप बालक संग ,

भैरुकी सुर रेनु कुरित अलकावली ।

मोहि मनमथ चाप वक्र लोचन बान,

सीस सोभित मत्त मयूर चन्द्रावली ॥

श्रवन कुण्डल, माल तिलक, बेसरि नाक,

धंठ कौस्तुभ मणि, सुमग त्रिवलावली ।

कर तर मुरलिका मोहित अरिबल वित्त,

गोपिका जनमसि ग्रसित प्रेमावली ।

पीत कोसिय परिधान सुन्दर बंग, बस नूपुर बाध गीत

सबदावली ॥ " २

१- अष्टश्लोक परिवय : कृष्णदास काव्य संग्रह पृ० ११६ २३९

२-

११

११

२२७

स- मो मन गिरिधर कवि पर ष्टव्यौ ।

ललित त्रिभंगी जगन पर चलि, गयी तहांई ष्टव्यौ ।

सजल स्याम धन चरन नील है, फिर चित जनत न मटव्यौ । १

३- श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व-

ध्यावत कान्ह विमल जस तेरौ ।

गावत सित साख मुनि नारद, प्रान जीवन धन भेरो ।

गावत वेद बंदिजन निसदिन, बरु मुनि जूथ घनेरौ ।

गावत सैण महेस विविध विधि, रस रसिकहिं सुख केरौ ॥ २

४- गोपी प्रेम-

क- रूपासवित- गिरिधर देखेई सुख होय ।

नैनवन्त को यहै परमफल यों ही विधित ब्रह्म लोया ।

महामत नील बम्बुज को, रूप लियो है निचोय ।

कृष्णदास नाथ नव रंगहिं मिले बिरह दुख होय ॥ ३

(तुलनीय :- "जदाप्यतां फलमिदं न परं विदामः इत्यादि श्रीमद् ०१०। २१)

कृष्णदास ने भी कृष्णदास की भाँति गोवर्धन पर्वत के लिए प्रयुक्त भागवत के "हरिदासवर्य" शब्द का प्रयोग किया है-

बन्यो अद्भुत भेण गावत, मुरलिका उल्लास ।

कृष्णदास नमित चरन "हरिदासवर्य" निवास ॥ ४

५- गोविन्दस्वामी- संवत् १५६२-१६४२)

पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षात होजाने के उपरान्त गोविन्द

१- अष्टहाप परिचय : कृष्णदास काव्य संग्रह पृ० २२४

२- " " " " २४०

३- " " " " २३२

४- " " " " २४०

स्वामी ने गुसाईं विठ्ठलनाथ जी के व्याख्यानो^१ से श्रीमद्भागवत का ज्ञान प्राप्त किया था। इनकी भक्ति सत्समाव की थी। इनके रचित ५७५ प्रकीर्ण पदों का अभावधि सबसे बृहत्संग्रह प्रकाशित कांकरौली से हो चुका है। इन पदों में भागवतीय कृष्ण लीला, कृष्ण की रूप माधुरी, कृष्ण के परब्रह्मत्व और गोपी प्रेम के प्रमुखतया वर्णन के अतिरिक्त, सामान्य भक्ति तत्वों, यथा भक्ति के श्रेष्ठत्व, गुरु महिमा आदि का भी वर्णन है। पुष्टि सम्प्रदाय के जो वर्णोत्सव श्रीमद्भागवत पर आधारित हैं उनका वर्णन भी गोविन्द स्वामी ने किया है। कृष्णलीला-उद्देश-उद्देश-उद्देश-उद्देश

लीलागान-

कृष्णलीला और उनके उपकरणों में गोविन्द स्वामी ने बाल लीला, गोप सखाओं के साथ विविध क्रीड़ाओं, गोचारण, वन मोजन, यशोदा-आत्सल्य, वेणु वादन, गोपियों की व्रतचर्या, रास क्रीड़ा, गोवर्धन धारण ञ्दकु विहार, यमुना और ब्रज माहात्म्य का वर्णन किया है। विस्तार भय से हम सब विषयों के उदाहरण न देकर यहाँ गोविन्द स्वामी के केवल उन पदों के कुछ उदाहरण दे रहे हैं जो भागवत के श्लोकों के अविकल अनुवाद हैं-

रास लीला के गोपी गीत प्रसंग में-

जहोपिय देखेक धरत मृदुल चरन धरनि ।
गिरिकी कांकीरी बति कठिन वृन अँहुर रसनाधर,
जियहिं सुधि सुधि करि करि कृतियां बरनि ॥
सरसि सुजात गरम की श्रिय मुसत हमारि कठिन ,
उर सहसा हीन धरि सके ठरनि ॥ * ४

१- डा० दीन दयालु गुप्त : अष्टशाप और वल्लभ सम्प्रदाय प्र० सण्ड पु० २६६

२- गोविन्द स्वामी -(साहित्यिक विश्लेषण, वार्ता और पद संग्रह) मूमिका

३- वही मूमिका

पृ० १०

४- गोविन्द स्वामी पद संग्रह पद ३५७

श्रीमद्भागवत-

क- यो सुजात वरणाम्बु ब्रह्म स्तनेषु, भीताः शनैः प्रिय वधीमहि केशेषु ।

तेनावटवीमृत्सि तद्व्यथते न किंस्वित् कूर्पादिभिर्प्रमति धीर्मवदायुषां नः ॥ १

ख- शरदुदाशये साधुजातत्त्वरसिजोदर श्रीमुणादृशा ॥ २

वेणु माधुरी के युगल गीत प्रसंग में-

वेणु बाजत री मोहन कल ।

वाम कपोल वाम मुण पर धरि बल गित भुव रस वपल द्रवणल ॥ ३

सिन्दूराहण कधर सुधारस पूरत रन्ध्र मृदुल वंगुली बल ॥ ४

मोहत व्योम विमान ^{अनिता} ससित नीवी सुधयो न बल ॥ ५

श्रीमद्भागवत-

वामबाहुकृतवाम कपोली बलितभ्रुरधरार्पित वेणुम् ।

कौमलांगुलिमिराश्रित मार्गं गोप्य हरयति यत्र मुकुन्दः ।

व्योमयान वनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तुदुपधार्य सलज्जाः ।

काममार्गेण समर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृत नीव्यः ॥ ६

वेणुमाधुरी के प्रसंग में-

धनि धनि वृन्दारण्य कुरंगिनि ।

१- श्रीमद् ० १०।३१।६

२- श्रीमद् ० १०।३१।२

३- गोविन्द स्वामी फ ४२०

४- गोविन्द स्वामी फ ४२०

५- ,, ,, ४२१

६- श्रीमद् ० १०।३५।२-३

श्रीमुख कमल पीवति सखी, सावर कृष्णसार पति संगिनि ।

चरन कमल कुंकुम हणित तून कुच अवलप करति-

तजति बाधिमनसिज पुलिंदिनि ।

गोविन्द प्रभु को जु अमृत नादसुनि धकित प्रवाह तरंगिनि ॥ १

श्रीमद्भागवत-

धन्याःस्म मूढमतयोऽपि हरिप्रिय स्ता यानन्वनन्दन सुपात्र विचित्र वेषम् ।

आकर्ष्य वेषुरणितं सहकृष्ण साराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥ २

पूणाः पुलिन्य उरुगाय पदाब्जराग श्रीकुङ्कुमेन दयितास्तन मण्डितेन ।

तद्दर्शनस्मररुजस्तृण हणितेन लिम्पन्त्य आनन कुवेषु जहस्तदाधिम् ॥ ३

६- हीत स्वामी- (संवत् १५७३- १६४२) भागवत माहात्म्य एवं प्रामाण्य-

श्री हीत स्वामी ने श्रीमद्भागवत एवं श्रीकृष्णलीला के उप-
करण यमुना, गोवर्धन, गोकुल आदि का माहात्म्य गाया है-

जब लागि जमुना गाई गोवर्धन गोकुल गाऊं गुसाईं ।

जब लागि श्री भागवत कथारस, तब लागि कलियुग नाई ॥ ४

अपने गुरु गोसाईं विट्ठल नाथ जी की स्तुति (बघाई)

में उनके भागवत ज्ञान की चर्चा करते हुए उन्होंने श्रीमद्भागवत को वेद वाणी
कहा है-

गो वाणी जु वेद की कहियत श्रीभागवत भले अवगाही । ५

१- गोविन्द स्वामी पद ५५०

२- श्रीमद्भागवत १०।२१।११

३- ,, १०।२१।१७

४- हीत स्वामी, जीवनी और पद संग्रह पद ४२

५- वही पद ३७

हीत स्वामी ने उई स्पष्ट स्वीकार किया है कि गौसाईं श्री विट्ठल नाथ जी ने उस मुँह अन्य मार्ग छोड़कर भक्ति मार्ग में रुचि दिलाई और श्रीमद्-भागवत के अनुसार भगवान् को सर्वस्वार्पण करने की शिक्षा दी-

अपथ मारगत्ते, भक्ति मार्ग रुचि श्री गिरिवर घर दई दिसाई ।

तन मन प्रान समर्पन कीनों श्रीभागवत विधि नई दिसाई ॥ १

श्री हीत स्वामी ने भागवतोक्त सामान्य भक्ति तत्वों में से विशेषकर गुरु महिमा को ग्रहण किया है और अपने गुरु श्री विट्ठल नाथ जी को ईश्वर कल्प ही माना है।^२ भागवतोक्त विशिष्ट तत्वों में उन्होंने विविध कृष्ण-लीलाओं श्रीकृष्ण की रूप माधुरी श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व और गोपी प्रेम का वर्णन किया है। इनके युगल लीला के पद बिल्कुल राधावल्लभीय सम्प्रदाय के भक्त कवियों के पदों के समान हैं।

१- लीलागान-

हीत स्वामी ने कृष्ण की गौचारण, वन भोजन, वसन्त कालीन ब्रज विहार वेणु वादन और रास लीला का वर्णन किया है इनका रास वर्णन भी श्रीमद्भागवत के अनुसार शब्द रास का वर्णन है-

क- मुहुलित बहुल मधुप कुल कूजे प्रफुल्लित कमल गुलाब फूले ।

बाह जुवति जूथ रास नखल खेलतस्यान तरनिजा कूले । ४

स- हीत स्वामी गिरिघरन, श्री विट्ठल सरद रेनि रस रास कौ विलखिवा । ५

१- हीत स्वामी, जीवनी और पद संग्रह पृष्ठ १८८

२-	॥	॥	१७६-१६०
३-	॥	॥	१५३
४-	॥	॥	३
५-	॥	॥	११७

गोचारण में व्रज में आगमन-

आवे माई नंद नंदन सुख दैनु ।

संध्या सै गोप बालक संग जागै राजत धेनु ।

गोरख मण्डित कलक मनोहर, मधुर बजावत बैनु ।

इहि विधि घोष मांझ हरि जावत सबको मन हरि सैनु । १

(तुलनीय श्रीमद् ० १०।२१।७)

श्रीतस्वामी ने कृष्ण लीला के उपकरण गोओं, वृन्दावन, यमुना और गोवर्धन का माहात्म्य भी गाया है।^२

गोपी प्रेम-

श्रीत स्वामी ने श्रीकृष्ण के प्रति रूपासक्ति, तन्मयासक्ति, आदि का वर्णन किया है। श्रीकृष्ण की वेणु माधुरी का प्रभाव भी उनका प्रिय वर्ण्य विषय है।

क- भौरे नैननि छै बानि परी ।

गिरिधरलाल मुखारविन्द क्वि क्षिनु क्षिनु पीवत सरी ।

हरि नख उरहिं विराजत मनि गन जटित कंठ कंठसिरी ।

श्रीत स्वामी गोवर्धन धर पर वारों जन मन री ॥^३

ख- गिरिधर लाल के रंग रांची ।

तन सुधि मूलि गई मोकों अब, कहति हों तोलों संची ।

मन हरि लियौ नन्द के नन्दन चितवनि मांझ विकानि ।

१- श्रीत स्वामी जीवनी और पद संग्रह पद १२०

२- वही पद १६१-१६६, १२३, ६५

३- वही पद ६७

जादिन तें मेरी दृष्टिपर ससि । तब तें रह्यौ न जावै ।
 ऐसो है कोउ हितु हमारी झीत स्वामी सों मिलावै ॥ १

ग- ऐसी की नार जो देखत ब्रत तेन टरे भैर जीवन मूलो । २
 (तुलनीय श्रीमद् ० १०।२६।४०)

घ- मुरली सुनत गहं सुधि मेरी ।
 गृह कारण सब मूलि भयो मोहि सपति करति हौं तेरी ।
 एक टक लागि सुनति ध्रुवननि फुट जैसे चित्र चितैरी ।
 झीतस्वामी गिरिधर मन करस्थौ इत उत चलै न फेरी ॥

७- चतुर्भुजदास (संवत् १५८७- १६४२)-

चतुर्भुजदास ने अपने स्फुट पदों में कृष्ण के जन्म से गोपी विरह तक की ब्रज सीताओं का वर्णन किया है। इनकी रचनाओं में कृष्ण की बाल लीला विनय और विरह भावना के पदों का प्राचुर्य है। सामान्य मन्त्रित तत्वों में इन्होंने गुरु महिमा का वर्णन किया है और अपने गुरु गो० विदुठल नाथ जी को भगवत्पुत्र माना है। कृष्णलीला में विशेषकर इन्होंने बाल झीडा, माखन चोरी, वनभोजन, गोचारण और रास झीडा का वर्णन किया है। श्रीकृष्ण की रूप माधुरी, वेणु माधुरी और गोपी प्रेम भी इनके प्रिय विषय हैं।

१- झीत स्वामी जीवनी और पद संग्रह पद १०० २ - वही पद १२१

३- अष्टहाप परिचय पृ० १२१-२७५

४- डा० दीन दयालु गुप्त : अष्टहाप और वल्लभ सम्प्रदाय प्र० ल० पृ० २६३

५- वही पृ० १०१ , १०२

६- अष्टहाप परिचय : (चतुर्भुजदास काव्य संग्रह) पृ० २७६-२६६

६- वही पद १६

१- लीलागान- मास्तन चौरी-

घर घर डोलत मास्तन सात ।

ग्वाल बाल सब सला संग लिई सुने मवन धंसि जात ।

जब ग्वालिन जल मरि घर बाई, तबहिं मजे मुसकात ।

"चतुर्भुज" प्रभु गिरिधरन लाल सौं नाहिं कबू बसात ॥ १

(दृष्टव्य श्रीमद् ० १०।८)

वन भोजन-

सुन्दर सिला खेल की ठौर ।

मदन गुपाल जहाँ मध्निायक, चहुं दिसि सला मण्डली जौर ।

बाँटत ह्वाक गोवर्धन ऊपर, बहुविधि कानन बैठे ठौर ।

हंसि हंसि भोजन करत परस्पर, चाखि चाखि ले जरोगत कौर ।

कबहुँक बोलि गिरि के सिसर पर लैल नाम धूमरी धौर ।

"चतुर्भुज" प्रभु लीला रस रीक, श्रीकृष्ण गिरिधर लाल रसिक सिरमौर ॥ २

(दृष्टव्य श्रीमद् ० १०।१३।११)

रास लीला-

प्यारी मुजग्रीवा भेलि, नृत्यत पीय सुजान ।

मुदित परस्पर लेत गति में सुगति, रूप रासि राधे गिरिधरन

गुन निधान ॥

सरस मुरली धुनि सौं मिले सप्त सुर रास रंग भीने गावै जौर

तान बंधान ॥

"चतुर्भुज" प्रभु स्यामाख्याम की नटनि देखि मोहे लामृग बरु

क्षकित व्योम विमान ॥ ३

१- अष्टी ८८ १८

२- अष्टशत परिचय : चतुर्भुजदास काव्य संग्रह पृ० २२

३- पृ० ५६

२- रूपमाधुरी-

बाजु को सिंगार सुमग साँवरे गोपाल को कहत न आवै देखे ही बनि आवै ॥

नकर कुण्डल तिलकाभाल कस्तूरी बति रसाल, चितवनि लोचन बिसाल
काम कौं लगावै ॥

कंठ श्री वनमाल, फंटा कटि बति उताल, कबि निरस्त त्रिभुवनतिय
धीरज मन न लावै ।

"चतुर्भुज" प्रभु गिरिधर नखसिख सुन्दर सुधर, रेखी को बहुभागिन
जो जात ही लपटावै ॥ १

३- वेणुमाधुरी-

बेनु धर्यौ कर नौविन्द गुनविधान ।

जात हुती बन काज सखिन संग ठगी धुनि सुनि कान ।

मोहन मोहै सकल लग प्रग पसु, बहुविधि सप्तक सुर बंधान ।

"चतुर्भुजदास" प्रभु गिरधर तन मन चोरि लियौ करि मधुर गान ॥ २

४- गोपी प्रेम-रूपासवित, तन्मयता सवित, परम विरहासवित-

१- गोपाल को मुखारविन्द देख्यौ आज माई ।

तन मन त्रै ताप तिमिर निरस्त ही नसाई ।

सरस सरोज सुधा नैननि मरि पाई ।

सुत समुद्र सोमा मो पै कही हू न जाई ।

धर्म कर्म लोक लाज सुतपति तजि धाई ।

"चतुर्भुज" प्रभु गिरिधर में जाचि रो माई ॥ ३

१- वष्टशर्प परिवय : चतुर्भुजदास काव्य संग्रह पद ३५६

२- " " " " ६१

३- " " " " ४२

ख- अब ही कहा करों री माई ।

अब तैं दृष्टि पर्यौनंद नंदन, पल भर रह्यो न जाई ।

निसिवासर मोहि कल न परत है, घर जांगन न सुहाई ।

“चतुर्मुख” प्रभु गिरिधरन कवीले, हंसिमन लियो है चुराई ॥^१

८- नन्ददास-(संवत् १५६०- १६४०)- बड़

बृष्टहाप के कवियों में मक्ति भाव के गाम्भीर्य, सर्वहित दृष्टि, रचना विस्तार और काव्यत्व की दृष्टि से सूर और परमानंद दास के बाद नन्ददास का ही नाम आता है^२। डा० दीन दयालु गुप्त जी ने नन्द दास के स्फुट पदों और उनके अतिरिक्त जिन १३ ग्रंथों को प्रामाणिक माना है वे सभी “कृष्ण मक्ति कथा कृष्ण चरित्र से लगाव रखते हैं।^३ डा० गुप्त के मतानुसार नन्ददास की प्रामाणिक रचनाएं काल क्रमानुसार ये हैं- १- रस मंजरी २- कैकार्थ मंजरी ३- मान मंजरी ४- दशम स्कन्ध भाषा ५- श्याम सगाई ६- गोवर्धन लीला ७- सुदामा चरित्र ८- विरह मंजरी ९- रूप मंजरी १०- रुक्मिणी मंगल ११- रास पंचाध्यायी १२- मंवर गीत और १३- सिद्धान्त पंचाध्यायी^४। इनमें से “दशम स्कन्ध भाषा” तो प्रत्यक्षा ही श्री मद्भागवत दशम स्कन्ध के कुछ अंश का भावानुवाद है, “रास पंचाध्यायी”, “गोवर्धन लीला”^५ “मंवर गीत”, “सुदामा चरित्र” और “रुक्मिणी मंगल” श्रीमद्भागवत की कृष्ण लीला का वर्णन करते हैं। उनके “रस मंजरी”, “रूप मंजरी” सिद्धान्त पंचाध्यायी आदि ग्रंथ भी मधुर मक्ति का ही विवेचन करते हैं^६ जिसका प्रतिपादन भी श्रीमद्भागवत में हुआ है। अतः

१- बृष्टहाप परिचय - पद ५१

२- डा० दीन दयालु गुप्त : बृष्टहाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग २ पृ० ८६५

३- वही भाग १ पृ० ३७४

४- “” पृ० ३७७

५- “” पृ० ३७३

हम निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि कृष्ण कृत भक्ति के प्रतिपादन में नन्ददास का प्रधान उपजीव्य श्रीमद्भागवत ही है।

श्रीमद्भागवत का माहात्म्य कथन-

नन्ददास ने निम्नलिखित पंक्तियों में श्रीमद्भागवत का माहात्म्य गाया है-

जब दिन मनि श्रीकृष्ण दृगनि तैं दूरि मर दुरि ।
पसरि पर्यो अंधिझार सकल संसार घुमदि दुरि ।
तिमिर ग्रसित सब लोक लोक लसि दुसित दयाकर ।
प्रकट कियो अद्भुत प्रभाउ भागवत विमाकर ॥ १

पूर्वोक्त प्रायः सभी सामान्य और विशिष्ट तत्वों के उदाहरण ही नन्ददास की रचनाओं में प्राप्त होते हैं। उन्होंने इन तत्वों का दार्शनिकता के साथ सूक्ष्म प्रतिपादन भी किया है। यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं-

सामान्य तत्व

१- भक्ति का सर्वश्रेष्ठत्व-

ज्योंही हिर हरि बरिअ अमृत सिन्धु सों रति मानी ।
नन्ददास ताहि हूं मुक्ती लोन को सो पानी ॥ २

२- गुरु महिमा-

क- जयति सकल तीरथ फलित नामछ सुमिरन मात्र । ३
स- वति प्रताप महिमा समाज नस सोक ताप अवहरन ॥ ४

१- नन्ददास ग्रंथवली (सं० ब्रजराजनदास) रास पंचाध्यायी पृ० ४

२-	११	११	३६६
३-	११	११	३२६
४-	११	११	३२६

विशिष्ट तत्व

१- लीला गान-

श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं में नन्ददास ने कृष्ण जन्म जन्महोत्सव, बाल श्रुद्धा, वन भोजन, गोवर्धन धारण, रास लीला आदि का वर्णन किया है और यमुना व्रज भूमि आदि का माहात्म्य गाया है।

रास लीला-

कोउ मुरली संग रली रंगीली रसहिं बदावति ।
कोउ मुरली को हेंकि हबीली अद्भुत गावति ।
ताहि साविरो कुंवर रीझि हंसि लेत भुजन क मरि ।
चुम्बन करि सुख सदन बदन तैं दै तमोल डरि ॥ २
(तुलनीय श्रीमद् ० १०।३३।१०-१३)

यमुना महिमा-

भवत पे कृपा करी श्री जमुना जी ऐसी ।
हांडि निज धाम विघ्नान मृतल कियो प्रगट लीला दिसाई हो तैसी ।
पक्ष्म परमास्थ करत है सवन कौं देति अद्भुत रूप जाम ऐसी ।
"नन्ददास" जी जन वृद्ध करि चरन गहै, स्तु रसना कहा कहै विसैसी ॥ ३

व्रज महिमा-

जो गिरि रुचे तो बसो श्री गोवर्धन ,
गाम रुचे तो बसो नंद गाम ।

१- नन्ददास ग्रंथावली-पदावली पृ० ३२३- ३६७

२- वही रास पंचाध्यायी पृ० २२

३- वही पदावली पृ० ३२५

नगर रुचे तो बसो श्री मधुपुरी, सोमा सागर अति बभिराम ।
 सरिता रुचे तो बसो श्री यमुना तट-, सकल मनोरथ पूरन काम ।
 "नन्ददास" कानन रुचे तो, बसो भूमि वृन्दावन धाम ॥ १

२- श्रीकृष्ण की रूप माधुरी-

गाह खिलावत सोमा भारी ।
 गोरज रंजित कनक कमल पे, अलक फलक धुंधरारी ।
 ५ ५
 प्रमथन राजें माल गंड मू , इहि इवि पे बलिहारी ॥ २

३- श्रीकृष्ण का परब्रतत्व-

नन्द भवन को भूषण माई ।
 जसुका को लाल कीर हज्जर को राधा रमन बुदा सुल्हाई ।
 इन्द्र को इन्द्र देव देवन को, ब्रह्मा को ब्रह्म महा वरदाई ।
 काल को काल हंस हंस को, बरुन को बरुन महावरुदाई ।
 शिव को धन सृजन को सर्वस, महिमा वेद पुराणन गाई ।
 नन्ददास को जीवन गिरिधर गोकुल मंडन कुंजर कन्हाई । ३

राम कृष्ण का लीला-

राम कृष्ण कहिए उठि भौर ।
 बौहि ज्येष्ठ बौही ब्रज जीवन ध्रुव धरन बरु माखन चौर ।
 क्षेम बयोध्या निर्मल सरजू उत यमुना जल करत किलौल ॥
 क्षेम दशरथ पुत्र कहार, उतमें कहार नन्द किशोर ।

५ ५
 नन्ददास के ये दोउ ठाकुर दशरथ सुत बाबा नन्द किशोर ॥ ४

१- वही पदावली पृ० ३३१ विशेष द्रष्टव्य, रास पंचाध्यायी, श्री वृन्दावन
 वर्णन पृ० ४

२- वही पदावली पृ० ३३६ अन्यत्र भी पृ० ३५०

३- वही पदावली पृ० ३४३
 ३ ३५

४- गोपी प्रेम-

जबपि जगत् गुरु नागर जसुमति नंद दुलारे ।
 पे गोपिन के प्रेम अग्न अपने मुख हारे ।
 तब बोले पिय नव किसोर हम क्ली तिहारे ।
 बसु हिय तैं दूरि करौ, सब दोस हमारे ।
 कोटि कल्प लगि तुम प्रति, प्रति उपकार करौं जी ।
 हे मन हरनी तरुनी, उक्त न होउं तबौ तौ ॥ १
 (तुलनीय श्रीमद् ० १०।३२।२२)

निष्कर्ष-

इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर हम देखते हैं कि अष्टशाय कवियों का समस्त बाहुमय भागवत मय है। उनके काव्य में श्री मद्भागवत अपनी समग्रता के साथ दुग्ध में शर्करा के समान कुछ इस प्रकार ओत प्रोत है कि उनको कुछ तत्वों के वर्गीकरण के आधार पर पृथक् पृथक् पित्ताने की बेष्टा हास्यास्पद सी मान्य होती है। इन अष्ट सत्ताओं को भागवतोक्त कृष्ण सत्ता^२ ठीक ही कहा गया है। क्योंकि इनका लीला गान प्रत्यक्षा लीलावलोकन के समान ही जीवन्त है। भक्त प्रवर रसिकदास ने

१ वही रास पंचाध्यायीष पृ० २०, २१

२- श्रीमद् ० १०।२२।३१

३- सूरदास सो तो कृष्ण लोक परमानंद जानो ।

कृष्णदास सो कृष्ण कीत स्वामि सुबल बसानो ।

जहुन कुंभनदास, चतुर्भुजदास विशाला ।

नन्ददास सो तेजस्वी गोविन्द श्रीदामा ।

अष्टशाय जाठों सत्ता^२ दारकेश परमान ।

जिनके कृत भुन गान तैं होत सुजीवन धान ॥

श्रीदारकानाथ कृत कृष्ण उद्घृत - डा० दीन दयालु- गुप्त

अष्टशाय और वल्लभ सम्प्रदाय, उपोदयात् पृ० ८, ६

बष्टहाप के विषय में जो बड़ा गद् गद् उद्गार प्रकट किए हैं, हम भी सर्वथा उसका समर्थन करते हैं :-

जो जन बष्टहाप गुन गावत ।
 चित निरोध होत ताही छिन हरि लीला दखावत ।
 सूर सूर जस हृदै प्रकासत परमानन्द बढावत ।
 कीत स्वामि गोविन्द जुगल ^{अल} _अ तुलकित जल जावत ।
 बुंभनदास बज्रभुज वासहिं, गिरि लीला प्रकटावत ।
 तरुन किशोर रसिक नंद नन्दन पुरन माव जनावत ॥
 नन्ददास कृष्णदास रास रस उहलित कंग कंग नमावत ।
 रसिकदास जन कहाँ लो बरनों श्री वल्लभ मन मावत । १

उक्त पद में स्पष्ट ही बष्टहापी कवियों द्वारा भागवतीय निरोध लीला (दशम स्कन्धोप कृष्णलीला) के गान की जोर रक्ति किया गया है, साथ ही प्रत्येक महानुभाव की प्रिय लीला का जिनमें उनका चित विशेष रूप से रमा है, उल्लेख हुआ है।

—:0:—

१- उद्धृत: बष्टहाप परिवय : सम्पत्ति पृ० २

सप्तम अध्याय

श्रीमद्भागवत एवं पुरुषार्थसंग्रह वेङ्कट सम्प्रदायों के प्रमुख

हिन्दी कृष्ण भक्त कवि

(पृ० ३२६-३६७)

सप्तम अध्याय

श्रीमद्भागवत एवं पृष्टिमार्गेतर वैष्णव सम्प्रदायों के हिन्दी कृष्ण भक्त

कवि

दृष्टिकोण-

जहाँ वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टहापी कवियों ने श्रीमद्भागवत की बात, कुमार और पाण्ड^{कृष्ण} लीलाओं का विशेष गान किया वहाँ चेतन्य, राधावल्लभ, बादि सम्प्रदायों ने^{उद्योग} अष्टहापी कृष्ण चरित प्रसूतक श्रीमद्भागवत की माधुर्य लीला को, जिसका बरम विकास गोपियों की प्रेम लड़ाणा भक्ति में दृष्टिगोचर होता है, अपनी रस साधना का प्राण स्पन्दन बनाया। यद्यपि यह गोपी प्रेम अन्य पुराणों, प्राचीन संस्कृत काव्यों और वपप्रस की काव्य परंपराओं के प्रभाव से कालान्तर में ऐकान्तिक होते होते केवल राधा-कृष्ण के युगल-प्रेम में ही जाबद्ध होगया और राधा वल्लभ सम्प्रदाय तक पहुंचते पहुंचते अन्त में राधा का ही प्राधान्य होगया, तथापि यह बात निर्विकल्प रूप से कही जा सकती है कि कृष्ण प्रेम की परम तन्मयी अवस्था और उसके तलस्पर्शी गाम्भीर्य की स्वर्णोपलब्धि में सभी वैष्णव कवियों का जादर्श श्रीमद्भागवत का गोपी प्रेम ही है। एक विशिष्ट व्यक्तित्व (राधा) के समावेश मात्र से मूल प्रेम भावना में कोई अंतर नहीं पड़ा है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, श्रीमद्भागवत में राधा का स्पष्ट नामोल्लेख न होने पर भी रास लीला के प्रसंग में श्रीकृष्ण द्वारा एक विशिष्ट गोपी को निमृत्त निकुंज में ले जाकर रहस्य केलि का संकेत देना कृष्ण प्रेम लीला के साहित्य को प्रभावित करने की दिशा में कम महत्वपूर्ण बात नहीं है। राधावल्लभ हरिदासी बादि सम्प्रदायों में नित्य विहार और निकुंज लीला बादि की कल्पना कृष्ण की श्रीमद्भागवतोक्त मधुर रस प्रधान रास लीला से ही प्रभावित है। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत में रास लीला के अवणादि का फल

हृद् रोग - काम - का नाश बताया गया है वैसे ही राधावल्लभीय सम्प्रदाय में रास लीला को "कामजयी-लीला" माना जाता है। श्रीकृष्ण की इस मधुर लीला को जिन वैष्णव सम्प्रदायों में विशिष्ट महत्व दिया गया, वे ००-
वे हैं -

१- निम्बार्क सम्प्रदाय

२- चैतन्य सम्प्रदाय

३- कृतहरिवंश का राधा वल्लभ सम्प्रदाय एवं

४- हरिदास का सखी सम्प्रदाय ।

इन सम्प्रदायों में श्रीकृष्ण की माधुर्य लीला के धाम वृन्दावन का भी लोकोत्तर महत्व है। भक्ति के सामान्य सिद्धान्तों लक्षणों और साधनों के निष्पन्न में भी इन सम्प्रदायों पर श्रीमद्भागवत का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। यहाँ हम संक्षेप में ^{उक्त} सम्प्रदायों के प्रमुख कवियों पर श्रीमद्भागवत के प्रभाव का निष्पन्न कर रहे हैं। कवि संख्या को महत्व न देकर प्रतिनिधित्व का ही ध्यान रखा गया है।

१- निम्बार्क सम्प्रदाय के कवि श्रीभट्ट (संवत् १५६५ वि०)

ये निम्बार्क मतानुयायी सुप्रसिद्ध केशव काश्मीरी के पद-शिष्य थे । श्रीभट्ट ने सर्व प्रथम वैधी भक्ति प्रधान निम्बार्क सम्प्रदाय में रसोपासना का समावेश किया और राधा कृष्ण की प्रेम लीला का वर्णन करते हुए " युगल रसक " नामक सरस ग्रंथ लिखा । इस ग्रंथ की विस्तृत पयात्मक टीका

१- राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य (डा० विजयेन्द्र स्नातक) पृ० २६६

२- वृन्दाटवी यदि खीन्दु हुआसि विह्वल

कोटि प्रभा विभवकारिमहाप्रभाद्या ।

वात्मप्रभा सकृदपि प्रतिमातिचिरे

विदेवणादि नहि तस्यमनस्युदेति ॥

श्री प्रबोधानन्द सरस्वती कृत, वृन्दावन महिमाभूत श्लोक ३७

इनके शिष्य श्रीहरि व्यास देवाचार्य ने लिखी थी जो "महावानी" के नाम से प्रसिद्ध है। श्रीमद्भट ने राधाकृष्ण की अनन्य भक्ति, रूप माधुरी, ब्रज-माहात्म्य, वेणुमाधुरी आदि का सुन्दर वर्णन किया है -

ब्रज महिमा-

ब्रजभूमि मोहिनी में जानी ।
मोहन कुंज मोहन, वृन्दावन, मोहन जमुना पानी ।
मोहन नारि सकल गोकुल की बोलति जमुल बानी ।
"श्रीमद्" के प्रभु-मोहन नागर, मोहनि राधा रानी ॥ १

रूप माधुरी-

जंग जंग दुति माधुरी बिबि मुख चन्द्र चकोर ।
बटके "श्रीमद्" दृष्टि में नटवर नवल किशोर ॥ २॥

रूपासक्ति एवं वेणुमाधुरी-

बंसी त्रिमंगी बाल की झल मीन की बनसी ।
कहा कंतर घुरि दुरि रहे कई मूरति बनसी ।
हरि पते बिनु क्यों रहों घोख नहि तनसी ।
ये श्रीभट हरि रस बस भई, सुनि धुनि नेकु मनसी ॥ ३॥

२- श्री हरिव्यास देवाचार्य- (लगभग सं० १६०० वि०)

ये निम्बार्क सम्प्रदाय के एक प्रमुख आचार्य हैं। उनकी उपाधि "परम हंसवत्साचार्य" थी। कविता में ये अपना नाम "हरिप्रिया" लिखते थे। इनके ग्रंथ का नाम "महावाणी पंचरत्न" है इसमें पांच अध्याय हैं। ग्रंथ में

१- ब्रज माधुरी सार (श्रीमद्भट) पृ० ११२

२ अष्टी पृ० ११४

३ " " ११३

निम्बार्क सम्प्रदाय के भक्ति सिद्धान्तों एवं राधा कृष्ण की निरुद्ध लीला का वर्णन है :-

कुल प्रेम लीला-

प्रेम पयोध पर दोउ प्यारे निरुद्ध नाहिन कन्हु रैन दिन ।
जल तरंग नैनन तारेज्यों न्यारे होत न जतन करौ दिन ॥

८५ नि
“श्री हरि प्रिया” लगे लग दोऊ निमिज न रें र रनि दिन ।

निम्बार्क सम्प्रदाय के अन्य कवि-

श्री हरिव्यास देवाचार्य के शिष्य परशुराम देव (रचना-काल सं० १६७७) ने भवण कीर्तनादि नवधा भक्ति का अनुसरण किया था। उनके रचित “परशुराम सागर” ग्रंथ में “श्रीकृष्ण चरित”, सिंगार सुदामा चरित्र कृष्ण गज ग्राह का, प्रह्लाद चरित्र वादि छोटि ग्रंथों का संग्रह है। श्री परशुराम देव के शिष्य श्री तत्त्ववेत्ता (जन्म सं० १६८०) भी ज्ञानी भक्त थे और भक्तों के गुण गान में कविता लिखते थे। प्रसिद्ध मातृक भक्त कवि घनानन्द जप्ता वानन्दधन (जन्म सं० लगभग १७४६) भी निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव थे।

२- राधावल्लभ सम्प्रदाय के कवि- गोस्वामी श्री हितहरिचंद्र जी (संवत्

१५५६-१६०६) -

ये स्वयं श्री राधावल्लभ वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। इन्होंने दार्शनिक गहराइयों और विधि निषेधों में न जाते हुए शुद्ध रसों-

१- लीज रिपोर्ट (१९६२- १९९६ में ना० प्र० समा काशी, लेखक ७४

२- राजस्थान का फिगल साहित्य (श्री मोती लाल मेनारिया) पृ० ७३-७५

पाप्मा को अपनाया और प्रेम सदाणा भक्ति का प्रचार किया। इनके संप्रदाय में उन्हें साक्षात् श्री कृष्ण की वंशी का अवतार कहा गया है। इन्होंने अपने सम्प्रदाय में राधा को सर्वोपरि महत्व और प्राधान्य दिया है। "राधा वल्लभ" होने के कारण ही कृष्ण का महत्व है, स्वतंत्र नहीं। हितहरिवंश जी ने अपने संस्कृत के सुप्रसिद्ध स्तोत्र ग्रंथ "राधा सुधानिधि" में अपनी परमाराध्या राधा का अतिशय भक्ति विह्वल होकर मधुर स्तवन किया है। २०० श्लोकों के इस ग्रंथ में राधा कृष्ण का उत्कट प्रेम, निरुज लीला, रास लीला, वृन्दावन धाम एवं यमुना का अत्यन्त सरस वर्णन है। हितहरिवंश जी का दूसरा संस्कृत ग्रंथ यमुनाष्टक है जिसमें यमुना का माहात्म्य और स्तुति गान है। श्रीहितहरिवंश जी के दो ब्रज भाषा ग्रंथ "हित चौरासी" एवं "स्फुट वाणी" हैं। इनमें रास लीला, वन विहार, प्रेम अनन्यता आदि विषयों का वर्णन है।

(ब) - सामान्य तत्व - भक्ति, वैराग्य-

क- तू बालक नहीं मर्यादा स्यान्मम कहै कृष्ण भक्त नहि नीके ।
वतिव सुमिष्ट तजिव सुरभिन पय मन बंधत तहुल जल फीके ।
जय श्री हितहरिवंश नरकगति दुस्मर कबहूरे कटिक्त नयकीके ।
अब अब कठिन मुनीजन दुर्लभ पावत क्यों जु मनुजजन भीके ॥ २

ख- मानुष को तन पाय मजो ब्रजनाथ कौ ।

दवीं ले के मूढ़ बराबत हाथ कौ ॥ ३३

१- ज्योतिर्गुम्फा सत्प्रेम साक्षादंशी स्वरूपकः । - उद्धृत भूमिका विज्ञान

श्री हित सुधासागर पृ० ५

२- श्रीहित सुधासागर, स्फुटवाणी, पृ० १४६

३- वही पृ० १५९

नाम महिमा , गुरु महिमा-

जय श्री हित हरिवंश विचारिणें मनुज देह गुरु चरण गहि ।
सकहि तो सब परंपर तजि कृष्ण कृष्ण गोविन्द कहि ॥ १

सत्संग एवं प्रेम लक्षणा भक्ति-

तनहि रासि सत्संग में, मनहि प्रेम रस भव ।
सुख चाहत हरिवंश हित, कृष्ण कल्पतरु खेव ॥ २

(वा-) विशेष तत्व-

१- लीलागान- श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव (नन्द महोत्सव)

बानंद बाज नन्द के द्वार ।
दास जन्य मजन रस काल प्रगटे लाल मनोहर ग्वार ॥

युवति ब्रूथ मिलि गोप विराजत बाजत मणव मृदंग सुतार ।
जयश्री हित हरिवंश बजिर वर वीथिनु दधि मधु दुग्ध हरद के द्वार ॥ ३

राखलीला-

श्रीहितहरिवंश जी ने कृष्ण की इस मधुर लीला के गान
में ७७ "चौरासी" में अस्वतः विकीर्ण सत्रह पद लिखे हैं। "रास समय"

१- श्रीहित सुधासागर , स्फुट वाणी पृ० १५०

२- वहा पृ० १५८

३- , , १५२

में श्रीमद्भागवत के शब्द रास के अतिरिक्त वसंत रास का भी वर्णन है। हित बौरासी में रास लीला का जो वर्णन है उसका सारांश यह है— सुख निधान श्री ब्रजराज कुमार ने कालिन्दी के तट पर रास रचा है। रसमयी मुखी स्व स्वर्गीय संगीत का नाद हो रहा है। परम रमणीय भूमि में शीतल मन्द सुगन्ध मलय मारुत बह रहा है। जाती पुष्प सिल रहे हैं। शब्द श्रु है, पूर्णिमा की रात्रि है। स्वच्छ चन्द्रिका का झिंकी हुई है। नलशित शृंगार किए गोपिकाएँ लीला विग्रहधारी ध्याम सुन्दर को लीचनमर देख रही है। श्रीकृष्ण और उनकी प्रियतमा ब्रजांगनारं परस्पर गले में बाँध डाले, कपोल से कपोल स्पर्श कर रास कर रहे हैं। ”

” मधुकु में वृन्वावन में अपार आनन्द हा गया है। चम्पक, वकुल, देवकी और नाना रूप कमल सिल रहे हैं। कोकिल और शुक कलरव कर रहे हैं। ” यमुना का जल स्थिर होगया है। अभिनय में निपुण श्रीकृष्ण अङ्गीदीप्त प्रकृति संचालन करते हैं। सुवर्तियाँ अपने अपने अनु रूप परिभूषण चुम्बन बाँध प्राप्त करती हैं। देवगण प्रसन्न होकर पुष्प वर्णा करते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

क- बाजु बन नीकी रास बनायो ।

पुलिन पवित्र सुमग जनुना जट नौहन वेणु बजायो ॥

कल कंकण किंकिण नूपुर धुनि सुनि लगभग सबु पायो ॥

सुवर्तिन मण्डल मध्य श्याम बन चारंग राग जमायो ।

ताल मृदंग उफा मुख डफ भित्ति रस सिंधु बढायो ॥

परिरमन चुम्बन बालिगन उचित सुवर्तिन बन पायो ।

वरणत कुसुम मुदित नम नायक इन्द्र नितान बजायो ॥ ” २

१- श्री हित सुधा सागर (श्रीमच्चतुराशी जी) पृ० १६१-२२५

२- वही पृ० १८८

६- शरद क राका रजनि विफिन वृन्दा सजनि
 अनिल धति मन्द शीतल सहित वास री ।
 परम ह्वावन पुलिन भृंग सेवत नलिन ,
 कल्परु तौर बलवीर कृत रास री ॥ १

७- राग रागिनि तान मान संगीत मत्त ।
 धविल रावैश नम शरद की यामिनी ॥ २

वृन्दावन महिमा-

प्रथम कामति प्रणमई श्रीवृन्दावन धति रम्य ।
 श्री राधिका कृपा बिनु सबके मननि काम्य ।
 वर यमुनाजल सीपन दिन ही शरद पतत ।
 विधि माति सुमति के सौरभ बलिहुल मत ॥ ३

२- ह्म माधुरी -

६- नन्द के साल हल यौवन मीर ।
 बंक विलोकिनि बाल कवीता रसिक शिरोमणि नंद विशीर ।
 कहि धैर्य मन रहत श्रवण सुनि सरस मधुर मुखी की मीर ॥
 इन्हु गोविन्द वदन के कारण बितवन कौं भर नैन बंकीर ॥ ४

७- मोहन मदन त्रिभंगी । मोहन मुनि मनरंगी ।
 मोहन मुनि सधन प्रलट परमानंद गुण भीर गुनाला ।
 शशि किरीट श्रवण मणि कुण्डल उर मंडित वनमाला ।

१- श्रीरहित सुधा सागर (श्रीनन्दपुराणी जी) पृ० १७६

२-	११११	११	२१५
३-	११	११	२०१
४-	११	११	१६६

पीताम्बर तन धातु विचित्रित कल किंकिणि कटि चंगी ।
नल मणि तरणि चरण सरसीरुह मोहन मदन त्रिभंगी । १

सुरली माधुरी-

- क- मोहन विहंग पशु मधुर सुरली रौ । २
स- मोहन वेणु बजावे । इहि ख नारि बुलावे ।
बाहं ब्रज नारि सुनत वंशी ख गृहपति बंधु विसारै ॥ ३

२- श्रीदामोदर दास 'सेवक जी' (संवत् १५७७-१६१०) श्रुति

श्री हित हरिवंश जी की 'चतुराशी' का रहस्योद्घाटन करने वाले और राधावल्लभ सम्प्रदाय के महान् व्याख्याता के रूप में श्री सेवक जी का स्थान सबसे महत्वपूर्ण है। माधुर्य भक्ति ही सौख्य प्रकरणों में विभाजित सेवक वाणी का महान् प्रतिपाद है। विधि निषेध की मर्यादा को तोड़कर केवल जनन्य भाव से 'रस रीति' को अपनाना इनका वाग्रह था। गोपियों की जनन्य मधुर भक्ति ही 'रस-रीति' का प्रेरणा स्रोत है। सेवक जी ने स्पष्ट रूप से अपने सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत के भवण का उल्लेख किया है।

श्रीमद्भागवत की मान्यता-

श्री सेवक जी ने कहा है कि भगवद् भक्ति की वृद्धता निरन्तर मन से भगवन्नाम के स्मरण करने पर होती है और श्रीमद्भागवत में इस बात

१- वही पृ० २०७

२- ,, २०३

३- ,, २०७

पर जोर दिया गया है कि: शुक के वचन (श्रीमद्भागवत) सुनाकर ही शिष्य को श्री हित हरिवंश का नामोपदेश करना चाहिए-

शुक मुख वचन तु श्रवण सुनावहु ।

तब हरिवंश सुनाम कहावहु ॥

मन सुमिरन बिचरै नहीं ॥ १

श्री सेवक जी ने अपनी वाणी के प्रथम अकरण " श्री हित या विलास " में कहा है कि श्री हित हरिवंश का जन्मोत्सव ब्रजभूमि में वैसा ही मनाया गया था वैसा श्रीमद्भागवत में वर्णित कृष्ण जन्मोत्सव नन्द द्वारा सम्पन्न हुआ था-

श्रीभागवत तु शुक उच्चरी । तैसी विधि तु व्यास विस्तरी ।

करी नन्द वैसी हुती ॥

घर घर तीरण बन्दनवार । घर घर प्रति चित्रहिं दखार ॥ २

श्रीमद्भागवत की नवधा सर्व प्रेम लक्षणा भक्ति-

श्री सेवक जी ने स्पष्ट कहा है कि श्रवण कीर्तन आदि नवधा भक्ति के उपरान्त ही परम दुर्लभ प्रेम लक्षणा भक्ति प्राप्त होती है और श्री हित हरिवंश जी ने यही किया था। यह मत श्रीमद्भागवत से समर्थित है।

श्रवणादिक चितलाय योग जप तप तजे ।

बोरो कर्म सकाम सकल तजि सब भेजे भजे ।

साधन विधि प्रयास ते सकल विहावही ।

श्रवण कथन सुमिरण सेवन चितलावही ॥

१- श्रीहितसुधासागर (श्री सेवक वाणी जी) पृ० २४५

२- वही पृ० २३१

३- देखिए इस प्रबन्ध का द्वितीय अध्याय (वैधी सर्व रागानुगा भक्ति)

बर्तन वन्दन बरु दासंतन । सख्य और आत्मा समर्पन ।
 ये नवलदाण भक्ति बढ़ाई । तब तिन प्रेम लदाणा पाई ।
 पाई रसभक्ति गूढ़ युग युग जग, दुर्लभ भव इन्द्रादि विधिम् ।
 बागम बरु निगम पुराण कौचर सख्य माधुरी रूप निधिम् ॥
 < < < श्री हिरण्येश चरण शरणम् ॥ * १

मक्त लदाण-

बरु अपनी प्रसूत नहीं सहे । तुण तें नीच अपन यो कहे ।
 समुक्त नहीं कबू कुल कर्म । सुधौ बल जापे धर्म ॥ < < < ॥
 जब श्री हरिचंश नाम जानि हे । तब सबही तें लघु मानि हे ।
 हंसि बोले बहुमान दे ।
 तह सम सहन शीलता होय । परम उदार कहे सब कोय ।
 सोचन नन कबहू करे ॥ * २

तुलनीय : श्रीमद्भागवत-

अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिर्माजित जह्नुगुणः ।
 ज्ञानी मानवः कल्पो मेघः कारुणिकः कविः ॥
 ज्ञानार्थं गुणान् दोषान् मयादिष्टानपि स्वकान् ।
 धर्मान् सन्त्यज्य यः सर्वान् याम्भेत् स उत्तमः ॥ * ३

शेवक जी का उक्त पद श्री चैतन्य के शिष्याष्टक के इस
 श्लोक का अनुवाद प्रतीत होता है -

तृणादपि सुनीचैव , तरोरिव सहिष्णुना ।
 ज्ञानिना मान दैन, कीर्तनीयः सदाहरिः ॥ * ४

१- श्री हित सुधा सागर (श्री शेवक वाणी जी) पृ० २६१ तथा २४५

२- वही पृ० २४७

३- श्रीमद्भाग० ११।११।३१-३२

४- श्री श्रीचैतन्यवर्तितावली सप्पट्ट (प्रमुदत ब्रह्मवारी) पृ० २५८

गुरु महिमा-

- क- गुरुगौविन्द न भेद कराय ।
सन्तत सकल सुनहु चितलाय ।
स- गुरु सेवा तजि करहिं ये बानि ।
ये कर्म ये सब हानि ॥ १
(दृष्टव्य श्रीमद् ० ११।१७।२७)

विशिष्ट तत्व- लीलागान-

बाल लीला का महत्व-

बाल चरित्र प्रेम की नींव ।
कहत सुनत सब सुख की सींव ।
जीवन ब्रजवासिन सफल ॥ २

रास लीला-

- क- प्रिय विचित्र बन हरणि मन प्रिय यश वेणु बजन्त ।
लिय तरुणी सुनि लुप्त धुनि किय तहँ गमन सुरन्त ।
किय तहँ गमन सुरन्त कन्त मिलि विलसत सर्वत ।
तत रास मण्डल सुरन्त रस निर्ग रंग रस ।
सन्तत सुर दुहुमि बजन्त बरजन्त सुमन लिय ।
जन्त केलि जल जनुकि मत्त झराट करिणि प्रिय ॥ ३
स- वस बजाय विमोहितनारी । बोलो संग सु नित्य विहारी ।
परिरंभन चुम्बन रस फेली विहसत कुंवरी कण्ठ भुज भेली ।
सुन्दर रास रच्यो बन माहीं । यमुना पुलिन कल्फतरु छाहीं ॥ ४

१- श्री कृति सुधासागर (श्री सेवक बाणजी जी) पृ० २४४

२- वही पृ० २३५

३- " २२६

४- " २५९

श्री वृन्दावन महिमा-

नव पल्लव नवफूल बनन्ता ।
सदा रहत ऋतु सदा बसन्ता ।
श्री वृन्दावन सुन्दरताई ।
श्री हरिखंश नित्य प्रति गाई ॥ १

मथुरा महिमा-

मथुरा नित्य कृष्ण की वास ।
निशि दिन श्याम न छड़ी पास ।
तासु सकल लीला कही ॥ २

(तुलसीय - मथुरा भगवान्मथुरा नित्यं संनिहितो हरिः)

श्रीमद् ० १०।१।२५

श्री सेवक जी की रचनाओं पर श्रीमद्भागवत की जीविपुल प्रभाव है किन्तु विस्तार मय से यहाँ हमने विदुमान् प्रदर्शन किया है।

३- श्री हरिराम व्यास- (व्यास जी) (संवत् १४४६-१६५०-५५)

रामदा वल्लभ सम्प्रदाय में व्यास जी का स्थान महत्वपूर्ण है। इनका वाणी साहित्य बड़ा विशाल है। व्यास वाणी का मुख्य प्रतिपाद्य विष्णु तो मधुर भक्ति ही है किन्तु जानुर्जागिक रूप से उसी सामान्य भक्ति सिद्धान्त एवं जीवन के व्यावहारिक पक्ष का निरूपण भी हुआ है। व्यास जी पर श्रीमद्भागवत का बहुत ही व्यापक प्रभाव पड़ा था और उन्होंने अपनी वाणी में अनेक स्थलों पर श्रीमद्भागवत के नामोल्लेख पूर्वक उसके भक्ति एवं धर्म मत का समर्थन किया है। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं :-

१- श्री हित सुधासागर (श्री सेवक वाणी जी) पृ० २५०

२-

३-

४-

२३५

ब- सामान्य तत्व-

१- भागवतोक्त भक्ति का आदर्श-

क- जैसी भक्ति भागवत बरनी ।

वैसी विरह जानत मानत कठिन रहनि तैं करनी ।

स्वामी भूट गुसाईं, अगनित मति करि गति बाबरनी ॥

सह्य प्रीति बिना परतीति न, सिन्नोदर की मरनी ॥

व्यास बास वी लगि है वी लगि, हरि बिनु दुख जिय मरनी ॥ १

ख- सुक नाख से भक्त न कोऊ बिहिं भागवत सुनायो ॥ २

बिनु भागवत भक्ति न उपै, साधन साधि बतायो ॥ ३

२- नाम महिमा-

श्री व्यास जी ने कहा है कि यदि भगवान् भी करोड़ों रूप धारण करके नाम की महिमा गारं वी पार नहीं पा सेंगे । यह समस्त सारों का सार है। मेरा परम धन राधा नाम है। यह परम रहस्यमय सार भूत तत्व है इसीलिए शुक्देव ने इसे श्रीमद्भागवत में प्रकट नहीं किया। श्री व्यास जी ने हरि नाम संकीर्तन की मानो फड़ी लगा दी है-

सहज

हरि हरि हरि भैं बरहै जाधार । हरि हरि भैं सिंगार ।

हरि हरि सकल सुख को सार । हरि हरि व्यास कृपन के मण्डार ॥ ४

३- गुरु महिमा-

गुरु की अनिवर्णीय महिमा के व्यापन में श्री व्यास जी ने

१- भक्त कवि व्यास जी (दि० ७७० वाणी संकलन) श्रीवासुदेव गौस्वामी पृ० २२

२- वही पृ० १६२

३- ,, १६६

४- ,, १६६

श्रीमद्भागवत के कृष्ण चरित एवं धर्म मत का प्रामाण्य स्वीकार किया है-

क- गुरु की सेवा हरि करि जानी ।
 गर उजैन रैन दिन सुख सहि , तजि मधुरा रज धानी ।
 हांड़ी प्रभुता पाई लगत हैं, दास कहत सुखानी ।
 भूषें प्यासैं मेहु सह्यौ निसि, मोर मयूख हरि पानी ।
 दियो जिवार मृतक सुत तनहीं, गुरु महिमा पहिचानी ॥ १

ख- गुरु गोविन्द एक समान ।
 वेद पुरान कहत भागवत ते जु बचन परमान ॥ २

४- वैराग्य

व्यास जी ने श्रीमद्भागवत का अनुसरण करते हुए कांचन कामिनी की ओर से मनुष्य को वैराग्य की ओर मक्ति की प्राप्ति के लिए ही प्रेरित किया है-

जो भै हरि की मक्ति न साजी ।
 जीवत हू ते मृतक मर अपराधी जननी साजी ।
 जोग जज्ञ, तीरथ, व्रत, जप तप, सबस्वार्थ की बाजी ।
 पीडित घर घर मटक डोलत मंडित मुंडित काजी ।
 पुत्रकलत्र सजन की देही गीघ खान की साजी ।
 बीत गर तीनों फन कपटी तरु न वृक्षा भाजी ।
 व्यास निरास मयौ बाही तैं कृष्ण चरन रति राजी ॥ ३

आ- विशिष्ट तत्व-

श्रीमद्भागवत की माहुर्य लीला का विशेष रूप से गान

१- भक्त कवि व्यास जी (खि० सं० वाणी संकलन) श्रीवाहुदेव गोस्वामी

पृ० १६१

२- वही पृ० १६१

३- , , २२८

करने के लिए श्री व्यास जी "रास पंचाध्यायी" का पृथक् रूप से वर्णन किया किन्तु वष्टहाप के कवियों की भाँति कृष्ण की बाल लीला का गान करना व्यास जी की एक विशेषता है। कृष्ण लीला के उपकरणों में व्यास जी ने मधुरा, वृन्दावन, यमुना, मुरली आदि का भी महत्व प्रतिपादन किया है। उक्त विषयों के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं :-

१- लीलागान- बाललीला-

ग्वाल बवैनी ग्वाल बवात ।

मीठी लागत मोहन के संग, घर की छाक न खात ।

तोरि फौवा जोरि फौरवी, पय पीवत न खात ।

मधुर दही के स्वाद निवेरत, फूले का न समात ।

कबहुँक जमुना जल में पैरत, मोहन मारत लात ।

बूढ़क से ^{उधरत} ^{उत्तरत} सों, स्याम नात लपटात ।

कबहुँक संग मृग माणा बोलत, बनरिधि न डरात ।

अद्भुत लीला देखि देखि के व्यास दास बलिजात ॥ १

रास लीला-

नाचति नागर नटवर वैष्णधरि, सुखसागरहि बढावति ।

सरद सुख निशि तसि गो रंजित वृन्दावन छवि रुचि उपजावति ॥

ताल तर गोपगत लाल संग ललित ललित मृदंग बजावति ।

मिश्रित धुनि सुनि संग मृग मोहित जमुना जल न बहावति ॥

१- वही पृ० ४००-४०७

२- वही पृ० ३८६

जय जय साधु करत हरि सखर, व्यास विराज दितावति ॥ १

मथुरा माहात्म्य-

धनि धनि मथुरा धनि धनि मथुरा धनि मथुरा कासी हो ।
जीवन मुक्त सबे बिहरत हैं कैसोराइ उपासी हो ॥ २

वृन्दावन महिमा-

माधुर्य भक्ति मागीय सभी सम्प्रदायों में वृन्दावन धाम की कान्त महिमा है। उनमें श्री "नित्य विहार" और "निर्गुण" लीला के दर्शनाभिलाषी राधा वल्लभीय भक्त कवियों ने वृन्दावन की कड़ी महिमा गाई है। व्यास जी ने श्रीमद्भागवतोक्त कृष्ण की वृन्दावन लीलाओं का संक्षेप करते हुए वृन्दावन की महिमा में बहुत ही ललित बीस दीर्घकाय पदों की रचना की है। केवल एक उदाहरण देखिए-

धनि धनि वृन्दावन की धरनि ।

बध्नि कोटि वैकुण्ठ लोक ते, सुक नारद मुनि वरनि ।

जहाँ स्याम की वाम केलि, कुल धाम, काम मन हरनि ।

ब्रजा मोह्यो ग्वाल मंडली, भेद रहित वाचरनि ।

राधा की हवि निरस्त मोही नारायण की धरनि ।

बीर वार कीनी वनि वनिता, प्रेम पतिहिं जनसरनि ।

जहाँ महीरुह राज विराजत, तदा फूल फल फलनि ।

१- वही पृ० ३६०

२- .. २०६

३- भक्त कवि व्यास जी (वाणी संकलन) पृ० २००-२०६

तहाँ व्यास बसि ताप बुकावौ , वन्तररहित की जरनि । १

यमुना महिमा-

कृष्ण सीला के उपकरणों में महत्वपूर्ण स्थान देते हुए
व्यास जी ने यमुना को श्रीमद्भागवतानुसार कृष्ण मामिनी कहा है-
यमुना जोरी जू की प्यारी ।
जाकी वैभव कही भागवत , सुक जयैव विवारी ।
मनिमय तटी, उभय फट भूषण पूषण पियकीहि सिंगारी ।
सौरभ सुधा सलिल जनु राधा , मोहन की रस फारी ।
सुर तरु राज विराजत तीर कुटीर समीर सवारी ।
बुसुछमि नैमत्त विविध साखा सौं प्रान समान सुवारी ॥

६

६

व्यास स्वामिनी स्याम मामिनी , वृन्दावन बंद उज्यारी ॥२

२- रूप माधुरी-

किसोर कृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन व्यास जी ने
तन्मयता से किया है :-

हरि मुख देखत हो सुख नैननि ।
निरक्त रूप कूप निमेष लगत ही देत दुखननि ।
बारै घर घर बात बात सुनि, ब्रजन भरत सुख नैननि ।
हंस कीटि दाभिनि प्रतिबिम्बित, बिम्बाधर रस रैननि ॥
बिनु दामनि हौं मोल बहई हति, स्याम क्वीलै रैननि ॥

१- मयत कवि व्यास जी (वाणी संस्करण) पृ० २०१

२- वही पृ० १६८

मौह धनुष ते चलत नयन सर भेदत उरज गुरेननि ।
 रोम रोम की हवि पर वारों, कोटि सोम हवि मेननि ।
 सहज मधुरता व्यास मन्द पे, कहत बनें बयों केननि ॥ १

वेणु माधुरी-

मधुर मधुर धुनि बाज वेनु बजावत ।
 मुदित उदित तान बंधान रागनि के, रसिक कुंवर श्री राग बलापत ।
 दैत सुरनि मधुकर, मोर नाचत विश्वकि चंद मुदित धन गाजत ।
 उलट बहुत सलिला सर उमगत, पुलकित वृन्दाविपिन विराजत ।

वरजत कुसुम मुदित नम नाशक, जय जय धुनि सुनि सब ब्रज प्राजत ॥ २९

३- गोपी प्रेम-

श्रीमद्भागवत में कृष्ण और गोपियों के रस विलास में
 जैसे स्थूल और मात्स्य चित्र दिए गए हैं उनकी फलक व्यास जी के काव्य
 में देखी जा सकती है। गोपियों की रूप सक्ति और तन्मयता सक्ति
 विशेष रूप से दृष्टव्य है -

तन्मयतासक्ति-

जो माँव सो लीगनि कहन दे ।
 कानि पिशौड़ी पाँव न कीजे, न्याव भेटि प्रीति निबहन दे ।
 हों जोबन मदमाती सजी ही भरी इतियाँ पर मोहन रहन दे ।

१- मूल कवि व्यास जी (वाणी संकलन) पृ० ३८२

२- " (श्री वासुदेव गोस्वामी) पृ० ३१९

नव निहुँज पिय अंग संग मिलि, सुरत पुंज रसहिन्दु धहन है ।
या सुकान्त व्यास बासके, लोक वेद उपहास सहन है।” १

श्री हरिराम व्यास के समस्त मखित काव्य पर श्रीमद्भागवत का इतना व्यक्त और अव्यक्त प्रभाव है कि सूर, परमानन्द, नन्ददास आदि कुछ कवियों को छोड़कर उनका ही स्थान आता है। इनके विषय में बाबाय्य शुक्ल ने ठीक ही कहा है कि” इनकी रचना परिमाण में बहुत विस्तृत है और विषय भेद के विचार से भी अष्टादश कृष्ण भक्तों की जैदा व्यापक है।” श्रीमद्भागवत की रास पंचाध्यायी के बाधार पर व्यास जी ने जो रास पंचाध्यायी लिखी थी, उसे भ्रमवश सूर कृत मानकर सूर सागर में सम्मिलित कर लिया गया। नागरी प्रचारिणी सभा काशी के सूर सागर के संस्करण में भी यह भूल मौजूद है। बाबाय्य शुक्ल ने इस प्रान्ति की ओर रक्षित किया है।

राधा वल्लभ सम्प्रदाय के अन्य कवि-

ऊपर हमने सम्प्रदायिक प्रवर्तक श्री हित हरिवंश जी के अतिरिक्त दो प्रतिनिधि कवियों पर श्रीमद्भागवत के प्रभाव का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त हमारे आलोचकाल में इस सम्प्रदाय के अनेक प्रसिद्ध कवि हैं जिन पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव है किन्तु विस्तार मय से हम उनका उल्लेख करने में असमर्थ हैं। परंपरा तो महाकवि बिहारी को भी राधा वल्लभ सम्प्रदाय से सम्बद्ध करती है। अतएव कुछ कवियों की

१- भक्त कवि व्यास जी (श्री बाबुदेव गोस्वामी) पृ० ३८४

२- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १६०

३- सूर सागर, पहला सण्ड पृ० ६६६- ६७३

४- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १६०

५- ब्रज भाषुरी सार पृ० २७

चर्चा संक्षेप में की जा रही है।

चतुर्भुजदास- (सं० १५८५)

हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में अष्टहाप के चतुर्भुज दास को बनेक बार भ्रम कश राधा वल्लभ सम्प्रदाय के इन चतुर्भुजदास के रूप में उल्लिखित किया गया था । किन्तु डा० दीन दयाल गुप्त ने अपने प्रबंध में सर्व प्रथम शोधपरक दृष्टिकोण से विचार कर इस भ्रम का सदा के लिए उन्मूलन कर दिया है। अस्तु । श्री चतुर्भुज दास ने श्रीमद्भागवत की भक्ति को स्वयं ही ग्रहण नहीं किया बल्कि समस्त देश में उसका प्रचार किया और भक्ति प्रताप यश नामक परम भगवद् भक्ति प्रतिपादक ग्रंथ की रचना की । भक्तमाल के टीकाकार श्री प्रियादास ने चतुर्भुज दास द्वारा भागवत कथा कहने और चमत्कार दिखाने का वर्णन किया है। चतुर्भुजदास के ग्रंथों का संग्रह "द्वादशयश" है। इनमें १२ पृथक् छोटे छोटे ग्रंथ हैं। इनमें से भक्ति प्रताप यश तथा हित जू को मंगल काफी प्रसिद्ध हुए और पृथक् भी पुस्तकाकार लिसे मिलते हैं। "द्वादश यश" में मुख्यतया श्रीमद्भागवत की भक्ति और धर्म कृत का निरूपण हुआ है। भक्ति की पाप नाशिनी शक्ति, भक्ति का सर्वश्रेष्ठत्व, विषय ० निन्दा, संसार का मिथ्यात्व निरूपण, स्त्री पुत्र धन धान्यादि का बन्धनकारी रूप, वर्णाश्रम धर्म निरूपण, ब्रह्मा भक्ति, सत्संग महिमा, भक्त जन महिमा, गुरु महिमा, श्रीकृष्ण का परम कारुणिकत्व, माया की प्रबलता और अन्ध प्रेम लक्षणा भक्ति बादि जो विषय श्रीमद्भागवत में प्रतिपादित हुए हैं उन्हीं समस्त विषयों का निरूपण चतुर्भुज

१- डा० दीन दयाल गुप्त : अष्टहाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० २५८-२८०

२- भोग ले लगावे नाना संतनि लड़ावे ,

कथा भागवत गावे, भाव भक्ति विस्तारिये ।

भज्यौघन लैके कोऊ कनी पाई परयो,

सोऊ जानिके दवायो बेठि रह्यो न निहारिये ॥

निक्सी पुरान बात करे नयो गात विद्या, शिदा सुनि शिष्य मयो महुयो ये प्रकारियो ।

कहे या जनम में न लियो कहु दियो फारी तथ ले उचार्यो प्रभु रीति लागी भक्तमाल(मं० सु० ति०) पृ० ७४१ धारियो ।

दास ने "दादश्या" में किया है।

श्री ध्रुवदास (संवत् १६३०-१७००)

अपनी भक्ति विषयक रचनाओं के अत्यन्त विस्तार के कारण हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य में ध्रुवदास जी का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने उन्हें राधावल्लभ सम्प्रदाय के भक्ति सिद्धान्तों का व्याख्याता और माध्व का^१र कहा है। जो सर्वथा उचित है। इन्होंने वेद, पुराण, स्मृति शास्त्रों का सार ग्रहण कर व्यालीस छोटे बड़े ग्रंथों का प्रणयन किया जो "व्यालीस लीला" नाम से प्रख्यात हैं। कुछ स्फुट फल भी प्राप्त होते हैं। नामा जी के भक्तमाल के अन्त में इन्होंने भक्त नामावली लिखी है। ध्रुवदास जी ने प्रसक्तया प्रेम लक्षणा मधुरा भक्ति का ही प्रतिपादन किया है, वैसे जीवन के आचार व्यवहार पदा और नैतिकता पर भी इनके विचार महत्वपूर्ण हैं। श्रीमद्भागवत की प्रेमाभक्ति और धर्ममत का इन पर पूर्ण प्रभाव है -

गोपी प्रेम-

नाखादि सनकादिध्रुव, उद्धव बरु ब्रह्मादि ।

गोपिय को सुल देसि किय, मजन बाफुनी बादि ॥^१

तिन गोपिन के दुरलभ पाई । नित्य विहार सहज सुख दाई ।

सिख श्रीपति ज्ञापि ललचाहीं । मन प्रवेस तिनहुं को नाहीं ॥^२

श्री ध्रुवदास जी की समस्त भागवतीय भक्ति का चारों ओर उनके निम्नलिखित श्लोकों में अत्यन्त सुन्दरता से समाविष्ट है -

ऐसी करी नवलाल रंगिले भू चित न ओर कहुँ ललचाई ।

ये सुख दुःख हैं सगि देह सो ते भिटि जाहिं रु लोक बढ़ाई ।

१- राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य पृ० ४२६

२- ब्रजमाधुरी सार : ध्रुवदास पृ० १६६

३- " " " " १६६

संगति साधु, वृन्दावन कानन तो गुनगाननि फाँफ विहाई ।

बंज फनों में तिहारै बसों, कस देहु यहँ छुन को छुनतारै ॥ १

संप्रदाय

राधावल्लभ के अन्य उल्लेखनीय कवियों में नेही नागरीदास (सं० १५६० विष्णुप्री) कल्याण फुजारी (संवत् १६००) श्री जनन्य जती (सं० १७४०) हमारे आलोच्य काल के वन्तर्गत हैं जिन पर श्रीमद्-मागवत की मधुर रस भक्ति का पूर्ण प्रभाव है। नेही नागरीदास जी के 'छंद सम्वन्ध' में तो यह किम्बदन्ती है कि वे श्रीमद्मागवत के भी उन प्रयोगों में रुचि न रखते थे, जिनमें कृष्ण की मधुरलीला का वर्णन नहीं है। वे केवल राधा कृष्ण की मधुर रस लीला के ध्यान में ही गहननिष्ठावन्त रहते थे।

३- स्वामी हरिदास के सखी सम्प्रदायानुयायी कवि-

स्वामी हरिदास जी (संवत् १५३७-१६३२)

मूल रूप में प्राचीन निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी संगीत कला धुरीण स्वामी श्री हरिदास जी ने मधुरा भक्ति प्रधान अपना पृथक् सखी सम्प्रदाय चलाया था। जिसकी साधना पद्धति का निम्बार्क सम्प्रदाय से मौलिक भेद है। सखी सम्प्रदायों में उपासक सखी भाव धारण करता है। स्वामी हरिदास वृन्दावन के 'टट्टी संस्थान' के संस्थापक थे। स्वामी जी का सम्प्रदाय सखीपासना को प्राधान्य देता है। इस दृष्टि से राधा वल्लभ सम्प्रदाय से इनका संबंध है। स्वामी हरिदासनेकुशल सरकार की निर्दुल लीला का बहुत ही मर्मस्पर्शी और मधुर भाषा में वर्णन किया है। स्वामी जी अत्यन्त विरक्त महात्मा थे। अतः उनके सम्प्रदाय में वैराग्य का महत्व है। उनकी वाणी के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं-

जनन्य सरणमस्ति-(आत्म निवेदन भक्ति)-

५- ज्योंही ज्योंही तुम राखत हो, त्योंही त्यों ही रहियु हैं हो हरि ॥

१- ब्रजमाधुरी चार पृ० १६४

२- राधा वल्लभ सम्प्रदाय : पृ० ४७ उ०

और जबरन पाइ धरौ , सुनौ कहौ कौन के पंड मरि ॥
 जदपि हौं अपनी मायो कियो चाहौं, कैसे करि सकौं सो तुम राखौ पकरि ।
 कहि "हरिदास" फिरा के जनावर लौं तरफराइ रह्यो उठि के -
 बितौउ करि ॥ " १

स- काहू को कस नाहिं तुम्हारी कृपा तैं सब होई विहारी विहारिनि ।
 ओर मिथ्या प्रपंच बहै कौं मागिये तु तौहि हारनि ॥
 जाहि तुनसौं हित तजहि तुम हित करौ सब सुख कारनि ॥
 श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज विहारी, प्रान्नि के बाधारनि ॥ " २

वैराग्य (उद्बोधन-)

जौं लौं जीवै तौं लौं हरि मनु रे मन लोर बात सब बादि ।
 दिवस चारि कौ हला मला तू कहा लेख्यो लादि ।
 माया मद गुन मद जोवन मद, मूल्यो नगर विबादि ॥
 कहि हरिदास लोभ चरफट मयो काहे को लागे फिराद ॥ " ३

लीलागान- (रास लीला)-

अद्भुत गति उपजति जति नाचत, दोऊ मण्डल कुंवर किशोरी ।
 सक्त सुगंध कंग मरि फोरी, पिय नृत्यति मुसकति मुख मोरी ।
 तालधरि वनिता भृङ्ग, चन्द्रागति घात जेँ थोरी थोरी ॥
 मधुर भाव भाषा विचित्र बति, ललित गीत गावैं बित चोरी ।
 श्रीवृन्दावन फूलनि फूल्यो पूरन ससि समीर गति थोरी ।
 गति विलास रस हास परस्पर भूतल अद्भुत जोरी ।
 श्री जमुना जल विधक्ति मुहुपनि कवि रति पति डारत तुन तोरी ॥

१- ब्रजमाधुरी सार पृ० ६६

२- वही पृ० ६६

३- , , ६८

श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी जू को रस रसना कहै कोरी ।

२- श्री विट्ठल विपुल- (सं० १५५०-१६३२)

कहा जाता है कि ये स्वामी हरिदास जी के मामा तथा प्रधान शिष्य थे।^२ इन्होंने राधा कृष्ण की निरुंज लीला के पद लिखे हैं। रास लीला का वर्णन किया है किन्तु छिंदोला भूलना जादि ब्रज भूमि में प्रचलित उत्तापमय झोड़ावों को भी उत्तमें सम्मिलित किया है। "छिंदोरे" के पद प्रायः सभी साम्प्रदायिक कृष्ण भक्त कवियों ने लिखे हैं। अष्टशाय के कवि भी इसके अपवाद नहीं हैं। किन्तु विट्ठल विपुल के निरुंज लीला वर्णन में वातावरण वही मागवत के रास का है :-

रास लीला-

क- सजनी नव निरुंज हुम फूले ।

जलि कुल संकुल करत कुलाहल , सौख्य मन्मथ मूले ।

हरति छिंदोरे रसिक रास वर, जुगल परस्पर मूले ।

श्री "विट्ठल विपुल" विनोद देसि नम देव विमानन मूले ॥ " ३

ख- नवल शरद की जोन्ह जगमगी ।

नवसतसाज सकल अंग सुंदरि, नवल वदन पर जलक सगवगी ।

श्री विट्ठल विपुल बिहारी के अंग लाड़िली सहज डर लगी ॥ " ४

१- हरिदास वंशानुचरित्र (पद संकलनिका एवं चरित लेखक चौबै नवनीत कवि) पृ० २५

२- ब्रजमाधुरी सार : पृ० ६४

३- हरिदास वंशानुचरित्र पृ० ३२

४- वही पृ० ३६

३- बिहारिदास (सं० १५६१-१६५६ वि०)

हरिदास जी के सही सम्प्रदाय में बिहारिदास जी का स्थान प्रमुख है। उनके रचना भी परिमाण में अधिक है। इन्होंने श्रीकृष्ण की निरुज लीला के गान के अति-रिक्त मानव जीवन के सामान्य वाचार फदा का विचार और भगवद् भक्ति का माहात्म्य गान किया है।

भागवत कथन श्रवण भक्त की अनिवार्यता-

इन्होंने भागवत कथन के बिना भक्ति का प्रतिपादन धर्म का शारीरिक भ्रम बताया है-

भक्ति बिना भागवते कहै, कठे सोसै काया दैह।

मर्म न जाने कर्म न करै, निगुणा यों सबकाहू डरै ॥ १

श्रीमद्भागवत के श्रवण से समस्त सन्देहों का निराकरण हो जाता है जैसा कि परीक्षित के उदाहरण से स्पष्ट है -

सात घोस निस्पृह सुक गायो ।

राजा बुनि सन्देह नसायो ॥ २

भागवत धर्म के मूल मंत्र अनन्य भक्ति का अवलम्बन किये बिना जीव का उद्धार सम्भव नहीं है -

बिना अनन्य न मर्म जाने । जार जात गुन पिता पहिचानै ।

भक्त सकाम बनिक हठ ठानै । जौ लौं वीजु निज वेद बसानै ॥ ३

१- हरिदास वंशानुचरित्र पृ० ६५

२- " ६५

३- " ६५

नवधा भक्ति-

भगवान् की अनन्य प्रेमाभक्ति प्राप्त करने के लिए भागवत-
तोक्त भ्रवण कीर्तन आदि नवधा भक्ति द्वारा पहले विषय विकार का
नाश आवश्यक है :-

यह उपाय सुन्यो सन्तन पे हरि सेवत सुत जीजे ।
भ्रवण कीर्तन भक्ति भागवत नो प्रकार रति कीजे ।
विषय विकार विरधि रधि मन क्रम वचन रचन चित दीजे ।
श्री विहारिदास प्रभु सदा सजोवन वदन कमल रस पीजे ॥ १

नाम महिमा-

नाम की अमोघ शक्ति का उल्लेख भागवत के अनामिलोपा-
ख्यान के नाम निर्देशपूर्वक इन्होंने किया है -

हरि जस गावत सब उधरे ।
नीच अधम बहुलीन विमुख सब बेत गनों बुरे ।
नाऊ हीपा जाट जुलाहा सन्मुख जाय बुरे ।
विवश असावधान सुत के हित हूँ कसरा उचरे ।
श्री विहारीदास कोटि अनामिल से पतित पवित्र करे ॥ २

वैराग्य-

मनुष्य की गृहाभक्ति और भगवद् विमुक्ता की निन्दा
करते हुए ये कहते हैं :-

१- हरिदास वंशानुचरित्र पृ० ५६, ५७

२- वही ५७

बहुत कुटुम्ब बड़ा गृह गेही । सब सूना बिन श्याम सेही ।
मृतक समान ब्रान बिनु प्राणी । तिहि सिंगार मयो बभिमानी ॥ १

लीला गान-

इन्होंने देवति श्रीकृष्ण की निरुज केलि-लीला को ही
अपनी रस साधना का परम ध्येय बनाया और वृन्दावन की माधुर्य लीला
का गान किया -

नवल वसंत नवल वृन्दावन,
नव परिमल अलि लुब्ध तरुनि जन ।
नव पराग अनुराग मगन मन,
नव विहार बखिदास रसिक जन ॥ २

श्री हरिदासी सम्प्रदाय के अन्य कवि-

माधुर्योपासना के मार्ग को प्रशस्त करने वाले जेक प्रसिद्ध
कवि हरिदास के सम्प्रदाय में हुए हैं। जिनमें नागरीदास जन्म (सं० १६००
वि०) सरसदेव (जन्म सं० १६११ वि०) नरहरदेव (जन्म सं० १६४०
वि०) रसिबदेव (जन्म सं० १७४१ वि०) तथा ललितकिशोरी देव (चक्र
जन्म सं० १७३३ वि०) उल्लेखनीय हैं। इन्होंने श्रीमद्भागवत की मधुरा
मक्ति के अतिरिक्त सामान्य मक्ति सिद्धान्तों का भी निपण किया
है।

४- श्री चैतन्य सम्प्रदाय के हिन्दी कृष्ण भक्त कवि-

श्री गदाधर पट्ट (१६ वीं शती विद्वामी का उत्तरार्ध)
चैतन्य के समकालीन और उनके सम्प्रदाय में दीक्षित हिन्दी कृष्ण भक्त

१- हरिदास वंशानुचरित्र पृ० ६३

२- वही ४६, ४७

३- द्रष्टव्य, हरिदास वंशानुचरित्र पृ० ६६-८ तथा ललित प्रकाश (रचयिता
सहजरी शरण देव) द्वितीय इत्सास पृ० १२-१०४

कवियों में श्रीगदाधर पट्ट का नाम अग्रगण्य है क्योंकि चैतन्य सम्प्रदाय के जैन भक्तों ने संस्कृत में ही अपनी काव्य रचना की है। पट्ट जी स्वयं संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। संस्कृत में रचना करते थे^{उनकी} हिन्दी रचना भी तत्सम संस्कृत फावली युक्त समस्त शैली में हुआ करती थी -

नमो नमो जय श्रीगोविन्द ।
 बानंद मय ब्रज सरस सरोवर ,
 प्रकटित विमल नील वरविन्द ।
 जलुमति नीर नेह नित पोषित,
 नव नव ललित लाह सुसुन्द ॥ १

किन्तु दाक्षिणात्य ब्राह्मण होने पर भी अपने हृष्टाराध्य की जन्म भूमि की भाषा (ब्रजभाषा) से उन्हें अनुराग था और ब्रज भाषा में अत्यन्त सरस पद रचना करते थे।

श्रीमद्भागवत कथा वचन-

श्रीगदाधर पट्ट के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि वे महाप्रभु श्री चैतन्य की श्रीमद्भागवत की कथा सुनाया करते थे । बाचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्त माल के निम्नलिखित छप्पय के बाघार पर इस बात का समर्थन किया है :-

सज्जन सुहृद सुसील वचन बाखन प्रति पावै ।
 निरमत्सर निष्काम कृपा करुणा को बावै ।
 जनन्य मजन दृढ करन धर्यो वपु भक्तन कावै ।
 परम बुद्ध धरम को सेतु विदित वृन्दावन गावै ।
 भागवत सुधा वरणे वदन , काहू को नाहिं दुख ।
 गुण निकर गदाधर पट्ट बति सबहि को लागे सुख ॥ २

१- ब्रजमाधुरी सार पृ० ८०, ८१

२- बाचार्य रामचन्द्र शुक्ल , हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० १८२

३- भक्तमाल (भक्ति सुधा स्वाद तिलक) पृ० ७८६

कतः स्पष्ट है कि श्री गदाधर भट्ट की मक्ति परक रचनाओं पर श्रीमद्-
भागवत की मक्ति पद्धति का प्रभाव पड़ा है। चैतन्य सम्प्रदाय में हरि
नाम संकीर्तन का जो विधान है उसका आधार श्रीमद्भागवत है। इसीलिए
गदाधर भट्ट ने भी नाम महिमा का गान किया है।

नाम महिमा-

क- हरि हरि हरि हरि हट खना मम ।

पीवत साति रहति निधरक मह, होत कहा तोकों भ्रम ।

तै तो सुनी कथा नहिं मो से उधरे जमित महाधम ।

ग्यान ध्यान जप तप तीरथ व्रत, जोग जाग बिनु संजम ।

हेम हरन द्विज द्रोह मान मद बरु भर गुरु दारागम ।

नाम प्रताप प्रबल पावक के, होत जतात सलम सम ।

इहि कलिकाल कराल व्याल विष ज्वाल विषम मोयै हम ।

बिनु इहि मंत्र गदाधर को क्यों मिटिहै मोह महातम ॥ १

ख- हे हरि तै हरिनाम बदे रो । ताकों मूढ करत कत फेरो ।

प्रगट वरस मुचकुंदहिं दीन्हों, ताहु बायु भो तप केरो ।

सुतलित नाम जगामिल तोन्हों, या भव में न कियो फिरि फेरो ॥

उक्त उद्धरणों में जहाँ एक ओर नाम की कसीम कयीष नाशिनी शक्ति की
ओर संकेत किया गया है वहाँ दूसरी ओर श्रीमद्भागवत के मुचकुन्द ओर
जगामिल के उपाख्यानो के संकेत द्वारा श्री हरि से भी श्री हरि नाम को
श्रेष्ठतर बताया गया है।

लीलागान-

श्रीमद्भागवत में अनेक पात्रों द्वारा श्रीकृष्ण की लीला

१- ब्रजमाधुरी सार पृ० ८१

२- वही पृ० ८२

के गान की चर्चा की गई है। गोपियां, गोप सभी अवकाश पाते ही-
विबहुना- सदैव ही गृहकर्म में संलग्न होने पर भी कृष्ण का गुण गान करते
रहते हैं। नन्द पत्नी यशोदा भी इसका अपवाद नहीं है। भागवत में अंकित
यशोदा के निम्नांकित चित्र का गदाधर भट्ट ने पुनरंकन किया है। दोनों
चित्र तुलनीय हैं। पहले श्रीमद्भागवत का चित्र देखिए-

यानि यानीह गीतानि तद् बाल चरितानि च ।
दधि निर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्कायक ।
दागमं वासः पृष्ठे कटि तटे विप्रती सूत्रनदं
पुत्रस्नेहस्तुतस्तुतस्तु जात कर्म च सुभूः ।
रज्ज्वाकर्का श्रम मुञ्च चतुर् कंकणौ कुण्डलौ च ।
स्निग्धं वक्त्रं क्वर विगलन्पातती निर्ममन् ॥ १

जब श्री गदाधर भट्ट द्वारा चित्रित यशोदा के दिव्य रूप की कांकी भी
कीजिए-

दधि मन्थनं नहिं रानी करति सुत गुण गान ।
नील नीरुदं कं दिव्य दुकूल वर परिधान ।
केश कुसुमानि च किरानि मनि ताटक फलकत कान ।
स्वेद कन गन वदन विष्ट पर, सुधा बिन्दु समान ।
नेत्र करणत हरण वरणत वलय किंकिनि ववान ।
पय पयोधर द्रवत चातक कृष्ण धित निदान ।
सहस्र वानन कहि सकै नहिं जाहु भान्य बसान ।
जगतबन्ध गोविन्द माता , गदाधर करि ध्यान ॥ २

१- श्रीमद् १०।४४।१५

२- वही १०।६।२-३

३- ब्रजमाधुरी सार पृ० ८४

बाल लीला-

कृष्ण की भागवतीय बाल लीला का वर्णन भी भट्ट जी ने किया है :-

बारें तें गोकुल गोपिन के झूने घर तुम डाटे हो ।
पैठे तहाँ निरंक रंक लों दधि के भाजन चाटे हो ।
जाफुकहाइ धनी कौ ढोटा मात कृपन लों मांग्यो हो ॥ १

रास लीला-

श्रीगदाधर भट्ट ने श्रीमद्भागवत के अनुसार कृष्ण के सरस्वती रास का वर्णन किया है -

जाशु मोहन रवी रास रस मण्डली ।
उचित पूरन निसानाथ निर्मलदिसा ,
देसि दिनकर सुता सुमग पुलिन स्थली ।
बीच हरि बीच हरिनाच्छ माला बनी ,
तरुनतापिच्छ जनु कनक कदली रली ।

चरन विन्यास कपूर कुंकुम धूरि,
धूरि रहि चारि दिसि कुंजवन की चली गली ।

गान रस तान के बान बेध्यो बिस्व,
जान अभिमान मुनिध्यान रति दलमली । २

यमुना महिमा-

कृष्ण लीला के उपकरणों में यमुना का महात्म्य

१- ब्रजमाधुरी सार पृ० ६१

२- वही पृ० ८७

देसिए-

जमुना देवी कौन मलाई ।
नाम रूप गुन ते हरि जू कौ, न्यारी अपनी चाल चलाई ।
जप बस देस कियो ब्राता कौ, उनहिं परसि कौउ तहाँ न जाई ।
जे तन तजत तीर तुम्हरे ते, तात किरन में गेल लगाई ॥ १

रूप माधुरी-

मोहन बदन की सोभा ।
जाहि देखत उठति सखि बानन्द की गोभा ।
नेन धीर अधीर कहु कहु बसित सित राति ।
प्रिया बानन चन्द्रिका मधुमान रस माति ।

ललित बोल कपोल, कुण्डल मधुर मकराकार ।
जुगल सिसुसौदासिनी, जनु नचत नट चटसार ।

लग्यो मन ललचाइ ताँहिं टस्त नहिं टार्यो ।
बसित बद्धुत माधुरी पर "गदाघर" बार्यो ॥ २

संध्या समय गोचारण से लोटते हुए, वैष्णु वादन-रस
गोरजच्छुरित बलकावली मण्डित, गोप बाल मण्डली से अनुगत, दिव्य
पीताम्बरधारी श्याम सुन्दर के इस जीवन्त चित्र के लिये भी मट्ट जी
श्रीमद्भागवत के कृपा हैं :-

बाजु ब्रजराज कौ कुँवर बनते बन्यो,
देसि जावत मधुर अधर ७ रंजित बेनु ।
मधुर बल गान निज नाम तुनि ब्रजन फुट,
परम प्रमुदित बदन फेरि, हूँकति धेनु ।

१- ब्रजमाधुरी सार पृ० ६०

२- " " " ८०

मद विधूर्णित नैन मन्द बिहंसनि नैन ,
कुटिल जलकावली ललित गोपक रेनु ।
मवाल बालनि जाल करत कोलाहलनि
सुंग दल ताल धुनि रचत संघत चैनु ।
मुहुट की लटक, बरु चटक पट पीत की,
प्रकट वंशुरित गोपी मनहिं मैनु ।
कहि " गदाधर " जु रहि न्याय ब्रज सुन्दरी ,
विमल वनमाल के बीच बाहनु ॥ " १

तुलनीय-

वत्सलो ब्रजगवां यद्गुध्रो वन्द्यमान चरणः पथि वृद्धेः ।
कृत्स्नगोधनमुपोह्य विनान्ते गीत वेणुरसुगुडित कीर्तिः ॥
उत्सवं भ्रम रुचापि वृशीनामुन्नयन्धुररजश्वरितप्रक् ।
दिक्स्थैति सुहृदाशिष्य रण देवकी जठर मूरुदुराजः ॥
मद विधूर्णित लोचन ईष्यन्मानदः स्वसुहृदां वनमाली ।
वदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डमण्डयन्वनक कुण्डल लक्ष्म्या ॥ " २

वेणु माधुरी-

गदाधर मूट मुरली की विश्वमोहिनी स्वर माधुरी का
उल्लेख उस प्रकार करते हैं :-

बधर गिरिधरन के लागि के जगत् -

विजयी मई माधुरी मुरलिका काकली ॥ " ३

श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व-

परब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्ण की महिमा को वेदातीत

१- ब्रज माधुरी सार पृ० ८६

२- श्रीमद्भागवत १०।३५। २२-२३-२४

३- ब्रजमाधुरी सार पृ० ८८

बताते हुए मट्ट जी कहते हैं-

बरनौं कहा जयामति मेरी, वेदहुं पार न पावै हो ।

मट्टगदाधर प्रभु की महिमा गावत ही उर बावै हो ।^१

गोपी प्रेम-

चैतन्य सम्प्रदाय की आधार भूमि ही गोपियों की मधुर भक्ति भावना है, जतः इस विषय के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। किन्तु यहाँ केवल रूपसक्ति एवं तन्मयासक्ति का एक प्रसिद्ध उदाहरण छिप प्रस्तुत किया जाता है, जिसे सुनकर जीव गोस्वामी मुग्ध होगये थे।

सखी हों स्याम रंग रंगी ।

देखि विकस्य गयो वह मुरति, मुरति माहिं फी ।

संग हूँ अपनी सपनी सो, सोइ रही रस सोई ।

जागहुँ जागे दृष्टि पर सखि नेकु न न्यारी होई ।

एक तु मेरी अखिय में निधि बोल रह्यौ करि मोन ।

गाइ बरावत जास सुन्यौ सखि, सो धौं कन्हैया कौन ।

कासौं कहाँ कौन पतियावै, कौन करे बकवाद ।

कैसे कै कहि जात गदाधर भूगि कौ गुर स्वाद ॥^३

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीमद्भागवत के नित्य स्वाध्यायी और वक्ता, भक्तप्रवर श्री गदाधर मट्ट की रचनाओं के अन्तराल में श्रीमद्भागवत की भाव राशि निरन्तर मुखर हो रही है।

श्री सूर दास मदन मोहन- (रचनाकाल संवत् १५६०-१६००)

चैतन्य सम्प्रदाय के द्वितीय प्रसिद्ध एवं उत्कलनीय हिन्दी कृष्ण भक्त कवि श्री सूरदास मदनमोहन हैं। ये जात्या ब्राह्मण थे और

१- ब्रजभाषुरी सार पृ० ८६

२- वही पृ० ७८

३- ,, ७७, ७८

जबकि के शासन काल में संडीले के अमीन थे। एक बार एक बड़ी धन राशि जो जबकि के राज्य कोष में जमा होनी चाहिए थी, इन्होंने साधु सत्कार में व्यय कर दो और विखत होकर वृन्दावन चले गए। ये माधुर्य भक्ति के पथिक थे और तन्मयी भाव से कविता करते थे। इनके अनेक पद सूर सागर में मिल गए हैं। इनके दृष्टदेव "मदन मोहन" श्रीकृष्ण थे। अपने नाम "सूरदास" के साथ इन्होंने दृष्टदेव का नाम इतना संलग्न कर लिया कि वह फिर एक ही नाम बन गया और ये "सूरदास मदन मोहन" नाम से प्रख्यात हो गए। इस मत का समर्थन श्री नामच जी के इस कथन से होता है -

मान काव्य गुन राशि सुदृढ सहचरि- अवतारी ।
 राधा कृष्ण उपासि, रहस सुस के अधिकारी ।
 नव रस मुख्य सिंगार विविध भाँतिन करि गायौ ।
 बदन उच्चरत देर सहस पाँयन ह्वै धायौ ।
 अंगीकारहि की अवधि ज्यों जौल्यो प्राप्ता जमल ।
 श्री मदनमोहन सूरदास की नाम सुखता जुरि अटल ॥ २

उक्त कथन से सूरदास मदनमोहन की उपासना पद्धति पर भी प्रकाश पड़ता है। चैतन्य सम्प्रदाय में शृंगार रस को उज्ज्वल रस कह कर माधुर्य भक्ति में उसका विशेष उपयोग किया गया है और सूरदास मदनमोहन ने भी इसी के लिए श्रीमद्भागवत के दिव्य शृंगार रस का विविध प्रकार से गान किया है। अनन्य शरणागति और दृष्ट की महवा बादि सामान्य भक्ति सिद्धान्त भी इनके पदों में प्राप्त होते हैं- कतिपय उदाहरण देखिए-

अनन्य शरणागति-

मेरी गति तुम ही अनेक तीर्थ पाऊँ ।

१- ब्रजमाधुरी सार पृ० १०२

२- भक्त माल (भक्ति सुधा स्वाद तिलक) पृ० ७४५.

चरन कमल नख मनि पर विणै सुख बहाऊं ।
 घर घर जो डोलौ तौ हरि तुम्हें लजाऊं ।
 तुम्हरी कहाय कहो कौन कौ कहाऊं ॥
 तुम्से प्रभु शांदि कहा दीनन कौं धाऊं ॥ १

लीला गान (बाल लीला)-

मागवतीय बाल लीला को कवि ने किस प्रकार वात्मसात् कर कौन लीलाओं का संयुक्त रूप में चित्रण किया है, यह निम्नलिखित पद में द्रष्टव्य है-

खेलिर बांगन जगन मगन कीजिए बसेवा ।
 कीफे ते सारी दधि रूपरस कादि घरी ।
 पहिरि सेउ मंगुली , फेटा बांधि सेहु भेवा ।
 म्वालन संग खेलन जाहु खेलन भिस भूषन ल्याहु ।
 कौन परी प्यारै निचदिन की टेवा ।
 ब्रह्म सूरदास मदनमोहन घर में ही खेलौ प्यारै ललन,
 मंवरन बकहोरक देहौं हंस बकौर पौवा ॥ २

वृन्दावन लीला-

श्रीकृष्ण की प्रेम लीला के इस पद में मुरली स्मरीक्य कइ का कार्य कर रही है-

गौर गोविन्द नवल किसोर सखी चित बौर ,
 ठाढ़ हैं द्रुम की बहियां ।
 बधर धेर मुरली ऊंचे सुर लिय सुनि तोहि बुलावतहैं
 माई री तू कत कहति नहियां ॥ ३

१- ब्रजनाथरी सार पृ० १०७

२- " १०८

३- " १०९

रूप माधुरी-

श्रीकृष्ण की वेषभूषा और सौंदर्य का यह चित्रण भी परम्परागत है -

मधु के मतवारे स्याम लोलो प्यारे पलकें ।
 सीस मुट्ट लटा हूटी और हूटी जलकें ।
 सुर नर मुनि द्वार ठाढ़े दास हेतु कलकें ।
 नासिका के मोती सोहैं बीच लाल ललकें ।
 कटि पीताम्बर मुरली कर झवन कुण्डल फलकें ।
 'सूरदास मदन मोहन' दास देहों मलकें ॥ १

वेष माधुरी-

मुरली के इस विश्वमोहन स्वर के श्रवण के लिए सूरदास मदनमोहन ने अवश्य ही श्रीमद्भागवत का श्रवण किया होगा-
 चलौरी मुरलीमुनिर कान्ह कजाई जमुना चीर ।
 तजि लोक लाज कुल की कानि गुरु जन की मीर ।
 जमुना जल थकित मयो बहा न पीवैं झीर ।
 सुरविमान थकित मर थकित कोकिल कीर ।
 देह की सधि बिसरि गई, बिसरी तन को चीर ।
 मात तात बिसरि गर, बिसरे बालक बीर ॥
 मुरली धुनि मधुर बाजे बैसे के घरों धीर ।
 सूरदास मदनमोहन, जानत हो पर पीर । २

(तुलनीय- श्रीमद्भागवत १०।२१ वेषुगीत तथा १०।३५

युगल गीत)

वैतन्य सम्प्रदाय में रसिक जनन्यमाल के स्वयंता श्रीमद्भागवतमुद्रित नागरी दास आदि अन्य कवि भी हुए हैं। विष्णुमीय १६ वीं शती के उत्कृष्टनीय कवि श्री गुण मंजरीदास हैं। यहाँ केवल दिङ्मात्र दर्शन के

१- व्रजमाधुरी सार पृ० १०६

२-

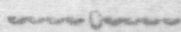
११

१०६

लिए दो कवियों पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव दिखाया गया है। जेक कवियों का परिचय देना यहाँ अभिप्रेत भी नहीं है।

निष्कर्ष-

ऊपर वृन्दावन के प्रमुख वैष्णव सम्प्रदायों के मुख्य तम कवियों पर उनकी रचनाओं के उद्धरणों से श्रीमद्भागवत का प्रभाव निरूपण किया गया है। उदाहरणों को देखने से स्पष्ट होता है कि श्रीमद्भागवत के सामान्य और विशिष्ट दोनों ही प्रकार के भक्ति तत्वों को तत्त्व कवियों ने अपनी भावना और रुचि के अनुसार आत्मसात किया किन्तु प्राधान्य विशिष्ट तत्वों का ही है। वष्टहाप के किन्हीं कवियों की भाँति इन सम्प्रदायों के कवियों में से भी कई एक ने श्रीमद्भागवत के शब्दों, भावों और अभिव्यञ्जना शैली को ज्यों का त्यों ग्रहण किया है। यदि हम स्थानीय और कालान्तर में प्रवृत्त विशिष्ट साम्प्रदायिक तत्वों को दूर करके देशकाल निरपेक्ष होकर इन सम्प्रदायों की ठ निर्विशिष्ट , प्रगाढ़ प्रेमाभक्ति के तत्व को ही अपने पर्यालोचन की परिधि बनाएँ तो हम निस्सन्देह श्रीमद्भागवत को ही उस वृत्त का केन्द्र स्थानीय पाएँगे।



अष्टम अध्याय

श्रीमद्भागवत सर्व सम्प्रदाय मुक्त प्रमुख हिन्दी कृष्ण भक्त कवि

(पृ० ३६८ - ३६४)

अष्टम अध्याय

श्रीमद्भागवत एवं सम्प्रदाय मुक्त हिन्दी कृष्ण भक्त कवि

दृष्टिकोण-

विक्रम की सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध तक जैन प्रसिद्ध वैष्णव आचार्यों एवं प्रख्यात भक्त कवियों द्वारा श्रीमद्भागवत को एक महान् भक्ति ग्रंथ के रूप में पूर्ण प्रतिष्ठा दी जा चुकी थी। इस समय तक यह ग्रंथ अपनी स्याति की चरम सीमा पर पहुँच चुका था। विशेष कर कृष्ण भक्ति के प्रतिपादक के रूप में तो श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त किसी भी अन्य ग्रंथ की इतनी मान्यता नहीं थी, यह पूर्वविवक्षित सिद्धांतों के आधार पर निस्संदिग्ध रूप से कहा जा सकता है। अपनी मधुर भावना पूर्ण विश्वजनीन तत्व राशि के कारण उस समय राम भक्ति की अपेक्षा कृष्ण भक्ति का स्वर अधिक ऊँचा हो उठा था। इसका श्रेय कृष्ण भक्ति के प्रचारक मावुक वैष्णव आचार्यों को है। मध्यकाल में रामानन्द के उपरान्त राम भक्ति का प्रचारक कोई उतना समर्थ वैष्णव आचार्य नहीं हुआ। इसके विपरीत कृष्ण भक्ति के क्षेत्र में श्री बल्लभाचार्य, केतन्य महाप्रभु, और हित हरिवंश ने अमूर्तपूर्व कार्य किया था। श्री सुरदास बादि वष्टशापी कवियों और श्रीहरिदास बादि जैन रसोपासक कृष्ण भक्त कवियों की जैसी दृढ़ परम्परा बहुत काल तक चलती रही, वैसी तुलसीदास जैसे समर्थ रामभक्त कवि की परम्परा नहीं चल सकी। कारण यह था कि तत्कालीन भारतवर्ष के समस्त वायुमण्डल में श्रीकृष्ण की प्रेमात्मक भक्ति के प्रबल प्रतिपादक ग्रंथ श्रीमद्भागवत का स्वर गूँज रहा था। वास्तव में हिमाचल और प्रायः से जसम तक समस्त प्रादेशिक भारतीय भाषाओं में श्रीमद्भागवत-नुमोदित कृष्ण भक्ति का साहित्य रचा जा रहा था। सामान्यतया

तत्कालीन प्रत्येक कवि जिसमें भक्ति का कुछ भी अंशुर विद्यमान था , श्रीमद्भागवत से प्रत्यक्षा या परोक्षा रूप से परिचित था। जो कवि किसी वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं थे, किन्तु कृष्ण के उपासक थे, अथवा सामान्यतया भगवद्भक्त थे, उन्होंने भी भक्ति का आदर्श श्रीमद्भागवत से ही ग्रहण किया। सम्प्रदाय मुक्त कवियों में से जेक ने श्रीमद्भागवत के सामान्य धर्म-मत, ज्ञान , वैराग्य और प्रेम तत्व को अपनाया। जेक कवियों ने श्रीमद्भागवत का अनुवाद अथवा उसके भक्ति-स्थापक प्रसंगों का वर्णन किया। इनमें कृष्ण लीला प्रधान दशम स्कन्ध और सामान्य ज्ञान, वैराग्य भक्ति प्रधान एकादश स्कन्धों के अनुवाद सबसे अधिक संख्या में हुए। स्फुट प्रसंगों में रास पंचाध्यायी, रुक्मिणी मंगल, प्रह्लाद चरित, सुदामा चरित , ध्रुवचरित , गजेन्द्र मोक्ष, जगामिलोपाख्यान आदि उल्लेखनीय हैं। मीरा, रसलान आदि कवियों में तो गोपी प्रेम के गाम्भीर्य का स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा सकता है। रूपासक्ति तन्मयतासक्ति, और परम विरहासक्ति के जेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं, रूप माधुरी और परब्रह्मत्व के प्रतिपादक उदाहरण भी पर्याप्त संख्या में प्राप्त होते हैं। आगामी भक्तियों में हम प्रमुखतः कवियों की कतिपय रचनाएं प्रमाण स्वरूप उद्धृत कर रहे हैं। कवि-जगत में दृष्टिकोण आलोच्यकाल के प्रसिद्ध और महत्व पूर्ण कवियों को ही चुनने का रहा है।

मीरा बाई- (सं० १५५५- १६०३ वि०)

मध्यकालीन संत और भक्त कवियों की परम्परा में मीरा एक ऐसा विचित्र व्यक्तित्व रखती हैं, जिसका समानाधिकरण दुर्लभ है। उनमें जहां एक ओर निर्गुण और निराकार के ज्ञान की निष्ठा है वहां सगुण और साकार की माधुर्य-भक्ति की तन्मयी अवस्था भी परम दर्शनीय

है। उनके सगुण और साकार की उपासना वाले पद ही उनके व्यक्तित्व का अधिक प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका युग सगुण और साकार के वाग्रह का युग था। वे महाप्रभु वल्लभाचार्य (सं० १५३५-१५८७) महाप्रभु चैतन्य (सं० १५४२-१५६०) श्री हित हरिवंश (सं० १५५६-१६१०) श्री हरि-राम व्यास (१५६७-१६३५) आदि समर्थ वैष्णव आचार्यों और सगुण भक्तों की समसामयिक थीं, जिनकी भक्ति का आधार श्रीमद्भागवत था। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक ही था कि मीरा जैसी परम उदार सार-ग्राहिणी वृत्ति का भक्तता उक्त महानुभावों से प्रभावित होती। विद्वानों ने इसकी सम्भावना पर सहमति प्रकट की है। श्री नामा जी, व्यास जी, धुवदास जी^२ और प्रियादास जी^३ ने मीरा की परम प्रेम स्वभावित की कर्वा की है। नामाजी ने तो स्पष्ट ही कह दिया है कि मीरा ने कलिजुग में गोपी-प्रेम को प्रकट किया और विधिनिषेध की मर्यादा को पूर्णतया तिलांजलि दे दी। श्रीमद्भागवत में परम भगवद्भक्त की जिस गलदशु दशा, भाव विमोहता और भगवदा विरह-व्याकुलता का चित्रण मिलता है। गिरिधर लाल की सन्निधि में पग में धुंधल बाँधकर

१- मीरा बाई की पदावली (सम्पादक श्री परशुराम चतुर्वेदी पृ० १६

२- भक्तमाल (भक्तिसुधास्वाद तिलक) पृ० ७१३

३- वही पृ० ७१४-७२२

४- सदृश गोपिका प्रेम प्रकट कलिजुगहिं दिखायो ।

निरं क्लृप्त बति निहर, रसिक जस रसना गायो ।

दुष्टनि दोष विचार, मृत्यु को उदिस कीयो ।

बार न बाँको मयो, गरल जमृत ज्यों पीयो ।

भक्ति निसान बजायके, काहूँ नार्हिन ली ।

लोक लाज कुल शृंखला , तजि मीरा गिरिधर मजी ।

भक्तमाल (भक्तिसुधास्वाद तिलक) पृ० ७१३

५- बाग्दगदा द्रवते यस्य चितं रुदत्यमीक्ष्णं हसतिवचिच्च ।

विलज्ज उद्गायति नृत्यते च, मद्भक्ति युवती मुवर्त पुनाति ॥

श्रीमद्० ११।१४।२४

नाचती हुई मीरा के गीतों में स्पष्टतया उनकी फलक दिखाई देती है।
कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं :-

सामान्य भक्ति-

नाम जप, संकीर्तन, भगवद् गुणगान, सत्संग, आदि
के विषय में मीरा के विचार भागवतानुमोदित हैं :-

माई म्हां गोविन्द गुण गास्या ।

चरणाम्रित रो नैम सकारे नित उठ दरसण जास्या ।

हरि मंदिर मां निरत करावां धूपरुया धमकास्या ।

स्यामनाम रा फाफि चलास्या भोलागर तर जास्या ।

यो संसार बीड़ रो कांटो, गेल प्रीतम बटकास्या ।

मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, गुनगावा सुख पास्या ॥ १

लीला गान-

मीरा ने कृष्ण की बाल लीला, वृन्दावन की प्रेम लीला
कालियदमन, चीर हरण, वेणुवादन आदि का वर्णन किया है, ऊपर
वातावरण वही परम्परागत है -

बाल लीला-

जागो बंछीवारै ललना, जागो मोरै प्यारै ।

रजनी बीती मोर भयो है, घर घर लुलै किवारै ।

गोपी वही मथल सुनियत है, कंगना के फनकारै ।

उठो लाल जी मोर भयो है, सुर नर ठाढ़े धारै ।

ग्वाल बाल सब करत कुलबहल, जय जय शब्द उचारै ।

माल रौटी हाथ में लीन्हे गजवन के रखारै ॥

मीरा के प्रभु गिरधर नागर सरण आया बूँ तारे ।^१

कालिय दमन-

कमल दल लोचणां थे नाथ्यां काल मुजंग ।

कालिंदी दह नाग नाथ्यां, काल फण फण निर्त करंत ।

बूदां जल अन्तर ना डरयो थे एक बाहु वर्णांत ।

मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, ब्रजवणतारो कंत ।^२

वृन्दावन माहात्म्य-

वृन्दा (तुलसी) के वन ब्रज की विशेषता है।

श्रीमद्भागवत में तुलसी का बहुत माहात्म्य है। मीरा ने उसे पहचाना है -

बालीम्हाणो लागे वृन्दावण नीका ।

घर घर तुलसी ठाकर पूजां, दरसण गोविन्द जी कां ।

निरमल नीर बह्या जमणां मां भोजण दूध दही कां ।

रतण सिंवासण बाप बिराज्या मुगट धर्यां तुलसी कां ।

हुंजन हुंजन फिर्या सांवरा, सबद सुण्या मुरली का ।

मीरां के रे प्रभु गिरधर नागर, मजण बिणा नर फीका ॥^३

रूप माधुरी-

श्रीकृष्ण के त्रैलोक्य विमोहन रूप सौंदर्य, श्यामवर्ण, ललित अंग विन्यास और वेष भूषा का वर्णन श्रीमद्भागवतानुमोदित है -

सांवरो नंदनन्दन दीठ पढ़्यां माई ।

१- मीरा बाई की पदावली (सम्पादक श्री परशुराम चतुर्वेदी) पृ० १५०

२- वही पृ० १४६

३- वही पृ० १०४

डारूयाँ सब लोकलाज सुध बुध बिसराई ।
 मोर चन्द्रका किरीट मुगट हव सोहाई ।
 बेसर रो तिलक माल, लोचन सुखदाई ।
 कुंडल फलक कपोल बलकाँ लहराई ।
 मीणा तज सरवर ज्यों मकर मिलन धाई ।
 नटवर प्रभु भेष धरूयाँ रूप जग लौभाई ।
 गिरधर प्रभु कंग कंग, मीराँ बलि जाई ॥ १

श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व-

मीरा ने स्पष्टतया नन्द यशोदा के पुण्य से पुत्र रूप में उत्पन्न गोकुलनाथ, ब्रजलीला नायक, ब्रजवनिताओं के प्राणाधार, कृष्ण को अविनाशी परब्रह्म परमेश्वर माना है -

म्हारी गोकुल रो ब्रजवासी ।
 ब्रजलीला लख जण सुखपावाँ ब्रजवणताँ सुखरासी ।
 पाँच्याँ गावाँ ताल बजावाँ पावाँ बाँणद हासी ।
 पाँद जसोदा पुन रो प्रगट्या प्रभु अविनासी ।
 पीताम्बर बट उर बैजणताँ, कर सोहाँ रो बाँसी ।
 मीरा रे प्रभु गिरधर नागर, दरसन दीज्यो दासी ॥ २

गोपी प्रेम-

मीरा स्वयं गोपी भाव से भावित हैं, अतः उनकी समस्त
 रचना ही एक प्रकार से कृष्ण प्राणा-
 गोपी के प्रमोदगार ही है। गोपियों की जिस रूप्यासवित, दास्यासवित,

१- मीरा बाई की पदावली (सम्पादक श्री परशुराम चतुर्वेदी) पृ० १०४

२- वही पृ० १०२

आत्मनिवेदनासक्ति, परम विरहासक्ति आदि का उल्लेख पहले किया जा चुका है, वे सभी मीरा के काव्य में प्रभूतमात्रा में विद्यमान हैं। सब प्रकार के लोक परलोक के विधि निर्णय का त्याग गोपी प्रेम का मूल मंत्र है और मीरा में यह भाव सर्वाधिक प्रबल है -

रूपासक्ति-

निपट बंकट ह्व अटके ।
 म्हारै नैणा निपट बंकट ह्व अटके ।
 देख्यां रूप मदन मोहन री , पियत पियूरव न मटके ।
 वारिज भ्वां जल्ल मतवारी नैण रूप रस अटके ।
 टेढ़्यां कट टेढ़े करि मुरली, टेढ़्यां पाग सर लटके ।
 मीरा प्रभु रै रूप लुभाणनि गिरधर नागर नटके ॥ १

दास्या सक्ति-

हरि म्हारा जीवण प्राण आधार ।
 और बन्धन बासिरी णा म्हारा थे विण, तीनों लोक मंकार ।
 थे विण म्हाणी जग णां सुहावां निरल्यां सब संसार ।
 मीरा रै प्रभु दासी रावली न लीज्यो जेक णिहार ॥ २

आत्म निवेदनासक्ति-

स्याम सुन्दर पर वारां जीवड़ा डारां ।
 थारै कारण जगजण त्यागां लोकलाज कुलडारां ।
 थे देख्यांविणु कलणां पडतां नैणा चलतां धारां ।
 क्यासुं कल्लां कोण बुझावां कठण विरहरी धारां ।
 मीरा रै प्रभु दरशण दीस्यो थे चरणं आधारं । ३

१- वही पृ० १०३

२- ,, १०२

३- ,, १३०

परम विरहासक्ति-

स्याम मिलण रे काज सही, उर बारति जागी ।
तलफ तलफ कलनां फड़ां विरहानल लागी ।
निसदिन फी निहारां फिरो पलक ना पलमर लागी ।
पीव पीव म्हां रूठां रेण दिन लोक लोच कुलत्यागी ।
विरह मुकाम ठस्यां कलेजा लहर हलाहल जागी ।
मीरा व्याकुल अति ज्जुलाणी स्याम उमगा लागी । १

सम्प्रदाय मुक्त कवियों में मीरा ही प्रमुख कविका-
हैं जिनकी मक्ति भावना अत्यन्त व्यापक है और अपनी बहुलता एवं तत्का-
लीन वैष्णव भक्तों एवं बाबायों के सत्संग से जिनको श्रीमद्भागवत का ज्ञान
सम्पत्ता में प्राप्त हुआ था । प्रियादास जी ने मीरा बाई का श्री जीव गो-
स्वामी के सम्पर्क में आने का उल्लेख किया है। गौड़ीय बाबायों श्रीमद्भागवत
के कितने भक्त और उपासक थे यह विद्वज्जनों से अनवगत नहीं । उनके संपर्क
से मीरा को भागवतीय-मक्ति एवं कृष्ण लीला से उन प्रसंगों का ज्ञान
प्राप्त होना सहज अनुमेय है। एक उदाहरण से यह और भी स्पष्ट हो
जायगा कि भगवच्चरणारविन्दों की अनिर्वचनीय महिमा का स्वयम्
करने के लिए मीरा ने श्रीमद्भागवत के कृष्ण लीला प्रसंगों एवं अन्य कथा
प्रसंगों का किस कौशल के साथ उपयोग किया है-

मण धै परस हरि रे चरण ।
सुमग सीतल कंवल कोमल, जगत ज्वाला हरण ।
हण चरण प्रह्लाद परस्यां इन्द्र पदवी धरण ।
हण चरण ध्रुव ऋत करस्यां सरण असरण सरण ।
हण चरण ब्रह्मांड भट्ट्यां, नखसिंहां सिरी मरण ।

१- वही पृ० १२६

२- भक्तमाला (मक्ति सुधास्वाद तिलक) पृ० ७२१, २२

इण चरण कालियां नाथ्यां, गोपलीला करण ।
इण चरण गौबरधन धार्यां गरव मध्या हरण ।
दासि मोरों लाल गिरिधर, जग वारण तरण ।^१

लालकदास- (विक्रमीय १६ वीं शती का पूर्वार्ध)

यद्यपि लालकदास एक कृष्ण भक्त कवि के रूप में कोई विशेष उल्लेखनीय व्यक्ति नहीं है। तथापि हमारे जलोच्यकाल में प्रसिद्ध बृष्टदासी कवियों के समकालीन होने के कारण और उन्हीं के समान श्री-मद्भागवत की कृष्ण लीला का गान करने के कारण महत्वपूर्ण हैं। लालकदास का महत्व एक अन्य कारण से भी है। उन्होंने कृष्ण चरित ब्रजभाषा में न लिखकर अवधी भाषा में लिखा है। इनके दो ग्रंथ उपलब्ध हैं- १- हरि चरित और २- "भागवत दशम स्कन्ध भाषा" जो क्रमशः सं० १५८५ और सं० १५८७ में लिखे गए थे। फ्रांसीसी पंडित गासों व तासी ने लालकदास के ग्रंथ "भागवत दशम स्कन्ध भाषा" का उल्लेख किया है और फ्रेंच भाषा में उसका अनुवाद होने की भी चर्चा की है। निम्नांकित चीपाई से कवि के नाम, निवास स्थान और ग्रंथ रचना काल का पता भी लगता है-

पंद्रह सौ सवासी बहिया । समय बिलंबित बरनों तहिया ।
मास जसाद कथा अनुसारो । हरिवासर रजनी उजियारी ।
सकल संत कहं नावों माथा । बलि बलि जै हों जादवनाथा ।
राय बरेली बरनि ज्वासा । लालक राम नाम के जसा ॥^२

नरौचमदास-(स्थितिकाल वि० सं० १६०२) भक्तिभावना एवं कथा वस्तु-

अत्यन्त लोकप्रिय सप्पकाव्य "सुदामाचरित" के यशस्वी लेखक

- १- मीरा बाई की पदावली (सं० परशुराम चतुर्वेदी पृ० १०१
- २- हिन्दी साहित्य का इतिहास ४ (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल) पृ० १६८
- ३- वही पृ० १६८

श्री नरोत्तमदास का प्रधान उपजीव्य श्रीमद्भागवत ही है जैसा कि उनके काव्य की अन्तश्चेतना एवं बाह्य कथावस्तु से विदित होता है कवि ने यह कथा श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध अध्याय ८० एवं ८१ से ली है। यद्यपि कवि ने अपनी सहज प्रतिभा एवं कवि के सहज अधिकार कल्पना का पूर्ण प्रदर्शन किया है, तथापि एक मावुक भक्त और भगवान् के ऐश्वर्य चित्रण में कवि का बादर्श श्रीमद्भागवत ही ज्ञात होता है। विरक्त भाव से एक मात्र भावद् भजन करना ही नरोत्तमदास को श्रेयस्कर लगा है। श्रीमद्भागवत की अन्तश्चेतना को नरोत्तमदास ने कितनी गहराई से आत्मसात् किया था इसका प्रमाण यह है कि भक्ति मार्ग पर चलने वाले और भगवदनुग्रह कामी व्यक्ति के लिए जिस दैन्य और निश्चिन्तता की अनिवार्य आवश्यकता का विधान श्रीमद्भागवत में किया गया है, नरोत्तमदास ने सुदामा जैसे निश्चिन्त और दीन (किन्तु लोक समझ नहीं केवल अपने इष्टदेव के समझ ही दीन व भक्त पात्र के चक्षु से स्पष्ट कर दिया है। सुदामा से कहलवा भी दिया है कि भगवान् की भक्ति प्रदायिनी दीनता मुझे प्रिय है और दुःख की प्रसुता भी जो भगवत्प्रेम में सहायक न हो भरे किसी काम की नहीं -

दीन दयाल को ऐसोई दार है दीनन की सुधि लेत सदाई ।
 द्रौपदि तैं गज तैं, प्रह्लाद तैं जानिपरी न विलम्ब लगाई ।
 याही तैं भावति मो मन दीनता जो निवहै निबही जस वाई ।
 जो ब्रजराज सौं प्रीति नहीं, केहि काहु सुरसहु कीठकुराई ॥ ३

भगवान् की भक्तानुग्रह कातरता-

श्रीमद्भागवत में अनेक स्थलों पर भगवान् की भक्तानुग्रहका-

१- कह्यो सुदामा वाम सुनु वृथा और सब योग।

सत्य भजन भगवान् को, धर्म सहित जप जोग । सुदामाचरित सं० प्रेमनारायण टंडन पृ० २१

२- तू न भ भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः ।

ये नीतो दशमैतां निर्विदग्धात्मनः प्लवः ॥ श्रीमद् ११। २३। २४

३- सुदामाचरित पृ० २४

दिगम्भी कृति और धनी, गर्विष्ठ एवं स्वबलमग्न व्यक्ति के प्रति उदासीनता का परिचय प्रिलता है। भगवान् के इस स्वभाव को नरोत्तमदास ने पहचान लिया है। ~~सकलनि के वैदुष्ट धाम में प्रवेश पाने के श्रीमद्भागवत के उत्त विष्णु पार्णवजय विजय के रोकने पर भी सकादि के वैदुष्ट धाम में प्रवेश पाने के श्रीमद्भागवत के उस प्रसंग से इस परिस्थिति को मिलाकर-~~

भूले से भूप जैनक सैर रही ,

ठाढ़े रहौ तिमि चक्कै भारी ।

देव गंधर्व रु किन्नर जच्छ से, रोकै ते लोकन के अधिकारी ।

अन्तरजामी वे बापुहीं जानि हैं, मानो यह सिल बाबु हमारी ।

हारका नाथ के द्वार गर सबैतें पहले सुधि लैहं तिहारी ॥ २

श्रीमद्भागवत के स्त्री जय-विजय पतन के प्रसंग में भगवान् की विप्र^१का^२ प्रियता और उनके द्वारा ब्राह्मणों की पूजनीयता का कथन है। नरोत्तमदास का कथन उससे संपुष्ट हुआ है-

क- विप्र के भगत हरि, विदित जगत बन्धु ,

सैत सबही को सुधि सै महादानि हैं ॥ ४

स- जिनके चरन को सलिल हरत जगत संताप ।

पाय सुदामा विप्र के घोवत ते हरि बाप ॥ ५

१- श्रीमद्भागवत तृतीय स्कन्ध अध्याय १५, १६

२- सुदामाचरित पृ० २३

३- तद् : प्रसादयाम्यद्य ब्रह्म दैव परं हि मे ।

तद्धीत्यात्म कृतं मन्ये यत्स्वपुमिरसूतृताः ॥ श्रीमद् ० ३।१६।४

४- सुदामाचरित पृ० २४

५- वही पृ० २७

ग- मामिनी देहुं द्विजै सबलोक तजौ हठ भरि यह मन भाई ।
 लोक चतुर्दश की सुख संपति लागति विप्र बिना दुखदाई ।
 जाय बसौं उनके गृह में करिहौं द्विजदम्पति की सेवकाई ।
 तो मन माहि रुचै न रुचै सो रुचै हमकों वह ठौर सदाई ॥ १

द्वारकाधीश कृष्ण-

नरोत्तमदास ने ण्डेश्वर्य सम्पन्न वैकुण्ठाधिपति चतुर्भुज विष्णु को ही अपने काव्य में द्वारकाधीश कृष्ण के रूप में देखा है। श्री-मद्भागवत में जय विजय कथा के प्रसंग में विष्णु के जिस लोक मनोरम साकार विग्रह और उनके परमेश्वर्य सम्पन्न वैकुण्ठ धाम का चित्रण है, वही पूर्णतया नरोत्तम दास के द्वारकाधीश कृष्ण के स्वरूप एवं वैभव चित्रण का प्रेरणा स्रोत है-

कृष्ण का चतुर्भुज स्वरूप

लोचन कमल दुखमोचन तिलक माल
 ब्रवननि कुण्डल मुकुट धीर माथ हैं ।
 बीढ़ पीत वसन गेर में बैजयन्तीमाल ,
 संल चक्र गदा वीर पद्म लिर हाथ हैं ॥
 कहत नरोत्तम संदीपन गुरु के पास
 तुम ही कहत हम पढ़े स्क साथ हैं ।
 द्वारका के गर हरि दारिद हरेग पिय,
 द्वारका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं ॥ २

द्वारकाधीश का वैभव-

विष्णु का व्यापी वैकुण्ठ पृथ्वी पर द्वारका के रूप में

१- सुदामाचरित पृ० १५

२- " २२

अवतरित हुआ है-

दाहिने वेद पढ़ें चतुरानन सामुहें ध्यान मोहस धर्यो है।
बारं दुहो कर जोरि सुखक देवन साथ सुरस सूर्यो है ।
सोईक बीच जैनक लिए धन पायन जाइ कुबेर परयो है।
देसि बिभौ अपनी सपनी बपुरो वह बाम्हन चौकि पर्यो है ॥ १

उक्त उद्धरणों में श्रीमद्भागवत के निम्नांकित श्लोकों की भाव राशि का प्रतिबिम्ब फलक रहा है -

विष्णु विग्रह-

प्रसन्न वदनार्मोर्ज फल्गुमार्गुणेक्षणात् ।
नीलोत्पललश्यामं शंसकङ्कगदाघरम् ॥
लसत्पङ्कजं विजलक पीत कोशिय वाससम् ।
श्रीवत्सवदासं भ्राजत्कौस्तुभामुक्त कन्धरम् ॥
मत्तद्विरेफं कलया परीतं वनमालया ।
पराध्यहारवलय किरीटाङ्गद नूपुरम् ॥ २

वैकुण्ठ धाम-

त एवदा भगवतो वैकुण्ठस्यामलात्मनः ।
यस्यैवैकुण्ठनित्यं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥
यत्र नैत्रैयसं नाम वनं कामदुग्धदुमैः ।
सर्वर्तु श्रीमिर्विभ्राजत्येवत्यम्बिमूर्तिमत् ॥ ३

१- सुदामाचरित पृ० ३१

२- श्रीमद्भागवत ३। २५। १३-१५

३- वही

३- वही ३। १५। १३-१६

वैमानिकाः सलनाश्चरितानि यत्र
गायन्ति लोकात्मक दापणानि मर्तुः ।
वन्तर्जले नु विकसन्मधु माधवीनां
गन्धैः सण्डितधियोऽप्यनिलं दापन्तः ॥ १

टारका-

श्रीमद्भागवत में इसी प्रकार का वर्णन टारका के लिए भी
हुआ है- जिसके आधार पर श्री नरोत्तमदास ने लिखा है-

दीठि चकाचींधि गई देखत सुवर्न मई,
एक में सरसरस टारका के मोन है ॥ ० ३

इस प्रकार उक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट हो जाता
है कि भक्त कवि नरोत्तम दास अपनी वन्तःसाधना और बाह्य योजना
दोनों के लिए श्रीमद्भागवत की आदर्श रूप में ग्रहण करते हैं।

राठोड़राज प्रिथीराज-(पृथ्वीराज)(वि०सं० १६०६-१६५७)

"वैली क्रिस्तन रुक्मणी री" ऐसी माधुर्य भक्ति रस
मयी अमर कृति के रचयिता भक्त कविर पृथ्वी राज राठोड़ अकबर के
सम्मानित सामन्त थे। अकबर के सान्निध्य में रहते हुए भी उन्होंने मला-
राणा प्रताप को उसके विरुद्ध निरन्तर स्वातंत्र्य संग्राम जारी रखने के
लिए प्रोत्साहित किया था। उनके व्यक्तित्व में एक देश भक्त वीर सैनिक,
भगवद्भक्त और विद्वान् का अद्भुत सामंजस्य था। भक्त प्रवर नामा-
दास जी ने उनकी काव्य निपुणता विद्वत्ता आदि गुणों का उत्सव करते
हुए श्रेष्ठ भक्तों में इनकी गणना की है। वैली क्रिस्तन रुक्मणी री
(रचना काल सं० १६३७) कुछ हिंगल गीत और व्रजभाषा की कुछ

५- राठोड़ (महर्षि सुधास्वद निबन्ध)
४०७९९

१- वही पु० ३।१५।१७
२- वही १०।१०, ५०-५७

३- सुवामाचरित पु० २६

४- वैली क्रिस्तन रुक्मणी री- ६० टार (समर्थित एवं ५० पूर्वकरण पारिक पु० ७०२)

कविताओं के अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाएं भी बताई जाती हैं, जो केवल श्रुति गोचर हुई हैं, दृष्टिगोचर नहीं। किन्तु यदि महाराज पृथ्वीराज 'वेलि' के अतिरिक्त और कुछ भी न लिखते तो भी वे एक अमर भक्त कवि के रूप में याद किए जाते। श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध अध्याय ५२, ५३, ५४ और ५५ की कथा पर आधारित उनकी यह कृति हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य का गौरव है।

श्रीमद्भागवत और वेलि क्रिसन रुक्मणी री-

कवि ने स्वयं अपने काव्य का आधार श्रीमद्भागवत को स्वीकार किया है-

वल्ली तसु बीज भागवत वायी ,

महिषाणां पृथुदास मुस ।

मूल ताल जड़ वरथ मण्डहे,

पुथिर करणि चढि झाँह सुस ॥ १ २

(क्योंकि इस 'वेलि' क्रिसन रुक्मणी री 'रूपिणी लता का बीज श्रीमद्भागवत है। वह बीज भक्त पृथ्वीराज के मांस रूपी पृथ्वी के थाले (बालबाल) में बोया गया है। इसके दोहलों का मूल पाठ और उनके गाने की ताल इसको जड़े हैं और उन दोहलों के अर्थ रूपी सुदृढ़ मण्डप पर प्राणियों को सुख छाया देने के लिए यह वल्लरी चढ़कर फैल गई है।) इसमें कोई सन्देह नहीं कि पृथ्वीराज ने 'वेलि' में अपनी सहज काव्य प्रतिभा और तज्जन्य मनोरम कल्पना का स्वच्छन्द उपयोग किया है, तथापि श्रीमद्भागवत की मधुर भक्ति भावना और मूल कथा का अनुसरण

१-लोके क्रिसन रुक्मणी री (सं. ६०. ११३६) एवं सूरकिण पाठिक) मू० ८०२
२-श्रीमद्भागवत सं. १०. ११३६

२- वेलि क्रिसन रुक्मणी री दोहला २१ (बिल मूल भाग) हिन्दु-
स्तानी स्टेडीमी स्लाहाबाद

उन्होंने बड़ी ही श्रद्धा से किया है। कापि पृथ्वीराज ने रुक्मिणी द्वारा ब्राह्मण के हाथ एक पत्र भिजवाया है, और श्रीमद्भागवत में मौलिक संदेश की चर्चा है तथापि पृथ्वीराज ने रुक्मिणी से पत्र में लिखावही वही बात है। पत्र मात्र की कल्पना से श्रीमद्भागवत के आधार की अस्वीकृति नहीं होती। स्वयं कवि को भी वह अभीष्ट नहीं है। वह तो रुक्मिणी के शृंगार सज्जा प्रसंग में बड़े ही श्रद्धा गद्गद् स्वर में श्रीमद्भागवत का श्लिष्टार्थ से उल्लेख करता है-

नासा अग्नि मुतास्त निहसति ।

मजति किं सुखं मुलं भागवत ॥ ^१

कथा सूत्र का अनुसरण-

वेलि-

वदित्वा दिसि देव विदमति दीपति पुर दीपति अति कुंदणामुर ।

राजति एकं भीष्मक राजा सिरहर अहिनर असुर सुर ॥

पंचपुत्र ताह कठी सुधुत्री कुंजर रुक्म कहि विमलकथ ।

रुक्मबाहु अने रुक्माली, रुक्मकैस ने रुक्म रथ ॥ ^२

श्रीमद्भागवत-

राजासीदभीष्मकोनाम विवर्माधिपतिर्महान् ।

तस्य पंचामवन्पुत्राः कन्यैका च वरानता ॥

रुक्मन्वज्रो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तरः ।

रुक्मकैशो रुक्ममाली रुक्मिण्यैर्वा स्वसासती ॥ ^३

पृथ्वीराज ने श्रीमद्भागवत के आधार पर रुक्मिणी को लक्ष्मी का अव-

१-वेलि क्रिस्व रुक्मिणी री वही दोहला ६८

२- वही दोहला १०, ११

३- श्रीमद्भागवत १०।५२।२१-२२

तार जाना है- "रामाञ्जितार नाम ताह रुक्मिणी" पद का आधार श्रीमद्भागवत का यह श्लोक है-

भगवानपि गोविन्द उपेयै कुरुह ।

वैदर्भी मीष्मक सुतां श्रियो मात्रां स्वयंवर ॥ २

रुक्मिणी को गुण ब्रवण से श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग होगया और कृष्ण गुणों का ध्यानकर श्रेष्ठ वर प्राप्ति की इच्छा प्रबल होगई जिसके लिए उन्होंने हर गौरी का वंदन किया-

वेलि- सांभलि अनुराग थयो मन स्यामा वर प्रापति वंछती वर ।

हरि गुण मणि कपनी जिहा हर^ह तिणि वन्दे गवरि हर ॥ ३

श्रीमद्भागवत-

सोफुल्य मुकुन्दस्य रूपवीर्य गुणश्रियः ।

गृहागतैर्गोयमानास्तं मेन सदृशं केके पतिम् ॥ ४

इस प्रकार पृथ्वीराज द्वारा श्रीमद्भागवत के कथा सूत्र का अनुसरण किया गया है। विस्तार मय से इन अधिक उदाहरण देने में असमर्थ हैं।

भाव ग्रहण-

कवि ने अपने काव्य में श्रीमद्भागवत के कुछ सुन्दर भावों को ग्रहण किया है और अपनी प्रतिभा से उनको विस्तार एवं रंजकता प्रदान की है। रुक्मिणी ने कृष्ण के पास जो सदिश भेजा है उसमें कहा गया है -

१- वेलि दोहला १२

२- श्रीमद्भागवत १०।५२।१६

३- वेलि दोहला २६

४- श्रीमद् १०।५२-२३

बलि बन्धन मुक्त स्यात् सिंह बलि प्राप्ते जो बीजौ परणै॥

कपिल धेनु दिन पात्र कसाई तुलसी करि चाँडाल तणै ॥ १

अर्थात् ११ हे बलि बन्धन । (विष्णु, कृष्ण) मुक्तसे यदि कोई बन्ध
पुरुष विवाह कर लेगा तो यों समझना चाहिए कि सिंह की बलि को
सियार मदाण करेगा, कपिला गौ कसाई जैसे (१२) पात्र को दी जासी
और तुलसी चाँडाल के हाथ में होगी । ११ इन भावों का विशदीकरण
श्रीमद्भागवत के निम्नलिखित श्लोक के ७० आधार पर हुआ है-

तन्मै भवान्ब्रह्म वृतः पतिरंग जायामात्मार्षितश्च भवतीऽत्र विभोविधेहि ।

ना वीरभागमभिर्भक्तुं केन जाराद् गोमायुस्त्र्यम्बकैर्वसिष्ठममुजादा ॥ २

मुण्डिनपुर वासियों ने श्रीकृष्ण को देखकर परस्पर
कहा सुना था कि ११ कहा ! लो रुक्मिणी का वर आगया । जब
दूसरे राजाओं को रुक्मिणी की इच्छा नहीं करती चाहिए - ११

बसुदेव कुमार तणौ मुख कीसै सुणै सुणै जण बाप पर ।

जो रुक्मिणी तणै वर जायो हर म करौ बनि दायहर ॥ ३

तुलनीय-

कृष्णमागतमाकर्ष्य विदर्भपुर वासिनः ।

जागत्य नेत्राजलिभिः प्रपुस्तन्मुखं पञ्चजम् ।

वस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा ।

वसवप्यमकात्मा भैरव्याः समुचितः पतिः ॥ ४

१- बेलि दोहला ५६

२- श्रीमद् १०।५२।३६

३- बेलि दोहला ७७

४- श्रीमद्भागवत १०।५३, ३६, ३७

भक्ति भावना-

कविवर पृथ्वीराज श्रीमद्भागवत की भक्ति भावना में बापाव मस्तक निमग्न हैं। उनके वाराध्य समग्र ऐश्वर्यों के एक मात्र निधान द्वारकाधीश कृष्ण हैं। कहते हैं कि अपनी वेलि को लिखकर कवि उसे द्वारका-धीश के चरणों में समर्पित करने की इच्छा से द्वारका के लिए चल पड़ा था, किन्तु द्वारकाधीश ने उनके पहुँचने से पहले ही उन्हें दर्शन देकर तथा उनके मुख से "वेलि" का अवणन करके कृतार्थ कर दिया। वेलि में रुक्मिणी के मित्र से श्रीमद्भागवत सम्मत स्तुति रूप में उनकी ही भक्ति भावना इन शब्दों में सुहर हो उठी है-

हरि हर वराह हर हरिणाकस, हूँ ऊधरी पाताल हूँ ।
 कहाँ तई करुणामैके सब , सीख दीध किण तुम्हां सँ ॥
 बाणे सुर असुर नाग भैरव नहि, राखियाँ जई मंदर रहै ॥
 महण मयै मूँ सीध महमहण, तुम्हां किणो सीखव्या तई ॥
 रामा जवतारि बहै रणि रावण, किसी सीख करुणा करण ।
 हूँ ऊधरी त्रिभुटगढ़ हूँती, हरि बन्धे वेलाहरण ॥
 चौथीबा वार वाहर करि चत्र मुजा, संसकल धर गदा सरोज ।
 मुक्त करि किंसुँ कहीजै माहव , अन्तरजामी तूँ वालोज ॥ २

वर्थात् "हे हरि बापने वरहा रूप होकर हिरण्याक्ष को मारा और पृथ्वी रूप मेरा पाताल से उद्धार किया। हे करुणामय केशव । कहिए उस समय (मन्त्र रक्षा के निमित्त) बापको किसने सीख दी थी ? हे समुद्र मंथन । जब बापने देव दानवों को रक्त्र कर केण नाग को मंथन

१- वेलि० (सम्पा० ठा० रामसिंह जी एवं पं० सूर्यकरण पारीक) मूम्किा

पृ० २६, २७, २८

२- वेलि दोहला ६१-६४

रज्जू और मंदराचल को मथन दण्ड बनाकर महागर्ज को मथकर (लक्ष्मी के रूप में) मुक्ति प्राप्त किया था, उस समय आपको किसी सीस दी थी ? हे करुणाकर ! रामावतार में समुद्र पर सेतुबन्ध करके, रण में रावण का वध करके त्रिवृट् गढ़ (लंका) से जो (सीता रूप में) आपने भरा उद्धार किया था वह कौनसी शिक्षा थी ? हे ! शंस चक्र गदा फलधारी चतुर्भुज प्रभो ! अब यह चौथा अवसर है जबकि आपको रक्षा के लिए सन्नद्ध होना है। हे माधव ! तुम अन्तर्यामी से मन के भाव मुख से कैसे कहें ? (क्या यह हास्यास्पद बात नहीं है ?) स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत की अनेक स्तुतियों में अिनका उल्लेख चतुर्थ अध्याय में किया जा चुका है, इस प्रकार की मक्ति भावना विद्यमान है।

कृष्ण का पर ब्रह्मत्व-

मन्त्र पृथ्वी राज कृष्ण को माया मनुष्य रूपधारी अवतारी सगुण ब्रह्म ही मानते हैं। कृष्ण के कुण्डिन पुर पहुँचने पर वहाँ के लोगों ने छि उन्हें जिन भिन्न भिन्न रूपों में देखा था उन रूपों की कल्पना उन्हें श्रीमद्भागवत के उस प्रसंग से मिली जान पड़ती है जिनमें श्रीकृष्ण के मथुरा पहुँचने पर कंस की रंग शाला में फटाफट करने का वर्णन है। यहाँ दोनों ग्रंथों के उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जायगा-

वेलि-

कामिनिणि कहि काम काल कहि केअणि० देखी, नारायण कहि अवर नर।

वेदारथ झु कहै वेदवत जोगतता जोगेस्वर ॥ १

अर्थात् - श्रीकृष्ण को देखकर कामिनियाँ तो कहती हैं कि ये कान्देव हैं। कई (सुजत) कहते हैं कि ये काल हैं। दूसरे लोग (मन्त्रजन) कहते हैं कि ये नारायण हैं। वेदवेत्ता मनीषीजन कहते हैं कि ये प्रत्यक्षा वेदार्थ ही हैं और योगेश्वर गण कहते हैं कि ये मूर्तिमान् योगतत्व ही हैं।

श्रीमद्भागवत-

मल्लानामशनि नृणां नखरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् ।
 गोपानां स्वजनोऽसतां क्षातिभृतां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।
 मृत्युभोजितेर्विराड् विदुषां तर्ल परं योगिनां
 वृष्णिनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः ॥ १

वेदो जितन रुक्मणी ही में इस प्रकार श्रीमद्भागवत के साथ अनेक तुलसीय स्थल विद्यमान हैं। जलमति विस्तरण ।

रसखान- (संवत् १६४०-१६८५ लगभग)-

जिन मुसलमान हरिजनों पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कोटि कोटि हिन्दुओं को निशाना करने की उमंग प्रकट की थी उनमें प्रेमीमवत रसखान भी सादर परिगणित हैं। रसखान का जो वृत्तान्त^१ दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता^२ में दिया हुआ है, उससे उनके पूर्वचरित के बारे में ज्ञात होता है कि वे एक निम्न स्तर के कामुक व्यक्ति थे किन्तु किसी वैष्णव के मार्मिक व्यंग्य से मगवदुन्मुख हो गए थे। फिर गोस्वामी विद्वत्लनाथ जी^३ के कृपा पात्र शिष्य भी हो गए। किन्तु रसखान ने जो प्रेमी हृदय पाया था

१- श्रीमद् १०।४३।१७

२- कविता कौमुदी- सं० ५० रामनरेश त्रिपाठी पहला भाग पृ० ३१६

३- जलीखान पाठान सुता सह ब्रज रसखारे ।

सेल नबी रसखान मीर बहमद हरिष्यारे ।

निरमल दास कबीर राजसां बेगम बारी ।

तानसेन कृष्णदास बिजानुर नृपति दुलारी ॥

पिरजादी बीबी रास्तो फरज नित ७ सिर धारिए ।

इन मुसलमान हरिजनन पे कोटिन हिंदुन वारिए ॥

उद्धृत : भारतेन्दु कृत उत्तरार्द्ध भक्त से रसखान और चतानन्द पृ० ५ पर

४- दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता पृ०

वह किसी सम्प्रदाय विशेष के बन्धन में रह ही नहीं सकता था। उस हृदय को जिसमें इस्क मिजाजी - लौकिक प्रेम - लबालब भरा था, इस्क हकीकी - भगवत्प्रेम की ओर सदा के लिए मोड़ देने वाली शक्ति थी- श्रीमद्भागवत। एक दिन जब ये श्रीमद्भागवत का फ़ारसी अनुवाद पढ़ रहे थे तो उसमें कृष्ण के प्रति गोपियों के अनन्य और अलौकिक प्रेम प्रसंग को देखकर कुछ ऐसे मन्त्रित विह्वल हो गए कि अपनी लौकिक प्रेयसी को सदा के लिए तिलांजलि देकर वृन्दावन आ गए। तब से श्रीमद्भागवत की प्रेमाभक्ति इनका प्राण स्पन्दन बन गई। श्रीमद्भागवत में गोप शिशुओं को जिस सत्य मन्त्रित का वर्णन है, वह भी रसज्ञान को प्रिय है। किन्तु रसज्ञान को प्रियतर है गोपियों की माधुर्य मन्त्रित। वहीं रसज्ञान अपने सच्चे रूप में दिखाई देते हैं। जाकर रसज्ञान के काव्य में कुछ भागवतीय तत्वों का अनुसंधान करें-

प्रेमाभक्ति-

रसज्ञान ने अपने एक लघु काव्य ग्रंथ "प्रेम वाटिका" में प्रेम तत्व का जो पारमार्थिक रूप स्पष्ट किया है, वह बहुत कुछ श्रीमद्भागवत की ही प्रेमाभक्ति है-

लोक वेद मरजाद सब, लाज काज सदैह ।
देव बहाए प्रेम करि, बिधि निषेध को भेह ।
भले वृथा करि पचि मरौ, ज्ञान गहर बढ़ाय ।
बिना प्रेम फीकी सबै, कोटिन किर उपाय ॥
बेहि बिनु जाने कहु नहीं, जान्यौ जात बिसेस ।

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास- (पं० रामचन्द्र शुक्ल) पृ० १६१

२- बिल्ली नगर निवास बादसा बंस विमाकर ।

चित्र देखि मन हरी मरो फन प्रेम सुधाकर ।

उद्धृत : श्रीराधाचरण गोस्वामी कृत नवमन्त्रमाला से "रसज्ञान और ध्यानानन्द" पृ० ५ पर

सोई प्रेम जेहि जानिकें, रहि न जात कहु सैस ।
 ज्ञान ध्यान विषामती, मत विस्वास विवेक ॥
 बिना प्रेम सब धूर है, जग जग एक जनैक ।
 जेहि पार बैकुंठ बरु हरिहूँ की नहिं चाहि ।
 सोइ जलौकि सुद सुम सरस पुप्रेम कहाहि ॥ १

तुलनीय-

न किंचित्साध्वो घोरा भवताह्येकान्तिनी मम ।
 वाङ्मन्यपि मया दत्तं केवल्यमपुनर्ममम् ॥ २ इत्यादि ।

गोपी प्रेम की स्वश्रेष्ठता -

भवत प्रवर रसज्ञान का मत है कि यामि नन्द यशोदा
 वादि वात्सल्य भक्ति के पथिक और गोप बालकादि सख्यभक्ति के पथिक
 धन्य हैं, किन्तु जनन्य प्रेमाभक्ति (माधुर्य भक्ति) की सरणि पर चलने
 वाली गोपांगनाएं अद्वितीय हैं। उनकी कृपा से प्रेमाभक्ति का बहू प्रसाद
 उद्धव को भी मिल गया था, पर जब क्या कोई छ दूखरा उसे पा लेगा ?-

जदपि जसोदा नंद बरु ग्वाल बाल सब धन्य ।
 पैया जग में प्रेम की, गोपी मई जन्य ।
 वा रस की कहु माधुरी, ऊँघौ लही सराहि ।
 पावै बहुरि मिठास अस, जन दूजो को बाहि ॥ ३

लीलागान-

रसज्ञान ने कृष्ण लीला के स्फुट प्रसंगों यथा माखन चोरी
 गोचारण, वेणुवादन आदि का वर्णन किया है। बाललीला का यह सवैया
 देखिए-

बाल लीला-

धूर भरे बति सोमित स्याम जू तैसी बनी सिर सुन्दर चौटी ।
 खेलत सात फिरें जंगना पग पैजती बाजती पीरी कछोटी ॥

- १- रसज्ञान और घनानन्द (संकलनकर्ता स्वभावू० बनीरसिंह) पृ० १२-१४
 २- श्रीमद० १।२०।३४
 ३- रसज्ञान और घनानन्द पृ० १४

वा इवि को रसखानि विलोकत वारत काम कला निज कौटी ।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सी लै गयो माखन रौटी ॥ १

रासलीला-

राधामाध्व सखिन संग, बिहरत कुंज कुटीर ।
रसिक राज रसखानि जह कूजत कौइल कीर ॥ २

कुवलयपीडवध-

कंस के क्रोध की फल गई जबहीं ब्रजमंडल बनिव पुकार सी ।
बाइ गए तब हीं ककुनी कसि कै नट नागर नंद कुमार सी ।
देख को रद रेंचि लियो रसखानि छै मन बाइ सिवार सी ।
लागी कुठौर लई लखि तौर कलंक तमाल तें कोरत डार सी ॥ ३३

रूप माधुरी-

कृष्ण की रूप माधुरी का वर्णन रसखान का सबसे
प्रिय विषय है। उनकी रचनाओं से इसकी प्रधानता है। केवल एक
उदाहरण देखिए-

काननक कुण्डल मौर पखा डर पै बनाल बिराजति है।
मुरली कर में अधरामुस्कानि, तरंग महाइवि छाजति है ॥
रसखानि लखै तब पीत पटा, सत वामिनि की दुति लाजति है।
वह बांसुरी की धुनि कान पर, कुल कानि हियो तजि भाजति है ॥ ४

श्रीकृष्ण का परब्रह्मत्व-

रसखान श्रीमद्भागवत के मतानुसार श्रीकृष्ण को परब्रह्म

१- रसखान और चनानन्द पृ० २०

२- वही १६

३- ४०

४- २२

परमेश्वर मानते हैं। निम्नलिखित वसि प्रसिद्ध स्तव्यों से यह प्रमाणित है-

शेस गनेस महेस दिनेस गुरेसहु जाहि निरंतर गावैं ।
 जाहि अनादि अनन्त असण्ड अक्षेद अमद सुबेद बतावैं ॥
 नारद हू से हू व्यास रटें पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं ।
 ताहि अहीर की बौहरियां ब्रह्मिया मरि ब्राह्म पे नाच नचावैं ॥ १
 ब्रह्म में ब्रह्मयो पुरानन गानन, वेद रिचा सुनि चौगुने चायन ।
 वैद्यो सुन्यो कबहुं न किंतु, वह कैसे सत्प को कैसे सुभायन ।
 टेस्त हेस्त हारि पुर्यो रसखानि, बतायो न लोग सुगायन ।
 वैद्यो दुर्गो वह बुंज बुटोर में वैद्यो फलोटत राधिका पायन ॥ २

गोपी प्रेम-

मकतवर रसखान गोपी प्रेम के ती मूर्तिमान् स्वप्न हैं।
 उनको समस्त रचना में सर्वत्र गोपी प्रेम ही मुखरित और ध्वनित हो
 रहा है। गोपियों की रूपासक्ति, तन्मयातासक्ति और परमविरहा-
 सक्ति के माव विशिष्ट शक्तिमत्ता के साथ प्रकट हुए हैं, कतिपय उदाहरण
 लीजिए-

रूपासक्ति-

जा दिन ते निरख्यो नंद नंदन कानित जो घर बन्धन बूदयो ।
 चारु बिलोकनि की निसिमार सखार गई मन मारने बूदयो ॥
 सागर को सरिता जिमि घावत रौकि रहै कुलवी फुल दूदयो ।
 मल भयो मन संग फिरै रसखानि सरूप सुधारस बूदयो ॥ ३

१- रसखान और मनानन्द पृ० २३

२- " २२

३- " २१

लोक की लाज तजी तबही जब देख्यो सखी ब्रज चंद सलोनी ।
 लंजन मीन सरोजन की हवि गंजन नैन लला दिन होनी ।
 रसलानि निहारि सके जु सम्हारि के को तिय है वह रस सुठोनी ।
 मोह कमान सों जौहन कों सब बेधत प्राननि नंद को झौनी ॥ १

तन्मयतासवित-

उनही के सनेहन सानी रहे, उनही के जु नेह दिवानी रहे ।
 उनही की सुनै न जो धन त्यों धन सों धन अनेकन ठानी रहे ॥
 उनही संग डोलन में रसलानि सब सुख सिंधु जपानी रहे ।
 उनही विन ज्यों जलहीन हैं मीन सी बांसि भरी अशुवानी रहे ॥ २

परमविरहासवित-

एक सुन्दर रूपक बाँधकर भागवतीय प्रमरगीत में व्यवत
 गोपियों की विरह भावना को कवि इस प्रकार प्रकट करता है-
 लाज के लेप चढ़ाह के रंग पची सब सीस को मंत्र सुनाइके ।
 गारुड हूँ ब्रजलोक थक्यो करि औणद बेसक सोंह दिवाइके ।
 ऊँघो सो को रसलानि कहें जिन विच धरो तुम हो उपाइके ।
 कारे छिन्न बिसारे को चाहें उतार्यो और विण बाबरे रास लगाइके ॥ ३

वेणु माधुरी-

श्रीकृष्ण के वंशीवादन का गोपियों पर जो मोहक प्रभाव
 पड़ा है, उसकी उद्भावना में रसलान को असाधारण सफलता मिली है,
 किन्तु उनके भावों में जो व्यंग्य और वद्विमा है उसका मूल प्रेरणास्रोत

१- रसलान और धनानन्द पृ० १६

२- वही पृ० २३

३- कौटिल्यसूत्र ० वही पृ० ३६

श्रीमद्भागवत है। वंशों के प्रति गोपियों का जो सापत्न्य भाव वहाँ व्यक्त हुआ है, उसी का विशदीकरण इन पदितियों में देखा जा सकता है—

कान्ह भर बस बांसुरी के जब कौन ससी हमको बहिए ।
 निच घोंस रहे संग साथ लगी, यह सौतिन तापन क्यों सहिए ।
 जिन मोहि लियो मनमोहन को रसखानि सदा हमको दहिए ।
 मिति बावो सबे सखि माजि बलैं बबतौ ब्रज में बांसुरी रहिए ॥ २

निष्कर्ष—

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जायगा कि सम्प्रदाय मुक्त कवियों के काव्य पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव पूर्वोक्त सम्प्रदाय वादी कवियों पर लक्षित होने वाले प्रभाव से कहीं अधिक सूक्ष्म और व्याप्त है। जहाँ पूर्वोक्त कवियों ने कृष्ण की लीला को ही (चाहे वह बालक लीला थी या मधुर किशोर लीला) अपना साध्य बनाया था, वहाँ सम्प्रदाय मुक्त कवियों ने अधिकतर उससे भी सूक्ष्मतर अनुभव रूप "कृष्ण प्रेम" को अपना ध्येय बनाया । इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत की विचार धारा को कहीं अधिक जोदार्य और समग्रता के साथ आत्मसात् किया है।

१- श्रीमद् १०।२१।६

२- रसखान और मनानन्द पृ० १८

उपसंहार

श्रीमद्भागवत एवं परवर्ती हिन्दी कृष्ण मन्त्र साहित्य

(पृ० ३६५ - ३६८)

उपसंहार

श्रीमद्भागवत एवं पार्वती हिन्दी भक्ति साहित्य

श्रीमद्भागवत के तत्व ज्ञान के आलोक में मध्ययुगीन कृष्ण भक्ति साहित्य को देखने के उपरान्त अन्त में पार्वती साहित्य पर इस ग्रंथ के प्रभाव का संक्षेप में उल्लेख करना असंगत न होगा।

जैसा कि पहले स्मृत किया जा चुका है। श्रीमद्भागवत का प्रभाव केवल मध्यकालीन भक्त कवियों तक ही सीमित नहीं है। रीतिकाल में भी निरन्तर एक भक्ति-धारा प्रवाहित रही जिसका उद्गम श्रीमद्भागवत था। सच तो यह है कि श्रीमद्भागवत पुराण के उदय से आज तक उसका प्रभाव अक्षुण्ण है और जब तक भगवद्भक्ति को एक श्रेष्ठ अध्यात्म साधना पद्धति माना जाता रहेगा, तब तक श्रीमद्भागवत का महत्व भी अक्षुण्ण रहेगा। सूरदास से लेकर आधुनिक युग के कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जगन्नाथ दास रत्नाकर, हरिवोध, सत्यनारायण कविरत्न और मैथिलीशरण गुप्त तक श्रीमद्भागवत के गोपी-प्रेम-वर्णन की परम्परा अक्षुण्ण रही है। रीतिकाल में श्रीमद्भागवत की प्रेम भावना दो रूपों में व्यक्त हुई। प्रथम रूप में तो वह भागवतीय भावना^{से} अविच्छिन्न शुद्ध ईश्वर भक्ति के रूप में ही दृष्टि-बोध होती है किन्तु दूसरे रूप में उसमें लौकिक प्रेम भावना के मिश्रित रूप में विकसित होकर अभिव्यक्ति प्राप्त की। भागवतीय कृष्ण लीला के अनेक विकसित रूप "दान लीला" आदि के नाम से सामने आये। १७ वीं शताब्दी के उपरान्त भी श्रीमद्भागवत पर आधारित विपुल भक्ति साहित्य की रचना होती रही। विभिन्न नामों से अनेकः श्रीमद्भागवत को ही हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किया गया। उदाहरणार्थ "जानन्तामुनिधि १" नाम से समस्त श्रीमद्भागवत की कथा को ही हरिवंश, महाभारत आदि के आख्यानों से उपबृंहित करके सं० १६११ वि० में रीवा नरेश महाराज रघुराज सिंह ने लिखा

१ था। लोज में प्राप्त अनेक हस्तलिखित ग्रंथ^२ श्रीमद्भागवत पर ही आधारित हैं। नीचे कुछ अप्रसिद्ध कवियों की रचनाओं की सूची दी जा रही है। जिन ग्रंथों का रचना काल अथवा लिफिकाल ज्ञात हो सका है उनका समय भी दे दिया गया है :-

ब० ब- भागवतोक्त उपाख्यानों द्वारा भक्ति के स्थापक- ग्रंथ

प्रह्लाद चरित (रचयिता- लोकीदास)
 प्रह्लाद चरित्र (,, लक्ष्मण) रचना काल सं० १६००
 धूमलीला (,, सुन्दर कवि) लिपि " १६२६
 धूम लीला (,, महादेव) लिफिकाल सं० १६५०
 भ्रम प्रबोध (धूम की वादसी भक्ति) (रचयिता-अज्ञात) लिफिकाल
 सं० १७८०

दश अवतार (रचयिता- अज्ञात)
 भगवानदसो अवतार (,, ,,)
 विष्णु पद (,, - देवादास)

बा- भागवतोक्त भक्ति एवं ज्ञान के स्थापक ग्रंथ

भक्ति पदार्थ (रचयिता- चरनदास)
 भक्ति सागर (रचयिता- चरनदास)
 ब्रह्म ज्ञान सागर (रचयिता - चरनदास)
 भ्रम बोध (भक्ति वर्णन) रचयिता- अज्ञात
 हृदय प्रकाश (आत्म विद्या तथा सृष्टि) रचयिता अज्ञात
 भ्रम दीपिका (रचयिता- अनन्य रसिक)
 ज्ञान सागर (रचयिता- अनन्य रसिक)

१- हस्तलिखित ग्रंथों का त्रयोदश वार्षिक विवरण (१६२६-२८) सं० डा०

हीरालाल (ना० प्र० समा काशी) पृ० ५३६

२- देखिए- नागरी प्रचारिणी समा की लोज रिपोर्ट सन् १६१२-१६ सन्

१६२३- २५ तथा सन् १६२६-२८

- नाम माहात्म्य (रचयिता- जनन्य रसिक)
 ब्रह्म निरूपण (रचयिता - जनन्य रसिक)
 प्रेम पञ्चीसी (रचयिता- जीव राज सिंह विद्युत)
 भक्ति प्रकाश (रचयिता - लोकी दास)
 भागवत गीतावली (रचयिता लोकीदास)
 गुरु महिमा (रचयिता- मुरली)

इ- भागवतोक्त कृष्ण लीलादि विशिष्ट तत्त्वों के व्यापक ग्रंथ

- कृष्णलीला (रचयिता- बलदेवा) रचनाकाल सं० १६०१
 कृष्ण श्रृङ्गा - (रच० कालिका चरन)
 नन्दोत्सव लीला (रच० स्यालीदास , मथुरा) रचनाकाल सं० १६२३
 संगीत गोवर्धन लीला (रच० कुंवरसिन कायस्थ- दिल्ली) रचनाकाल
 सं० १८६४
 नाग लीला (रच० चन्द कवि) रचनाकाल सं० १७७५
 कृष्ण जू को नल सित (रच० ग्वाल कवि)
 जमुना लहरी (रच० ग्वाल कवि)
 वृन्दावन सार (कृष्ण प्रेम लीला) रच० अज्ञात
 कालीदामन (रच० पं० रमानाथ)
 गिरधर जी की मुरली (रच० हरदास) रचनाकाल सं० १६२७
 गिरधर जी की मुरली (रच० हरदास) रचनाकाल सं० १६२७
 सरस- रास (रच० सुरति मित्र)
 रास- पंचाध्यायी - (रच० नागवि दास) लिपिकाल सं० १८४४
 रास मालिका (रच० रामवरन दास)
 गोपी पञ्चीसी (रच० ग्वाल कवि)
 प्रमद गीत (रच० सेवादास)

- गोपी विरह कन्दावली (रच० वैजनाथ) रचनाकाल सं० १६२४ वि०
 गोपी विरह महात्म (रच० दावाराज) लिपिकाल सं० १६४८
 कुबरी संग विहार बारामासी (रच० प्रेमसागर)
 ज्ञान गीता (कृष्ण उद्धव संवाद, गोपी प्रेम) रच० जयसुख
 रुक्मिणी विवाह (रच० - सेवादास)
 रुक्मिणी मंगल (रच० विष्णुदास) लिपिकाल सं० १६१६
~~सुदामा चरित्र (रच० महाराज दास) रचनाकाल सं० १६२६~~
 सुदामा चरित्र (रच० हलधर) रचना काल सं० १८००
 सुदामा चरित्र (रच० महाराज दास) रचनाकाल सं० १६१६
 उष्ण चरित्र (रच० परशुराम श्रे) लिपिकाल सं० १८७२

उपर्युक्त ग्रंथों का नामोल्लेख केवल विह्वल दर्शन के उद्देश्य से ही किया गया है। इनके अतिरिक्त सहस्रावधि ग्रंथ अन्वेषण में प्राप्त हुए हैं जिनका आधार श्रीमद्भागवत है। ऊपर की सूची को देखने से विदित होगा कि प्रबन्ध में वर्गीकृत भागवतीय सामान्य भक्ति तत्वों एवं विशिष्ट कृष्ण भक्ति तत्वों को लेकर परवर्ती काल में कितने विपुल साहित्य की सर्जना हुई है।

उदाहरण- ग्रंथ- सूची

संस्कृत

श्रीमद्भागवत महापुराण (अनुवादक श्री मुनिलाल) गीता प्रेस गोरखपुर,

प्रथम संस्करण- संवत् १९६७ वि० (प्रबन्ध में मूल

उद्धरण इसी संस्करण से दिए गये हैं)

श्रीमद्भागवतम् (सम्पादक- नित्य स्वरूप ब्रह्मचारी) वृन्दावन सं० १९६० वि०

बृहद्भागवतामृत (अनुवादक श्री ज्ञानानन्द गोस्वामी) प्रकाशक एवं प्रकाशन वर्ग

जज्ञात

समुद्भागवतामृत (श्री रूप गोस्वामी) प्रकाशक एवं प्रकाशन वर्ग जज्ञात

सर्वमूल संग्रह (श्रीमद्भगवान् के समस्त ग्रंथों का संग्रह) निर्णय सागर

बम्बई , १९१० ई०

महाभारत (गीता प्रेस गोरखपुर सं० १९५५ ई०)

हरिवंश पुराण (लेखक श्री दुर्गा लाल) प्रकाशन वर्ग जज्ञात

स्कन्दपुराण (वैद्येश्वर प्रेस बम्बई) १९६६ वि०

बृहन्नारदीय पुराण (एशियाटिक सोसाइटी वाव बंगाल) प्रकाशन वर्ग

जज्ञात ।

गीत गोविन्द (बात्माराम एण्ड संस दिल्ली) सं० १९५५ ई०

मेघदूत (सम्पा० लुशीत कुमार डे) साहित्य अकादमी दिल्ली- प्रथम

संस्करण १९५७ ई०

नारदमन्त्र सूत्र (गीता प्रेस गोरखपुर) १२ वां संस्करण सं० २००६ वि०

शाण्डिल्य मन्त्र सूत्र (गीता प्रेस गोरखपुर) प्र० संस्करण सं० २००६ वि०

पातञ्जल योगदर्शन (मूल) (गीता प्रेस गोरखपुर) १५ वां संस्करण सं० २००६ वि०

हरिमन्त्र स्तुति सिन्धु : (श्री रूप गोस्वामी) विद्या विज्ञान प्रेस काशी

प्रथम संस्करण १९८८ वि०

उज्ज्वलनील मणि (श्री रूप गोस्वामी) निर्णय सागर, बम्बई द्वितीय

संस्करण १९३२ ई०

मन्त्रिरत्नावली (स्वामी विष्णुपुरी) विष्णु ग्रंथमाला वृन्दावन सं० १९६४ वि०
नाट्य शास्त्र (भरत मुनि) (निर्णय सागर, बम्बई) द्वितीय संस्करण प्रकाशन
वर्णन ज्ञात ।

हिन्दी रस गंगाधर (काशी नागरी प्रचारिणी सभा०) व० प्र० वि०
प्रयाग सं० १९८६ वि०

कालीय : (व्याख्या सुधा समेत) निर्णय सागर बम्बई) तृतीय संस्करण
सं० १९४४ वि०

वग्नि पुराण (श्रीजी अनुवाद सम० सन० वास) प्रथम संस्करण प्रकाशन
वर्णन ज्ञात

वष्टाक पुराण वर्णन (ज्वाला प्रकाश मिश्र) प्रथम संस्करण प्रकाशन वर्णन
ज्ञात

नारदीय पुराण (संक्षिप्त) गीता प्रेस गोरखपुर सन् १९५४

मत्स्य पुराण (हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग) प्रथम संस्करण प्रकाशन
वर्णन ज्ञात

विष्णु पुराण (संक्षिप्त) गीता प्रेस गोरखपुर सन् १९५४ ई०

विदग्धमाधव (निर्णय सागर, बम्बई) सन् १९०३ ई०

पद्मवन्दन कोण (गणेशदास शास्त्री) सन् १९२५ ई०

जीहव ग्रंथ (श्री वल्लभाचार्य) मदनमोहन मुस्तफातय काशी द्वितीय संस्करण
सं० २०१२ वि०

वेद्याकरण सिद्धान्त कौमुदी (निर्णय सागर बम्बई) १८८७ ई०

मनुस्मृति (दूसरा अध्याय) गीता प्रेस गोरखपुर नवम संस्करण २००७ वि०

याज्ञवल्क्य स्मृति (बाबाराध्याय) (सम्पादक भीमसेन शर्मा) ब्रह्म प्रेस
हटावा चतुर्थ संस्करण १९५० ई०

निरुक्त

शान्दोग्य उपनिषद् (ईशाचण्डीचरणीयपनिषद् :) नि० सा० बम्बई १९१७ ई०

बृहदारण्यक उपनिषद् (ईशाचर शतपथब्रह्मसंहिता :) नि० सा० बम्बई
१९१७ ई०

सप्तम ब्राह्मण (रायल एशियाटिक सोसायटी , बंगाल) सन् १९०३

कौशिक (सम्पा० टी० गणपति शास्त्री) त्रिचन्द्रम १९२१ ई०

वात्सलायन गृह्यसूत्र

ईशावास्योपनिषद् (ईशाचर शतपथब्रह्मसंहिता :) नि० सा० बम्बई
१९१७ ई०

पद्म पुराण

कूर्म पुराण (सम्पादक नीलमणि मुहोपाध्याय) कलकत्ता १८९० ई०

बृहत्सूत्र रत्नाकर (वैदिकेश्वर प्रेस बम्बई) सन् १९५३ वि०

श्री दुर्गा सप्तशती (गीता प्रेस गोरखपुर) प्रथम संस्करण सं० २००६ वि०

ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्यम् (निर्णय सागर प्रेस बम्बई) द्वि० संस्करण १९२७ ई०

श्रीमद्ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम् (वत्सभाचार्यः) निर्णय सागर, बम्बई सं० १९६२ वि०

पारस्कर गृह्यसूत्र (सम्पा० महादेव शर्मा) बम्बई सन् १९१०

श्रीभाष्यम् (श्रीरामानुजाचार्य) एशियाटिक सोसायटी बंगाल १८८८ ई०

वेदान्त पारिजात सौरभ (श्रीब्रह्मसूत्र भाष्य-निर्वाहक कृत) सम्पा० नित्य

स्वरूप ब्रह्मवारी बुन्देलखण्ड सं० १९६२ वि०

हिन्दी

सूर सागर (नागरी प्रचारिणी सभा काशी) दु० संस्क० सं० २०१५ वि०

नन्ददास ग्रंथावली (सम्पा० श्री ब्रजरत्नदास) ना० प्र० सभा काशी- प्र०

संस्करण २००६ वि०

रास पंचाध्यायी प्रमर गीत (नन्ददास) (सं० डा० राम संकर शुक्ल रसाल)

भारतीय निवेदन स्ताहावाद

गोविन्दस्वामी (सम्पादक गो० ब्रजभूषण शर्मा) विद्या विभाग काँकरोली

प्र० सं० २००८ वि०

ज्ञोत स्वामी (सम्पा० श्री० श्री ब्रजभूषण शर्मा) विद्या विभाग काँकरोली

प्रथम संस्करण २०१२ वि०

वष्टहाप परिचय (श्री प्रमुदबाल मीतल) अग्रवाल प्रेस मथुरा दि० संस्क०

सं० २००६ वि०

वष्टहाप और वल्लभ सम्प्रदाय (श्री डा० दीन दयालु गुप्त) प्र० सं० २००४ वि०

वष्टहाप (सं० १६६७ की वार्ता और भाव प्रकाश) सम्पा० कंठमणि शास्त्री

काँकरोली द्वितीय संस्क० सं० २००६ वि०

वष्टसत्तन की वार्ता (सम्पा० श्री द्वारकादास परीत) अग्रवाल प्रेस मथुरा,

प्रथम संस्करण सं० २००७ वि०

मवतनाल (मवित सुधा स्वादि तिलक) (जेजुबहार बुक डिपो सलनऊ)

तृतीय संस्करण सन् १९५१ ई०

विद्यापति की पदावली (संकलित श्री राम वृद्ध बेनीपुरी) पुस्तक मण्डार

पटना , द्वितीय संस्करण

मीरा बाई की पदावली (सम्पा० श्री पशुराम कर्तुर्वेदी) हिन्दी साहित्य

सम्मेलन प्रयाग सप्तम संस्करण सं० २०१४ वि०

रसतान और पनानन्द (संकलनकर्ता स्व० बा० बमीर सिंह) इण्डियन प्रेस

प्रयाग प्रथम संस्करण सन् १९२६ ई०

रामचरित मानस (मूल गुटका) गीता प्रेस गोरखपुर, पंचम संस्करण

सं० १९६८ वि०

सुदामा चरित (श्री नरोत्तम दास) सम्पादक श्री प्रेम नारायण टंडन,

किया मंदिर रानी बटारा, लखनऊ १९५२ ई०

पेलि प्रिन्टन रुक्मिणी दी (राठौड़ प्रिंसी राज) सम्पा० डा० राम सिंह

स्व० प० सूर्य किरण पारीक- हिन्दुस्तानी ऐडिमी

प्रयाग सन् १९३९ ई०

पेलि प्रिन्टन रुक्मिणी दी (केवल मूल) हिन्दुस्तानी ऐडिमी, कलाहाबाद

सन् १९५० ई०

कविता कीमुदी (पहला भाग) सम्पा० प० राम नरेश त्रिपाठी, नार्दन

इण्डिया पब्लिशिंग हाउस दिल्ली सप्तम संस्करण

सन् १९४६ ई०

श्री हित दुधासागर (प्रका० स्वा० श्री नारायणदास) बलीगढ़ प्रथम

संस्करण सं० १९६३ वि०

हरिदास वंशानुचरित्र (बाणी संस्कारिता स्व० जीवनी सेलक, चौथे नवनीत

कवि मथुरा) ब्रह्म प्रेस बटावा, प्रथम संस्करण १९६७ वि०

सलित प्रकाश (स्व० श्री सहवरी शरणदेव) बाल्लुदेवार प्रेस लखनऊ सं०

१९८७ वि०

ब्रज माधुरी चार (सम्पा० विद्योती हरि) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

चतुर्थ संस्करण सं० १९६६ वि०

श्री चैतन्य चरितावली (श्री प्रमुदच ब्रह्मचारी) गीता प्रेस गोरखपुर

तृतीय संस्करण २००६ वि०

राधा वल्लभः सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य (डा० विजयेन्द्र स्नातक)

नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली प्रथम संस्क० सं० २०१४ वि०

श्री राधा का क्रम विकास (डा० शशिभूषणदास गुप्त) हिन्दी प्रचारक

पुस्तकालय, ज्ञानवापी वाराणसी, प्रथम संस्करण सन् १९५६ ई०

भारतीय साधना और सूर साहित्य (डा० मुंशीराम शर्मा " सीम ")

बाबार्थ शुक्ल साधना सदन, कानपुर, सन् १९५३ ई०

सूर और उनका साहित्य (डा० हरमल लाल शर्मा) भा० प्र० मंदिर

कसीगढ़ , प्रथम संस्करण

परमानन्द शर्मा (सम्पा० डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल) भा० प्र० मंदिर

कसीगढ़, प्रथम संस्करण

हिन्दी साहित्य (डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी) अवरचन्द्र कपूर एण्ड

सन्ध दिल्ली १९५२ ई०

मध्यकावीन धर्म साधना (डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी) साहित्य भवन

लि० अलाहाबाद प्रथम संस्का० सन् १९५२ ई०

भागवत सम्प्रदाय (श्री बलदेव उपाध्याय) भा० प्र० समा काशी प्रथम

संस्करण सं० २०१० वि०

हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता (डा० जेनी प्रसाद) दि० संस्करण

सन् १९५० ई०

श्रीभागवत तत्व विमर्श (श्री मनीरथ झा) बालकृष्ण शुद्धादित महात्मा

सुरत १९४९ ई०

कबीर का रहस्यवाद (डा० राम कुमार वर्मा) हिन्दी साहित्य भवन

प्रयाग , षष्ठ संस्करण सन् १९४८ ई०

मध्यकावीन प्रेम साधना (श्री परशुराम बसुर्वेदी) साहित्य भवन लि०

अलाहाबाद प्रथम संस्करण १९५२ ई०

गीता रहस्य (लौकमान्य तिलक) पूना प्रथम संस्करण १९३६ ई०

भारत का सांस्कृतिक इतिहास (हरिद्वय पेदार्कर) बात्माराम एण्ड

सन्ध, द्वितीय संस्करण १९५२ ई०

बादि भारत (प्रो० कर्तुन चौबे काश्यप) वाणी विहार बनारस प्रथम

संस्करण १९५३ ई०

हिन्दी मखि काव्य (डा० राम रत्न भटनागर) किताब महल इलाहा-
बाद प्र० संस्क० सन् १९४८ ई०

हिन्दी साहित्य का इतिहास (बाचार्य रामचन्द्र शुक्ल) सप्तम संस्क०
नागरी प्रचारिणी सभा काशी २००८ वि०

हिन्दी पुस्तक साहित्य (डा० माता प्रसाद गुप्त) हिन्दुस्तानी लैब्रेरी
इलाहाबाद सन् १९४५ ई०

राजस्थान का फिगल साहित्य (श्री मोती लाल मेनारिया) द्वितीय
पुस्तक मण्डार , उदयपुर १९५२ ई०

संस्कृत साहित्य का इतिहास (जोशी स्व० मारुताज) प्रथम संस्करण

संस्कृत वाङ्मयाचा त्रोटक इतिहास(पराठी) (वि० वि० वैद्य) प्रथम संस्क०

हिन्दी साहित्य का वादिकाल (डा० ज्वारी प्रसाद द्विवेदी)

कल्याण भागवतांक वर्ण १६

E_N_G_L_I_S_H

A descriptive catalogue of the Sanskrit and Prarit Mss
in the Library of the University of Bombay 1944.

Catalogue of the Sanskrit and Prakrit Mss in the Library of the
India Office.

Encyclopaedia Britannica Fourth Edition.

A History of Sanskrit Literature (Keith) Oxford University
Press London 1st Edition 1920-

Contribution to the Science of Mythology (MaxMuller) 1897.

Custom and Myth (Andrew Lang) London 1894

Mythology of Aryan Nations (A. Cocks)

Sacred Books of the East Series (Buhler) Vol. 14.

The Religions of India (Hopkins) Boston Guin Co. 1902.

Oxford Dictionary (Towler)

Chamber's Twentieth Century Dictionary (Thomas Davidson)

New Popular Encyclopaedia (Charles Annadale)

Alberuni's India (Sachan)

Journal of Bombay Branch of Royal Asiatic Society 1925.

Vaishnavism, Shaivism and minor religious systems (R.C.Bhandarkar)

Ancient Indian Historical Tradition (Pargiter)

Outlines of the Religious Literature of India (Percuher)

Indian Literature (Winternitz)

New Indian Antiquary 1938-39

Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute 1932-33

A classical Dictionary of Hindu Mythology (John Dowson) London
1950.

Puranic Chronology (D.R. Mankad) Anand Gujrat 1st Edition 1951.